

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

❊ जन्मदिवस 19–03–1971 ❊ मुनिदीक्षा–11–05–1989 ❊ आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

जैनग्रन्थ-प्रशस्तिसंग्रह = ०१

संशोधक और सम्पादक
जुगलकिशोर मुख्तार

प्रकाशक
वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

(परम्परानायक)



परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)



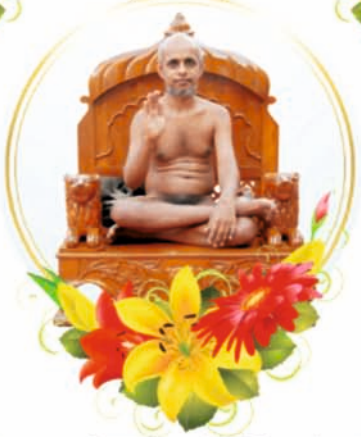
परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)



परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

वीरसेवामन्दिर-ग्रन्थ-माला ग्रन्थाङ्क १२

जैनग्रन्थ-प्रशस्ति-संग्रह

प्रथम भाग

संयोजक और सम्पादक
जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'
अधिष्ठाता 'वीरसेवामन्दिर'
सरसावा जि० सहारनपुर

सहायक सम्पादक
प० परमानन्द जैन शास्त्री
वीरसेवामन्दिर, दरियागंज, दिल्ली

प्रकाशक
वीर-सेवा-मन्दिर
दरियागंज, दिल्ली

प्रथमावृत्ति ५०० प्रति | कार्तिक, वीर सं० २४८०, वि० सं० २०११ अक्तूबर सन् १९५४ | मूल्य [illegible] ४०)

प्रकाशक

वीर-सेवा-मन्दिर

दरियागंज, दिल्ली

प्रकाशन-व्यय

६०४) छपाई २६ फार्म ४८०)+४२४)	१००) विज्ञापन
२७०) कागज १३॥ रिम	२५) पोस्टेज
२००) जिल्द बँधाई	
४००) सहसम्पादन और प्रस्तावना	३१०१)
१८२) प्रूफ संशोधन	१०००) प्राप्त सहायता
२६०) कार्यालय-व्यवस्था	प्रतियाँ छपी ५००
२००) भेंट समालोचनादि ५० प्रति	लागत एक प्रति ४।) के लगभग
१२०) कम तय्यार हुई ३० प्रति	मूल्य ४) रुपये।
४२०) कमीशन ४२० प्रति	

कुल पृष्ठसंख्या ४१६

मुद्रक

१ रामा प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

मूल ग्रन्थ पृष्ठ १ से १११ तक।

२ रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, दिल्ली

शेष ग्रन्थ पृ० ११३ से २५६, टाइटिलादि के ६ पृ० और प्रस्तावनादिके पृष्ठ १ से १४१ तक।

धन्यवाद

—:⊖:—

श्रीमान् बाबू छोटेलालजी जैन कलकत्ता ने, जो कि
साहित्य इतिहास और पुरातत्त्वके विषयमें
गहरी रुचि तथा दिलचस्पी रखते हैं,
इस ग्रन्थके प्रकाशनमें वीरसेवामन्दिरको
एक हजार १०००) रुपयेकी सहायता
प्रदान की है, जिसके लिये
उन्हें हार्दिक धन्यवाद
समर्पित है।

जुगलकिशोर मुख्तार

प्रकाशकीय वक्तव्य

कुछ वर्ष हुए यह ग्रन्थ रामा प्रिंटिंग प्रेस दिल्लीको छापनेके लिये दिया गया था और उस समय इसके लगातार १९२ पृष्ठ छप भी गये थे; छपाईका यह सब काम दिल्ली ठहरकर ही कराया गया था। कुछ परिस्थितियोंके वश सरसावा आदि जाना हुआ और छपाईका काम बन्द करना पड़ा। बादको जब छपाईका काम पुनः शुरू करना चाहा तब प्रेसके टाइप काफी घिस गये थे और नया टाइप मँगाकर काम शुरू करना प्रेसने मंजूर नहीं किया। इस तरह छपाईका काम टलता रहा। इस बीचमें पं० परमानन्दजीने परिचयात्मक प्रस्तावना लिखनेकी अनुमति माँगी और उसे पाकर वे प्रस्तावना लिखनेमें प्रवृत्त होगये। प्रस्तावना लिखनेमें धारणासे कहीं अधिक समय लग गया; क्योंकि कितने ही ग्रंथोंकी प्रशस्तियोंको जाँचनेके लिये दूसरी पुरानी शुद्ध प्रतियाँ बाहरसे मँगानी पड़ीं और कितने ही ग्रन्थकारोंके समय तथा कृतियोंका निश्चय करनेके लिये काफ़ी रिसर्च (खोज) का काम करना पड़ा। समयमें 'अनेकान्त' तथा अन्य ग्रन्थोंके प्रकाशनादि सम्बन्धी दूसरे काम भी करने पड़े। इससे ग्रन्थको पुनः प्रेसमें जानेके लिये और भी विलम्ब हो गया। जब वह पुनः प्रेसमें जानेके योग्य हुआ तो संस्थाको आर्थिक संकटने आ घेरा और इससे उसका प्रेसमें जाना रोकना पड़ा। हालमें बाबू छोटेलालजी कलकत्ताकी एक हजारकी सहायताको पाकर छपाई आदिका शेष कार्य पूरा किया गया है। यही सब इस ग्रन्थके आशातीत विलम्बसे प्रकाशित होनेका कारण है। यह ग्रन्थ जैन साहित्य और इतिहासके विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डालनेवाला है। ऐसे ग्रंथों के प्रकाशनकी इस समय बड़ी ज़रूरत है। इसका दूसरा भाग, जो अपभ्रंश भाषाके ग्रन्थोंसे सम्बन्ध रखता है और बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्रीको लिये हुए है, तय्यारीके निकट है। आशा है उसके प्रकाशनके लिये कोई दानी महानुभाव अपना आर्थिक सहयोग प्रदान करेंगे, जिससे वह शीघ्र प्रकाशमें लाया जा सके।

अन्तमें मैं डाक्टर ए. एन. उपाध्ये एम. ए., डीलिट. का भारी आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने अपना अंग्रेजी प्राक्कथन (Fore word) बहुत पहले लिखकर भेजनेकी कृपा की थी, और जो समय-समय पर अपनी शुभ सम्मतियोंसे बराबर अनुगृहीत करते रहे हैं।

जुगलकिशोर मुख्तार

FOREWORD

Eastren India long before the adven of Vedic Aryans, Jaina religion has close affinities with Buddhism but it is essentially independent of and distinct from Vedic religion or its later forms, now loosely called by the name Hinduism. As Jacobi has remarked:' In conclusion let me assert my conviction that Jainism is an original system, quite distinct and independent from all others; and that therefore, it is of great importance for the study of philosophical thought and religious life in ancient India. (Transactions of the Third International Congress for the History of Religions, vol. II, pp. 59-66, oxford 1908).

The Jaina authors have given a distinctive position and an intellectual basis to their religious and cultural ideology by their religious snd secular writings, both ancient and modern, in different languages like Prakrit, Sanskrit, Apabhramsa, Old-Rajasthani, Old-Hindi, Old-Gujarati, Tamil and Kannada. As Winternitz puts it : There is scarcely any province of Indian literature in which the Jainas have not been able to hold their own. Above all they have developed a voluminous narrative literature. they have written epics and novels, they have composed dramas and hymns ; sometimes they have written in the simple language of the people, at other times they have competed in highly elaborate poems, with the best masters of ornate court poetry and they have also produced important works of scholarship.' (A History of Indian Literature, II, p. 483)

The Jaina works unmistakably possess the stamp of religious spirit, but their authors have never carried their literary pursuits in isolation : they are essentially

FOREWORD

The idea of writing a history of literature with the various works classified according to language. religion, subject-matter, regional or dynastic affiliation, or literary form etc. is not quite indigenous in India. It is the eminent oriental scholars from the West who were amazed at the antiquity, importance and richness of Indian literature that tried to take a historical survey of some tract or the other of Indian literature. When one looks at the various volumes of the Grundriss der Indo-Arischen Philologie and Altertumskunde (Encyclopedia of Indo-Aryan Research) edited by Buhler and his colleagues or at the Geschichte der Indischen Litteratur, 1-3 (A History of Indian Literature, vols. 1-2, so far published) by M. Winternitz, one has to admire not only the stupendous labour of the surveyors but also the continued researches of various scholars which supplied material for such a survey. It is such histories that have given us an all-India outlook, beyond the limitations and prejudices created by the differences of religion and language; and it is this approach that would enable us in the long run to evaluate the literary achievements and cultural heritage of India in the march of world civilization.

Jainism possesses many an important religious aspect : its Atman-Karman philosophy; its course of spiritual evolution without any intervention of Divinity; the stress laid on ascetic morality; and its ethico-moral principles like Ahimsa. As a representative of the Sramanic culture, which appears to have been prevalent along the fertile banks of Ganges in

pendent collections of Prasasts' have been published, for instance : Sri-prasasti-samgrahah by A. m. Shaha, Ahmedabad Samvat 1993; Jaina pustaka-prasasti-samgraha, vol. I, ed; Jinavijaya Muni, Singhi Jain Series 17, Bombay 1943. Even a cursory glance through these publications will convince any one of the great value and usefulness of the material.

Pt. Jugalkishore Mukthar is a front-rank scholar who has worked hard throughout his lengthy career to unearth important information about rare works and unknown authors. His contributions have enlightened many dark corners of Indian literature in general and Jaina literature in particular. He has spent his valuable time in many Ms.-collections and gathered together a lot of useful material. He has a hnnger and thirst for new facts and fresh evidence. His various articles in the Jaina Hitaishi and Anekanta speak eloquently for his strenuous labour and deep scholarship. He weighs his evidence with a remarkable legal acumen; and as a critic he is thorough and unsparing. What he has achieved singlehanded through his manifold writings should be a matter of pride for any Institution.

In this Jainagrantha-prasasti-samgraha Pt. Jugalkishore has presented from his personal colection Prasastis from 171 works embracing various subjects like logic,religion, narrative, didactic and hymnal poetry, ritual, metaphysics, drama, grammar etc. both in Sanskrit and Parkrit. Some of these Prasastis give important bits of informotion. The Prasastis of Ganitasara-samgtaha and Jayadhavala refer to Amoghavarsa Nrpatunga, the Rashtrakuta rules; and

numerous Prasastis give the dates of composition as well. Indranandi gives so much of useful information about himself and his contemporaries that one must hesitate now to say that Indian aulhors were lacking in historical sense as it was once alleged by early European scholarrs.

This handy volume is equipped with the necessary Appendices which heighten its referential value. It is simply indispensable to an earnest student of Indian literature in general and Jaina literature in particular.

Kolhapur
January 1, 1949

A. N. Upadhye

प्र स्ता व ना

प्रशस्ति-परिचय

भारतीय पुरातत्त्वमें जिस तरह मूर्तिकला, दानपत्र, शिलालेख, स्तूप, मूर्तिलेख, कूप-बावड़ी, तड़ाग, मन्दिर प्रशस्तियाँ और सिक्के आदि वस्तुएँ उपयोगी और आवश्यक हैं। इनकी महत्ता भारतीय अन्वेषक विद्वानोंसे छिपी हुई नहीं है। ये सब चीजें भारतकी प्राचीन आर्य संस्कृतिकी समुज्वल धाराकी प्रतीक हैं। और इतिहासकी उलझी हुई समस्याओं और गुत्थियोंको सुलझानेमें अमोघ अस्त्रका काम देती हैं तथा पूर्वजोंकी गुण-गरिमाका जीता-जागता सजीव इतिहास इनमें संकलित रहता है।

इसी तरह भारतीय साहित्यादिके अनुसंधानमें ग्रन्थकर्ता विद्वानों, आचार्यों और भट्टारकोंद्वारा लिखी गई महत्वपूर्ण ग्रन्थ-प्रशस्तियाँ भी उतनी ही उपयोगी और आवश्यक हैं जितने कि शिलालेख आदि। प्रस्तुत ग्रन्थमें संस्कृत प्राकृत भाषाके १७१ ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंका संकलन किया गया है जो ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़े ही महत्वका है। ये प्रशस्तियाँ ग्रन्थकर्ता विद्वानों और आचार्यों आदिके द्वारा समय-समय पर रची गई हैं। इन प्रशस्तियोंमें संघ, गण, गच्छ, वंश, गुरुपरम्परा, स्थान तथा समय संवतादिके साथ तत्कालीन राजाओं, राजमन्त्रियों, विद्वानों, राजश्रेष्ठियों और अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकर्ता विद्वानों तथा उनकी कृतियोंके नाम भी जहाँ-तहाँ दिये हुए हैं, जो अनुसन्धाता विद्वानों (रिसर्चस्कॉलरों) के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। इन परसे अनेक वंशों, जातियों, संघों, गण-गच्छों

गुरुपरम्पराओं, उनके स्थान, समय, कार्यक्षेत्र और उनकी ज्ञानलिप्साके साथ-साथ तत्कालीन परिस्थितियों, राजाओं, महामात्यों और नगर-सेठ आदिके इतिवृत्त सहज ही संकलित किये जा सकते हैं।

इन प्रशस्तियोंको दो विभागोंमें बाँट दिया गया है, उनमेंसे इस प्रथम विभागमें मुख्यतया संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थोंकी प्रशस्तियाँ ही दी गई हैं। अपभ्रंशभाषाके ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंका एक जुदा ही संग्रह निकालनेका विचार है इसीसे उन्हें इस विभागमें स्थान नहीं दिया गया है। उन प्रशस्तियोंका संग्रह भी प्रायः पूरा हो चुका है जो सम्पादित होकर प्रेसमें दिया जायगा। ये सब प्रशस्तियाँ प्रायः अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थों परसे नोट की गई हैं और उन्हें सावधानीसे संशोधित कर देनेका उपक्रम किया गया है। फिर भी दृष्टि-दोष तथा प्रेस आदिकी असावधानीसे कुछ अशुद्धियोंका रहजाना सम्भव है। प्रस्तुत संग्रहमें ४-५ ऐसे ग्रन्थोंकी प्रशस्तियाँ भी संग्रह की गई हैं जो अन्यत्र अपूर्ण तथा अशुद्ध रूपमें प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्हें कुछ विशेषताओंके साथ शुद्ध प्रतियों परसे संशोधित करके दिया गया है। दो-चार ऐसे ग्रन्थोंकी प्रशस्तियाँ भी अंकित की गई हैं जो संग्रह करते अथवा छपाते समय तो अप्रकाशित थे लेकिन बादको प्रकाशित हो गये हैं। फिर भी समयादिककी दृष्टिसे उनका संग्रह भी उपयोगी है।

इस प्रशस्तिसंग्रहके अन्तमें कुछ परिशिष्ट भी दिये गये हैं जिनमें प्रशस्ति गत भौगोलिक नामों, संघों, गणों, गच्छों स्थानों, राजाओं, राजमन्त्रियों, विद्वानों आचार्यों, भट्टारकों तथा श्रावक श्राविकाओंके नामोंकी सूचीको अकारादि क्रमसे दिया गया है, जिससे अन्वेषक विद्वानोंको विना किसी विशेष परिश्रमके उनका पता चल सके।

इस १७१ ग्रन्थ-प्रशस्तियोंके संग्रहमें, जिनके नाम अन्यत्र दिए हुए हैं, जिनमें उनके कर्ता १०४ विद्वानों आदिका संक्षिप्त परिचय भी निहित है और उनका संक्षिप्त परिचय आगे दिया जायगा जिनके नाम इस प्रकार हैं:—

१. वादिराज २. जयसेन ३. पद्मनाम कायस्थ ४. वासवसेन ५. वाग्भट ६. पं० आशाधर ७. ब्रह्म जिनदास ८. मुमुक्षु विद्यानन्द ९. ब्रह्म नेमिदत्त १०. ब्रह्म श्रुतसागर ११. भ० सकलभूषण १२. मुनि पद्मनन्दि १३. भ० ललितकीर्ति १४. सिंहनन्दि १५. पं० नेमिचन्द १६. वादिचन्द्र १७. केशवसेनसूरि १८. अक्षयराम १९. सोमदेवसूरि २०. विबुध श्रीधर २१. सहस्रकीर्ति २२. मुनि रामचन्द्र २३ भ० जिनेन्द्रभूषण २४. भ० गुणचन्द्र २५. भ० धर्मकीर्ति २६. पं० रामचन्द्र २७. ब्रह्म कामराज २८. भ० शुभचन्द्र २९. सोमकीर्ति ३०. भ० रत्नचन्द्र ३१. पं० जिनदास ३२. ब्रह्म कृष्णदास ३३. कवि दामोदर ३४. दीक्षित देवदत्त ३५. भास्करनन्दि ३६. देवेन्द्रकीर्ति ३७. पं० धरसेण ३८. चारित्रभूषण ३९. कवि नागदेव (जिनदेव) ४०. कवि जगन्नाथ ४१. गुणचन्द्र ४२. शिवाभिराम ४३. चन्द्रकीर्ति ४४. जयकीर्ति ४५. महासेनसूरि ४६. देवेन्द्रकीर्ति ४७. सुमतिसागर ४८. ब्रह्मगोपाल ४९. शुभचन्द्र ५०. कवि हस्तिमल्ल ५१. अजितसेनाचार्य ५२. भानुकीर्ति ५३. पं० योगदेव ५४. नागचन्द्रसूरि ५५. भ० श्रीभूषण ५६. पं० अरुणमणि ५७. भ० ज्ञानभूषण ५८. ब्रह्म रायमल्ल ५९. नरेन्द्रसेन ६०. जिनसेनसूरि ६१. कवि असग ६२. अद्यमपार्य ६३. गुणभद्र ६४ अनन्तवीर्य ६५. नन्दिगुरु ६६. नागराज ६७. भ० कमलकीर्ति ६८. श्रीदेव ६९. कवि गोविन्द ७०. मल्लिषेणसूरि ७१. इन्द्रनन्दियोगीन्द्र ७२. पं० बुधवीर ७३. प्रभाचन्द्र ७४. त्रिविक्रम ७५. अमरकीर्ति ७६. ज्ञानभूषण ७७. रामचन्द्र मुमुक्षु ७८. सुमतिकीर्ति ७९. पांडे रूपचन्द्र ८०. प्रभाचन्द्र ८१. धर्मदेव ८२. माधवचन्द्रत्रैविद्य ८३. श्रीचन्द्र ८४. भ० अरिष्टनेमि ८५. महावीराचार्य ८६. भ० श्रीभूषण ८७. भ० चन्द्रकीर्ति ८८. वीरसेनाचार्य ८९. जिनसेन ९०. वीरभद्राचार्य ९१. दुर्गदेव ९२. श्रुतमुनि ९३. भट्टवोसरि ९४. मुनि गणधरकीर्ति ९५. सोमदेव ९६. पं० प्रभाचन्द्र ९७. प्रभाचन्द्राचार्य ९८. वामदेव ९९. भ० ललितकीर्ति १००. वादिराज १०१. कवि वाग्भट १०२. हरिपाल १०३. विश्वसेन मुनि १०४. और भ० ज्ञानकीर्ति ।

प्रशस्ति संग्रहमें ग्रंथ-कर्ता इन विद्वानों आदिका संक्षिप्त परिचय क्रमसे नीचे दिया जाता है:—

इस प्रशस्तिसंग्रहकी प्रथम प्रशस्ति 'न्यायविनिश्चयविवरण' की है, जिसके रचयिता आचार्य वादिराज हैं। वादिराज द्राविडसंघस्थित नन्दिसंघकी अरुंगल नामक शाखाके विद्वान थे, श्रीपालदेवके प्रशिष्य तथा मतिसागरके शिष्य थे। सिंहपुराधीश चालुक्य राजा जयसिंहकी सभाके वे प्रख्यातवादी और उक्त राजाके द्वारा पूजित थे। प्रस्तुत ग्रन्थ उन्हींके राज्य-कालमें रचा गया है। प्रशस्तिमें उनकी विजय कामना की गई है। इस ग्रंथके अतिरिक्त आपकी अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध हैं, जो प्रायः प्रकाशित हो चुकी हैं, और वे हैं—प्रमाण निर्णय, पार्श्वनाथचरित्र, यशोधरचरित्र, एकीभावस्तोत्र, अध्यात्माष्टकस्तोत्र। इनके सिवाय मल्लिषेण प्रशस्ति नामक शिलावाक्यमें 'त्रैलोक्य दीपिका' नामक ग्रन्थका भी नामोल्लेख मिलता है जो अभी तक अनुपलब्ध है।

आचार्य वादिराजका समय विक्रमकी ११वीं शताब्दीका उत्तरार्ध है, क्योंकि उन्होंने अपना पार्श्वनाथ चरित्र शक सं० ९४७ (वि० सं० १०८२) में बनाकर समाप्त किया है।

दूसरी प्रशस्ति 'धर्मरत्नाकर' की है। जिसके कर्त्ता आचार्य जयसेन हैं। जयसेनने प्रशस्तिमें अपनी जो गुरु परम्परा बतलाई है वह यह है कि जयसेनके गुरु भावसेन, भावसेनके 'गुरु गोपसेन, गोपसेनके गुरु शांतिषेण और शांतिषेणके गुरु धर्मसेन। ये सब आचार्य लाडबागड संघके विद्वान हैं, जो बागड़ संघका ही एक उपभेद है। बागडसंघका नाम 'वाग्वर' भी है और वह सब बागडदेशके कारण प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है, और इसलिये देशपरक नाम है।

आचार्य जयसेनका समय विक्रमकी ११वीं शताब्दीका मध्य भाग जान पड़ता है। यह आचार्य अमृतचन्द और यशस्तिलकचम्पूके कर्त्ता सोमदेव (शक सं० ८८१=वि० सं० १०१६) से बादके विद्वान हैं। धर्मरत्नाकरके अंतमें पाई जाने वाली प्रशस्तिका अन्तिम पद्य लेखकोंकी कृपासे प्रायः ट

गया है, वह देहली के पंचायतीमंदिर और आरा जैनसिद्धांत भवनकी प्रतियोंमें नहीं है, जिन परसे उक्त प्रशस्तिको नोट किया गया था। बादको ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वतिभवन ब्यावरकी प्रति परसे प्रशस्तिका उक्त अन्तिम पद्य निम्न रूपमें उपलब्ध हुआ है।

बाणेन्द्रियव्योमसोम-मिते संवत्सरे शुभे ।१०५५।
ग्रन्थोऽयं सिद्धतां यात सबलीकरहाटके ॥

इस पद्यसे ग्रन्थका रचनाकाल सं० १०५५ और रचना स्थान सबली-करहाटक स्पष्ट जाना जाता है और इसलिये ग्रन्थकार जयसेनका समय विक्रमकी ११वीं शताब्दीका मध्यभाग सुनिश्चित है। सबलीकरहाटक नामका नगर अथवा ग्राम कहाँ पर स्थित है इसके अनुसन्धानका अभी तक अवसर नहीं मिल सका।

तीसरी प्रशस्ति 'यशोधर चरित्र' की है जिसके कर्ता पद्मनाभ कायस्थ हैं, पद्मनाभ कायस्थने भट्टारक गुणकीर्तिके उपदेशसे पूर्व सूत्रा-नुसार यशोधरचरित्र अथवा दयासुन्दरविधानकी रचना राजा वीरमेन्द्र या वीरमदेवके राज्यकालमें महामात्य (मंत्री) साधू (साहू) कुशराज जैसवालके अनुरोधसे की है। पद्मनाभका वंश कायस्थ था और वे संस्कृत भाषाके अच्छे विद्वान थे। और जैनधर्म पर विशेष अनुराग रखते थे। 'संतोष' नामके जैसवालने उनके इस ग्रन्थकी प्रशंसा की तथा विजयसिंहके पुत्र पृथ्वीराजने अनुमोदना की थी।

कुशराज जैसवालकुलके भूषण थे, इनके पिताका नाम जैनपाल और माताका नाम 'लोणा' देवी था, पितामहका नाम भुल्लण और पितामही-का नाम उदिता देवी था। आपके पांच भाई और भी थे। जिनमें चार बड़े और एक छोटा था। हंसराज, मैराज, रैराज, भवराज ये बड़े भाई और हेमराज छोटा भाई था। कुशराज बड़ा ही धर्मात्मा तथा राजनीति में कुशल था। इसने ग्वालियरमें चन्द्रप्रभ जिनका एक विशाल जिनमंदिर बनवाया था और उसकी प्रतिष्ठादिकार्यको बड़े भारी समारोहके साथ संपन्न किया था। कुशराजकी तीन स्त्रियाँ थीं, रल्लो, लक्षणश्री, और कौशीरा।

थे तीनों ही पत्नियां सती, साध्वी तथा गुणवती थीं और नित्य जिनपूजन किया करती थीं ; रल्होसे कल्याणसिंह नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो बड़ा ही रूपवान, दानी और जिनगुरुके चरणाराधनमें तत्पर था।

इस सर्वगुण सम्पन्न कुशराजने श्रुतभक्तिवश उक्त यशोधरचरित्रकी रचना कराई थी जिसमें राजा यशोधर और रानी चन्द्रमतीका जीवन परिचय दिया हुआ है। यह पौराणिक चरित्र बड़ा ही रुचिकर प्रिय और दयारूपी अमृतका श्रोत बहाने वाला है। इस पर अनेक विद्वानों द्वारा प्राकृत, संस्कृत अपभ्रंश और हिन्दी गुजराती भाषा में ग्रन्थ रचे गए हैं।

कविवर पद्मनाभने अपना यह ग्रन्थ जिस राजा वीरमदेवके राज्यकाल-में रचा है वह ग्वालियरका शासक था और उसका वंश 'तोमर' था। यह वही प्रसिद्ध क्षत्रिय वंश है जिसे दिल्लीको बसाने और उसके पुनरुद्धार करनेका श्रेय प्राप्त है। वीरमदेवके पिता उद्धरणदेव थे, जो राजनीतिमें दक्ष और सर्वगुण सम्पन्न थे। सन् १४०० या इसके आस पास ही राज्य-सत्ता वीरमदेवके हाथमें आई थी। हिजरी सन् ८०५ और वि० सं० १४६२ में अथवा १४०५ A. D. में मल्लू इकबालखांने ग्वालियर पर चढ़ाई की थी; परन्तु उस समय उसे निराश होकर ही लौटना पड़ा। फिर उसने दूसरी बार भी ग्वालियर पर घेरा डाला; किन्तु इस बार भी उसे आस-पास के कुछ इलाके लूट कर ही वापिस लौटना पड़ा।

आचार्य अमृतचन्द्रकी 'तत्त्वदीपिका' (प्रवचनसार टीका) की लेखक प्रशस्तिमें, जो वि० सं० १४६६ में लिखी गई है, गोपाद्रिमें (ग्वालियरमें) उस समय वीरमदेवके राज्यका उल्लेख किया गया है। और अमरकीर्तिके षट्कर्मोपदेशकी आमेरप्रतिमें जो सं० १४७६ की लिखी हुई है उसमें भी वीरमदेवके राज्यका उल्लेख है और वीरमदेवका पौत्र डूंगरसिंह अपने पिता गणपतिदेवके राज्यका उत्तराधिकारी सं० १४८१ में हुआ। वीरमदेवका राज्य सं० १४६६ से कुछ बादमें भी रहा है। इससे यह जाना जाता है कि ग्रन्थकर्ता कवि पद्मनाभने सं० १४६२ से

सन् १४७६ के मध्यवर्ती किसी समयमें इस यशोधर चरितकी रचना भ० गुणकीर्तिके उपदेशसे की है।

चौथी प्रशस्ति मुनि वासवसेनके यशोधरचरितकी है। मुनिवासवसेनने अपनी प्रशस्तिमें उसका रचनाकाल और अपना कोई परिचय नहीं दिया और न दूसरे किन्हीं साधनोंसे ही यह ज्ञात हो सका है कि उक्त चरित कब रचा गया। इस ग्रन्थकी एक प्रति सं० १५८१ की लिखी हुई जैनसिद्धान्तभवन आरामें मौजूद है, जो रामसेनान्वयी भ० रत्नकीर्तिके प्रपट्टधर और भ० लखमसेनके पट्टधर भ० धर्मसेनके समयमें लिखी गई है, उससे इतना ही ज्ञात होता है कि वासवसेन सं० १५८१ से पूर्ववर्ती विद्वान हैं, कितने पूर्ववर्ती हैं, यह अभी अज्ञात है।

पाँचवीं प्रशस्ति 'नेमिनिर्वाणकाव्य' की है जिसके कर्ता कवि वाग्भट हैं। कवि वाग्भट प्राग्वाट् (पोरवाड़) वंशके कुलचन्द्र थे, और अहिछत्रपुरमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम छाहड़ था। इनकी यह एक ही कृति अभी तक उपलब्ध है, जो ९९० पद्योंकी संख्याको लिये हुए है। यह सारा ग्रन्थ १५ सर्गों अथवा अध्यायोंमें विभक्त है। इसमें जैनियोंके बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथका चरित्र अंकित किया गया है। ग्रन्थकी रचना सुन्दर, सरस, मधुर तथा विविध अलंकारों आदिसे विभूषित है। इसके सातवें सर्गमें 'मालिनी' आदि संस्कृतके ४४ छन्दोंका स्वरूप भी दिया हुआ है और पद्यके उपान्त्य चरणमें छन्दके नामकी सूचना भी कर दी गई है। ग्रन्थके अनेक पद्योंका उपयोग वाग्भट्टालंकारके कर्ता वाग्भटने अपने ग्रन्थमें यत्र तत्र किया है। चूंकि वाग्भट्टालंकारके कर्ता कवि वाग्भटका समय विक्रमकी १२ वीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध (सं० ११७९) है अतः यह ग्रन्थ उससे पूर्व ही रचा है। इस काव्य ग्रन्थ पर भ० ज्ञानभूषणकी एक पंजिका टीका भी उपलब्ध है, जो देहलीके पंचायती मन्दिरके शास्त्रभंडारमें मौजूद है। ग्रन्थकर्ताने अपने सम्प्रदायका कोई उल्लेख नहीं किया, फिर भी १९वें तीर्थंकर मल्लिनाथ जिनकी स्तुति करते हुए उन्हें

कुरु सुत (इक्ष्वाकुवंशी) राजाका पुत्र बतलाया है × श्वेताम्बरीय मतानुसार सुत। नहीं, इससे इस ग्रन्थके कर्ता दिगम्बराचार्य हैं।

छठवीं प्रशस्ति 'भूपालचतुर्विंशति-टीका' की है जिसके कर्ता पंडित प्रवर आशाधर हैं जो विक्रमकी १३वीं शताब्दीके प्रतिभासम्पन्न बहुश्रुत विद्वान थे। इन्होंने अपने जीवनका अधिकांश भाग जैनसाहित्यके निर्माण और उसके प्रचारमें व्यतीत किया था। वे संस्कृत भाषाके प्रौढ़ विद्वान थे। सपादलक्ष देशमें स्थित मांडवगढ़के निवासी थे। सं० १२४९ में जब शहाबुद्दीनगौरीने देहली और अजमेर पर अधिकार कर लिया, तब वे उस स्थानको छोड़कर सुप्रसिद्ध धारानगरीमें आ बसे और वहां उन्होंने व्याकरण तथा न्यायशास्त्रका अध्ययन किया। धाराके बाद वे नालछे (नलकच्छपुर*) के नेमिनाथ चैत्यालयमें रहकर पठन-पाठन और साहित्यकी उपासनामें तत्पर हो गये।

इनकी जाति बघेरवाल थी। इनके पिताका नाम सल्लक्षण, माताका श्रीरत्नी और धर्मपत्नीका सरस्वती तथा पुत्रका नाम छाहड था। इनके समयमें विन्ध्यवर्मा, सुभटवर्मा, अर्जुनवर्मा, देवपाल और जैतुगिदेव नामके पांच राजा हुए हैं, जिनका उल्लेख इन्होंने अपने ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंमें किया है। पंडित आशाधरजीकी कितनी ही कृतियाँ अप्राप्य हैं, एक दो प्राप्त कृतियाँ भी अभी अप्रकाशित हैं और शेष रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत भूपाल चतुर्विंशतिका टीका विनयचन्द्रके अनुरोधसे लिखी गई है। ये विनयचन्द्र वे ही जान पड़ते हैं जिनके अनुरोधसे पंडितजीने इष्टोपदेशकी

× तपः कुठार-क्षत-कर्मवल्लि—मल्लिर्जिनो वः श्रियमातनोतु ।
कुरोः सुतस्यापि न यस्य जातं, दुःशासनत्वं भुवनेश्वरस्य ॥ १६ ॥
—नेमिनिर्वाणकाव्य

* यह नालछा या नलकच्छपुर विक्रमकी १३वीं शताब्दीमें जनधनसे समाकीर्ण था यह नगर धार और मांडव (मांडु) गढ़के मध्यवर्ती स्थानमें बसा हुआ था। इस नगरके चिन्ह आज भी अवशिष्ट हैं या नहीं, यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका।

टीका बनाई थी और जो सागरचन्द्र मुनिके शिष्य थे। उनकी शेष कृतियों-के नाम इस प्रकार हैं:—

सागार-अनगारधर्मामृत स्वोपज्ञटीका सहित, मूलाराधनादर्पण, सहस्रनाम मूल व स्वोपज्ञटीका सहित, पं० हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री साढ्-मल और सोनागिरके भट्टारकीय ज्ञानभण्डारमें उपलब्ध हैं*। जिनयज्ञकल्प, त्रिषष्टि स्मृतिशास्त्र सटीक, नित्यमहोद्योत, अमरकोष टीका (अनुपलब्ध) आराधनासारटीका (अनुपलब्ध) क्रियाकलाप, अध्यात्मरहस्य (अनु-पलब्ध), राजीमतिविप्रलंभ, ज्ञानदीपिका, भरतेश्वराभ्युदय, प्रमेयरत्नाकर काव्यालंकार टीका, रत्नत्रयविधान और अष्टांग हृदयोद्योतिनी टीका।

पंडित आशाधरजीने सं० १२८५ में जिनयज्ञकल्प, सं० १२९२ में त्रिषष्ठि स्मृतिशास्त्र, सं० १२९६ में सागारधर्मामृत टीका और सं० १३०० में अनगारधर्मामृत टीकाका निर्माण किया है। शेष सब ग्रन्थ सं० १२८५ और सं० १३०० के मध्यवर्ती समयमें रचे गये हैं। इनका विशेष परिचय 'जैनसाहित्य और इतिहास' नामक पुस्तकके पृष्ठ १२९ में देखना चाहिए।

७वीं, ७५वीं और १४२वीं प्रशस्तियां जम्बूस्वामिचरित हरिवंशपुराण और रामचरित्रकी हैं जिनके कर्ता ब्रह्मजिनदास हैं जो कुन्दकुन्दान्वय सरस्वतीगच्छके भट्टारक सकलकीर्तिके कनिष्ठ भ्राता और शिष्य थे। ये मदनरूपी शत्रुको जीतने वाले ब्रह्मचारी, क्षमानिधि, षष्ठमादितपके विधाता और अनेक परीषहोंके विजेता थे। इन्होंने अनेक देशोंमें विहार करके जनताका कल्याण किया था—उन्हें सन्मार्ग दिखलाया था। ये जिनेन्द्रके चरणकमलोंके चंचरीक, देव-शास्त्र-गुरुकी भक्तिमें तत्पर, अत्यन्त दयालु तथा सार्थक जिन-दास नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त थे और प्राकृत, संस्कृत, गुजराती तथा हिंदी भाषाके अच्छे विद्वान एवं कवि भी थे। इनके गुरु भट्टारक सकलकीर्ति प्रसिद्ध विद्वान थे, जिनका संस्कृत भाषा पर अच्छा अधिकार था, तात्कालिक भट्टा-रकोंमें इनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। इन्होंने अपने समयमें अनेक मन्दिर

* पंडित हीरालालजीसे ज्ञात हुआ है कि सहस्रनामका प्रकाशन हाल हीमें भारतीयज्ञानपीठ काशीसे हो चुका है।

बनवाए, सैकड़ों मूर्तियोंका निर्माण कराया और उनके प्रतिष्ठादि महोत्सव कार्य भी सम्पन्न किये हैं। इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियोंके कितने ही अभिलेख सं० १४८० से १४९२ तकके मेरी नोट बुकमें दर्ज हैं। इनके अतिरिक्त अनेक मूर्तियां और उनके अभिलेख और नोट किये जाने को हैं, जिन सबके संकलित होने पर तत्कालीन ऐतिहासिक बातोंके अन्वेषणमें बहुत कुछ सुविधा प्राप्त हो सकती है।

भ० सकलकीर्तिने सं० १४८१ में संघ सहित बड़ालीमें* चातुर्मास किया था और वहांके अमीझरा पार्श्वनाथ चैत्यालयमें बैठकर 'मूलाचार-प्रदीप' नामका एक संस्कृत ग्रन्थ सं० १४८१ की श्रावण शुक्ला पूर्णिमाको अपने कनिष्ट भ्राता जिनदासके अनुग्रहसे पूरा किया था। इसका उल्लेख गुजराती कविताके निम्न उपयोगी अंशसे जाना जा सकता है:—

तिहि अवसरे गुरु आविया, बडाली नगर मझार रे,
चतुर्मास तिहां करो शोभनो, श्रावक कीधा हर्ष अपार रे।
अमीझरे पधराविया, वधाई गावे नरनार रे,
सकल संघ मिल वंदियां, पाम्या जय जयकार रे॥

× × × ×

संवत् चौदह सौ इक्यासी भला, श्रावण मास लसंतरे,
पूर्णिमा दिवसे पूरण कर्या, मूलाचार महंतरे॥

× × × ×

भ्राताना अनुग्रह थकी कीधा ग्रन्थ महानरे॥

---

* १५ शताब्दीमें बडाली जन धनसे सम्पन्न नगर था, उस समय वहां हूमड़ दि० जैन श्रावकोंकी बहुत बड़ी बस्ती थी। वहांका अमीझरा पार्श्वनाथका दि० मन्दिर बहुत प्रसिद्ध था। उस समय देवसी नामके एक बीसाहूमडने केशरियाजीका संघ भी निकाला था और भ० सकलकीर्ति उस समयके प्रसिद्ध विद्वान भट्टारक थे, बागड़ और गुजरातमें उनका अच्छा प्रभाव था। वे अपने शिष्य प्रशिष्यादि सहित उक्त प्रान्तमें विहार करते रहते थे।

यद्यपि सकलकीर्तिने अपने किसी भी ग्रन्थमें उसका रचनाकाल नहीं दिया, फिर भी, अन्य साधनोंसे—मूर्तिलेखादिके द्वारा—उनका समय विक्रमकी १५वीं शताब्दीका उत्तरार्ध सुनिश्चित है । भट्टारक सकलकीर्ति ईडरकी गद्दीके भट्टारक थे और भ० पद्मनन्दीके पट्टपर प्रतिष्ठित हुए थे। कहा जाता है कि वे सं० १४४४ में उक्त गद्दी पर आसीन हुये थे और सं० १४९९के पूषमासमें उनकी मृत्यु महसाना (गुजरात) में हुई थी। महसानामें उनका समाधिस्थान भी बना हुआ है। भ० सकलकीर्ति द्वारा रचित ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार हैं, जिनसे उनकी विद्वत्ता और साहित्य-सेवाका अनुमान किया जा सकता है :—

१ पुराणसार २ सिद्धान्तसारदीपक ३ मल्लिनाथ चरित्र ४ यशोधर चरित्र ५ वृषभचरित्र (आदिनाथ पुराण) ६ सुदर्शनचरित्र ७ सुकमालचरित्र ८ वर्धमानचरित्र ९ पार्श्वनाथपुराण १० मूलाचार प्रदीप ११ सारचतुर्विंशतिका १२ धर्मप्रश्नोत्तर श्रावकाचार १३ सद्भाषितावली १४ धन्यकुमारचरित्र १५ कर्मविपाक १६ जम्बूस्वामिचरित्र १७ श्रीपालचरित्र आदि ।

ब्रह्म जिनदासने भी अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है जिनमें भ० सकलकीर्तिका बड़े गौरवके साथ स्मरण किया है। चूंकि जिनदास सकलकीर्तिके कनिष्ठ भ्राता थे। इसलिए इनका समय भी विक्रमकी १५ वीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध और सोलहवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध जान पड़ता है; क्योंकि सं० १४८१ में इन्हींके अनुरोधसे बड़ालीमें मूलाचारप्रदीपके रचे जानेका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। और सं० १५२० में इन्होंने गुजराती भाषामें 'हरिवंशरास' की रचना की है। आपकी रचनाओंमें जम्बूस्वामी चरित और हरिवंशपुराण और रामचरित (पद्मपुराण) ये तीन ग्रन्थ तो संस्कृत भाषामें रचे गए हैं । जम्बूस्वामीचरितकी रचनामें इनके शिष्य ब्रह्मचारी धर्मदासके मित्र द्विजवंशरत्न कवि महादेवने सहायता पहुँचाई थी। 'धर्मपंचविंशतिका' अथवा 'धर्मविलास' नामकी एक छोटी सी रचना

भी इन्हीं जिनदासब्रह्मकी कृति है। इनके अतिरिक्त जिनदास-रचित जिन रचनाओंका उल्लेख मिल सका उनके नाम इस प्रकार हैं :—

१ यशोधररास २ आदिनाथरास ३ श्रेणिकरास ४ समकितरास ५ करकंडुरास ६ कर्मविपाकरास ७ श्रीपालरास ८ प्रद्युम्नरास ९ धनपालरास १० हनुमच्चरित ११ और व्रतकथा कोष×—जिसमें दशलक्षणव्रतकथा, सोलहकारणव्रतकथा, बारहषष्ठीव्रतकथा, मोक्ष-सप्तमीकथा, निर्दोषसप्तमीकथा, आकाशपंचमीव्रतकथा और पंचपरमेष्ठी गुण वर्णन आदि रचनाओंका संग्रह एक गुटकेमें पाया जाता है। ये सब रचनाएँ प्रायः गुजराती भाषामें की गई हैं; परन्तु इनमें हिन्दी और राजस्थानी भाषाके शब्दोंका बाहुल्य पाया जाता है। इनके सिवाय निम्न ग्रन्थ पूजा-पाठ विषयक भी हैं और जिनकी संख्या इस समय तक ७ ही ज्ञात हो सकी है उनके नाम इस प्रकार हैं—१ जम्बूद्वीप पूजा २ अनन्तव्रत-पूजा ३ सार्द्धद्वय द्वीपपूजा ४ चतुर्विंशत्युद्यापनपूजा ५ मेघमालो-द्यापन पूजा ६ चतुस्त्रिंशदुत्तरद्वादशशतोद्यापन ७ बृहत्सिद्धचक्र-पूजा।

इस तरह ब्रह्मजिनदासकी संस्कृत प्राकृत और गुजराती भाषाकी सब मिलाकर २५-३० कृतियोंका अब तक पता चल सका है। इन सब ग्रन्थों-का परिचय प्रस्तावनाकी कलेवर वृद्धिके भयसे छोड़ा जाता है। इनके सिवाय इनकी अन्य रचनाएँ और भी गुटकोंमें यत्र तत्र ग्रन्थ भंडारोंमें मिलती हैं, पर वे सब इन्हींकी कृति हैं इसका निर्णय उनका आद्यो-पान्त अवलोकन किये बिना नहीं हो सकता, समय मिलने पर इस सम्बन्धमें फिर विचार किया जाएगा।

८वीं प्रशस्ति 'सुदर्शनचरित'की है जिसके कर्ता भ० विद्यानन्दि हैं

× इनमेंसे नं० ६ और ११ के ग्रन्थ आमेरके भट्टारकीय भंडारमें पाये जाते हैं। शेष रासोंमें अधिकांश रासे देहलीके पंचायती मन्दिरके शास्त्रभंडारमें पाये जाते हैं। और कुछ पूजाएँ, जो गुटकोंमें संग्रहित हैं।

जो कुन्दकुन्दान्वय सरस्वती गच्छके भ० पद्मनन्दिके प्रशिष्य तथा भ० देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे, और सूरतकी गद्दी पर प्रतिष्ठित हुए थे । विद्यानन्दिने 'सुदर्शनचरित' में अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार दी है:—कुन्दकुन्दसन्तानमें विशालकीर्ति हुए, उनके पट्ट पर शुभकीर्ति हुए, शुभकीर्तिके पट्ट पर धर्मचन्द्र, और धर्मचन्द्रके पट्ट पर रत्नकीर्ति, रत्नकीर्तिके पट्ट पर प्रभाचन्द्र, प्रभाचन्द्रके पट्ट पर पद्मनन्दी, पद्मनन्दीके पट्ट पर देवेन्द्रकीर्ति, और देवेन्द्रकीर्तिके पट्ट पर प्रस्तुत विद्यानन्दि हुए। ये विक्रमकी १६वीं शताब्दीके विद्वान थे ।

भ० विद्यानन्दीकी इस समय दो रचनाओंका पता चला है जिनके नाम हैं सुदर्शनचरित्र और श्रीपालचरित्र । इनमें सुदर्शनचरित्रकी रचना गन्धारपुरीके पार्श्वनाथ चैत्यालयमें हुई है । प्रस्तुत ग्रन्थमें रचनाकाल दिया हुआ नहीं है; किन्तु सूरत आदिके मूर्तिलेखोंसे प्रकट है कि विद्यानन्दि सूरतकी गद्दीके पट्टधर हैं । इनके बाद उक्त पट्ट पर भ० मल्लिभूषण और लक्ष्मीचन्द प्रतिष्ठित हुए थे । भ० विद्यानन्दिके वि० सं० १४६६ से वि० सं० १५२३ तक के ऐसे मूर्तिलेख पाये जाते हैं जिनकी प्रतिष्ठा भ० विद्यानन्दिने स्वयं की है अथवा जिनमें भट्टारक विद्यानन्दिके उपदेशसे प्रतिष्ठित होनेका उल्लेख पाया जाता है[1] । इससे भ० विद्यानन्दिका समय विक्रमकी १५वीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध और सोलहवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध जान पड़ता है । इनके प्रधान शिष्य श्रुतसागर थे, जो देशयति या ब्रह्मश्रुतसागरके नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हैं । उनका परिचय आगे दिया गया है ।

६वीं, ११वीं, १२वीं, १०५वीं और १०६ नम्बरकी प्रशस्तियाँ सुदर्शनचरित्र, श्रीपालचरित्र धर्मोपदेशपीयूषवर्ष, रात्रिभोजनत्याग कथा और नेमिनाथपुराणकी यथाक्रम संकलित की गई हैं जिनके कर्ता ब्रह्मनेमिदत्त हैं, जो मूलसंघ सरस्वतिगच्छ और बलात्कारगणके विद्वान थे। इनके दीक्षागुरु भ० विद्यानन्दि थे। और विद्यानन्दिके पट्ट पर प्रति-

---

१ देखो, गुजराती मन्दिर सूरतके मूर्तिलेख, दानवीर माणिकचन्द्र पृष्ठ ५३,५४ ।

ष्ठित होनेवाले मल्लिभूषण गुरुके ये शिष्य थे। मल्लिभूषणके एक शिष्य भ० सिंहनन्दिगुरु थे, जो मालवाकी गद्दीके भट्टारक थे। इनकी प्रार्थनासे श्रुतसागरने सोमदेवाचार्यके 'यशस्तिलकचम्पू' की 'चन्द्रिका' नामकी टीका लिखी थी और ब्रह्म नेमिदत्तने नेमिनाथपुराण भी मल्लिभूषणके उपदेशसे बनाया था और वह उन्हींके नामांकित किया गया था।

ब्रह्म नेमिदत्तने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है किन्तु वे सब रचनाएँ इस समय मेरे सामने नहीं हैं जिनसे यह निश्चय किया जा सके कि उन्होंने कौन सी रचना कब और कहाँ निर्माण की। उनकी ज्ञात रचनाओंके नाम इस प्रकार हैं:—

१. रात्रिभोजनत्याग कथा, २. सुदर्शनचरित, ३. श्रीपालचरित, ४. धर्मोपदेशपीयूषवर्षश्रावकाचार, ५. नेमिनाथपुराण ६. आराधनाकथाकोश, ७. प्रीतिंकरमहामुनिचरित और ८. धन्यकुमारचरित। इनमेंसे इस संग्रहमें चार ग्रन्थोंकी प्रशस्तियाँ दी गई हैं।

एच. डी. वेलंकरके 'जिनरत्नकोष'में ब्रह्म नेमिदत्तके 'नेमिनिर्वाण' काव्यका नाम दर्ज है जिसकी अवस्थिति ईडरके शास्त्रभण्डारमें बतलाई गई है।

इनका समय विक्रमकी १६वीं शताब्दीका अन्तिम चरण है। इनका जन्म सम्भवतः संवत् १५५० या १५५५के आस-पास हुआ जान पड़ता है। क्योंकि इन्होंने अपना आराधना कथाकोश सं० १५७५ के लगभग बनाया था और श्रीपालचरित सं० १५८५ में बनाकर समाप्त किया है। शेष ग्रन्थ उक्त समयोंके मध्यवर्ती समयकी रचनाएँ ज्ञात होती हैं।

१० वीं, २२ वीं और ४८ वीं और १४३ से १६६ तककी २४ प्रशस्तियाँ अर्थात् कुल २७ प्रशस्तियाँ क्रमशः श्रीपालचरित, यशोधरचरित और ज्ञानार्णवगद्यटीका, ज्येष्ठ जिनवरकथा, रविव्रतकथा, सप्तपरमस्थानव्रतकथा, मुकुटसप्तमीकथा, अक्षयनिधिव्रतकथा, षोडशकारणकथा, मेघमालाव्रतकथा, चन्दनषष्ठीकथा, लब्धिविधानकथा, दशलाक्षिणीव्रतकथा, पुष्पाञ्जलिव्रतकथा, आकाशपंचमीकथा, मुक्तावलीव्रतकथा, निर्दुःखसप्तमीकथा, सुगन्ध-

दशमी कथा, श्रवण द्वादशी कथा, रत्नत्रय व्रतकथा, अन त व्रतकथा, अशोकरोहिणीकथा, तपोलक्षणपंक्तिकथा, मेरुपंक्तिकथा, विमानपंक्तिकथा, और पल्यविधानकथा की हैं, जिनके कर्ता देशव्रती ब्रह्म श्रुतसागर हैं, जो मूलसंघ सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगणके विद्वान थे। इनके गुरुका नाम विद्यानन्दि था जो भट्टारक पद्मनन्दीके प्रशिष्य और देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे। और जो भ० देवेन्द्र कीर्तिके बाद भट्टारक पद पर आसीन हुए थे। विद्यानन्दीके बाद उक्त पट्ट पर क्रमशः मल्लिभूषण और लक्ष्मीचन्द प्रतिष्ठित हुए थे। इनमें श्री मल्लिभूषण गुरु श्रुतसागरको आदरणीय गुरु भाई मानते थे। इनकी प्रेरणासे श्रुतसागरने कितने ही ग्रन्थोंकी रचना की है। ये सब सूरतकी गद्दीके भट्टारक हैं।

ब्रह्मश्रुतसागरने अपनी किसी कृतिमें रचनाकाल नहीं दिया। जिससे यह बतलाया जा सके कि उन्होंने अमुक समयसे लेकर अमुक समय तक किन-किन ग्रन्थोंकी रचना किस क्रमसे की है। किन्तु अन्य दूसरे साधनोंके आधारसे यह अवश्य कहा जा सकता है—कि ब्रह्मश्रुतसागरका समय विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीका मध्य भाग है अर्थात् वे वि० सं० १५०० से १५७५ के मध्यवर्ती विद्वान जान पड़ते हैं। इसके दो आधार हैं। एक तो यह कि भट्टारक विद्यानन्दीके वि० सं० १४६६ से वि० सं० १५२३ तकके ऐसे मूर्तिलेख पाये जाते हैं जिनकी प्रतिष्ठा भ० विद्यानन्दीने स्वयं की है। अथवा जिनमें भ० विद्यानन्दीके उपदेशसे प्रतिष्ठित होनेका समुल्लेख पाया जाता है। और मल्लिभूषण गुरु वि० सं० १५५४ या उसके कुछ समय बाद तक भ० पट्ट पर आसीन रहे हैं। ऐसा सूरत आदिके कतिपय मूर्तिलेखोंसे स्पष्ट जाना जाता है। इससे स्पष्ट है कि भ० विद्यानन्दीके शिष्य श्रुतसागरका प्रायः यही समय होना चाहिये।

दूसरा आधार उनके द्वारा रचित 'पल्यविधान कथा' है, जिसे उन्होंने ईडरके राजा भानु अथवा रावभाणजीके राज्यकालमें रचा है। उसकी प्रशस्तिके पद्योंमें लिखा है कि—'भानुभूपतिकी भुजारूपी तलवारके जल-

प्रवाहमें शत्रुकुलका विस्तृत प्रभाव निमग्न हो जाता था और उनका मन्त्री हुबंडकुलभूषण भोजराज था। उसकी पत्नीका नाम विनयदेवी था जो अतीव पतिव्रता, साध्वी और जिनदेवके चरणकमलोंकी उपासिका थी। उससे चार पुत्र उत्पन्न हुए थे, उनमें प्रथम पुत्र कर्मसिंह जिसका शरीर भूरिरत्नगुणोंसे विभूषित था और दूसरा पुत्र कुलभूषण था जो शत्रु-कुलके लिये कालस्वरूप था, तीसरा पुत्र पुण्यशाली श्रीघोषर, जो सघन पापरूपी गिरीन्द्रके लिये वज्रके समान था और चौथा गंगाजलके समान निर्मल मनवाला 'गङ्क'। इन चार पुत्रोंके बाद इनकी एक बहिन भी थी जो ऐसी जान पड़ती थी कि जिनवरके मुखसे निकली हुई सरस्वती हो, अथवा दृढ़ सम्यक्त्ववाली रेवती हो, शीलवती सीता हो और गुणरत्नराशि राजुल हो। ब्रह्मश्रुतसागरने स्वयं उसके साथ संघ सहित गजपंथ और तुंगीगिर आदिकी यात्रा की थी और वहाँ उसने नित्य जिन पूजनकर तप किया और संघको दान दिया था।

प्रशस्ति गत पद्योंमें उल्लिखित भानुभूपति ईडरके राठौर वंशी राजा थे। यह राव पूंजोजी प्रथमके पुत्र और राव नारायणदासजीके भाई थे और उनके बाद राज्यपद पर आसीन हुए थे। इनके समय वि० सं० १५०२ में गुजरातके बादशाह मुहम्मदशाह द्वितीयने ईडर पर चढ़ाई की थी, तब उन्होंने पहाड़ोंमें भागकर अपनी रक्षा की। बादमें उन्होंने सुलह कर ली थी। फारसी तवारीखोंमें इनका नाम वीरराय नामसे उल्लेखित किया गया है। इनके दो पुत्र थे सूरजमल्ल और भीमसिंह। राव भाणजीने सं० १५०२ से १५२२ तक राज्य किया है×। इनके बाद राव सूरजमल्लजी सं० १५५२ में राज्यासीन हुए थे। राव भाणजीके राज्यकालमें श्रुतसागर-जीने उक्त पल्यविधानकथाकी रचना की है। इससे श्रुतसागरजीका समय विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीका प्रथम द्वितीय चरण सुनिश्चित है।

ब्रह्म श्रुतसागरकी मृत्यु कहाँ और कब हुई इसका कोई निश्चित आधार अब तक नहीं मिला।

× देखो, भारतके प्राचीन राजवंश भाग ३, पृष्ठ ४२७।

श्रुतसागरने पं० आशाधरजीके महा अभिषेकपाठ पर एक टीका लिखी है उस टीकाकी एक प्रति भट्टारक सोनागिरके भण्डारमें सुरक्षित है जो संवत् १५७० की लिखी हुई है। जिससे उसकी रचना सं० १५७० से पूर्व हो चुकी थी, दूसरी प्रति सं० १५८२ की लिखी हुई है जिसे भ० लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य ब्रह्म ज्ञानसागरके पठनार्थ आर्या विमलश्रीकी चेली और भ० लक्ष्मीचन्द्र द्वारा दीक्षित विनयश्रीने स्वयं लिखकर प्रदान की थी। ब्रह्म नेमिदत्तने भी इनका अपने ग्रन्थोंमें आदरपूर्वक उल्लेख किया है।

अब तक ब्रह्मश्रुतसागरकी ३८ रचनाओंका पता चला है, जिनमेंसे आठ तो टीका ग्रन्थ हैं। और चौबीस कथाएँ हैं जो भिन्न-भिन्न समयोंमें विभिन्न व्यक्तियोंके अनुरोधसे रची गई हैं। इन सब कथाओंमें आदि अंत प्रशस्तियाँ भी अंकित हैं जिनसे वे एक ग्रन्थका अंग नहीं कही जा सकती हैं। अवशिष्ट सब रचनाएँ भी स्वतन्त्र कृतियाँ हैं उनकी उपलब्ध सब कृतियोंके नाम इस प्रकार हैं:—

१ यशस्तिलक चन्द्रिका २ तत्त्वार्थवृत्ति, ३ तत्त्वत्रयप्रकाशिका, ४ जिनसहस्रनामटीका, ५ महाअभिषेक टीका ६ षट्पाहुडटीका ७ सिद्धभक्ति टीका, ८ सिद्धचक्राष्टक टीका, ९ ज्येष्ठजिनवर कथा, १० रविव्रत कथा, ११ सप्तपरमस्थान कथा १२ मुकुटसप्तमी कथा १३ अक्षयनिधि कथा १४ षोडशकारण कथा १५ मेघमालाव्रतकथा १६ चन्दनषष्ठी कथा १७ लब्धिविधान कथा १८ पुरन्दरविधान-कथा १९ दशलाक्षिणीव्रत कथा २० पुष्पांजलिव्रत कथा २१ आकाश-पंचमी कथा २२ मुक्तावलिव्रतकथा २३ निर्दुःखसप्तमी कथा २४-सुगन्धदशमी कथा २५ श्रवणद्वादशीकथा २६ रत्नत्रयव्रतकथा २७ अनन्तव्रतकथा २८ अशोकरोहिणीकथा २९ तपोलक्षणपंक्तिकथा ३० मेरूपंक्तिकथा ३१ विमानपंक्तिकथा ३२ पल्लविधानकथा ३३-श्रीपालचरित, ३४ यशोधरचरित ३५ औदार्य चिन्तामणि स्वोपज्ञ-वृत्तियुक्त (प्राकृत व्याकरण) ३६ श्रुतस्कंध पूजा।

इनके दो स्तोत्र अभी हमें नया मन्दिर देहलीके शास्त्रभंडारके ७ वें

नम्बरके गुटके परसे उपलब्ध हुए हैं। जिनमें एक स्तवन पार्श्वनाथका है और दूसरा शान्तिनाथका। ये दोनों ही स्तवन अनेकान्त वर्ष १२ किरण ८-९ में प्रकाशित हो चुके हैं। संभव है अन्वेषण करने पर इनकी और भी कृतियाँ उपलब्ध हो जांय।

११ वीं और १२ वीं प्रशस्तियाँ 'श्रीपालचरित्र' और 'धर्मोपदेश-पीयूषवर्ष' नामके ग्रंथों की हैं, जिनके कर्ता ब्रह्मनेमिदत्त हैं और जिनका परिचय ९ वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

१३ वीं प्रशस्ति 'उपदेशरत्नमाला' की है जिसके कर्ता भट्टारक सकलभूषण हैं, जो मूलसंघस्थित नन्दिसंघ और सरस्वतीगच्छके भट्टारक विजयकीर्तिके प्रशिष्य और भट्टारक शुभचन्द्रके शिष्य एवं भट्टारक सुमति-कीर्तिके गुरुभ्राता थे। भ० सुमतिकीर्ति भी शुभचन्द्रके शिष्य थे और उनके बाद पट्टधर हुए थे।

भट्टारक सकलभूषणने नेमिचन्द्राचार्य आदि यतियोंके आग्रहसे तथा वर्धमानदोला आदिकी प्रार्थनासे 'उपदेशरत्नमाला' नामक ग्रन्थकी रचना वि० सं० १६२७ में श्रावणसुदी षष्ठीके दिन की है। इस ग्रंथकी श्लोक-संख्या तीन हजार तीन सौ अस्सी है। भट्टारक सकलभूषणने भ० शुभ-चन्द्रको 'पाण्डवपुराण' और 'करकंडुचरित' इन दोनों ग्रन्थोंके निर्माणमें तथा लेखन और पाठनादि कार्योंमें सहायता की थी जिसका उल्लेख भ० शुभचन्द्रने स्वयं करकण्डुचरितकी प्रशस्तिमें किया है। और इससे भ० सकल-भूषण विक्रमकी १७वीं शताब्दीके सुयोग्य विद्वान थे। उपदेशरत्नमालाके अतिरिक्त इनकी अन्य क्या क्या रचनाएँ हैं यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका।

१५ वीं प्रशस्ति 'श्रावकाचारसारोद्धार' की है। जिसके रचयिता मुनि पद्मनन्दी हैं। पद्मनन्दी नामके अनेक विद्वान हुए हैं। उनमें प्रस्तुत पद्मनंदी भट्टारक प्रभाचन्द्रके पट्टधर शिष्य हैं ※। जो भट्टारक रत्नकीर्तिके देहली

※"श्रीमत्प्रभाचन्द्रमुनीन्द्रपट्टे शश्वत् प्रतिष्ठाप्रतिभागरिष्टः।
विशुद्धसिद्धान्तरहस्यरत्नरत्नाकरो नन्दतु पद्मनन्दी ॥ २८ ॥"
—शुभचन्द्र गुर्वावली

पट्टपर प्रतिष्ठित हुए थे। भट्टारक पद्मनन्दीको पट्टावलियोंमें अपने समयके बहुत ही प्रभावशाली और विद्वान भट्टारक बतलाया है। इनके पट्ट पर प्रतिष्ठित होनेका समय वि० सं० १३७५ पाया जाता है। संवत् १४६५ और सं० १४८३ के विजोलियाके शिलालेखोंमें जिनकी प्रशंसा की गई है। और जहाँके मानस्तम्भोंमें जिनकी प्रतिकृति भी अंकित मिलती है। इनके अनेक शिष्य थे। उनमें भट्टारक शुभचन्द्र इनके पट्टधर शिष्य थे, और दूसरे शिष्य भ० सकलकीर्ति थे, जिनसे ईडरकी भट्टारकीय गद्दीकी परम्परा चली है। यह अपने समयके बहुत ही प्रभावक तपस्वी और मंत्रवादी थे। इनके शिष्य-प्र-शिष्योंमें मतभेद हो जानेके कारण गुजरातकी गद्दीकी दो परम्पराएँ चालू हो गई थीं। एक 'भट्टारक सकलकीर्तिकी और दूसरी देवेन्द्रकीर्ति की।

श्रावकाचारसारोद्धार नामक ग्रन्थमें तीन परिच्छेद हैं जिनमें गृहस्थ-विषयक आचारका प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थमें रचनाकाल दिया हुआ नहीं है जिससे यह निश्चय करना अत्यन्त कठिन है कि यह ग्रन्थ कब रचा गया है? ग्रन्थकी यह प्रति विक्रम संवत् १५६४ की लिखी हुई है। जिससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि मुनि पद्मनन्दी सं० १५६४ से पूर्ववर्ती हैं, कितने पूर्ववर्ती हैं यह नीचे विचारोंसे स्पष्ट होगा।

भगवती आराधनाकी पंजिका× टीका जो संवत् १४१६ में चैत्रसुदी

×"संवत् १४१६ वर्षे चैत्रसुदिपंचम्यां सोमवासरे सकलराजशिरोमुकुटमाणिक्यमरीचिपिंजरीकृतचरणकमलपादपीठस्य श्रीफेरोजसाहेः सकलसाम्राज्यधुरीविभ्राणस्य समये श्री दिल्यां श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे भट्टारक श्रीरत्नकीर्तिदेवपट्टोदयाद्रितरुणतरणित्वमुर्वीकुर्वाणं भट्टारक श्रीप्रभाचन्द्रदेव तच्छिष्याणां ब्रह्मनाथूराम इत्याराधनापंजिकायां (?) ग्रन्थ आत्मपठनार्थं लिखापितम् ॥"

पंचमीके दिन देहलीके बादशाह पेरोजशाहके राज्यकालमें+ लिखी गई है।

मुनि पद्मनंदिने अपने श्रावकाचारसारोद्धारकी प्रशस्तिमें भट्टारक रत्नकीर्ति-का भी आदर पूर्वक उल्लेख किया है। प्रशस्तिमें उक्त श्रावकाचारके निर्माणमें प्रेरक लंबकंचुक (लमेचू) कुलान्वयी साहू वासाधरके पितामह 'गोकर्ण' थे, जिन्होंने 'सूपकारसार' नामके ग्रन्थकी रचना भी की थी ❀। इन्हीं गोकर्णके पुत्र सोमदेव हुए। इनकी धर्मपत्नीका नाम 'प्रेमा' था, उससे सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। वासाधर, हरिराज, प्रल्हाद, महाराज, भवराज, रतन और सतनाख्य। इनमें साहू वासाधरकी प्रार्थनासे ही उक्त ग्रन्थ रचा गया है।

प्रस्तुत पद्मनन्दीने इस श्रावकाचारके अतिरिक्त और किन किन ग्रन्थोंकी रचना की है यह विषय ग्रन्थ भण्डारोंके अन्वेषणसे सम्बन्ध रखता है, इस सम्बन्धमें मेरा अन्वेषण कार्य चालू है। अनेकान्तमें पद्मनन्दी मुनिके नामसे कई स्तोत्र प्रकाशित हुए हैं। १ वीरागस्तोत्र २ शान्तिजिनस्तोत्र ३ रावणपार्श्वनाथस्तोत्र, ४ जीरावलीपार्श्वनाथस्तवन, ५ और भावना-पद्धति (भावना चतुस्त्रिंशतिका)। इन ५ स्तोत्रोंमेंसे नं० ४ और ५ के रचियता तो प्रस्तुत पद्मनन्दी हैं अवशिष्ट तीन स्तोत्रोंके कर्ता उक्त

+ पेरो या फीरोजशाह तुगलक सन् १३५१ में दिल्लीके तख्त पर बैठा था, उसने सन् १३५१ से सन् १३७८ तक अर्थात् वि० संवत् १४०८ से संवत् १४४५ तक राज्य किया है। संवत् १४४५ में उसकी मृत्यु हुई थी। इससे स्पष्ट है कि भट्टारक रत्नकीर्तिके पट्ट पर प्रतिष्ठित होने वाले प्रभाचन्द्र सं० १४१६ में उक्त पट्टपर मौजूद थे। वे उस पर कब प्रतिष्ठित हुए, यह अभी विचारणीय है।

❀ 'सूपकारसार' नामका यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। इस ग्रन्थका अन्वेषण होना चाहिए। सम्भव है वह किसी ग्रन्थ भण्डारकी काल कोठरीमें अपने शेष जीवनकी घड़ियाँ व्यतीत कर रहा हो, और खोज करनेसे वह प्राप्त हो जाय।

पद्मनन्दी हैं या अन्य कोई दूसरे पद्मनन्दी, यह कुछ ज्ञात नहीं होता; क्योंकि उनमें भट्टारक प्रभाचन्द्रका उल्लेख नहीं है।

पद्मनन्दिमुनि द्वारा रचित 'वर्द्धमानचरित्र' नामका एक संस्कृत ग्रन्थ जो सं० १५२२ फाल्गुण वदि ७ भौका लिखा हुआ गोपीपुरा सूरतके शास्त्र भंडार, और ईडरके शास्त्र भंडारमें विद्यमान है। बहुत सम्भव है कि वह इन्हीं पद्मनन्दीके द्वारा रचा गया हो। ग्रन्थ प्राप्त होने पर उसके सम्बन्धमें विशेष प्रकाश डालनेका यत्न किया जायगा।

अभी हालमें टोडा नगरमें जमीनमेंसे २६ दिगम्बर जैन मूर्तियाँ निकली हैं, जिन्हें संवत् १४७० में प्रभाचन्द्रके शिष्य भ० पद्मनन्दीके शिष्य भ० विशालकीर्तिके उपदेशसे, खंडेलवाल जातिके गंगोलवाल गोत्रीय किसी श्रावकने प्रतिष्ठित कराया था। इससे स्पष्ट है कि भ० पद्मनन्दी वि० सं० १४७० से पूर्ववर्ती हैं। और उनकी पूर्वीय सीमा सं० १३७५ है। अनेक पट्टावलियोंमें उक्त पद्मनन्दीका पट्ट पर प्रतिष्ठित होनेका समय सं० १३७५ दिया हुआ है। वह प्रायः ठीक जान पड़ता है।

१५वीं प्रशस्ति महापुराणकी संस्कृत टीका की है जो आचार्य जिनसेन और उनके शिष्य गुणभद्राचार्यकी कृति है। महापुराणके दो भाग हैं, जो आदिपुराण और उत्तरपुराणके नामसे प्रसिद्ध हैं। महापुराणकी इस संस्कृत टीकाके कर्ता भ० ललितकीर्ति हैं जो काष्ठासंघके माथुरगच्छ और पुष्करगणके भट्टारक जगत्कीर्तिके शिष्य थे। यह दिल्ली की भट्टारकीय गद्दीके पट्टधर थे, बड़े ही विद्वान और प्रभावशाली थे। मन्त्र-तन्त्रादि कार्योंमें भी निपुण थे। आपके समयमें दिल्लीकी भट्टारकीय गद्दीका महत्व लोकमें ख्यापित था। आपके पास अलाउद्दीन खिलजी द्वारा प्रदत्त वे बत्तीस फर्मान और फीरोजशाह तुगलक द्वारा प्रदत्त भट्टारकोंकी ३२ उपाधियाँ सुरक्षित थीं, पर आज उनका पता नहीं चलता है, कि वे कहाँ और किसके पास हैं*। आप देहलीसे कभी-कभी फतेहपुर भी आया जाया करते थे।

* कहा जाता है कि उक्त फर्मानोंकी कापियाँ नागौर और कोल्हापुरके भट्टारकीय भण्डारोंमें मौजूद हैं। नागौरके भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिजीने नागौर

और वहां महीनों ठहरते थे । आपके अनेक शिष्य थे। सम्यक्त्व-कौमुदी संस्कृतकी एक प्रति सं० १८५१ में भट्टारक ललितकीर्तिके पठनार्थ जेठ वदी १२ को फर्रुखनगरके जैन मन्दिरमें साहबरामने लिखी थी। भट्टारक ललितकीर्तिने महापुराणकी इस टीकाको तीन भागोंमें बाँटा है जिसमें प्रथम भाग ४२ पर्वोंका है, जिसे उन्होंने सं० १८८४ के मंगशिर शुक्ला प्रतिपदा रविवारके दिन समाप्त किया था, और ४३वें पर्वसे ४७वें पर्व तक ग्रन्थकी टीकाका दूसरा भाग है जिसे उन्होंने सम्वत् १८८५में पूर्ण किया है। इनके अतिरिक्त उत्तरपुराणकी टीका सं० १८८८ में बनाकर समाप्त की गई है। महापुराणकी इस टीकाके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थोंके नाम मिलते हैं जो भ० ललितकीर्तिके बनाये हुए कहे जाते हैं। पर चूँकि वे ग्रन्थ इस समय अपने सामने नहीं हैं जिससे यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उनके रचयिता भी प्रस्तुत ललितकीर्ति ही हैं या कोई दूसरे। उन ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार हैं:—

१ सिद्धचक्रपाठ २ नन्दीश्वरव्रतकथा ३ अनन्तव्रतकथा ४ सुगन्धदशमीकथा ५ षोडशकारण कथा ६ रत्नत्रयव्रतकथा ७ आकाश पंचमीकथा ८ रोहिणीव्रतकथा ९ धनकलशकथा १० निर्दोष सप्तमी कथा ११ लब्धिविधानकथा १२ पुरंदरविधान कथा १३ कर्मनिर्जर-चतुर्दशी कथा, १४ मुकुटसप्तमीकथा १५ दशलाक्षिणीव्रत कथा १६ पुष्पांजलिव्रतकथा १७ ज्येष्ठजिनवरकथा १८ अक्षयनिधि दशमी कथा १९ निःशल्याष्टमी विधानकथा २० रत्ना विधानकथा २१ श्रुत-स्कंधकथा २२ कंजिकाव्रत कथा और २३ सप्तपरमस्थानकथा और २४ पटरस कथा।

१६वीं प्रशस्ति 'पंचनमस्कारदीपक' की है जिसके कर्ता भट्टारक

में मुझे कुछ वर्ष पूर्व ३-४ बादशाही फर्मान दिखलाए भी थे, जो अरबी भाषामें लिखे हुए थे। भ० देवेन्द्रकीर्तिजीको चाहिए कि वे उक्त फर्मानोंको जरूर प्रकाशित करें।

सिंहनन्दी हैं। जो मूलसंघ पुष्करगच्छके भट्टारक शुभचन्द्रके पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए थे। इन्होंने 'पंचनमस्कार दीपिका' नामका ग्रन्थ सं० १६६७ में कार्तिक शुक्ला पूर्णिमाके दिन समाप्त किया है। इस ग्रन्थके अतिरिक्त भट्टारक सिंहनन्दीने अन्य किन ग्रन्थोंकी रचना की यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। हाँ, ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, बम्बईकी ग्रन्थ-सूचीमें 'व्रततिथिनिर्णय' नामका एक ग्रन्थ भ० सिंहनन्दीके नामसे दर्ज है। यह ग्रन्थ आराके जैनसिद्धान्त भवनमें भी पाया जाता है पर वह इन्हीं सिंहनन्दीकी कृति है या अन्य की, यह ग्रन्थके अवलोकन बिना निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता।

१७वीं प्रशस्ति द्विसंधानकाव्यकी टीका 'पदकौमुदी' की है। मूल ग्रन्थका दूसरा नाम 'राघव पाण्डवीय काव्य' है और उसके कर्ता प्रसिद्ध कवि धनंजय हैं। इस 'पदकौमुदी' टीकाके कर्ता पंडित नेमिचन्द्र हैं जो पंडित विनयचन्द्रके प्रशिष्य और देवनन्दीके शिष्य हैं। प्रशस्तिमें पंडित नेमिचन्द्र-ने 'त्रैलोक्यकीर्ति' नामके एक विद्वानका उल्लेख और किया है जिसके चरण कमलोंके प्रसादसे वह ग्रन्थ समुद्रके पारको प्राप्त हुआ है। टीकाकारने प्रशस्तिमें अन्य कोई परिचय नहीं दिया, जिससे उसके समयादिके सम्बन्धमें विचार किया जा सके। टीकाकारका समय दूसरे साधनोंसे भी ज्ञात नहीं हो सका।

१८वीं प्रशस्ति 'ज्ञानसूर्योदयनाटक' की और १२२वीं प्रशस्ति 'सुभग-सुलोचनाचरित' की है। जिन दोनोंके कर्ता भट्टारक वादिचन्द्रसूरि हैं, जो मूलसंघ सरस्वती गच्छके भट्टारक ज्ञानभूषणके प्रशिष्य और भट्टारक प्रभाचन्द्रके शिष्य थे। इन्होंने अपना 'ज्ञानसूर्योदयनाटक' विक्रम सम्वत् १६४८ की माघ सुदी अष्टमीके दिन 'मधूकनगर' में पूर्ण किया है। इस नाटककी आदि उत्थानिकामें ब्रह्म कमलसागर और ब्रह्मकीर्तिसागर नाम-के दो ब्रह्मचारी विद्वानोंका भी उल्लेख किया गया है, जिनकी आज्ञासे सूत्र धारने उक्त नाटक खेलनेकी इच्छा व्यक्त की है। ये दोनों ही ब्रह्मचारी वादिचन्द्रके शिष्य जान पड़ते हैं।

सुभग सुलोचनाचरितकी रचना इन्होंने कब और कहां पर की, यह प्रशस्ति परसे कुछ ज्ञात नहीं होता। इनके अतिरिक्त इनकी दूसरी कृतियों-का पता और भी चलता है। जिनके नाम पवनदूत, पार्श्वपुराण, श्रीपाल-आख्यान, पाण्डवपुराण, और यशोधरचरित हैं। इनमेंसे पवनदूत एक खंड काव्य है, जिसकी पद्य संख्या एक सौ एक है और जो हिन्दी अनुवाद-के साथ प्रकाशित भी हो चुका है। पार्श्वपुराण वि० सं० १६४०की कार्तिक शुक्ला पंचमीको 'वाल्हीक' नगरमें रचा गया है१।' इसकी श्लोक-संख्या पन्द्रह सौ है। श्रीपालआख्यान हिन्दी गुजराती-मिश्रित रचना है, जिसे उन्होंने धनजी सवाके अनुरोधसे संवत् १६५१में रचा है२। और पाण्डवपुराण नोधकनगरमें वि० सं० १६५४ में पूर्ण हुआ है३। तथा यशोधरचरित वि० सं० १६५७में अङ्कलेश्वर (भरोंच) के चिन्तामणि मन्दिरमें रचा गया है४। इनके सिवाय 'होलिका चरित्र' और 'सुलोचना

---

१. "शून्याब्दौ रसाब्जांके वर्षे पक्षे समुज्वले।
कार्तिकमासे पंचम्यां वाल्हीके नगरे मुदा ॥३॥"

२. "संवत सोल इकावना वर्षे कीधो य परबंध जी।
भवियन थिरमन करीने सुणज्यो नित्य संबंधजी ॥६"

३. "वेद-बाण षडब्जांके वर्षे तिथेश (?) मासिचन्द्रे।
नोधकानगरेऽकारि पाण्डवानां प्रबन्धकः ॥६७"

—तेरापंथी बड़ामंदिर जयपुर।

४. (अ) "अंकलेश्वर सुग्रामे श्रीचिन्तामणिमन्दिरे।
सप्तपंच रसाब्जांके वर्षेऽकारि सुशास्त्रकम् ॥८१॥"

(आ) अंकलेश्वर (भरोंच) प्रसिद्ध एवं प्राचीन नगर है। यहां पहले कागज़ बनता था। अब नहीं बनता। विबुध श्रीधरके श्रुतावतारके अनुसार इस नगरको षट्खण्डागम ग्रन्थके रचे जाने और उन्हें लिखाकर ज्येष्ट शुक्ला पंचमीको संघ सहित भूतबलीने पूजा की थी। इससे इस नगरकी महत्ता और भी अधिक हो जाती है।

चरित्र' नामके ग्रन्थोंका भी पता चला है। इनमें सुलोचना चरित्रकी प्रति ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन बम्बईमें मौजूद है जिसके कर्ता वादिचन्द्र मुनीन्द्र बतलाये गये हैं। ऊपर जिस सुभगसुलोचनाचरितका उल्लेख किया गया है। उससे यह भिन्न नहीं जान पड़ता; क्योंकि एकही ग्रन्थकार एक नामके दो ग्रन्थोंका निर्माण नहीं करता। अस्तु; ग्रंथके सामने न होनेसे उनके सम्बन्धमें विशेष विचार नहीं किया जा सका।

भ० वादिचन्द्र १७वीं शताब्दीके सुयोग्य विद्वान थे। इन्होंने गुजरात-में अनेक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा भी कराई है। संभवतः यह ईडरकी गद्दीके भट्टारक थे।

१९वीं प्रशस्ति 'षोडशकारणव्रतोद्यापन' की और ४१वीं 'कर्णा-मृतपुराण' नामक ग्रन्थकी हैं, जिन दोनोंके कर्ता कवि केशवसेनसूरि हैं, जो काष्ठासंघके भट्टारक रत्नभूषणके प्रशिष्य जयकीर्तिके पट्टधर शिष्य थे। यह कवि कृष्णदासके नामसे भी प्रसिद्ध थे। बागवर अथवा बागडदेशके दम्पति 'वीरिका' और 'कान्तहर्ष' के पुत्र थे। तथा ब्रह्म मंगलके अग्रज (ज्येष्ठभ्राता) थे। कर्णामृतपुराणकी प्रशस्तिमें कविने गंगासागर पर्यंत तथा दक्षिण देशमें, गुजरातमें, मालवा और मेवाड़में अपने यश एवं प्रतिष्ठा-का होना सूचित किया है। इससे केशवसेन उस समयके सुयोग्य विद्वान जान पड़ते हैं। इन्होंने अपना कर्णामृतपुराण सम्वत् १६८८ में मालव-देशकी 'भूतिलकभागापुरी' के पार्श्वनाथ जिनालयमें माघमहीनेमें पूर्ण किया है। इस ग्रन्थकी रचनामें ब्रह्म वर्धमानने सहायता पहुँचाई थी। इससे ब्रह्म वर्धमान सम्भवतः इनके शिष्य प्रतीत होते हैं। षोडशकारण व्रतोद्यापनको इन्होंने विक्रम सम्वत् १६६४ के मार्गशिर शुक्ला सप्तमीके दिन रामनगरमें बनाकर समाप्त किया है।

२०वीं प्रशस्ति 'चतुर्दशीव्रतोद्यापन' की है, जिसके कर्ता पं० अक्षयराम भ० विद्यानन्दीके शिष्य थे। भट्टारक विद्यानन्द १८वीं शताब्दीके विद्वान थे। जयपुरके राजा सवाई जयसिंहके प्रधानमन्त्री श्रावक

ताराचन्दने चतुर्दशीका व्रत किया था उसीका उद्यापन करनेके लिये पंडित अजयरामने इस ग्रन्थकी रचना सं० १८०० के चैत्र महीनेमें पूर्ण की है।

२१वीं प्रशस्ति 'त्रिभंगीसारटीका' की है जिसके कर्ता सोमदेव सूरि हैं। इनका वंश बघेरवाल था, पिताका नाम अभयदेव और माताका 'वैजेणी' था। सोमदेवने नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीके त्रिभंगीसार ग्रन्थकी पूर्व बनी हुई कर्णाटकीय वृत्तिको लाटीय भाषामें बनाया था। ग्रन्थमें सोमदेवने 'गुणभद्रसूरि' का स्मरण किया है जिससे वे सोमदेवके गुरु जान पड़ते हैं।

'त्रिवर्णाचार' के कर्ता भ० सोमसेनने भी अपने गुरु गुणभद्रसूरिका उल्लेख किया है जो मूल संघीय पुष्कर गच्छमें हुए हैं। भट्टारक सोमसेनने अपना 'त्रिवर्णाचार' सं० १६६७में और 'पद्मपुराण' नामक ग्रन्थकी रचना सं० १६५६में की है। यदि यह सोमसेन और उक्त सोमदेव दोनों एक हों, जिसके होने की बहुत कुछ संभावना है, तो त्रिभंगीसारकी टीकाके कर्ताका समय विक्रमकी १७वीं शताब्दीका उत्तरार्ध होना चाहिये। क्योंकि दोनोंके गुरु एक ही गुणभद्र हैं या भिन्न-भिन्न यह विचारणीय है।

२२वीं प्रशस्ति 'यशोधरचरित्र' की है जिसके कर्ता देशयती ब्रह्मश्रुतसागर हैं, जिनका परिचय १०वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

२३ वीं प्रशस्ति 'भविष्यदत्तचरित्र' की है, जिसके कर्ता विबुध श्रीधर हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ संस्कृत भाषामें रचा गया है। रचना प्रौढ़ तथा अर्थगौरवको लिये हुए है। ग्रन्थमें कविने अपना कोई परिचय नहीं दिया और न ग्रन्थका रचनाकाल ही देनेकी कृपा की। ग्रन्थमें गुरु परम्परा भी नहीं है। श्रीधर या विबुध श्रीधर नामके अनेक विद्वान् विभिन्न समयोंमें हो गए हैं*। उनमेंसे यह कौन हैं? ऐसी स्थितिमें यह निश्चित करना कठिन है कि प्रस्तुत ग्रन्थके कर्ता कवि श्रीधर कब हुए हैं और उनकी गुरु परम्परा

* देखो अनेकान्त वर्ष ८ किरण १२ पृष्ठ ४६२में प्रकाशित 'श्रीधर या विबुध श्रीधर नामका मेरा लेख।

क्या है। हाँ, उपलब्ध प्रति परसे इतना जरूर कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थकी रचना विक्रमकी १५वीं शताब्दीके उत्तरार्धसे पूर्व हो चुकी थी, क्योंकि उक्त ग्रन्थकी ७६ पत्रात्मक एक प्रति वि० सं० १४८६ की लिखी हुई नयामन्दिर धर्मपुरा देहलीके शास्त्रभण्डारमें सुरक्षित है×। जिसे भ० गुणकीर्तिके लघुभ्राता एवं शिष्य भ० यशःकीर्तिने लिखवाया था।

प्रस्तुत ग्रन्थ लम्बकंचुक कुलके प्रसिद्ध साहू लक्ष्मणकी प्रेरणासे रचा गया है और यह उन्हींके नामांकित भी किया गया है। पर वे कौन थे और कहाँके निवासी थे, यह प्रशस्ति-पद्योंकी अशुद्धिताके कारण ज्ञात नहीं हो सका।

२४वीं प्रशस्ति 'त्रिलोक्यसारटीका' की है, जिसके कर्ता भ० सहस्रकीर्ति हैं, जिन्होंने आशापल्लीके वासुपूज्यजिनालयमें आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीके त्रैलोक्यसारग्रन्थकी टीका लिखी है। सहस्रकीर्ति नामके अनेक भट्टारक हो गए हैं, उनमेंसे यह कौन हैं? और प्रशस्तिमें उल्लिखित आशापल्ली कहां है, यह विचारणीय है। प्रशस्तिमें रचनाकाल भी दिया हुआ नहीं है इससे ठीक समय निश्चय नहीं किया जा सका।

२५ वीं प्रशस्ति 'धर्मपरीक्षा' ग्रन्थकी है, जिसके कर्ता मुनि रामचन्द्र हैं। मुनि रामचन्द्र पूज्यपादके वंशमें (ब्राह्मण कुलमें) उत्पन्न हुए थे। इनके गुरुका नाम पद्मनन्दी था। परन्तु प्रशस्तिमें रचना समय और गुरु परम्पराका इतिवृत्त न होनेसे समयका निश्चय करना कठिन है। रामचन्द्र नामके अनेक विद्वान हो गए हैं।

२६ वीं प्रशस्ति 'करकण्डुचरित' की है जिसके रचयिता भ० जिनेन्द्रभूषण हैं, जो भट्टारक विश्वभूषणके पट्टधर थे, और ब्रह्महर्षसागरके पुत्र

× "सम्वत् १४८६ वर्षे आषाढ़वदी ६ गुरुदिने गोपाचलदुर्गे राजा डूँगरसिंह राज्यप्रवर्तमाने श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे आचार्य श्री सहसकीर्तिदेवास्तत्पट्टे आचार्य श्रीगुणकीर्तिदेवास्तच्छिष्य श्रीयशःकीर्तिदेवस्तेन निजज्ञानावरणीयकर्मक्षयार्थं इदं भविष्यदत्तपंचमीकथा लिखापितम्।"

थे। इनका समय विक्रमकी १६ वीं शताब्दी है भ० जिनेन्द्रभूषणके शिष्य रत्नसागरने सं० १८७५ में पंचपरमेष्ठीकी पूजा लिखी थी और इन्हीं के शिष्य भ० महेन्द्रभूषणने सं० १८७५ में 'जयकुमारचरित' लिखा था। संभवतः यह बटेश्वर (शोरीपुर) के भट्टारक थे। इनके द्वारा कितने ही स्थानोंमें (इटावा, बटेश्वर, रूरा आदिमें) मंदिर बनवाए गए हैं। इनके शिष्य सुमतिकीर्ति द्वारा सं० १८३६ में प्रतिष्ठित भगवान पार्श्वनाथकी एक मूर्ति जो शौरीपुर बटेश्वरमें प्रतिष्ठित हुई थी इटावाके पंसारी टोलाके जैनमन्दिर में विद्यमान है।

२७वीं प्रशस्ति अनंतजिनव्रतपूजा की और ५७वीं प्रशस्ति मौन व्रत-कथा की हैं, इन दोनोंके रचयिता भट्टारक गुणचन्द्र हैं, जो मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगणके भट्टारक रत्नकीर्तिके प्रशिष्य और रत्नकीर्तिके द्वारा दीक्षित यशः कीर्तिके शिष्य थे। प्रस्तुत ग्रन्थ भ० गुणचन्द्रने वाग्वर (बागड़) देशके सागवाडाके निवासी हूमड़ वंशी सेठ हरखचन्द दुर्गादासकी प्रेरणासे उनके व्रतके उद्यापनार्थ सं० १६३३ में वहाँके आदिनाथ चैत्यालयमें बना कर समाप्त की है। मौनव्रतकथा भी इन्हींकी बनाई हुई है। इनके सिवाय पूजा और उद्यापनके और भी अनेक ग्रन्थ इनके द्वारा बनाये हुए बतलाए जाते हैं। पर वे ग्रन्थ इस समय सामने न होनेसे इस सम्बन्धमें यहाँ अधिक कुछ नहीं लिखा जा सका।

२८ वीं और २९ वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः 'पद्मपुराण और हरिवंश पुराण' की हैं, जिनके रचयिता भट्टारक धर्मकीर्ति हैं, जो मूलसंघ सरस्वती गच्छ और बलात्कारगणके विद्वान् भट्टारक ललितकीर्तिके शिष्य थे। इन्होंने आचार्य रविषेणके पद्मचरितको देखकर उक्त 'पद्मपुराण' ग्रन्थकी रचना वि० सं० १६६९में मालव देशमें श्रावण महीनेकी तृतिया शनिवारके दिन पूर्ण की थी। और अपना हरिवंशपुराण मालवामें संवत् १६७१के आश्विन कृष्णा पंचमी रविवारके दिन पूर्ण किया था। इससे भट्टारक धर्मकीर्ति विक्रमकी १७वीं शताब्दीके उत्तरार्धके विद्वान् हैं। ग्रन्थकर्ताने ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंमें अपनी गुरुपरम्पराका तो उल्लेख किया है। किन्तु शिष्यादिका

कोई समुल्लेख उनके द्वारा किया हुआ मेरे देखनेमें नहीं आया। और न यही बतलाया है कि वे कहांके भट्टारक थे। ग्रंथमें उल्लिखित उनकी गुरुपरम्परा निम्न प्रकार है :—देवेन्द्रकीर्ति, त्रिलोककीर्ति, सहस्रकीर्त्ति, पद्मनन्दी, यशःकीर्ति, ललितकीर्ति, और धर्मकीर्ति।

२० वीं प्रशस्ति 'हरिवंशपुराण' की है, जिसके कर्ता पण्डित रामचन्द्र हैं, जो लंबकंचुक (लमेचू) वंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम 'सुभग' और माताका नाम 'देवकी' था। इनकी धर्मपत्नीका नाम 'मल्हणा' देवी था, जिससे 'अभिमन्यु' नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। जो शीलादि गुणोंसे अलंकृत था। कविने उक्त अभिमन्युकी प्रार्थनासे आचार्य जिनसेनके हरिवंशपुराणानुसार संक्षिप्त 'हरिवंशपुराण' की रचना की है। ग्रन्थकी रचना कब और कहां पर हुई इसका प्रशस्तिमें कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु कारंजाके बलात्कारगणके शास्त्रभंडारकी एक प्रति सं० १५६०की लिखी हुई है। उससे सिर्फ इतना ही जाना जाता है कि पंडित रामचन्द्र वि० सं० १५६० से पूर्ववर्ती हैं। कितने पूर्ववर्ती हैं? यह कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका।

२१वीं प्रशस्ति 'जयपुराण' की है जिसके कर्ता ब्रह्मकामराज हैं। यह बलात्कारगणके भट्टारक पद्मनंदीके अन्वयमें हुए हैं और जो भ० शुभचन्द्रके शिष्य सकलभूषणके शिष्य भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिके शिष्य ब्रह्म सहु, वर्णीके शिष्य थे। ब्रह्म कामराजने भ० सकलकीर्तिके आदिनाथचरितको देखकर संवत् १५६० में भ० रामकीर्तिके पट्टधर भ० पद्मनन्दीके उपदेशसे और पण्डित जीवराजकी सहायतासे फाल्गुन महीनेमें जयपुराण नामक ग्रंथ बनाकर समाप्त किया है।

२२वीं, प्रशस्तिसे लेकर ४०वीं, ११२वीं, ११४वीं और ११६वीं ये सब प्रशस्तियाँ क्रमसे कार्तिकेयानुप्रेक्षाटीका, चन्द्रप्रभचरित, पार्श्वनाथकाव्य-पंजिका, श्रेणिकचरित्र, पाण्डवपुराण, जीवंधरचरित्र, चन्दनाचरित, शाकुंतलऋणसटीक, अध्यात्मतरंगिणी, करकंडुचरित्र और अम्बिकाकल्प नामके ग्रन्थों की हैं। जिनके कर्ता भट्टारक शुभचन्द्र

हैं, जो कुन्द कुन्दान्वयमें प्रसिद्ध नन्दिसंघ और बलात्कारगणके भट्टारक विजयकीर्तिके शिष्य और भट्टारक ज्ञानभूषणके प्रशिष्य थे। भट्टारक शुभचंद्र १६वीं १७वीं शताब्दीके विद्वान् थे। इन्होंने अनेक देशोंमें विहारकर धर्मोपदेशादि द्वारा जगतका भारी कल्याण किया है। यह अपने समयके प्रसिद्ध भट्टारक थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है, जिनका उल्लेख ग्रन्थकर्ताने अपने पांडवपुराणकी प्रशस्तिमें स्वयं कर दिया है। पांडवपुराणकी रचना श्रीपाल वर्णीकी सहायतासे वि० सं० १६०८में वागवर (बागड) देशके शाकवाटपुर (सागवाड़ा) के आदिनाथ जिनालयमें हुई है। उससे पूर्व वे जीवंधरचरित (सं० १६०३ में) चन्दनाचरित, अंगप्रज्ञप्ति, पार्श्वनाथ-काव्य-पंजिका, चन्द्रप्रभचरित, संशयवदनविदारण, स्वरूप-सम्बोधन वृत्ति, प्राकृतव्याकरण, अपशब्द खंडन, स्तोत्र, (तर्कग्रन्थ) नन्दीश्वरकथा, कर्मदाह-विधि, चिन्तामणि पूजा, पल्योपमउद्यापनविधि और श्रेणिकचरित इन ग्रन्थोंकी रचना कर चुके थे। संवत् १५७३में इन्होंने आचार्य अमृतचन्द्रके समयसार कलशों पर अध्यात्मतरंगिणी नामकी एक टीका लिखी थी। पाण्डवपुराणको रचनाके बाद संवत् १६११में करकण्डुचरितकी रचना और संवत् १६१३में स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी संस्कृत टीका वर्णी हेमचन्द्रकी प्रार्थनासे रची गई है।

इससे स्पष्ट है कि भ० शुभचन्द्रका समय सोलहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध और १७वीं शताब्दीका पूर्वार्ध रहा है; क्योंकि सं० १५७३से १६१३ तक रचनाएँ पाई जाती हैं। हां, भ० शुभचन्द्रके जीवन-परिचय और उनके अवसानका कोई इति वृत्त उपलब्ध नहीं है। पर इतना सुनिश्चित है कि वे अपने समयके योग्य विद्वान और साहित्यकार थे। इन्होंने भट्टारक श्रीभूषणके अनुरोधसे आचार्य वादिराजके पार्श्वनाथकाव्यकी पंजिका टीका लिखी थी। इनके भी कितने ही शिष्य थे पर उनकी निश्चित गणना ज्ञात नहीं हो सकी है। इसीसे उनका नामोल्लेख नहीं किया गया।

३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, और ४० नं० की प्रशस्तियाँ चंद्रप्रभचरित, पार्श्वनाथकाव्य-पंजिका, श्रेणिकचरित्र, पांडवपुराण,

जीवंधरचरित्र, चन्दनाचरित, प्राकृत लक्षण-सटीक और अध्यात्म-तरंगिणी नामके आठ ग्रन्थोंकी हैं, जिनके कर्त्ता भट्टारक शुभचंद्र हैं। जिनका परिचय ३२ नं० की कार्तिकेयानुप्रेक्षा-टीका प्रशस्तिमें दिया गया है।

४१वीं प्रशस्ति कर्णामृतपुराण की है जिसके कर्ता केशवसेनसूरि हैं। जिनका परिचय १६वीं 'षोडशकारणव्रतोद्यापन' की प्रशस्तिमें दिया गया है।

४२वीं, ४३वीं और ७८वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः सप्तव्यसनकथा-समुच्चय, प्रद्युम्नचरित्र और यशोधरचरित्र की हैं। इन ग्रन्थोंके कर्ता भट्टारक सोमकीर्ति काष्ठासंघस्थित नन्दीतट गच्छके रामसेनान्वयी भट्टारक भीमसेनके शिष्य और लक्ष्मीसेनके प्रशिष्य थे। इन्होंने उक्त ग्रन्थोंकी रचना क्रमशः सम्वत् १५२६, १५३१, और सं० १५३६ में की हैं। इनमें-से सप्तव्यसन कथा समुच्चयको भट्टारक रामसेनके प्रसादसे दोहजार सड़सठ श्लोकोंमें बनाकर समाप्त किया है। और प्रद्युम्नचरित्र भट्टारक लक्ष्मी-सेनके पट्टधर भ० भीमसेनके चरणप्रसादसे रचा गया है। तथा यशोधर-चरित्रकी रचना कविने गोंढिल्ल मेदपाट (मेवाड़) के भगवान शीतलनाथके सुरम्य भवनमें सं० १५३६ पौष कृष्णा पंचमीके दिन एक हजार अठारह श्लोकोंमें पूर्ण की है। शेष ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंमें स्थानादिका कोई निर्देश नहीं है। इन तीन ग्रन्थोंके सिवाय इनकी और क्या कृतियाँ है यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। पर इनका समय विक्रमकी १६वीं शताब्दीका पूर्वार्ध है।

४३वीं प्रशस्ति 'प्रद्युम्नचरित्र' की है जिसके कर्ता भट्टारक सोमकीर्ति हैं, जिनका परिचय ४२ नं० की प्रशस्तिमें दिया जा चुका है।

४४वीं प्रशस्ति 'सुभौमचक्रिचरित्र' की है, जिसके कर्ता भट्टारक रतनचन्द्र हैं। भ० रतनचन्द्र हुंबड़ जातिके महीपाल वैश्य और चम्पा-देवीकी कुक्षीसे उत्पन्न हुए थे। और वे मूलसंघ सरस्वती गच्छके भट्टारक पद्मनन्दीके आम्नायमें हुए हैं तथा भट्टारक सकलचन्द्रके शिष्य थे।

भट्टारक रत्नचन्द्रने संवत् १६८३ में उक्त चरित ग्रन्थकी रचना विबुध तेजपालकी सहायतासे की है। ग्रन्थकर्त्ताने यह ग्रन्थ खंडेल वाल वंशोत्पन्न हेमराज पाटनीके नामांकित किया है जो सम्मेद शिखरकी यात्रार्थ भ० रत्नचंद्रके साथ गए थे। हेमराजकी धर्मपत्नी का नाम 'हमीरदे' था। और यह पाटनीजी बाग्वर (बागड़) देशमें स्थित सागपत्तन (सागवाड़ा) के निवासी थे।

४५वीं प्रशस्ति 'होलीरेणुकाचरित्र' की है जिसके कर्त्ता पंडित जिनदास हैं। पण्डित जिनदास वैद्य विद्यामें निष्णात विद्वान् थे। इनके पूर्वज 'हरिपति' नामके वणिक थे। जिन्हें पद्मावती देवीका वर प्राप्त था, और जो फेरोजशाह नामक राजासे सम्मानित थे। उन्हींके वंशमें 'पद्म' नामक श्रेष्ठी हुए, जिन्होंने अनेक दान दिये और ग्यासशाह नामक राजासे बहुमान्यता प्राप्त की। इन्होंने साकुम्भरी नगरीमें विशाल जिनमन्दिर बनवाया था, वे इतने प्रभावशाली थे कि उनकी आज्ञाका किसी राजाने उल्लंघन नहीं किया। वे मिथ्यात्व घातक थे तथा जिनगुरुओंके नित्य पूजक थे। इनके पुत्रका नाम 'बिम्ब' था, जो वैद्यराट् थे। बिम्बने शाह नसीरसे उत्कर्ष प्राप्त किया था। इनके दूसरे पुत्रका नाम 'सुहृजन' था, जो विवेकी और वादिरूपी गजोंको लिये सिंहके समान था। सबका उपकारक और जिनधर्मका आचरण करने वाला था। यह भट्टारक जिनचन्द्रके पट्ट पर प्रतिष्ठित हुआ था और उसका नाम 'प्रभाचन्द्र' रक्खा गया था, इसने राजाओं जैसी विभूतिका परित्याग किया था। उक्त बिंबका पुत्र धर्मदास हुआ, जिसे महमूद शाहने बहु मान्यता प्रदान की थी। यह भी वैद्य शिरोमणी और विख्यात कीर्त्ति थे। इन्हें भी पद्मावती का वर प्राप्त था। इसकी धर्मपत्नीका नाम 'धर्म श्री' था, जो अद्वितीय दानी, सदृष्टि, रूपसे मन्मथ विजयी और प्रफुल्ल वदना थी। इसका 'रेखा' नामका एक पुत्र था जो वैद्यकलामें दक्ष, वैद्योंका स्वामी और लोकमें प्रसिद्ध था। यह वैद्य कला अथवा विद्या आपकी कुल परम्परामें चली आ रही थी और उससे आपके वंशकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। रेखा अपनी वैद्य विद्याके कारण रणस्तम्भ (रणथम्भौर)

नामक दुर्गमें बादशाह शेरशाहके द्वारा सम्मानित हुए थे। प्रस्तुत जिनदास इन्हींके पुत्र थे, इनकी माताका नाम 'रिखश्री' और धर्मपत्नीका नाम जिनदासी था, जो रूप लावण्यादि गुणोंसे अलंकृत थी। पण्डित जिनदास रणस्तम्भदुर्गके समीपस्थ नवलक्षपुरके निवासी थे। जिनदासके माता-पितादिके नामोंसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि उस समय कतिपय प्रान्तोंमें जो नाम पतिका होता था वही नाम प्रायः पत्नीका भी हुआ करता था। इनका एक पुत्र भी था जिसका नाम नारायणदास था।

पण्डित जिनदासने शेरपुरके शान्तिनाथ चैत्यालयमें ५१ पद्यों वाली 'होलीरेणुकाचरित्र' की प्रति अवलोकन कर संवत् १६०८ के ज्येष्ठ शुक्ला दशमी शुक्रवारके दिन इस ग्रन्थको ८४३ श्लोकोंमें समाप्त किया है। ग्रन्थ-कर्त्ताने ग्रन्थकी अन्तिम प्रशस्तिमें अपने पूर्वजोंका भी कुछ परिचय दिया है जिसे उक्त प्रशस्ति परसे सहज ही जाना जा सकता है। पण्डित जिन-दासजीने यह ग्रन्थ भट्टारक धर्मचन्द्रजीके शिष्य भ० ललित-कीर्तिके नामांङ्कित किया है, यह सम्भवतः उन्हींके शिष्य जान पड़ते हैं।

४६वीं प्रशस्ति 'मुनिसुव्रतपुराण' की है, जिसके कर्ता ब्रह्म कृष्ण-दास हैं, जो लोहपत्तन नगरके निवासी थे। इनके पिताका नाम हर्ष और माताका नाम 'वीरिका' देवी था। इनके ज्येष्ठ भ्राताका नाम मंगलदास था। यह दोनों ब्रह्मचारी थे। इन्होंने प्रशस्तिमें अनेक भट्टारकों-का स्मरण किया है जो भट्टारक रामसेनकी परम्परामें हुए हैं। यह काष्ठासंघके भट्टारक भुवनकीर्तिके पट्टधर भ० रत्नकीर्तिके शिष्य थे। भ० रत्नकीर्ति न्याय, नाटक और पुराणादिमें विज्ञ थे। ब्रह्म कृष्णदासने श्रीकल्पवल्लीनगरमें इस ग्रन्थको वि० सं० १६८१ के कार्तिक शुक्ला त्रयोदशीके दिन अपराण्ह समय समाप्त किया था। ग्रन्थ पूरणमल्लके नामसे अंकित है। इसमें जैनियोंके बीसवें तीर्थं-कर मुनिसुव्रतके चरित्रका चित्रण किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ २३ संधियों और ३०२५ श्लोकोंमें समाप्त हुआ है।

४७वीं प्रशस्ति 'चन्द्रप्रभचरित्र' की है, जिसके कर्ता कवि दामोदर हैं, जो भट्टारक धर्मचन्द्रके शिष्य थे। कवि दामोदरने उक्त ग्रन्थकी रचना-सम्वत् १७२७ में महाराष्ट्र ग्रामके आदिनाथ भवनमें निवास करते हुए चार हज़ार श्लोकोंमें की है।

४८वीं प्रशस्ति 'ज्ञानार्णवगद्य-टीका' की है, जिसके कर्ता देशयति ब्रह्मश्रुतसागर हैं। इनका परिचय, १०वें नं० की प्रशस्तिमें दिया गया है।

४९वीं और ६२वीं प्रशस्तियाँ 'सम्मेदशिखरमाहात्म्य' और 'स्वर्णाचलमाहात्म्य' की हैं जिनके कर्ता कवि देवदत्तजी दीक्षित हैं, जो कान्यकुब्ज ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए थे और जो भदौरिया राजाओंके राज्यमें स्थित अटेर नामक नगरके निवासी थे। इन्होंने भट्टारक जिनेन्द्र-भूषणकी आज्ञासे 'सम्मेदशिखरमाहात्म्य' और 'स्वर्णाचलमाहात्म्य' (वर्तमान सोनागिरिक्षेत्रका माहात्म्य) इन दोनों ग्रन्थोंकी रचना की है। भट्टारक जिनेन्द्रभूषण शौरीपुरके निवासी थे, जो जैनियोंके बाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथकी पवित्र जन्मभूमि थी। शौरीपुरसे पश्चिममें जमुना नदी बहती है। भट्टारक जिनेन्द्रभूषण ब्रह्म हर्षसागरके पुत्र थे, जो भट्टारक विश्व-भूषणके उत्तराधिकारी थे। कवि देवदत्तने उक्त दोनों ग्रन्थोंकी रचना कब की इसका कोई उल्लेख प्रशस्तियोंमें नहीं पाया जाता; फिर भी ये दोनों रचनाएँ १९वीं शताब्दीके प्रारम्भकी जान पड़ती हैं; क्योंकि मैनपुरी (मुहकमगंज) के दिगम्बर जैन पञ्चायती मन्दिरके यन्त्रोंकी जो प्रशस्तियाँ बाबू कामताप्रसादजीने जैन सिद्धान्तभास्कर भाग २ की किरण ३ में प्रकाशित की हैं उनसे स्पष्ट मालूम होता है कि भट्टारक जिनेन्द्रभूषण अटेरकी गद्दीके भट्टारक थे और वे भ० विश्वभूषणके पट्ट पर प्रतिष्ठित होने-वाले भ० लक्ष्मीभूषणजीके पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए थे। यह षोडशकारण-यन्त्र संवत् १८२८ मिती भादव कृष्णा पंचमी शुक्रवारका उत्कीर्ण किया हुआ है। और इससे पूर्ववाला यंत्र सम्वत् १७९१ का है उस समय तक लक्ष्मीभूषण भ० पद पर आसीन नहीं हुए थे, वे १७९१ और १८२८ के मध्यवर्ती किसी समयमें भ० पद पर प्रतिष्ठित हुए हैं। ऐसी स्थितिमें

कवि दीक्षित देवदत्तका समय विक्रमकी १६वीं शताब्दीका पूर्वार्ध जान पड़ता है।

५०वीं प्रशस्ति 'ध्यानस्तव' नामक ग्रंथ की है, जिसके कर्ता भास्करनन्दी हैं। जो मुनि जिनचंद्रके शिष्य थे और जिनचंद्र सर्वसाधुके शिष्य थे। जैसा कि 'तत्त्वार्थवृत्ति' की अंतिम प्रशस्तिके निम्न पद्योंसे प्रकट है :—

नो निष्ठीवेन्न शेते वदति च न परं ह्येहि याहीति यातु,
नो कण्डूयेत गात्रं व्रजति न निशि नोद्वट्टयेद्वा न दत्ते।
नावष्टंभाति किंचिद्गुणनिधिरिति यो बद्धपर्यङ्कयोगः,
कृत्वा सन्यासमन्ते शुभगतिरभवत्सर्वसाधुः स पूज्यः ॥२॥

तस्याऽऽसीत्सुविशुद्धदृष्टिविभवः सिद्धान्तपारंगतः,
शिष्यः श्रीजिनचंद्रनामकलितश्चारित्रभूषान्वितः।

शिष्यो भास्करनन्दिनाम विबुधस्तस्याऽभवत्तत्ववित्,
तेनाऽकारि सुखादिबोधविषया तत्त्वार्थवृत्तिः स्फुटम् ॥३॥

भास्करनन्दीकी इस समय दो कृतियाँ सामने हैं—एक ध्यानस्तव और दूसरी तत्त्वार्थवृत्ति, जिसे 'सुखबोधवृत्ति' भी कहा जाता है। इनमें तत्त्वार्थवृत्ति आचार्य उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रकी संक्षिप्त एवं सरल व्याख्या है। इसकी रचना कब और कहाँ पर हुई यह ग्रन्थ प्रतिपरसे कुछ भी मालूम नहीं होता।

जिनचन्द्रनामके अनेक विद्वान् भी हो गए हैं उनमें प्रस्तुत जिनचन्द्र कौन हैं और उनका समय क्या है यह सब सामग्रीके अभावमें बतलाना कठिन जान पड़ता है। एक जिनचंद्र चंद्रनंदीके शिष्य थे, जिसका उल्लेख कन्नड कवि पम्पने अपने शांतिनाथ पुराणमें किया है।

दूसरे जिनचंद्र वे हैं जो भट्टारक जिनचंद्रके नामसे लोकमें विश्रुत हैं और जो भ० पद्मनंदीके अन्वयमें शुभचंद्रके पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए थे और जिनका समय विक्रमकी १६ वीं शताब्दी है। इन्होंने सं० १५४८ में शहर मुड़ासामें सहस्रों मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा जीवराज पापड़ीवालके अनुरोधसे कराई

भी। इनका एक 'चतुर्विंशति जिनस्तोत्र' भी मिला है जो अनेकांतवर्ष ११ किरण ३ में प्रकाशित हो चुका है। इनके प्रधान शिष्य पं० मेधावी थे। भट्टारक रत्नकीर्ति भी इन्हींके शिष्य थे। जिन्होंने सं० १५४१ में अपना उक्त ग्रंथ पूरा किया है। यह दिल्ली गद्दीके भट्टारक थे और उस पर बैठनेका समय वि० सं० १५०७ पट्टावलियोंमें लिखा मिलता है।

तीसरे जिनचंद्र वे हैं जिनका उल्लेख श्रवणबेल्गोलके शिला-वाक्य नं० ५५ (६६) में किया गया, जो शक संवत् १०२२ (वि० सं० ११५७) के लगभगका उत्कीर्ण किया हुआ है।

चौथे जिनचंद्र भास्करनंदीके गुरु हैं ही, जो सर्वसाधुमुनिके शिष्य थे। ये चारों ही जिनचंद्र एक दूसरेसे भिन्न प्रतीत होते हैं। पर प्रस्तुत जिनचंद्रका क्या समय है यह निश्चयतः नहीं बतलाया जा सकता। पर अनुमानसे वे विक्रमकी १३ वीं १४ वीं शताब्दीके विद्वान् जान पड़ते हैं।

५१ वीं प्रशस्ति 'पदार्थदीपिका' नामक ग्रन्थ की है जिसके कर्ता भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति हैं, जो भट्टारक जगतकीर्तिके पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए थे। प्रस्तुत ग्रंथ 'समयसार' ग्रंथकी टीका है, जिसे भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिने ईसरदा ग्राममें संवत् १७८८ में भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको बना कर समाप्त किया था। इससे भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति १८ वीं शताब्दीके विद्वान् थे।

५२ वीं प्रशस्ति 'नागकुमारपंचमी कथा' की है, जिसके कर्ता पं० धरसेन हैं जो वीरसेनके शिष्य थे और उन्होंने सोढदेव तथा रट्टके लिये उक्त पंचमी कथाको गोनदेवकी बस्तीमें बनाया था। प्रस्तुत धरसेन कब और कहाँ हुए और इनका जीवन-सम्बन्धी क्या कुछ परिचय है यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका।

५३ वीं प्रशस्ति 'महीपालचरित' की है, जिसके कर्ता भट्टारक चारित्रभूषण हैं, जो वाणी (सरस्वती) नामक गच्छ और सारकर गणके विद्वान् रत्ननन्दीके शिष्य थे। प्रशस्तिमें दी हुई गुरुपरम्परामें विजयचन्द्रसूरि, क्षेमकीर्ति, रत्नाकरसूरि, अभयनन्दी, जयकीर्ति और रत्ननंदी नामके विद्वानोंका उल्लेख किया गया है। पर प्रशस्तिमें ग्रंथरचनाका समय

दिया हुआ नहीं है। ग्रंथ प्रति भी बहुत अशुद्धियोंको लिए हुए है इसीलिये सामग्रीके अभावसे उस पर विशेष विचार करना सम्भव नहीं है। यह प्रति सं० १८३६ की लिखी हुई है। ग्रंथके भाषा साहित्यादि परसे वह १५ वीं १६ वीं शताब्दीकी रचना जान पड़ती है।

५४ वीं प्रशस्ति 'मदनपराजय' की है, जिसके कर्ता कवि नागदेव हैं। नागदेवने प्रशस्तिमें अपने कुटुम्बका परिचय इस प्रकार दिया है—चंगदेवका पुत्र हरदेव, हरदेवका नागदेव, नागदेवके दो पुत्र हुए हेम और राम, ये दोनों ही वैद्यकलामें अच्छे निष्णात थे। रामके प्रियंकर और प्रियंकरके मल्लुगित और मल्लुगितके नागदेव नामका पुत्र हुआ जो इस ग्रंथके रचयिता हैं। जो अपनी लघुता व्यक्त करते हुए अपनेको अल्पज्ञ तथा छन्द् अलंकार, काव्य, व्याकरणादिसे अनभिज्ञता प्रकट करता है। हरदेवने सबसे पहले 'मदनपराजय' नामका एक ग्रंथ अपभ्रंश भाषाके पद्धडिया और रड्ढाछंदमें बनाया था। नागदेवने उसीका अनुवाद एवं अनुसरण करते हुए उसमें यथावश्यक संशोधन परिवर्धनादिके साथ विभिन्न छंदों आदिसे समलंकृत किया है।

यह ग्रंथ खण्ड रूपक काव्य है, जो बड़ा ही सरस और मनमोहक है इसमें कामदेव राजा मोहमंत्री, अहंकार और अज्ञान आदि सेनानियोंके साथ जो भावनगरमें राज्य करते हैं। चारित्रपुरके राजा जिनराज उनके शत्रु हैं क्योंकि वे मुक्तिरूपी कन्यासे पाणिग्रहण करना चाहते हैं। कामदेवने राग-द्वेष नामके दूत द्वारा महाराज जिनराजके पास यह संदेश भेजा कि आप या तो मुक्ति कन्यासे अपने विवाहका विचार परित्याग कर अपने प्रधान सुभट दर्शन, ज्ञान, चारित्रको मुझे सौंप दें, अन्यथा युद्धके लिए तय्यार हो जांय। जिनराजने उत्तरमें कामदेवसे युद्ध करना ही श्रेयस्कर समझा और अन्तमें कामदेवको पराजित कर अपना विचार पूर्ण किया।

यहां यह बात अवश्य नोट करने की है कि ग्रन्थकी सन्धि-पुष्पिकाओंमें निम्न वाक्य पाया जाता है जिसका अशुद्ध रूप होनेके कारण सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता। "इति श्री ठक्कुर माहन्द सुतजिनदेवविरचिते स्मरपराजये"

इस संधि वाक्यमें ठक्कुर माइन्द सुतके स्थानमें ठक्कुर माइन्दस्तुत होना चाहिए। और जिनदेवके स्थान पर नागदेव होना चाहिए। ऐसा संशोधन हो जानेसे ग्रन्थकी आद्य प्रशस्तिके साथ इसका सम्बंध ठीक बैठ जाता है। यह हो सकता है कि नागदेवके स्मरपराजय नामक ग्रन्थकी ठक्कुर माइन्दने बहुत प्रशंसा की हो। परन्तु इस ग्रंथके रचयिता जिनदेव नहीं, नागदेव हैं। भारतीय ज्ञानपीठ काशीसे मुद्रित 'मदन पराजय' की प्रस्तावनामें भी पं० राजकुमारजी साहित्याचार्यने उक्त पुष्पिका वाक्यमें भी ऐसा ही संशोधन किया है *।

अब रही समयकी बात, ग्रंथकर्ताने ग्रन्थमें कोई रचनासमय नहीं दिया, जिससे यह निश्चित करना कठिन है कि नागदेव कब हुए हैं। चूंकि वह प्रति जिस परसे यह प्रशस्ति उद्धृत की गई है सं० १५७३ की लिखी हुई है। अतः यह निश्चित है कि उक्त ग्रन्थ १५७३ से बादका बना हुआ नहीं है, वह उससे पहले ही बना है। कितने पूर्व बना यह निश्चित नहीं है, पर ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रंथका रचनाकाल विक्रमकी १५ वीं शताब्दीसे पूर्वका नहीं है।

५५वीं, ५६वीं और १०८वीं प्रशस्तियां क्रमसे 'श्वेताम्बर पराजय' (केवलभुक्तिनिराकरण) 'चतुर्विंशति संधान स्वोपज्ञ टीका' सहित और 'सुखनिधान' नामके ग्रन्थों की हैं, जिनके कर्ता कवि जगन्नाथ हैं। इनके गुरु भट्टारक नरेन्द्रकीर्त्ति थे। इनका वंश खंडेलवाल था और यह पोमराज श्रेष्ठीके सुपुत्र थे। इनके दूसरे भाई वादिराज थे जो संस्कृत भाषाके प्रौढ़ विद्वान् और कवि थे। इन्होंने संवत् १७२६ में वाग्भट्टालङ्कार की 'कविचन्द्रिका' नामकी एक टीका बनाई थी। इनका बनाया हुआ 'ज्ञान लोचन' नामका एक संस्कृत स्तोत्र भी है जो माणिकचन्द्रग्रन्थमालासे प्रकाशित हो चुका है। ये तक्षक + (वर्तमान टोडा) नामक नगरके निवासी थे, इनमें

---

* देखो मदनपराजयकी प्रस्तावना।

+टोडा नगरका प्राचीन नाम 'तक्षकपुर' था। यहां भट्टारक नरेंद्रकीर्ति रहते थे। इनके समयमें टोडामें संस्कृतभाषाके पठन-पाठनादिका अच्छा

वादिराज जगन्नाथके कनिष्ठ भ्राता जान पड़ते हैं। पं० दीपचन्द्रजी पाण्ड्या केकड़ीके पास एक गुटका है जिसके अन्तकी संवत् १७५१ की मगशिर वदी ५ की लिखी-प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि साह पोमराज श्रेष्ठीका गोत्र सोगानी था और इनके पुत्र वादिराजके भी चार पुत्र थे, जिनके नाम रामचन्द्र, लालजी, नेमीदास और विमलदास थे। विमलदासके उक्त समयमें टोडामें उपद्रव हुआ और उसमें वह गुटका भी लुट गया था, बादमें उसे छुटाकर लाये जो फट गया था उसे संवार कर ठीक किया गया*। उक्त वादिराज राजा जयसिंहके सेवक थे—अर्थात् वे राज्यके किसी ऊँचे पदका कार्य सञ्चालन करते थे।

कविवर जगन्नाथकी इस समय उक्त तीन रचनाएँ ही उपलब्ध हैं। इसका रचना काल वि० सं० १६६६ है। यह ग्रन्थ टीका सहित प्रकाशित हो चुका है।

कार्य चलता था, लोग शास्त्रोंके अभ्यास द्वारा अपने ज्ञानकी वृद्धि करते थे। यहां शास्त्रोंका भी अच्छा संग्रह था। लोगोंको जैनधर्मसे विशेष प्रेम था, शास्त्रभण्डार आज भी वहां अस्त-व्यस्त हालतमें मौजूद है, अष्टसहस्री और प्रमाणनिर्णय आदि न्यायग्रन्थोंका लेखन, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय आदि सिद्धान्तग्रन्थों आदिका प्रतिलेखन कार्य तथा अन्य अनेक नूतन ग्रन्थोंका निर्माण यहां हुआ है।

*प्रस्तुत गुटकेकी प्रथम प्रति सं० १६१० की लिखी हुई थी उसी परसे दूसरी कापी सं० १७५१ में की गई है :—

"सं० १७५१ मगसिर वदी तक्षकनगरे खण्डेलवालान्वये सोगानी गोत्रे साहपोमराज तत्पुत्र साह वादिराजस्तपुत्र चत्वारः प्रथम पुत्र रामचन्द्र द्वितीय लालजी तृतीय नेमिदास चतुर्थ विमलदास टोडामें विषो हुवो, जब याह पोथी लुटी यहां थे छुड़ाई फटी-तुटी सवारि सुधारि आछी करी, ज्ञानावरणकर्मक्षयार्थं पुत्रादिपठनार्थं शुभं भवतु।"

—गुटका प्रशस्ति

इनमें सबसे पहली कृति चतुर्विंशति-संधान है, इस ग्रन्थके एक पद्यको ही चौबीस जगह लिखकर उसकी स्वोपज्ञटीका लिखी है, जिसमें चौबीस तीर्थंकरोंकी स्तुति की गई है ।

दूसरी कृति 'सुख-निधान' है इसकी रचना कवि जगन्नाथने 'तमालपुर'में की थी । इस ग्रन्थमें कविने अपनी एक और कृतिका उल्लेख "अन्यच्च"-अस्माभिरुक्तं 'शृङ्गारसमुद्रकाव्ये' वाक्यके साथ किया है । तीसरी कृति 'श्वेताम्बर पराजय' है । इसमें श्वेताम्बर सम्मत केवलिभुक्तिका सयुक्तिक निराकरण किया गया है । इस ग्रन्थमें भी एक और अन्य कृतिका उल्लेख किया है और उसे एक स्वोपज्ञ टीकासे युक्त बतलाया है । तदुक्त —'नेमि-नरेंद्रस्तोत्रे स्वोपज्ञे' इससे नेमिनरेंद्रस्तोत्र नामकी स्वोपज्ञकृतिका और पता चलता है । और उसका एक पद्यभी उद्धृत किया है जो अंतिम चरणमें कुछ अशुद्धिको लिये हुए है । वह इस प्रकार है :—

"यदुत तव न भुक्तिर्नष्टदुःखोदयत्वाद्वसनमपि न चांगे वीतरागस्वतश्च ।
इति निरुपमहेतू नह्यसिद्धाद्यसिद्धौ विशद-त्रिशदक्षीणां हृदुल्लासयुक्तौ ॥

इनकी एक और अन्य रचना 'सुषेण चरित्र' है जिसकी पत्र संख्या ४६, है और जो सं० १८४२ की लिखी हुई है । यह ग्रन्थ भ० महेंद्र-कीर्ति आमेरके शास्त्र भण्डारमें सुरक्षित है ।

इस तरह कवि जगन्नाथकी ६ कृतियोंका पता चल जाता है । इनकी अन्य क्या-रचनाएँ हैं, यह अन्वेषणीय है । इनकी मृत्यु कब और कहां हुई, इसके जाननेका कोई साधन इस समय उपलब्ध नहीं है । पर इनकी रचनाओंके अवलोकनसे यह १७वीं, १८वीं शताब्दीके सुयोग्य विद्वान् ज्ञात पड़ते हैं ।

२७वीं प्रशस्ति मौनव्रतकथा' की है, जिसके कर्ता भ० गुणचंद्रसूरि हैं । इनका परिचय २७वीं प्रशस्तिमें दिया गया है ।

४८वीं प्रशस्ति 'षट्चतुर्थ-वर्तमान-जिनार्चनकी' तथा १३२वीं प्रशस्ति 'अष्टमजिनपुराणसंग्रह' (चंद्रप्रभपुराण) की है । इन दोनों ग्रंथोंके कर्ता पं० शिवाभिराम हैं । इनमेंसे प्रथम ग्रन्थकी रचना मालवनाम देशमें स्थित

विजयसारके 'दिविज' नगरके दुर्गमें स्थित देवालयमें जब अरिकुल शत्रु सामन्तसेन हरितनुका पुत्र अनुरुद्ध पृथ्वीका पालन करता था, जिसके राज्यका प्रधान सहायक रघुपति नामका महात्मा था । उसका पुत्र धन्यराज ग्रंथ कर्ताका परम भक्त था उसीकी सहायतासे सं० १६६२ में हुई है ।

दूसरे ग्रन्थमें जैनियोंके ८वें तीर्थंकर चंद्रप्रभ भगवानका जीवन परिचय दिया हुआ है । इस ग्रंथमें कविने भद्रबाहु, समंतभद्र, अकलंकदेव, जिनसेन, गुणभद्र और पद्मनंदी नामके पूर्ववर्ती विद्वानोंका स्मरण किया है । यह ग्रंथ सात सर्गोंमें समाप्त हुआ है ।

ग्रंथकी अंतिम प्रशस्तिमें बतलाया गया है कि बृहद्गुर्जरवंशका भूषण राजा तारासिंह था जो कुम्भ नगरका निवासी था और दिल्लीके बादशाह द्वारा सम्मानित था । उसके पट्ट पर सामंतसिंह हुआ जिसे दिगम्बराचार्यके उपदेशसे जैनधर्मका लाभ हुआ था । उसका पुत्र पद्मसिंह हुआ जो राजनीतिमें कुशल था, उसकी धर्मपत्नीका नाम 'वीणा' देवी था, जो शीलादि सद्गुणोंसे विभूषित थी । उसीके उपदेश एवं अनुरोधसे उक्त चरित ग्रंथकी रचना हुई है । प्रशस्तिमें रचनाकाल दिया हुआ नहीं है । इसलिये यह निश्चितरूपसे बतलाना कठिन है कि शिवाभिरामने इस ग्रंथकी रचना कब की है । पर ऊपरकी प्रशस्तिसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि ग्रंथकी रचना विक्रमकी १७ वीं शताब्दीके अंतिम चरणमें हुई है ।

२६ वीं और १२१ वीं प्रशस्तियाँ क्रमसे पार्श्वपुराण और वृषभदेवपुराणकी हैं । जिनके कर्ता भट्टारक चन्द्रकीर्ति हैं जो सत्रहवीं शताब्दीके विद्वान थे । इनके गुरुका नाम भ० श्रीभूषण था । ये ईडरकी गद्दीके भट्टारक थे । उस समय ईडरकी गद्दीके पट्टस्थान सूरत, डूंगरपुर, सोजित्रा, झेर और कल्लोल आदि प्रधान नगरोंमें थे । उनमेंसे भ० चंद्रकीर्ति किस स्थानके पट्टधर थे यह निश्चित रूपसे मालूम नहीं हो सका, पर जान पड़ता है कि वे ईडरके समीपवर्ती किसी स्थानके पट्टधर थे । भ० चंद्रकीर्ति विद्वान् होनेके साथ कवि थे और प्रतिष्ठादि कार्योंमें भी दक्ष थे । इन्होंने

अनेक मंदिर एवं मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा भी कराई थी। भ० चंद्रकीर्ति काष्ठा-संघ और नंदीतट गच्छके भट्टारक थे और भ० विद्याभूषणके प्रशिष्य तथा श्रीभूषणके शिष्य एवं पट्टधर थे। ग्रंथकी अंतिम प्रशस्तिमें उन्होंने अपनी गुरुपरम्परा भट्टारक रामसेनसे बतलाई है।

पार्श्वपुराण १५ सर्गोंमें विभक्त है, जिसकी श्लोक संख्या २७१५ है। और वह देवगिरि नामक मनोहर नगरके पार्श्वनाथ जिनालयमें वि० संवत् १६५४ के वैशाख शुक्ला सप्तमी गुरुवारको समाप्त किया गया है। दूसरी कृति वृषभदेव पुराण हैं जो २५ सर्गोंमें पूर्ण हुआ है। इस ग्रंथमें रचना-काल दिया हुआ नहीं है। अतः दोनों ग्रंथोंके अवलोकन विना यह नहीं कहा जा सकता कि उनमेंसे कौन पीछे और कौन पहले बना है। इनके अतिरिक्त भ० चंद्रकीर्तिने और भी अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। उनमें कुछ नाम इस प्रकार हैं:—पद्मपुराण, पंचमेरुपूजा, अनंतव्रतपूजा और नंदीश्वरविधान आदि। चूँकि ये ग्रंथ सामने नहीं हैं अतः इनके सम्बंधमें कोई यथेष्ट सूचना इस समय नहीं की जा सकती।

६० वीं प्रशस्ति 'छन्दोनुशासन' ग्रंथकी है, जिसके कर्ता जयकीर्ति हैं। जयकीर्तिके गुरुका क्या नाम था यह ज्ञात नहीं हो सका। जयकीर्तिकी यह एक मात्र कृति जैसलमेरके ज्ञानभण्डारमें स्थित है। जो सं० ११६२ की आषाढ़ सुदी १०मी शनिवार की लिखी हुई है। और अभी जयदामन् नामक छंदशास्त्रके साथमें प्रकाशित हो चुकी है। जिसका सम्पादन मि० H. D. वेलंकरने किया है। प्रस्तुत जयकीर्तिके शिष्य अमलकीर्तिने 'योग-सार' की प्रति सं० ११६२ की ज्येष्ठ सुदी त्रयोदशीको लिखवाई थी। एपिग्राफिया इंडिका जिल्द २ में प्रकाशित चित्तौड़गढ़के निम्न शिलालेखमें जो संवत् १२०७ में उत्कीर्ण हुआ है लिखा है कि जयकीर्त्तिके शिष्य दिगम्बर रामकीर्तिने उक्त प्रशस्ति लिखी है।

श्री जयकीर्तिशिष्येण दिगम्बरगणेशिना। प्रशस्तिरीदृशीचक्रे [मुनि] श्री रामकीर्तिना॥—सं० १२०७ सूत्र धा'''।" इन सब उल्लेखोंसे जयकीर्तिका समय विक्रम की १२वीं शताब्दीका अन्तिम भाग है।

६१वीं प्रशस्ति 'प्रद्युम्न चरित्र' की है, जिसके कर्ता आचार्य महासेन हैं जो लाडबागड संघके पूर्णचन्द्र, आचार्य जयसेनके प्रशिष्य और गुणकरसेन सूरिके शिष्य थे। आचार्य महासेन सिद्धान्तज्ञ, वादी, वाग्मी और कवि थे, तथा शब्दरूपी ब्रह्मके विचित्र धाम थे। यशस्वियों द्वारा मान्य और सज्जनोंमें अग्रणी, एवं पाप रहित थे, और परमार वंशी राजा मुंजके द्वारा पूजित थे। ये सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपकी सीमा स्वरूप थे और भव्यरूपी कमलोंके विकसित करने वाले बांधव थे—सूर्य थे—तथा सिंधुराजके महामात्य श्री पर्पटके द्वारा जिनके चरण कमल पूजित थे। और उन्हींके अनुरोधसे इस ग्रन्थकी रचना हुई है[1]।

महासेनसूरिका समय विक्रमकी ११वीं शताब्दीका मध्य भाग है; क्योंकि राजा मुंजके दो दान पत्र वि० सं० १०३१ और वि० सं० १०३६ के प्राप्त हुए हैं। आचार्य अमितगतिने इन्हीं मुञ्जदेवके राज्यकाल वि० सं० १०५० में पौष सुदी पंचमीके दिन 'सुभाषितरत्नसन्दोह' की रचना पूर्णकी है। इससे मुंजका राज्य सं० १०३१ से १०५० तक तो सुनिश्चित ही है और कितने समय रहा यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। पर यह ज्ञात होता है कि तैलपदेवने सं० १०५० और १०५५ के मध्यवर्ती किसी समयमें मुञ्जका वध किया था। चूंकि ग्रन्थकर्ता महासेन मुञ्ज द्वारा पूजित थे। अतएव यह ग्रंथ भी उन्हींके राज्यकालमें रचा गया है। अर्थात् यह ग्रन्थ विक्रमकी ११वीं शताब्दीके मध्य समय की रचना है।

६२वीं प्रशस्ति 'त्रिपंचाशत्क्रियाव्रतोद्यापन' की है, जिसके कर्ता भ० देवेन्द्रकीर्ति हैं। देवेन्द्रकीर्ति नामके अनेक भट्टारक हो गए हैं। परन्तु यह उन सबसे भिन्न प्रतीत होते हैं; क्योंकि इन्होंने अपना परिचय निम्नरूपमें दिया है। इनका कुल अग्रवाल था। यह राज्य मान्य भी थे। इन्होंने वि० सं० १६४४ में उक्त ग्रन्थकी रचना की है।

---

१ श्रीसिन्धुराजस्य महत्तमेन श्रीपर्पटेनार्चितपादपद्मः ।
चकार तेनाभिहितः प्रबंधं स पावनं निष्ठितमञ्जसस्य ॥१॥

६३वीं प्रशस्ति 'बृहत्षोडशकारणपूजा' की है, जिसके कर्त्ता भट्टारक सुमतिसागर हैं जो मूलसंघ बलात्कार गच्छ और बलशालि गणके विद्वान् थे। यह भट्टारक पद्मनन्दी और देवेन्द्रकीर्तिकी पट्ट-परम्परामें हुए हैं। यह ग्रन्थ इन्होंने खंडेलान्वयके सुधी प्रह्लादके आग्रहसे बनाया था। ग्रंथगत जय-मालाके अन्तिम धत्तेमें अभयचन्द्र और अभयनन्दीका उल्लेख किया गया है। साथ ही अवन्ति देशस्थित उज्जैन नगरीके शान्तिनाथ जिनालयका भी उल्लेख हुआ है। यह ग्रन्थ प्रति सं० १८०० की लिखी हुई है अतः सुमतिसागरका समय इससे बादका नहीं हो सकता। ग्रन्थमें रचनाकाल नहीं होनेसे निश्चयतः कुछ नहीं कहा जा सकता कि यह ग्रन्थ कब बना है? इनकी दूसरी कृति 'जिनगुणव्रतोद्यापन' है जो २१ पत्रात्मक प्रति है और देहली पञ्चायती मन्दिरके शास्त्र भण्डारमें सुरक्षित है। तीसरी कृति 'नवकार पैंतीस पूजा' है। जिसकी पत्र संख्या १२ है। ये प्रतियां भी इस समय सामने न होनेसे इनके सम्बंधमें भी विचार करना सम्भव नहीं है। अनुमानतः सुमतिसागर १७वीं १८वीं शताब्दीके विद्वान् होंगे।

६४वीं प्रशस्ति 'पंचकल्याणकोद्यापनविधि' की है, जिसके कर्ता गोपालवर्णी हैं। गोपालवर्णीके गुरु भ० हेमचन्द्र थे। प्रस्तुत भ० हेम-चन्द्र की गुरु-परम्परा क्या है और वे कहां की गद्दीके भट्टारक थे। यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। क्योंकि इस नामके भी अनेक विद्वान हो चुके हैं। गोपालवर्णीने उक्त ग्रन्थ ब्रह्म भीमाके आग्रहसे बनाया है।

६५वीं प्रशस्ति 'सिद्धचक्र-कथा' की है, जिसके कर्त्ता भट्टारक शुभ-चन्द्र हैं, जो भट्टारक मुनि पद्मनन्दीके पट्टधर थे। इनकी यह एक ही कृति देखनेमें आई है, अभी अन्य कृतियोंके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका।

इस सिद्धचक्रकथाको जिनधर्म-वत्सल एवं सम्यग्दृष्टि किसी जालाक नामके श्रावकने बनवाई थी। इनकी दूसरी कृति 'श्रीशारदास्तवन' है। इस स्तवनके अन्तिम पद्यके पूर्वार्धमें अपना और अपने गुरुका नाम उल्लेखित किया है—"श्रीपद्मनन्दीन्द्र मुनीन्द्रपट्टे शुभोपदेशी

शुभचन्द्रदेवः। भ० शुभचन्द्रका यह स्तवन अनेकांत वर्ष १२ किरण १० में प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत शुभचंद्रका समय विक्रमकी १५वीं शताब्दी जान पड़ता है; क्योंकि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति तथा त्रिलोकप्रज्ञप्ति नामक प्राकृत ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करा कर दान करने वाले सज्जनोंकी 'दानप्रशस्तियोंमें, जो पं० मेधावीके द्वारा संवत् १५१८ तथा १५१९ की लिखी हुई हैं। उनमें भट्टारक शुभचन्द्रके पट्ट पर भ० जिनचन्द्रके प्रतिष्ठित होनेका उल्लेख पाया जाता है। क्योंकि भ० जिनचन्द्रका दिल्ली पट्ट पर सं० १५०७ के करीब प्रतिष्ठित होना पट्टावलियोंमें पाया जाता है, जिससे स्पष्ट है कि भ० शुभचन्द्र संवत् १५०० या उसके ५-६ वर्ष बाद तक उक्त पट्ट पर प्रतिष्ठित रहे हैं। कब प्रतिष्ठित हुए यह विचारणीय है।

६६वीं प्रशस्ति 'अंजनापवनंजयनाटक' की है जिसके कर्ता कवि हस्तिमल्ल* हैं। हस्तिमल्लके पिताका नाम गोविन्दभट्ट था जो वत्सगोत्री दक्षिणी ब्राह्मण थे। इन्होंने आचार्य समन्तभद्रके 'देवागमस्तोत्र' को सुनकर सद्दृष्टि प्राप्त की थी—सर्वथा एकान्तरूप मिथ्यादृष्टिका परित्यागकर अनेकांत रूप सम्यक् दृष्टिके श्रद्धालु बने थे। उनके छह पुत्र थे—श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ, उदयभूषण, हस्तिमल्ल, और वर्धमान। ये छहों ही संस्कृतादि भाषाओंके मर्मज्ञ और काव्य-शास्त्रके अच्छे जानकार थे।

इनमें कवि हस्तिमल्ल गृहस्थ विद्वान् थे। इनके पुत्रका नाम पार्श्व पण्डित था। जो अपने पिताके समान ही यशस्वी, शास्त्र मर्मज्ञ और धर्मात्मा था। हस्तिमल्लने अपनी कीर्तिको लोकव्यापी बना दिया था और स्याद्वाद शासन द्वारा विशुद्ध कीर्तिका अर्जन किया था, वे पुण्यमूर्ति और अशेष कवि चक्रवर्ती कहलाते थे और परवादिरूपी हस्तियोंके लिये सिंह थे। अतएव हस्तिमल्ल इस सार्थक नामसे लोकमें विश्रुत थे। इन्हें अनेक विरुद अथवा उपाधियाँ प्राप्त थीं जिनका समुल्लेख कविने स्वयं विक्रान्तकौरव नाटकमें किया है। 'राजावलीकथे' के कर्ता कवि देवचन्द्रने हस्तमल्ल-

---

*कविके विशेष परिचयके लिये देखें, जैन साहित्य और इतिहास

को 'उभयभाषा कविचक्रवर्ती' सूचित किया है । इससे वे संस्कृत और कनड़ी भाषाके प्रौढ़ विद्वान जान पड़ते हैं । उनके नाटक तो कवि की प्रतिभाके संद्योतक हैं ही, किन्तु जैनसाहित्यमें नाटक परम्पराके जन्मदाता भी हैं। मेरे खयालमें शायद उस समय तक नाटक रचना नहीं हुई थी। कविवर हस्तिमल्लने इस कमीको दूर कर जैन समाजका बड़ा उपकार किया है। यह उस समयके कवियोंमें अग्रणी थे और नाटकोंके प्रणयनमें दक्ष थे। आपके ज्येष्ठ भ्राता सत्यवाक्य आपकी सूक्तियोंकी बड़ी प्रशंसा किया करते थे।

ग्रन्थकर्ताने पाण्ड्य राजाका उल्लेख किया है जिनकी कृपाके वे पात्र रहे हैं। और उनकी राजधानीमें अपने बन्धुओं और विद्वान् आप्तजनोंके साथ बसे थे। राजाने अपनी सभामें उनका खूब सन्मान किया था। पांड्य-महीश्वर अपनी भुजाओंके बलसे कर्नाटक प्रदेश पर शासन करते थे। पांड्य राजाओंका राज्य दक्षिण कर्नाटकमें रहा है कार्कल वगैरह भी उसमें शामिल थे। इस राजवंशमें जैनधर्मका काफी प्रभाव रहा है और इस वंश-के प्रायः सभी राजा लोग जैनधर्म पर प्रेम और आस्था रखते थे। कविवर हस्तिमल्लका समय विक्रमकी १४वीं शताब्दी है । कर्नाटक कवि चरित्रके कर्ता आर. नरसिंहाचार्यने हस्तिमल्लका समय ईसाकी तेरहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध १२९० और वि० सं० १३४७ निश्चित किया है।

कविवर हस्तिमल्लकी इस समय तक छह रचनाओंका पता चलता है, जिनमें चार तो नाटक हैं और दो पुराण ग्रन्थ कनड़ी भाषामें उपलब्ध हुए हैं । विक्रान्तकौरवनाटक, मैथिलीकल्याणनाटक, अंजना पवनंजयनाटक और सुभद्राहरण तथा आदिपुराण और श्रीपुराण। इन दोनों पुराण ग्रंथों-से वे कनड़ी भाषाके भी अच्छे विद्वान् जान पड़ते हैं। प्रतिष्ठातिलक नाम-का एक ग्रन्थ और है जो हस्तिमल्लका बतलाया जाता है। अय्यपार्य ने जिन प्रतिष्ठा ग्रन्थोंका उल्लेख किया है उनमें हस्तिमल्लके प्रतिष्ठा ग्रन्थका भी उल्लेख निहित है। पर चूँकि वह ग्रन्थ सामने नहीं है अतः उसके सम्बंध में कुछ नहीं लिखा जा सकता।

६७ वीं प्रशस्ति 'शृंगारमंजरी' की है, जिसके कर्ता आचार्य अजित-

सेन हैं जो सेनगणके विद्वानोंमें प्रमुख थे। इन्होंने सुशीला रानी विट्टल-देवीके सुपुत्र 'कामीराय' के लिए इस ग्रन्थकी रचना की थी, जो 'राय' इस नामसे प्रसिद्ध थे। ग्रन्थमें रस रीति और अलंकार आदिका सुन्दर विवेचन किया गया है और वह तीन परिच्छेदोंमें समाप्त हुआ है। ग्रन्थकर्ताने ग्रन्थमें उसका रचना काल नहीं दिया। चूँकि अजितसेन नामके अनेक विद्वान् आचार्य हो गये हैं। उनमें यह किसके शिष्य थे यह कुछ ज्ञात नहीं होता।

६८वीं प्रशस्ति 'शंखदेवाष्टक' की है, जिसके कर्ता भानुकीर्ति हैं। जिन-चरणोंके अमर मुनिचन्द्रके शिष्य राजेन्द्रचन्द्र थे। इससे मालूम होता है कि भानुकीर्ति भी मुनिचन्द्रके शिष्य थे। प्रशस्तिमें गुरुपरम्परा व समयादिकका कोई वर्णन नहीं दिया, जिससे उस पर विचार किया जाता।

६९वीं प्रशस्ति तत्त्वार्थसूत्रकी 'सुखबोधवृत्ति' की है, जिसके कर्ता पं० योगदेव हैं, जो कुम्भनगरके निवासी थे। यह नगर कनारा (Kanara) जिले में हैं। पं० योगदेव भुजबली भीमदेवके द्वारा राज मान्य थे। वहाँ की राज्य सभामें भी आपको उचित सम्मान प्राप्त था। ग्रन्थकर्ताने प्रशस्तिमें अपनी गुरुपरम्परा और ग्रन्थका रचनाकाल नहीं दिया। अन्य साधनोंसे भी इस समय इनका समय निश्चित करना शक्य नहीं है।

७०वीं प्रशस्ति 'विषापहारस्तोत्र टीका' की है, जिसके कर्ता नाग-चन्द्रसूरि हैं। जो मूलसंघ, देशीगण, पुस्तकगच्छ और पनशोकावलीके अलंकार रूप थे। तौलबदेश और विदेशोंको पवित्र करने वाले भट्टारक ललितकीर्तिके प्रधान शिष्य देवचन्द्र मुनीन्द्रके शिष्य थे और ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुये थे। इनका गोत्र श्रीवत्स था। पिताका नाम 'पार्श्वनाथ' और माताका नाम 'गुमटाम्बा' देवी था। नागचन्द्रसूरि कर्नाटक आदि देशोंमें प्रसिद्ध थे, और उन्हें 'प्रवादिगज केसरी' नामका विरुद भी प्राप्त था। वे कविमदके विदारक सद्दृष्टि थे। इन्होंने वागड़देशमें प्रसिद्ध भट्टारक ज्ञान-भूषणके द्वारा बार-बार प्रेरित होकर ही 'गुरु वचन अलंध्यनीय हैं' ऐसा

समझ कर महाकवि धनञ्जयके इस विषापहार स्तोत्रकी टीका रची है। इस टीकाके अतिरिक्त वादिराज सूरिके एकीभावस्तोत्रकी टीका भी इनकी बनाई हुई अपने पास है। इससे यह सम्भावना होती है कि सम्भवतः इन्होंने 'पंचस्तोत्र' की टीका लिखी होगी।

ऊपर जिस पंचस्तोत्र टीकाकी सम्भावना व्यक्त की गई है, उसकी दो प्रतियाँ (नं० ५३४, ५३५) जयपुरमें पं० लूणकरण जीके शास्त्र-भण्डारमें मौजूद हैं *। नागचन्द्रसूरिने और किन ग्रन्थोंकी रचना की, यह अभी अज्ञात है।

टीका प्रशस्तिमें रचना समय दिया हुआ नहीं है। फिर भी चूँकि भट्टारक ज्ञानभूषण वि० की १६वीं शताब्दीके विद्वान् हैं, उन्होंने अपना 'तत्त्वज्ञानतरंगिणी' नामका ग्रन्थ वि० सं० १५६० में बना कर समाप्त किया है और नागचन्द्रसूरि अपनी टीकामें ज्ञानभूषणका उल्लेख कर ही रहे हैं। अतः प्रस्तुत नागचन्द्रसूरि भी विक्रमकी १६वीं शताब्दीके विद्वान् हैं।

७१वीं और १२०वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः 'पाण्डवपुराण' और 'शान्तिनाथ पुराण' की है। जिनके कर्ता भ० श्रीभूषण हैं जो काष्ठासंघ नन्दीतटगच्छ और विद्यागणमें प्रसिद्ध होने वाले रामसेन, नेमिसेन, लक्ष्मी-सेन, धर्मसेन, विमलसेन, विशालकीर्ति, विश्वसेन आदि भट्टारकोंकी परंपरा-में होने वाले भट्टारक विद्याभूषणके पट्टधर थे। यह भट्टारक गुजरातके आस-पासके गद्दीधर जान पड़ते हैं। बड़ौदाके बाड़ी मुहल्लेके दि० जैन मन्दिरमें विराजमान भ० पार्श्वनाथकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा सं० १६०४ में काष्ठासंघके भट्टारक विद्याभूषणके उपदेशसे हुँबडज्ञातीय अनन्तमतीने कराई थी+।

---

* देखो, राजस्थानके जैन शास्त्रभण्डारोंकी सूची भाग २, पृ० ४६

+सं० १६०४ वर्षे वैशाख वदी ११ शुक्रे काष्ठासंघे नन्दीतट गच्छे विद्यागणे भट्टारक रामसेनान्वये भ० श्री विशालकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री विश्वसेन तत्पट्टे भ० विद्याभूषणेन प्रतिष्ठितं, हूँबडज्ञातीय गृहीत दीक्षाबाई अनन्तमती नित्यं प्रणमति।

भ० विद्याभूषणने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है उनमें ऋषिमण्डलयन्त्रपूजा, बृहत्कलिकुन्डपूजा, चिन्तामणिपार्श्वनाथस्तवन, सिद्धचक्रमन्त्रोद्धार-स्तवन-पूजन। ये सब कृतियाँ देहलीके पंचायती मन्दिरके शास्त्र भण्डारमें सुरक्षित हैं।

भ० श्रीभूषणने 'पाण्डवपुराण' की रचना सौर्यपुर (सूरत) के चन्द्रनाथ चैत्यालयमें सं० १६५७ के पौष महीनेके शुक्लपक्ष तृतीयाके दिन समाप्त की थी। और इन्होंने अपना 'शान्तिनाथपुराण' वि० सं० १६५९ के मार्गशीर्ष महीनेकी त्रयोदशी गुरुवारके दिन गुजरातके 'सौजित्रा' नामक नगरके भगवान नेमिनाथके समीप समाप्त किया था जिसकी श्लोक संख्या चार हजार पचीस है।

भट्टारक श्रीभूषणने 'हरिवंशपुराण' की भी रचना की है, जिसकी ३१७ पत्रात्मक एक प्रति जयपुरके तेरापंथी बड़ामंदिरके शास्त्रभण्डारमें मौजूद है जिसका रचनाकाल सं० १६७५ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी है। जिसकी प्रतिलिपि सं० १७६७ जेठवदी ४ को पं० खतेसीने की थी×।

ग्रन्थ-प्रशस्तियोंमें श्रीभूषणने अपनेसे पूर्ववर्ती अनेक पूर्वाचार्योंका स्मरण किया है। इनकी चौथी कृति 'अनन्तव्रत पूजा' है जो सं० १६६७ में रची गई है। यह प्रति १३ पत्रात्मक है और देहलीके पंचायती मंदिरके शास्त्रभण्डारमें सुरक्षित है। पाँचवीं रचना 'ज्येष्ठ जिनवरव्रतोद्यापन' है। और छठी कृति 'चतुर्विन्शतितीर्थंकर पूजा' है। इन भट्टारक श्रीभूषणके शिष्य भ० ज्ञानसागर हैं जो 'भक्तामरस्तवनपूजन' के कर्ता हैं।

७२वीं प्रशस्ति 'अजितपुराण' की है, जिसके कर्ता पं० अरुणमणि या लालमणि हैं जो भ० श्रुतकीर्तिके प्रशिष्य और बुधराघवके शिष्य थे। जिन्होंने ग्वालियरमें जैन मन्दिर बनवाया था। इनके ज्येष्ठ शिष्य बुधरत्नपाल थे और दूसरे वनमाली तथा तीसरे कान्हरसिंह थे। प्रस्तुत अरुणमणि इन्हीं कान्हरसिंहके पुत्र थे। प्रशस्तिमें इन्होंने अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार

×देखो, राजस्थानके जैनशास्त्र-भण्डारोंकी ग्रन्थ-सूची भा० २ पृ० २६८

बतलाई है—काष्ठासंघमें स्थित माथुरगच्छ और पुष्करगणमें लोहाचार्यके अन्वयमें होने वाले भ० धर्मसेन, भावसेन, सहस्त्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति, जिनचन्द्र, श्रुतकीर्तिके शिष्य बुधराघवके शिष्य बुधरत्नपाल, बनमाली और कान्हरसिंह। इनमें कान्हरसिंहके पुत्र अरुणमणिने प्रस्तुत ग्रन्थ मुगल बादशाह अवरंगशाह (औरंगजेब) के राज्यकालमें सं० १७१६ में जहानाबाद नगर (वर्तमान न्यू देहली) के पार्श्वनाथ जिनालयमें बनाकर समाप्त किया है।

७३वीं प्रशस्ति 'आदिनाथफाग' और १०२वीं प्रशस्ति कर्मकांडटीका (कम्मपएडी) की है जो १६० गाथात्मक है। और जिनके कर्ता भट्टारक ज्ञानभूषण और सुमतिकीर्ति हैं। जो मूलसंघ सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगणके भट्टारक सकलकीर्तिके पट्ट पर प्रतिष्ठित होने वाले भुवनकीर्तिके शिष्य एवं पट्टधर थे और सागवाड़ेकी गद्दी पर आसीन हुए थे। यह विद्वान थे और गुजरातके निवासी थे। गुजरातमें इन्होंने सागारधर्म और आभीरदेशमें श्रावककी एकादश प्रतिमाओंको धारण किया था। और बाग्वर (बागड़) देशमें पंचमहाव्रत धारण किए थे। इन्होंने भट्टारक पद पर आसीन होकर आभीर, बागड़, तौलव, तैलंग, द्राविड़, महाराष्ट्र और दक्षिण प्रान्तके नगरों और ग्रामोंमें विहार ही नहीं किया; किन्तु उन्हें सम्बोधित भी किया और सन्मार्गमें लगाया था। द्राविड़देशके विद्वानोंने इनका स्तवन किया था और सौराष्ट्र देशवासी धनी श्रावकोंने उनका महोत्सव किया था। इन्होंने केवल उक्त प्रांतोंमें ही धर्मका प्रचार नहीं किया था किन्तु उत्तर प्रदेशमें भी जहाँ तहाँ विहार कर धर्म-मार्गकी विमलधारा बहाई थी। जहां यह विद्वान और कवि थे वहाँ ऊँचेदर्जेके प्रतिष्ठाचार्य भी थे। आपके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ आज भी उपलब्ध हैं। लौकिककार्योंके साथ आप आध्यात्मिक शास्त्रोंके भी अभ्यासी थे, और आध्यात्मकी चर्चा करनेमें आपको बड़ा रस आता था। आप सं० १५३२ से १५५७ तक भट्टारक पद पर आसीन रहे हैं। और बादमें उससे विरक्त हो, अपना पद विजयकीर्तिको सौंप अध्यात्मकी ओर अग्रसर हुए, और फलस्वरूप संवत् १५६० में 'तत्त्वज्ञान

तरंगणी' नामका एक अध्यात्म ग्रन्थ लिखा और उसकी स्वोपज्ञ वृत्ति भी बनाई थी।

इनके सिवाय भ० ज्ञानभूषणकी निम्न रचनाएँ और भी उपलब्ध हैं—सिद्धान्तसार भाष्य, परमार्थोपदेश, नेमिनिर्माणकाव्यपंजिका, सरस्वति-स्तवन, आत्मसम्बोधन, और कर्मकाण्ड अथवा (कम्म पयडि) टीकाके कर्ता भ० ज्ञानभूषण और सुमतिकीर्ति बतलाये गये हैं यह टीका ज्ञानभूषणके नामांकित भी है। और उसे 'कर्मकाण्ड टीका' के नामसे उल्लेखित किया गया है। परन्तु भ० ज्ञानभूषण कर्मकाण्ड या कर्मप्रकृतिके टीकाकार नहीं हैं, उनके शिष्य भ० सुमतिकीर्ति हैं। इस टीकाकी ८१ पत्रात्मक एक प्रति पहले तेरापंथी बड़े मन्दिरके शास्त्र भण्डारमें देखनेको मिली थी, जो संवत् १८५४ की लिखी हुई है। वह प्रति इस समय सामने नहीं है। उसमें टीकाका समय सं० १६२० सम्भवतः दिया हुआ है। अतः वह भ० ज्ञानभूषणकी कृति नहीं उनके शिष्य सुमतिकीर्ति की है, इसी लिए उनके नामांकित की गई मालूम होती है। इन्होंने अनेक ग्रन्थ भी लिखवाये हैं। सं० १५६० में गोम्मटसारका 'प्राकृत टिप्पण' भी इन्हींका लिखवाया हुआ है जो अब मौजमाबाद (जयपुर) के शास्त्र भंडारमें है।

ज्ञानभूषण अपने समयके सुयोग्य भट्टारक थे। इनका बागड़ देशमें अच्छा प्रभाव रहा है। इन्होंने 'तत्वज्ञान तरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचना विक्रम सं० १५६० में की है। अतः यह विक्रमकी १६वीं शताब्दीके विद्वान हैं। इनकी प्रेरणासे कर्नाटक प्रान्त वासी नागचन्द्रसूरिने पंचस्तोत्रकी टीका भी लिखी है। इनकी मृत्यु कब और कहाँ हुई इसका कोई उल्लेख अभी तक मेरे देखनेमें नहीं आया।

७४वीं प्रशस्ति 'भक्तामरस्तोत्र वृत्ति' की है जिसके कर्ता ब्रह्मरायमल्ल हैं। यह हूंबडवंशके भूषण थे। इनके पिताका नाम 'मह्य' और माताका नाम 'चम्पा' देवी था। ये जिनचरणकमलोंके उपासक थे। इन्होंने महासागरके तट भागमें समाश्रित 'ग्रीवापुर' के चन्द्रप्रभ जिनालयमें वर्णी कर्मसीके वचनोंसे भक्तामरस्तोत्रकी वृत्तिकी रचना वि० सं० १६६७

आषाढ शुक्ला पंचमी बुधवारके दिन की है। सेठके कूचा मन्दिर दिल्लीके शास्त्र भण्डारकी प्रतिमें उसे मुनि रतनचन्द्रकी वृत्ति बतलाया गया है। अतएव दोनों वृत्तियोंको मिलाकर जांचनेकी आवश्यकता है कि दोनों वृत्तियाँ जुदी-जुदी हैं या कि एक ही वृत्तिको अपनी-अपनी बनानेका प्रयत्न किया गया है।

ब्रह्मरायमल्ल मुनि अनन्तकीर्तिके जो भ० रत्नकीर्तिके पट्टधर थे। यह जयपुर और उसके आस-पासके प्रदेशके रहने वाले थे। यह हिन्दी भाषाके विद्वान थे। पर उसमें गुजराती भाषाकी पुट अंकित हैं दोनों भाषाओंके शब्द मिले हुए हैं। इनकी हिन्दी भाषाकी ७-८ रचनाएँ और भी उपलब्ध हैं। नेमिश्वरसार, हनुवन्तकथा, प्रद्युम्नचरित, सुदर्शनसार, निर्दोष सप्तमीव्रतकथा, श्रीपालरास, और भविष्यदत्तकथा। इनमें नेमिश्वररास सं० १६२५ में, हनुवन्तकथा सं० १६१६ में, प्रद्युम्नचरित सम्वत् १६२८ में, सुदर्शनसार सम्वत् १६२९ में, श्रीपालरास सं० १६३० में, और भविष्यदत्त कथा सम्वत् १६३३ में बनाकर समाप्त की है। निर्दोष सप्तमी व्रतकथामें रचनाकाल दिया हुआ नहीं है। सम्भव है किसी प्रतिमें वह हो और लेखकोंसे छूट गया हो। इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त इनकी और भी रचनाओंका होना संभव है जिनका अन्वेषण करना आवश्यक है।

७६वीं प्रशस्ति 'सिद्धान्तसार' ग्रन्थकी है जिसके कर्ता आचार्य नरेन्द्रसेन हैं। जो लाडबागडसंघमें स्थित सेनवंशके विद्वान थे, और गुणसेनके शिष्य थे। प्रशस्तिमें गुरुपरम्पराका निम्न प्रकार उल्लेख किया गया है—पद्मसेन, धर्मसेन, शान्तिषेण, गोपसेन, भावसेन, जयसेन, ब्रह्मसेन, वीरसेन, गुणसेन, उदयसेन, जयसेन और नरेन्द्रसेन। इनमेंसे गुणसेन उदयसेन और जयसेन ये तीनों विद्वान सम-सामयिक जान पड़ते हैं। नरेन्द्रसेनकी इस एक ही कृतिका पता चला है। ग्रन्थ-प्रशस्तिमें रचनाकाल दिया हुआ नहीं है, जिससे यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि यह ग्रन्थ कब रचा गया। पर दूसरे साधनोंसे यह अवश्य कहा जा सकता

है कि यह ग्रन्थ १२वीं १३वीं शताब्दीकी रचना है। क्योंकि 'धर्मरत्नकर' ग्रन्थके कर्ता जयसेनने जो भावसेनके शिष्य थे अपना उक्त ग्रन्थ वि० सम्वत् १०५५ में बना कर समाप्त किया है। इससे अधिकसे अधिक सौ या सका सौ वर्ष बाद सिद्धान्तसारकी रचना नरेन्द्रसेनने की होगी। ग्रन्थ इस समय सामने नहीं है इसलिए उसका आन्तरिक परीक्षण नहीं किया जा सका और न बिना परीक्षण झट-पट कोई नतीजा ही निकाला जा सकता है।

७७वीं प्रशस्ति 'द्रौपदी नामक प्रबन्ध' की है, जिसके कर्ता जिनसेनसूरि हैं। जिनसेन नामके अनेक विद्वान हुये हैं उनमें प्रस्तुत जिनसेन किसके शिष्य थे, कहांके निवासी थे और कब हुए हैं? इस विषयमें बिना किसी साधन सामग्रीके कुछ नहीं कहा जा सकता। ग्रन्थमें रचनाकाल भी दिया हुआ नहीं है और न इस ग्रन्थकी रचना इतनी प्रौढ़ ही जान पड़ती है, जिससे आदिपुराणके कर्ता भगवज्जिनसेनको द्रौपदी-प्रबन्धका रचयिता ठहराया जा सके। यह कृति तो उनसे बहुत बादके किसी जिनसेन नामके विद्वान द्वारा रची गई है।

७८वीं प्रशस्ति 'यशोधरचरित्र' की है, जिसके कर्ता भट्टारक सोमकीर्ति हैं, जिनका परिचय ४२ नं० की प्रशस्तिमें दिया गया है।

७९ और ८०वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः वर्द्धमानचरित और 'शान्तिनाथ पुराण' की हैं, जिनके कर्ता कवि असग हैं। इनके पिताका नाम 'पटुमति' था जो शुद्ध सम्यक्त्वसे युक्त श्रावक था और माताकानाम वैरिति' था, वह भी शीलादिसद्गुणोंके साथ शुद्ध सम्यक्त्वसे विभूषित थी। वर्द्धमानचरित्र की दूसरी प्रशस्ति आरा जैन सिद्धान्तभवनकी ताडपत्रीय प्रति की है। इस ग्रन्थकी प्रथम व द्वितीय प्रशस्तियोंको सामने रखकर पढ़नेसे यह जान पड़ता है कि वास्तवमें ये दोनों प्रशस्तियाँ एक हैं—द्वितीय प्रशस्ति प्रथम प्रशस्तिका ऊपरी भाग है। वे दो अलग अलग प्रशस्तियाँ नहीं हैं। संभवतः वे लेखकों की कृपासे किसी समय जुदी पड़ गई हैं।

द्वितीय प्रशस्तिके ऊपरके दोनों पद्योंमें बतलाया गया है कि पुरुरवा

को आदि लेकर अन्तिम वीरनाथ तक ३७ भव-सम्बन्धि-प्रबन्धरूप महावीर चरितको मैंने स्व-पर-बोधनार्थ बनाया है, जो महानुभाव इस वर्द्धमान-चरितको प्रख्यापित (प्रसिद्ध) करता है, सुनता है वह परलोकमें सुख प्राप्त करता है। कवि असगने अपना यह चरित सं० ९१० में बनाकर समाप्त किया है। ग्रन्थकर्ताने मुनिनायक भावकीर्तिके पादमूलमें मौद्गल्य पर्वत पर रहकर श्रावकके व्रतोंका विधिवत् अनुष्ठान पूर्वक ममता रहित होकर विद्या अध्ययन किया, जिससे मुनि भावकीर्ति असगके विद्यागुरु थे। और बादमें चोड़ या चोल देशकी वरला नगरीमें जनताके उपकारक श्रीनाथके राज्यको पाकर जिनोपदिष्ट आठ ग्रन्थोंकी रचना की है। वे आठ ग्रन्थ कौनसे हैं। यह प्रशस्ति परसे कुछ भी ज्ञात नहीं होता।

प्रथम प्रशस्तिके चार पद्य तो वे ही हैं जो शान्तिनाथपुराणकी प्रशस्तिमें ज्योंके त्यों रूपसे पाये जाते हैं। और जिनमें अपने माता पिताके नामोल्लेखके साथ शब्द समय रूप समुद्रके पारको प्राप्त होने वाले आचार्य-नागनन्दीके, जिनका चन्द्रमाके समान शुभ्रयश लोकमें विद्यमान था, शिष्य थे। तथा सद्वृत्तके धारक, मृदुस्वभावी, और निश्रेयसके प्रार्थी श्री आर्यनन्दी गुरुकी सन्निधिसे उक्त चरित ग्रन्थकी रचना की गई है।

दूसरी शान्तिनाथ पुराणकी अन्तिम प्रशस्तिके पद्यसे मालूम होता है है कि कविने सन्मतिचरित बनानेके बाद ही इस शान्तिनाथपुराणकी रचना की है और उस रचनाका उल्लेख करते हुए बतलाया गया है कि कविका एक मित्र 'जिनाप्य' नामका था, जो ब्राह्मण होने पर भी पक्षपात रहित था, भव्यजनोंके द्वारा सेव्य, जिनधर्ममें आसक्त, बहादुर, और परलोक भीरु था, उसकी व्याख्यान शीलता और पुराणश्रद्धाको देखकर ही शान्तिनाथ पुराणकी रचना की गई है। कविकी ये दो ही रचनाएं उपलब्ध हुई हैं। शेष ग्रन्थ अन्वेषणीय हैं प्रशस्तिमें इस ग्रन्थ की रचना का समय दिया हुआ नहीं है। पर इतना निश्चित है कि वह सं० ९१० के बाद बनाया गया है।

८१ वीं प्रशस्ति 'जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय' नामक प्रतिष्ठासंग्रह की है, जिसके कर्त्ता कवि अय्यपार्य हैं, जो मूल संघान्वयी मुनि पुष्पसेनके शिष्य करुणाकर श्रावक और अर्काम्बा माताके पुत्र थे। उनका गोत्र काश्यप था और वे जैनधर्मके प्रतिपालक थे। कवि अय्यपार्यने वीराचार्य पूज्यपाद और जिनसेनाचार्य भाषित तथा गुणभद्र, वसुनन्दी, आशाधर, एकसंधि और कविहस्तिमल्लके द्वारा कथित पूजा क्रमको धरसेनाचार्यके शिष्य अय्यपार्यने कुमारसेन मुनिकी प्रेरणासे उक्त प्रतिष्ठापाठकी रचना शक संवत् १२४१ (वि० सं० १३७६ के सिद्धार्थ संवत्सरमें माघ महीने शुक्ल पक्षकी दशमी-के दिन राजा रुद्र कुमारके राज्य कालमें पूर्ण की है। ग्रन्थकार कवि हस्ति-मल्लके ही वंशज जान पड़ते हैं।

८२वीं प्रशस्ति 'धन्यकुमारचरित' की है, जिसके कर्ता आचार्य गुण-भद्र हैं, जो मुनि माणिक्यसेनके प्रशिष्य और नेमिसेनके शिष्य थे। आचार्य गुणभद्रने प्रशस्तिमें अपना जीवन परिचय, तथा गण गच्छ और रचनाकाल आदिका कोई उल्लेख नहीं किया, जिससे ग्रंथके समयका परिचय दिया जाता। हाँ ग्रन्थकर्ताने अपना यह ग्रन्थ राजा परमार्दिके राज्यकालमें विलासपुरमें लंबकंचुक (लेमचू) गोत्रमें समुत्पन्न साधु शुभचन्द्रके सुपुत्र दानी वल्हणके धर्मानुरागसे बनाया है। राजा परमर्दि किस वंशका राजा था यह प्रशस्ति परसे कुछ मालूम नहीं होता। ग्रन्थकी यह प्रति संवत् १५०१ की लिखी हुई है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त ग्रन्थ संवत् १५०१ से पूर्व रचा गया है, परन्तु कितने पूर्व यह कुछ ज्ञात नहीं होता।

इतिहासमें अन्वेषण करने पर हमें परमार्दि नामके दो राजाओंका उल्लेख मिलता है, जिनमें एक कल्याणके हैहय वंशीय राजाओंमें जोगमका पुत्र पेमार्दि या परमार्दि था[1] जो शक सम्वत् १५०१ (वि० सम्वत् ११८६) में विद्यमान था। यह पश्चिमी सोलंकी राजा सोमेश्वर तृतीयका सामन्त था। तर्दवाड़ी जिला बीजापुरके निकटका स्थान उसके आधीन

---

१ देखो, भारतके प्राचीन राजवंश प्रथम भाग पृ० ६१

था। इसके पुत्रका नाम विज्जलदेव था। सम्भव है इसके राज्यका विस्तार बिलासपुर तक रहा हो।

दूसरे परमार्दि या परमार्द्धिदेव वे हैं जिनका राज्य महोबामें था। जिसकी राजधानी खजुराहा थी। ६वीं सदी में वहाँ चन्देल राजाओंका व बल बढ़ा उसका प्रथम राजा नान्नकदेव था और आठवां राजा धंगराजने, जैसा कि ईस्वी सन् ९५४ के लेख १ से प्रकट है। इनमें एक राजा परमर्द या परमार्दिदेव नामका हो गया है जिसके यहाँ प्रसिद्ध आला ऊदल नौकर थे और जो पृथ्वीराज चौहानके युद्धमें पराजित हुए थे। युद्धमें राजा परमल हार गया था जिसका उल्लेख ललितपुरके पास मदनपुरके लेख २ में मिलता है। बहुत सम्भव है कि इसका राज्य बिलासपुरमें रहा हो; क्योंकि इसके वहाँ राज्य होनेकी अधिक सम्भावना है। यदि यह अनुमान ठीक हो तो यह ग्रन्थ विक्रमकी १३वीं शताब्दीकी के प्रारम्भ की रचना हो सकती है।

८३वीं प्रशस्ति 'सिद्धिविनिश्चय-टीकाकी है जिसके कर्ता आचार्य अनन्तवीर्य हैं जो रविभद्रके पादोपजीवी अर्थात् उनके शिष्य थे। टीकाकार अनन्तवीर्य आचार्य अकलंकदेवके ग्रन्थोंके मर्मज्ञ, विशिष्ट अभ्यासी और विवेचयिता विद्वान थे जो उनके प्रकरणोंके तलदृष्टा तथा व्याख्याता

---

१ देखो, इण्डियन एण्टी क्वेरी भाग १०

२ मदनपुरमें एक बारादरी है, जो खुली हुई ६ समचौरस खम्भोंसे रक्षित है। इसके खंभों पर बहुत ही मूल्यवान एवं उपयोगी लेख अंकित हैं। इनमें दो छोटे लेख चौहान राजा पृथ्वीराजके राज्य समयके हैं। जिनमें उक्त राजा परमार्दिको व उसके देश जेजा मुक्तीको सं० १२३९ या 1182 A.D. में विजित करनेका उल्लेख है। इस मदनपुरको चन्देलवंशी प्रसिद्ध राजा मदनवर्मने बसाया था, इसीसे इसका नाम मदनपुर आज तक प्रसिद्धिमें आ रहा है।

—देखो, संयुक्त प्रा० प्राचीन जैन स्मारक पृ० ५४

होनेके साथ साथ कुशल टीकाकार भी थे। टीकाकारने ग्रन्थके गहन एवं विषम-पदोंका विवेचन कर अभ्यासार्थियोंके लिये उसे सुगम बना दिया है। चूंकि टीकाके अन्तमें कोई प्रशस्ति आदि नहीं है इस कारण टीकाकार और उनके गुरुके समयादि सम्बन्धमें निश्चयतः कहना संभव नहीं है। पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अनन्तवीर्य विक्रम की ११वीं शताब्दीके विद्वान वादिराज और प्रभाचन्द्रसे पूर्व वर्ती हैं। और वे सम्भवतः ९ वीं दशमी शताब्दीके विद्वान जान पड़ते हैं।

८४वीं और ८५वीं प्रशस्तियां क्रमशः 'प्रायश्चित्तसमुच्चय सचूलिकवृत्ति' और 'योगसंग्रहसार' नामके ग्रन्थों की हैं, जिनके कर्ता श्रीनन्दीगुरु हैं जो गुरुदासके शिष्य थे। प्रस्तुत वृत्तिकी श्लोक संख्या दो हजार श्लोक प्रमाण बतलाई गई है।

श्रीनन्दी नामके अनेक विद्वान हो चुके हैं उनमें एक श्रीनन्दी कल्याणकारक वैद्यक ग्रन्थके कर्ता उग्रादित्याचार्यके गुरु थे×। इनका समय विक्रम की नवमी शताब्दी है। दूसरे श्रीनन्दी बलात्कारगणके आचार्य थे जो श्रीचन्द्रके गुरु थे। श्रीचन्द्रने अपना पुराणसार वि० सं० १०८० में बनाकर समाप्त किया है,* अतः इन श्रीनन्दीका समय ग्यारहवीं शताब्दीका मध्य काल जानना चाहिये। तीसरे श्रीनन्दी वे हैं जिनका उल्लेख वसुनन्द्याचार्यने अपने उपासकाध्ययनकी प्रशस्ति में किया है और उन्हें नयनन्दीका गुरु सूचित किया है ‡ जो वसुनन्दी आचार्य से कमसे कम ७५ वर्ष पूर्व हुए होंगे। संभवतः यह श्रीनन्दी वे भी हो सकते हैं जो श्रीचन्द्रके गुरु थे। और

× देखो, कल्याणकारक प्रशस्ति।

* देखो जैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ ३३५

‡ कित्ती जस्सिंदु सुब्भा सयलभुवणमज्झे जहिच्छं भमित्ता
णिच्चं सा सज्जणाणं हियवयण सोए णिवासं करइ।
जो सिद्धंतंबुरासिं सु-णयतरणिमासेज्ज लीलाए तिण्णो,
वण्णेउ के समत्थो सयल गुणगण सेवियड्ढो वि लोए॥

भिन्न हों तो भी कोई आश्चर्य नहीं। चौथे श्रीनन्दी वे हैं जिनका उल्लेख होय्यसलवंशके शक सं० १०४७ के श्रीपाल त्रैविद्यवाले शिलालेखमें किया गया है। और पांचवें श्रीनन्दीका उल्लेख ऊपर किया जाचुका है। इन चारोंमें से किसी भी अनन्दीके साथ गुरुदास नामके विद्वानका कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता, अतएव सामग्रीके अभावमें यह कहना कठिन है। कि प्रस्तुत श्रीनन्दी और गुरुदास कब हुए हैं। यह विशेष अनुसंधान की अपेक्षा रखता है।

८६वीं प्रशस्ति 'भावशतक' नामक ग्रन्थ की है। जिसके कर्ता कवि नागराज हैं। कार्पाटि गोत्र रूप समुद्रकेलिये चन्द्रसम मुनि 'श्रीधन' हुए जो 'विद्याधर' इस नामसे लोकमें विश्रुत हुए। इनका पुत्र द्यालपाल था और द्यालपालकी भार्या लक्ष्मीसे उत्पन्न पुत्र नागराज नामका हुआ। प्रस्तुत नागराज ही 'भावशतक'का कर्ता है। नागराज नामके कई विद्वान हुए हैं। समन्तभद्र भारतीनामकस्तोत्रके कर्ता भी नागराज हैं। और नागराज नामके एक कवि शकसं १२५३ में हो गए हैं ऐसा कर्णाटक कविचरितसे ज्ञात होता है। भावशतकके कर्ता नागराज क्या इन दोनोंसे भिन्न हैं या एक ही हैं। इसके जाननेका साधन अभीतक उपलब्ध नहीं है। वह विशेष अन्वेषणसे प्राप्त हो सकेगा।

८७वीं प्रशस्ति 'तत्त्वसार-टीका' की है जिसके कर्ता भ० कमलकीर्ति हैं। मूल ग्रन्थ आचार्य देवसेनकी प्रसिद्ध कृति है जो विमलसेन गणधरके शिष्य थे। भट्टारक कमलकीर्ति काष्ठासंघ, माथुरगच्छ और पुष्करगणके भट्टारक क्षेमकीर्ति, हेमकीर्ति, संयमकीर्तिकी परम्परामें हुए और भ० अमलकीर्तिके शिष्य थे। उन्होंने कायस्थ माथुरान्वयमें अग्रणी अमरसिंहके मानसरूपी अरविन्दको विकसित करनेके लिए दिनकर (सूर्य) स्वरूप इस टीकाकी रचना की है। अर्थात् यह टीका उनके लिये लिखी गई और उन्हें बहुत पसन्द आई है।

एक कमलकीर्ति नामके विद्वान और हुए हैं जो भ० शुभचन्द्रके पट्टधर थे। महाकवि रइधूने अपने 'हरिवंशपुराण' की प्रशस्तिमें उनका

उल्लेख निम्न वाक्योंमें किया है—

"कमलकित्ति उत्तम खमधारउ, भव्वह भव-अम्भोणिहितारउ ।
तस्स पट्ट कणयट्टि परिट्ठिउ, सिरिसुहचन्द सु-तवउक्कंट्ठिउ ।."

—आदि प्रशस्ति

"जिणसुत्तअत्थ अलहन्तएण सिरिकमलकित्तिपयसेवएण ।"
सिरिकंजकित्ति पट्टंबरेसु, तच्चत्थ सत्थभासण-दिणेसु ।
उइण मिच्छत्ततमोहणासु, सुहचन्द भडारउ सुजस वासु ।"

—अन्तिम प्रशस्ति

इन वाक्योंमें उल्लिखित कमलकीर्ति कनकाद्रि (सोनागिर) के पट्ट गुरु थे, और कनकाद्रिके पट्ट पर भ० शुभचन्द्र प्रतिष्ठित हुए थे ।

यदि इन दोनों कमलकीर्ति नामके विद्वानोंका सामंजस्य बैठ सके, तो समय निर्णयमें सहायता मिल सकती है, परन्तु इन दोनों कमलकीर्तियों की गुरु परम्परा एक नहीं जान पड़ती है प्रथम कमलकीर्ति अमलकीर्तिके शिष्य हैं । और दूसरे कमलकीर्तिके पद पर शुभचन्द्र प्रतिष्ठित हुए थे । इनका समय १५वीं शताब्दीका अन्तिम चरण और १६वीं का पूर्वार्द्ध है । प्रथमका समय क्या है ? यह ग्रन्थ प्रशस्ति परसे ज्ञात नहीं होता । हो सकता है कि दोनों कमलकीर्ति भिन्न भिन्न समयवर्ती विद्वान हों पर वे १५वीं १६वीं शताब्दीसे पूर्वके विद्वान नहीं ज्ञात होते, संभव है वे पूर्ववर्ती भी रहे हों, यह विचारणीय है ।

८वीं प्रशस्ति 'यशोधरमहाकव्य-पंजिका' की है । जिसके कर्ता पं० श्रीदेव हैं । श्रीदेवने पंजिकामें अपनी कोई गुरु परम्परा नहीं दी और न पंजिकाका कोई रचना समय ही दिया है इस पंजिकाका समय निश्चित करना कठिन है । पंजिकाकी यह प्रति सं० १५३६ की लिखी हुई है, जो फाल्गुन सुदी ८ रविवार के दिन लिखाकर मूलसंघी मुनि रत्नकीर्ति-के उपदेशसे एक खंडेलवाल कुटुम्बकी ओरसे ब्रह्म होलाको प्रदान की गई है । इससे इतना तो स्पष्ट है कि उक्त पंजिका सं० १५३६ के बादकी कृति न होकर उससे पहले ही रची गई है । कितने पहले रची गई इसकी

पूर्वावधि शक सं० ८८१ (वि० सं० १०१६) के बाद किसी समय होना चाहिये, जो कि उक्त काव्यका रचनाकाल है।

८६वीं प्रशस्ति पुरुषार्थानुशासन' नामक ग्रन्थ की है जिसके कर्ता कवि गोविन्द हैं जो पद्मश्री मातासे उत्पन्न हींगाके सुपुत्र थे। इनकी जाति अग्रवाल और गोत्र गर्ग था। यह जिनशासनके भक्त थे। ग्रन्थ में उल्लेख है कि माथुर कायस्थोंके वंशमें खेतल हुआ, जो बन्धुलोक रूपी ताराग्रणोंसे चन्द्रमाके समान प्रकाशमान था। खेतलके रतिपाल नामका पुत्र हुआ, रतिपाल के गदाधर और गदाधर के अमरसिंह और अमरसिंह के लक्ष्मण पुत्र हुआ, जिसकी बहुत प्रशंसा की गई है। अमरसिंह मुहम्मद बादशाहके द्वारा अधिकारियोंमें सम्मलित होकर प्रधानताको प्राप्त करके भी गर्वको प्राप्त नहीं हुए थे इनकी इस कायस्थ जाति में अनेक विद्वान हुए हैं जिन्होंने जैनधर्मको अपनाकर अपना कल्याण किया है। कितने ही अच्छे कवि हुए हैं, जिनकी सुन्दर रचनाओं से साहित्य विभूषित है। कितने ही लेखक भी हुए हैं। कवि ने यह ग्रन्थ उक्त लक्ष्मण के ही नामांकित किया है। क्योंकि वह इन्हीं की प्रेरणादि को पाकर उसके बनाने में समर्थ हुए हैं।

ग्रन्थ प्रशस्तिमें कहीं पर भी रचनाकाल दिया हुआ नहीं है, जिससे कविका निश्चित समय दिया जा सकता। हां, प्रशस्तिमें अपनेसे पूर्व वर्ती कवियोंका स्मरण जरूर किया गया है जिनमें समन्तभद्र, भट्ट अकलंक, पूज्यपाद, जिनसेन, रविषेण, गुणभद्र, वट्टकेर, शिवकोटि, कुन्दकुन्दाचार्य, उमा स्वाति, सोमदेव, वीरनन्दी, धनंजय, असग, हरिचन्द जयसेन, और अमितगति १ ये नाम उल्लेखनीय हैं।

इन नामोंमें हरिश्चन्द्र और जयसेन ११वीं और १३वीं शताब्दीके विद्वान् हैं अतः गोविन्द कवि १३वीं शताब्दीके विद्वान तो नहीं है। किन्तु इस प्रशस्तिमें मलयकीर्ति और कमलकीर्ति नामके आचार्योंका भी उल्लेख

१—देखो बम्बई प्रान्तके प्राचीन जैन स्मारक, पृ० १२०

किया है, जिनका समय वि० की १५वीं शताब्दी है, अतः यह १५वीं शताब्दीके बादकी रचना जान पड़ती है।

९०,९७,९८,९९,१००,१०१ की ये छह प्रशस्तियाँ क्रमशः नागकुमारचरित्र सरस्वती (भारती) कल्प, कामचाण्डाली कल्प ज्वालिनी कल्प, भैरव पद्मावती कल्प सटीक और महापुराण नामक ग्रन्थोंसे सम्बन्ध रखते हैं, जिनके कर्ता उभय भाषा कवि चक्रवर्ती आचार्य मल्लिषेण हैं, जो महामुनि जिनसेनके शिष्य और कनकसेनके प्रशिष्य थे। यह कनकसेन उन अजितसेनाचार्यके शिष्य थे जो गङ्गवंशीय नरेश राचमल्ल और उनके मन्त्री एवं सेनापति चामुण्डरायके गुरु थे। गोम्मटसारके कर्ता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने उनका 'भुवणगुरु' नामसे उल्लेख किया है। जिनसेनके अनुज नरेन्द्रसेन भी प्रख्यात कीर्ति थे। कवि मल्लिषेण विद्वान कवि तो थे ही, साथ ही उन्होंने अपनेको सकलागममें निपुण और मंत्रवादमें कुशल सूचित किया है। मंत्र-तंत्र-विषयक आपके ग्रन्थोंमें स्तंभन, मारण, मोहन और वंशीकरण आदिके प्रयोग भी पाये जाते हैं, जिनके कारण समाजमें आपकी प्रसिद्धि मंत्र-तंत्र वादीके रूपमें चली आ रही है। आप उभयभाषा (सं०प्रा०)के प्रौढ़ विद्वान थे, परन्तु आपकी प्रायः सभी रचनाएँ संस्कृत भाषामें प्राप्त हुई हैं। प्राकृत भाषाकी कोई भी रचना प्राप्त नहीं हुई। महापुराणको छोड़कर आपके उपलब्ध सभी ग्रन्थोंमें रचना समय दिया हुआ नहीं है जिससे यह बतला सकना संभव नहीं है कि आपने ग्रन्थ प्रणयनका यह कार्य कबसे कब तक किया है और अपने जन्मसे इस भूमण्डल को कबसे कब तक अलंकृत किया है।

परन्तु कविने अपना महापुराण नामका संस्कृत ग्रन्थ शक संवत् ९६९ (वि० संवत् ११०४) में ज्येष्ठ शुक्ला पंचमीके दिन मुलगुन्द, नामक नगरके जैनमन्दिरमें, जो उस समय तीर्थरूपमें प्रसिद्धिको प्राप्त था, स्थित होकर रचा है। प्रस्तुत मुलगुन्द बम्बई प्रान्तके प्राचीन

जन स्मारक पृ० १२० में धारवाड जिले की गदग तहसीलसे १२ मील दक्षिण पश्चिमकी ओर बतलाया गया है। और वहां पर चार जैन मन्दिर इस समय भी बतलाए गए हैं, जिनमें शक सं० ८२४,८२५, ९०२, ९७५, १०५३, ११९७, १२७५, और १५९७ के शिलालेख भी अङ्कित हैं। इन मन्दिरोंमें तीन मन्दिरोंके नाम श्री चन्द्रप्रभु श्री पार्श्वनाथ और हीरी मन्दिर बतलाए गए हैं।

मूलगुन्डके एक शिलालेखमें आसार्य-द्वारा सेनवंशके कनकसेन मुनिको नगरके व्यापारियोंकी सम्मतिसे एक हजार पानके वृक्षोंका एक खेत मन्दिरोंकी सेवार्थ देनेका उल्लेख है। महापुराणके उक्त रचनाकालसे मल्लिषेणाचार्यके समय विक्रमकी ११वीं शताब्दीका उत्तरार्ध और १२वीं शताब्दीका पूर्वार्ध जान पड़ता है।

उक्त छह ग्रन्थों की प्रशस्तियोंके अतिरिक्त 'सज्जन चित्त वल्लभ नामका एक २५ पद्यात्मक संस्कृत ग्रन्थ भी इन्हींकी कृति बतलाया जाता है जो हिन्दी पद्यानुवाद और हिन्दी टीकाके साथ प्रकाशित हो चुका है।

इनके सिवाय 'विद्यानुवाद' नामका एक ग्रन्थ और भी जयपुर के पं० लूणकरणजीके शास्त्र भण्डारमें मौजूद है जिसकी पत्र संख्या २३८ और २४ अध्यायोंमें पूर्ण हुआ है। यह ग्रन्थ प्रति सचित्र है।*

९१वीं प्रशस्ति "ज्वालिनीकल्प' नामके ग्रन्थ की है, जिसके कर्ता आचार्य इन्द्रनन्दी योगीन्द्र हैं, जो मन्त्र शास्त्रके विशिष्ट विद्वान थे तथा वासवनन्दीके प्रशिष्य और वप्पनन्दीके शिष्य थे। इन्होंने हेलाचार्य द्वारा उदित हुए अर्थको लेकर इस 'ज्वालिनी कल्प' नामक मन्त्र शास्त्र की रचना की है। इस ग्रन्थमें मन्त्रि, ग्रह, मुद्रा, मण्डल, कटुतैल, वश्यमन्त्र, तन्त्र, स्नपनविधि नीराजनविधि और साधन-विधि नामके दश अधिकारों द्वारा मन्त्र शास्त्र विषयका महत्वका कथन दिया हुआ

---

* देखो, राजस्थानके जैनशास्त्रभण्डारोंकी ग्रन्थ-सूची भाग २ पृ० ४१

है। इस ग्रन्थकी आद्य प्रशस्तिके २२वें पद्यमें ग्रन्थ की रचनाका प्रायः पूरा इतिवृत्त' बतलाया गया है कि देवीके आदेशसे 'ज्वालिनीमत' नामका एक ग्रन्थ 'मलय नामक दक्षिण देशके हेम नामक ग्राममें द्रवणाधीश्वर हेलाचार्य ने बनाया था। उनके शिष्य गंगमुनि, नीलग्रीव और बीजाव नामके हुए, और 'सांतिरसव्वा' नामक आर्यिका तथा 'विरुवट्टः नामक क्षुल्लक भी हुआ इस गुरुपरिपाटी एवं अविच्छिन्न सम्प्रदायसे आया हुआ मन्त्रवादका यह ग्रन्थ कंदर्पने जाना और उसने भी अपने पुत्र गुणनन्दी नामक मुनिके प्रति व्याख्यान किया उन दोनोंके पास रहकर इन्दनन्दीने उस मन्त्र शास्त्रका ग्रन्थतः और अर्थतः सविशेषरूपसे ग्रहण किया। इन्द्रनन्दीने उसविलष्ट प्राचीन शास्त्र को हृदयमें धारणकर ललित आर्या और गीतादि छन्दोंमें हेलाचार्यके उक्त अर्थको ग्रन्थ परिवर्तनके साथ सम्पूर्ण जगतको विस्मय करने वाले 'भव्य हितंकर' इस ग्रन्थ की रचना मान्यखेट (मलखेड़ा) के कटकमें राजा श्रीकृष्णके राज्यकालमें शक सं० ८६१ (वि० संवत् ९९६) में समाप्त की थी। इससे यह इन्द्रनन्दी विक्रमकी १०वीं शताब्दीके उत्तरार्धके विद्वान हैं। इस नामके और भी अनेक विद्वान हुए हैं। परन्तु यह इन्द्रनन्दी उन सबमें प्राचीन और प्रभावशाली जान पड़ते हैं। गोम्मटसारके कर्ता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चन्द्रवर्तीने जिन इन्द्रनन्दीका 'श्रुतसागरके पारको प्राप्त' जैसे विशेषणोंके द्वारा स्मरण किया है वे इन्द्रनन्दी संभवतः यही जान पड़ते हैं, जो उनके दादागुरु थे। पर वे इन्द्रनन्दी इनसे भिन्न प्रतीत होते हैं जो इन्द्रनन्दी संहिता ग्रन्थके कर्ता और नीति शास्त्र नामक संस्कृत ग्रन्थके कर्ता हैं। और यह इनसे बादके विद्वान जान पड़ते हैं।

९२वीं प्रशस्ति 'स्वर्णाचलमाहात्म्य' की है जिसके कर्ता दीक्षित देवदत्त हैं जिनका परिचय ४९वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

९३वीं और १७०वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः 'धर्मचक्रपूजा' तथा वृहत् सिद्धचक्रपूजा' की हैं, जिनके कर्ता बुधवीरु या वीर कवि हैं। इनका वंश

अग्रवाल था और यह साहू 'तोतू' के पुत्र थे, जो भट्टारक हेमचन्द्रके शिष्य थे। कवि वीरने 'धर्मचक्र' की यह पूजा विक्रम संवत् १५८६ में रोहितास-पुर (रोहतक) नगरके पार्श्वनाथ जिनमन्दिरमें की है। जिसे पद्मावतीपुर-वाल* पंडित जिनदासके उपदेशसे बनाया गया है। इस पूजा ग्रन्थकी प्रशस्तिमें इससे पूर्व तीन ग्रन्थोंके रचेजानेके नामोल्लेख पाये जाते हैं। उनमें अन्तके दो ग्रन्थ 'नन्दीश्वरपूजा' और ऋषिमण्डलयंत्रपूजा-पाठ' ये दोनों ग्रन्थ अभी मेरे देखने में नहीं आए। इनके अतिरिक्त उन्होंने और ग्रन्थोंकी रचना की यह कुछ ज्ञात नहीं होता।

बृहत्सिद्धचक्रपूजाकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि कवि वीरने उसे विक्रमसम्वत् १५८४ में देहलीके मुगल बादशाह बाबरके राज्यकालमें उक्त रोहितासपुरके पार्श्वनाथमन्दिरमें बनाया है। पंडित जिनदास काष्ठासंघ माथुरान्वय और पुष्करगणके भट्टारक कमलकीर्ति कुमुदचन्द्र और भट्टा-रकयशसेनके अन्वयमें हुए हैं। यशसेनकी शिष्या राजश्री नामकी थी, जो संयमनिलया थी। उसके भ्राता पद्मावतीपुरवाल वंशमें समुत्पन्न नारायणसिंह नामके थे, जो मुनि दान देनेमें दक्ष थे। उनके पुत्र जिनदास नामके थे जिन्होंने विद्वानोंमें मान्यता प्राप्त की थी। इन्हीं पंडित जिनदासके आदेश से उक्त पूजापाठकी रचना की गई है और इसीलिए यह ग्रन्थ भी इन्हीं के नामांकित किया गया है।

६४वीं, ११३वीं, १३५वीं, १३६वीं, १३७वीं, १३८वीं, प्रशस्तियाँ क्रमशः 'शब्दाम्भोजभास्कर' 'तत्त्वार्थवृत्तिपद विवरण' 'पंचास्तिकाय प्रदीप' 'आत्मानुशासनतिलक' 'आराधना गद्य कथा-प्रबन्ध और 'प्रवचनसरोजभास्कर' नामक ग्रन्थों की हैं। इनमें प्रथम प्रशस्ति एक व्याकरण ग्रन्थ की है, जो 'जैनेन्द्रमहान्यास' के नामसे प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ अपूर्णरूपमें ही उपलब्ध है—ग्रन्थ की अधिकांश प्रतियाँ तीन अध्याय तक और कोई कोई प्रति साढ़े तीन अध्याय की भी लिखित प्राप्त होती हैं×।

× इसके सम्बन्धमें पं० महेन्द्रकुमारजी 'न्यायाचार्यने न्याय कुमुदचन्द्र द्वितीयाभागकी प्रस्तावनामें विशेष विचार किया है।

दूसरी प्रशस्ति 'तत्त्वार्थवृत्तिपद-विवरण' की है जो आचार्य देवनन्दी या पूज्यपाद द्वारा गृद्धपिच्छाचार्यके तत्त्वार्थसूत्र पर लिखी गई 'तत्त्वार्थवृत्ति' (सर्वार्थसिद्धि) नामकी एक अर्थ बहुल गंभीर व्याख्या है जिसके विषम-पदोंका संक्षिप्त अर्थ उक्त टिप्पणमें दिया हुआ है। तीसरी प्रशस्ति आचार्य कुन्दकुन्दके पंचत्थिपाहुड या पंचास्तिकाय की प्रदीप नामक टीका ग्रन्थ है। चौथी प्रशस्ति आचार्य गुणभद्रके आत्मानुशासनके 'तिलक' नामक टिप्पण की है। पांचवीं प्रशस्ति 'आराधनाकथा-प्रबन्ध' नामक गद्यकथाकोशकी है और छठवीं प्रशस्ति आचार्य कुन्दकुन्दके प्रवचनसार नामक ग्रन्थ पर लिखे गये 'प्रवचन-सरोजभास्कर' नामक टिप्पण की है। इन छहों टीकादि ग्रन्थोंके कर्ता आचार्य प्रभाचंद्र हैं, जो पद्मनंदी सैद्धान्तिकके शिष्य थे ❀ और दक्षिण देशसे आकर राजा भोजकी सुप्रसिद्ध धारानगरीके निवासी आचार्य माणिक्य-नन्दीके, जो न्यायशास्त्रमें पारंगत विद्वान थे, न्यायविद्याके शिष्य हुए थे। माणिक्यनंदीके अनेक शिष्य उस समय धर्म, न्याय, दर्शन, व्याकरण और काव्य-अलंकारादिक विषयोंका अध्ययन-अध्यापन कर रहे थे। उनमें 'सुदंसण चरिउ' के कर्ता श्रीनन्दीके शिष्य नयनन्दी भी आचार्य माणिक्य-नन्दीके प्रथम विद्याशिष्य थे। इस समय माणिक्यनन्दीकी एक महत्वपूर्ण सूत्रात्मक कृति उपलब्ध है, जो उनके दर्शनशास्त्रके मर्मज्ञ विद्वान् होनेकी सूचना करती है। उस समय तक दर्शनशास्त्रपर ऐसी अनमोल बहुअर्थ-मूलक सूत्ररचना जैन समाजमें नहीं रची गई थी, जिसकी पूर्ति आचार्य माणिक्यनन्दीने की है और जिसका संक्षिप्त परिचय आगे दिया गया है। आचार्य माणिक्यनन्दीके गुरु त्रैलोक्यनन्दी थे, जो अशेष ग्रन्थोंमें पारंगत थे और गणी रामनंदीके शिष्य थे×।

❀ भव्याम्भोजदिवाकरो गुणनिधिर्योऽभूज्जगद्भूषणः,
सिद्धान्तादिसमस्तशास्त्रजलधिः श्रीपद्मनन्दि प्रभुः।
तच्छिष्योदकलङ्कमार्गनिरतात्सन्न्यासमार्गोऽखिलः,
सुव्यक्तोऽनुपमप्रमेयरचितो जातः प्रभाचन्द्रतः॥ —न्यायकुमुदचन्द्र

× एरिंदामरिंदाहिवाणंदवंदी, हुओ तस्स सीसो गणी रामणंदी।

नयनंदीने अपने 'सकलविधि-विधान काव्य' नामक ग्रंथकी प्रशस्तिमें उन्हें महापंडित सूचित किया है और उनका उल्लेख निम्न पंक्तियोंमें किया है। साथ ही अपने सहाध्यायी प्रभाचन्द्रका स्मरण भी किया है।

यथा—

पच्चक्ख-परोक्ख पमाणणीरे, णय-तरत्त तरंगावलि गहीरे।
वर सत्तभंग-कल्लोलमाल, जिणसासण-सरि णिम्मल सुसाल।
पंडियचूडामणि विबुहचंदु, माणिक्कणंदि उप्पण्णु कंदु॥

इन पद्योंमें ग्रन्थकर्ताने माणिक्यनन्दीको प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रमाणरूप चंचल तरंग समूहसे गम्भीर, उत्तम सप्तभंगरूप कल्लोलमालासे भूषित तथा जिनशासनरूप निर्मल सरोवरके सरोज तथा पंडितोंका चूड़ामणि प्रकट किया है, जिससे वे न्यायशास्त्रके अद्वितीय विद्वान् जान पड़ते हैं। इनकी 'परीक्षामुख नामकी एक सुन्दर कृति है जो न्यायशास्त्रके दोहनसे निकाले हुए अमृतके समान उपयोगी है× यह संक्षिप्त, सरल और अर्थगाम्भीर्यसे युक्त है तथा न्यायशास्त्रके प्रारम्भिक विद्वानोंके लिये बड़े कामकी चीज है। परीक्षामुखकी रचना माणिक्यनन्दीने न्यायशास्त्रको लक्ष्यमें रख कर ही की है उसमें आगमिक परम्परासे सम्बन्ध रखनेवाले अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा तथा नयादिके स्वरूपका समावेश नहीं किया गया है। परीक्षामुखमें छह अध्याय हैं। जिनमें प्रमाणका स्वरूप, संख्या, परोक्षप्रमाण, फल और प्रमाणाभास और प्रमाणका विषय विवेचन किया गया है, जो मनन करने योग्य है। इस पर विशाल टीका लिखी गई है। और अनेक टिप्पण।

श्वेताम्बरीय विद्वान् देवसूरिने तो 'प्रमाणनयतत्त्वालोक'की रचना करते हुए परीक्षामुखके सूत्रोंको शब्द-परिवर्तनके साथ पूरे ग्रन्थको अपना

असेसाण गंथम्मि पारम्मि पत्तो तथेयंग वोभव्व राईव मित्तो॥
गुणावासभूओ सु-तेलोक्कणंदी, महापंडिओ तस्स माणक्कणंदी॥
—सुदर्शनचरित प्रशस्ति, आमेर भंडार

× अकलंकवचोम्भोधेरुद्धे येन धीमता।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने॥ —प्रमेयरत्नमाला

लिया है, पर कृतज्ञताके नाते उनका स्मरण भी नहीं किया*।

श्रवणबेलगोलके ४० वें नं० के शिलालेखमें मूलसंघान्तर्गत नन्दीगण-के भेदरूप देशीयगणके गोल्लाचार्यके शिष्य एक अविद्धकर्ण कौमारव्रती पद्मनन्दी सैद्धान्तिकका उल्लेख है जो कर्णवेध संस्कार होनेसे पूर्व ही दीक्षित हो गए थे, उनके शिष्य और कुलभूषणके सधर्मा एक प्रभाचन्द्रका उल्लेख पाया जाता है जिसमें कुलभूषणको चारित्रसागर और सिद्धान्त-समुद्रके पारगामी बतलाया है, और प्रभाचन्द्रको शब्दाम्भोरुहभास्कर तथा प्रथित तर्कग्रन्थकार प्रकट किया है। इस शिलालेखमें मुनि कुल-भूषणकी शिष्यपरम्पराका भी उल्लेख निहित है।

अविद्धकर्णादिकपद्मनन्दी सैद्धान्तिकाख्योऽजनि यस्य लोके।
कौमारदेवव्रतिता प्रसिद्धिर्जीयात्तु सज्ज्ञाननिधिः स धीरः॥
तच्छिष्यः कुलभूषणाख्ययतिपश्चारित्रवारांनिधिः—
सिद्धान्ताम्बुधिपारगो नतविनेयस्तत्सधर्मा महान्।
शब्दाम्भोरुहभास्करः प्रथिततर्कग्रन्थकारः प्रभा—
चन्द्राख्या मुनिराज पंडितवरः श्रीकुन्दकुन्दान्वयः॥
तस्य श्रीकुलभूषणाख्यसुमुनेश्शिष्यो विनेयस्तुत—
सद्वृत्तः कुलचन्द्रदेवमुनिपस्सिद्धान्तविद्यानिधिः॥

श्रवणबेलगोलके ५५ वें शिलालेखमें मूलसंघ देशीयगणके देवेन्द्र सैद्धान्तिकसे शिष्य चतुर्मुखदेवके शिष्य गोपनन्दी और इन्हीं गोपनन्दीके सधर्मा एक प्रभाचन्द्रका उल्लेख और भी किया गया है। जो प्रभाचन्द्र धाराधीश्वर राजा भोज द्वारा पूजित थे और न्यायरूप कमलसमूहको विक-सित करने वाले दिनमणि, और शब्दरूप अब्जको प्रफुल्लित करने वाले रोदोमणि (भास्कर) सदृश थे। और पण्डितरूपी कमलोंको विकसित करनेवाले सूर्य तथा रुद्रवादिदिग्गजोंके वश करने के लिये अंकुशके

* देखो अनेकान्त वर्ष २ किरण १० पृ० ५८४ में प्रकाशित 'प्रमाणनय तत्त्वालोककी आधारभूमि नामका मेरा लेख।

समान थे तथा चतुर्मुख देवके शिष्य थे × ।

इन दोनों ही शिलालेखोंमें उल्लिखित प्रभाचन्द्र एक ही विद्वान जान पड़ते हैं। हाँ, द्वितीय लेख (५५) में चतुर्मुख देवका नाम नया जरूर है, पर यह सम्भव प्रतीत होता है कि प्रभाचन्द्रके दक्षिणसे धारामें आनेके पश्चात् देशीयगणके विद्वान चतुर्मुखदेव भी उनके गुरु रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि गुरु भी कई प्रकारके होते हैं—दीक्षागुरु, विद्यागुरु आदि एक-एक विद्वानके कई-कई गुरु और कई-कई शिष्य होते थे। अतएव चतुर्मुखदेव भी प्रभाचन्द्रके किसी विषयमें गुरु रहे हों, और इसलिए वे उन्हें समादरकी दृष्टिसे देखते हों तो कोई आपत्तिकी बात नहीं, अपनेसे बड़ेको आज भी पूज्य और आदरणीय माना जाता है।

विक्रमकी १०वीं, ११वीं और १२वीं शताब्दीमें धारानगरी जन-धनसे पूर्ण और संस्कृत विद्याका केन्द्र बनी हुई थी। वहाँ जैन जैनेतर विद्वानोंका खासा जमघट लगा रहता था। अवन्ति देशका शासक राजा भोज जितना पराक्रमी और प्रतापी था वह उतना ही विद्या व्यसनी भी था। वहाँ पर विद्यासदन (सरस्वती पाठशाला) नामका एक विशाल विद्यापीठ भी था। जिसमें सुदूर देशोंके विद्यारसिक अपनी ज्ञान-पिपासाको शान्त करते थे। उस समय धारा नगरी और आस-पासके स्थानोंमें अनेक जैन विद्वान और विविध गण-गच्छोंके दिगम्बर साधु निवास करते थे। अनेक मुनियों आचार्यों और विद्वानोंने धारा और तत् समीपवर्ती नगरोंमें रहते हुए ग्रन्थ-

---

× श्रीधाराधिपभोजराज-मुकुट-प्रोताश्म-रश्मि-च्छटा—
च्छाया-कुङ्कुम-पंक-लिप्तचरणाम्भोजात-लक्ष्मीधवः
न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्ज-रोदोमणिः—
स्थेयात्पण्डित-पुण्डरीक-तरणिः श्रीमान्प्रभाचंद्रमाः ॥१७॥
श्रीचतुर्मुखदेवानां शिष्योऽथ्यः प्रवादिभिः ।
पण्डितश्रीप्रभाचंद्रो रुद्धवादि-गजांकुशः ॥१८॥
—जैन शिलालेख सं० भा० १ पृ० ११८

रचनाएँ की हैं। धारामें उस समय जैन विद्वानोंके कितने ही संघ विद्यमान थे, खासकर माथुरसंघ और लाडबागड़ संघके अनेक मुनियोंका वह विहार-स्थल बना हुआ था। दशवीं शताब्दीसे १३वीं शताब्दि तक धारामें जैनधर्मका खूब उत्कर्ष रहा है। उसके बाद वहाँ मुसलमानोंका शासन हो जानेसे हिंदू संस्कृतिके साथ जैन संस्कृतिको भी विशेष हानि उठानी पड़ी। पुरातत्त्वकी दृष्टिसे धारा और उसके आस-पासके स्थान आज भी महत्त्वके हैं और वहाँके भूगर्भमें महत्त्वकी पुरातत्त्व सामग्री दबी पड़ी है।

आचार्य प्रभाचन्द्रने इसी धारा नगरीमें रहते हुए विशाल दार्शनिक टीकाग्रन्थोंके निर्माणके साथ अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। प्रमेयकमलमार्तण्ड (परीक्षामुख टीका) नामक विशाल दार्शनिक ग्रन्थ सुप्रसिद्ध राजा भोजके राज्यकालमें रचा गया है और न्याय कुमुदचन्द्र (लघीयस्त्रय टीका) आराधना गद्य कथाकोश, पुष्पदन्तके महापुराण (आदि पुराण उत्तरपुराण) पर टिप्पण ग्रन्थ, समाधितंत्र टीका * ये सब ग्रन्थ राजा जयसिंहदेवके राज्यकालमें रचे गए हैं। शेष ग्रन्थ प्रवचन-सरोज-भास्कर, पंचास्तिकाय-प्रदीप, आत्मानुशासन तिलक, क्रियाकलापटीका, रत्नकरण्डश्रावकाचारटीका, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र टीका, शब्दाम्भोजभास्कर और तत्त्वार्थवृत्तिपदविवरण ये सब ग्रन्थ कब और किसके राज्यकालमें रचे गए हैं यह कुछ ज्ञात नहीं होता। बहुत सम्भव है कि ये सब ग्रन्थ उक्त ग्रन्थोंके बाद ही बनाये गए हों। अथवा उनमेंसे कोई ग्रन्थ उनसे पूर्व भी रचे हुए हो सकते हैं।

अब रही समयकी बात, ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्डको राजाभोजके राज्यकालमें बनाया है। राजा भोजका राज्यकाल वि० सं० १०७० से १११० तकका बतलाया जाता

---

*मूडबिद्रीके मठकी समाधितंत्र ग्रंथकी प्रतिमें पुष्पिका वाक्य निम्न प्रकार पाया जाता है—'इति श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपरमेष्ठि प्रणामोपार्जितामलपुण्यनिराकृताखिलमलकलंकेन श्रीमत्प्रभाचन्द्र पंडितेन समाधिशतक टीका कृतेति ॥'

है। उसके राज्यकालके दो दानपत्र सं० १०७६ और १०७६ के मिले हैं।

आचार्य प्रभाचन्द्रने तत्त्वार्थवृत्तिके विषम-पदोंका विवरणात्मक टिप्पण लिखा है उसके प्रारंभमें अमितगतिके संस्कृत पंचसंग्रहका निम्न संस्कृत पद्य उद्धृत किया है :—

वर्गः शक्ति समूहोणोरणूनां वर्गणोदिता।
वर्गणानां समूहस्तु स्पर्धकं स्पर्धकापहैः॥

अमितगतिने अपना यह पंचसंग्रह मसूतिकापुरमें, जो वर्तमानमें 'मसीद बिलौदा' ग्रामके नामसे प्रसिद्ध है। वि० सं० १०७३ में बनाकर समाप्त किया है। अमितगति धाराधिप मुंजकी सभाके रत्न भी थे। इससे भी स्पष्ट है कि प्रभाचन्द्रने अपना यह टिप्पण वि० सं० १०७३ के बाद बनाया है, कितने बाद बनाया गया है यह बात अभी विचारणीय है।

यहां एक बात और नोट कर देने की है और वह यह कि 'न्याय विनिश्चय विवरण'के कर्ता आचार्य वादिराजने अपना पार्श्वपुराण शक संवत् ९४७ (वि० सं० १०८२ में बनाकर समाप्त किया है, यदि राजा भोजके प्रारंभिककालमें प्रभाचंद्रने अपना प्रमेयकमलमार्तण्ड बनाया होता तो वादिराज उसका उल्लेख अवश्य ही करते। पर नहीं किया, इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय तक प्रमेयकमलमार्तण्डकी रचना नहीं हुई थी। हां, सुदर्शन चरित्रके कर्ता मुनिनयनंदीने, जो माणिक्यनंदीके प्रथम विद्या शिष्य थे और प्रभाचंद्रके समकालीन गुरुभाई भी थे, अपना सुदर्शन-चरित वि० सं० ११००में बनाकर समाप्त किया था और उसके बाद सकल विधि विधान नामका एक काव्य ग्रंथ भी बनाया था जिसमें पूर्ववर्ती और समकालीन अनेक विद्वानोंका नामोल्लेख करते हुए प्रभाचंद्रका भी नामोल्लेख किया है पर उसमें उनके प्रमेयकमलमार्तण्डका कोई उल्लेख नहीं है। इससे साफ जाना जाता है कि प्रमेयकमलमार्तण्डकी रचना सं० ११०० या उसके एक दो वर्ष बाद हुई है। प्रभाचंद्रने जब प्रमेयकमल

मार्तण्ड बनाया; उस समय तक उनके न्याय विद्या गुरु भी जीवित थे× और उन्हें उनके अतिरिक्त अन्य विद्वानोंका भी सहयोग प्राप्त था, पर न्याय कुमुदचंद्रके लिखते समय उन्हें अन्य विद्वानोंके सहयोग मिलनेका कोई आभास नहीं मिलता और गुरु भी संभवतः उस समय जीवित नहीं थे। क्योंकि न्याय कुमुदचंद्र सं० १११२ के बादकी रचना है कारण कि जयसिंह राजा भोज के बाद वि० सं० १११० के बाद किसी समय राज्यका अधिकारी हुआ है। जयसिंहने संवत् १११० से १११६ तक राज्य किया है। यह तो सुनिश्चित ही है इनके राज्यका सं० १११२ का एक दानपत्र भी मिला है। उसके बाद वह कहां और कब तक जीवित रहकर राज्य करते रहे यह अभी अनिश्चित है। अतः आचार्य प्रभाचंद्रने भी अपनी रचनाएँ जिन्हें राजाभोज और जयसिंहके राज्यमें रचा हुआ लिखा है। सं० ११०० से लेकर १११६ तकके मध्यवर्ती समयमें रची होंगी। शेष ग्रंथ जिनमें कोई उल्लेख नहीं मिलता, वे कब बनाये इस सम्बंधमें कोई जानकारी प्राप्त नहीं है।

इस सब विवेचन परसे स्पष्ट है कि प्रभाचन्द्र विक्रमकी ११वीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध और १२ शताब्दीके पूर्वार्द्धके विद्वान हैं।

६५वीं प्रशस्ति 'प्राकृतशब्दानुशासन' की है जो स्वोपज्ञवृत्तिसे युक्त है और जिनके कर्ता कवि त्रिविक्रम हैं। ये कवि अर्हनंदी यतिवि

×जैसाकि प्रमेयकमलमार्तण्डके ३-११ सूत्रकी व्याख्यासे स्पष्ट है—

'न च बालावस्थायां निश्चयानिश्चयाभ्यां प्रतिपन्नसाध्यसाधनस्वरूपस्य पुनर्वृद्धावस्थायां तद्विस्मृतौ तत्स्वरूपोपलम्भेऽप्यविनाभाव प्रतिपत्तेरभावात्तयोस्तद्धेतुत्वम्; स्मरणादेरपि तद्धेतुत्वात्। भूयो निश्चयानिश्चयौ हि स्मर्यमाणे प्रत्यभिज्ञायमानौ तत्कारणमिति स्मरणादेरपि तन्निमित्तत्वप्रसिद्धिः। मूलकारणत्वेन तूपलम्भादेरत्रोपदेशः, स्मरणादेस्तु प्रकृतत्वादेव तत्कारणत्वप्रसिद्धेरनुपदेश इत्यभिप्रायो गुरूणाम्॥'

—अनेकांत वर्ष ८, कि० १०,११

मुनिके चरणकमलोंके भ्रमर (शिष्य) थे वाणसकुल कमलको विकसित करने वाले आदित्यशर्माके पौत्र और मल्लिनाथके पुत्र थे। इनके भाईका नाम सोम था, जो वृत्त और विद्याका धाम था। प्रस्तुत व्याकरणमें चार अध्याय हैं, अपनेको पहला ही अध्याय प्राप्त हो सका है, इसीसे ग्रन्थका अन्तभाग नहीं दिया जा सका। इस अध्यायकी भूमिकामें श्रीवेंकट रंगनाथ शर्माने लिखा है कि यह ग्रन्थ साङ्गसिद्धशब्दानुशासनके कर्ता हेमचन्द्राचार्यसे बाद-का और कालिदासके शाकुन्तलादि नाटकत्रयके व्याख्याता काव्यवेमसे पहलेका बना हुआ है, क्योंकि इसमें हेमचन्द्रके उक्त ग्रन्थ-वाक्योंका उल्लेखपूर्वक खण्डन है और काव्यवेमके व्याख्या-ग्रन्थोंमें इस ग्रन्थके सूत्रोंका ही प्राकृत विषयोंमें प्रमाण रूपसे निर्देश पाया जाता है। अतः यह वि० की १३ वीं शताब्दी या इससे भी कुछ बादका रचित होना चाहिये।

९६वीं प्रशस्ति 'जिनसहस्रनाम टीका' की है जिसके रचयिता अमर-कीर्ति हैं जो भ० मल्लिभूषणके शिष्य थे। मल्लिभूषण मालवाके पट्ट पर पदारूढ थे। इन्हीं के समकालीन विद्यानन्दि और श्रुतसागर थे। अमर-कीर्तिने इस प्रशस्तिमें विद्यानन्दि और श्रुतसागर दोनोंका आदर पूर्वक स्मरण किया है। प्रशस्तिमें रचनाकाल नहीं दिया, फिर भी अमरकीर्तिका समय विक्रमकी १६ वीं शताब्दी जान पड़ता है। यह टीका अभी तक अप्रकाशित है, इसे प्रकाशमें लानेका प्रयत्न होना चाहिए। अमरकीर्तिकी यह टीका भ० विश्वसेनके द्वारा अनुमोदित हुई है।

प्रशस्ति नम्बर ९७, ९८, ९९, १००, और १०१ नम्बरकी प्रशस्तियाँ सरस्वती (भारती कल्प, कामचण्डालीकल्प, ज्वालिनी कल्प, भैरवपद्मावतीकल्प सटीक और महापुराण नामक ग्रन्थों की हैं। जिनके कर्ता आचार्य मल्लिषेण हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय ९० नं० की प्रशस्तिमें दिया गया है।

१०२ वीं प्रशस्ति 'कर्मकाण्ड टीका की' है जिसके कर्ता भ०ज्ञानभूषण और सुमतिकीर्ति हैं। इसके कर्ताका परिचय नं० ७३ की प्रशस्तिमें दिया गया है।

१०२ वीं प्रशस्ति 'पुण्यास्रव कथाकोश' की है जिसके कर्ता रामचन्द्रमुमुक्षु हैं, जो कुन्दकुन्दान्वयमें प्रसिद्ध मुनि केशवनन्दीके शिष्य थे। रामचन्द्रमुमुक्षुने पद्मनन्दिसे शब्दों और अपशब्दोंका ज्ञान प्राप्त कर उक्त पुण्यास्रव ग्रन्थकी रचना की है। प्रशस्तिमें वादीभसिंहकी भी बन्दना की गई है। इस ग्रन्थकी श्लोक संख्या चार हजार पाँच सौ है। ग्रन्थ प्रशस्तिमें समयादिकका कोई उल्लेख नहीं है जिससे यह बतलाया जा सके कि यह ग्रन्थ अमुक समयमें रचा गया है। चूँकि इस ग्रंथकी एक लिखित प्रति सम्वत् १५८४ की देहलीके पंचायती मन्दिरके शास्त्र भण्डारमें उपलब्ध है जिससे यह स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ सं० १५८४ से पूर्वका रचा हुआ है। कितने पूर्वका यह अनुसन्धानसे संबन्ध रखता है।

रामचन्द्र नामके अनेक विद्वान हो गये हैं। एक रामचन्द्र वह हैं जो बालचंद पंडितके शिष्य थे और जिसका उल्लेख श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं० ४१ में पाया जाता है इनकी उपाधि 'मलधारी' थी। यह उन रामचन्द्रमुमुक्षुसे भिन्न जान पड़ते हैं।

दूसरे रामचन्द्र मुनि वे हैं जिनका उल्लेख सालपुरारेंज (Salpura Renge) जिला बड़वानीमें नरवदा नदीके पास वहाँकी ८५ फुट ऊँची मूर्तिके समीप पूर्व दिशामें बने हुए जैन मन्दिरमें अंकित शिलावाक्यमें पाया जाता है। यह लेख संवत् १२२३ भाद्रपद वदि १४ शुक्रवारका १ है।

---

१ यस्य स्वच्छतुषारकुन्दविशदा कीर्तिर्गुणानां निधिः।
श्रीमान् भूपतिवृन्दवन्दितपदः श्रीरामचन्द्रो मुनिः॥
विश्वक्ष्माभृदखर्वशेखरशिखासञ्चारिणी हारिणी।
उर्व्यां शत्रुजितो जिनस्य भवनव्याजेन विस्फूर्जति॥१॥
रामचन्द्रमुनेः कीर्ति संकीर्णं भुवनं किल।
अनेकलोकसंहर्षाद् गता सवितुरन्तिकं॥२॥
सम्वत् १२२३ वर्षे भाद्रपद वदि १४ शुक्रवार।

उक्त मन्दिरकी दक्षिण दिशामें एक लेख और भी है जो उक्त सं० १२२३ का उत्कीर्ण किया हुआ है, इस लेखमें रामचन्द्र मुनिको मुनि लोकनन्दीके शिष्य मुनि देवनन्दिके वंशका विद्वान तपस्वी सूचित किया है जिसने विद्या-हर्म्य (पाठशाला) को बनवाया था साथ ही उन्हें अनेक राजाओंसे पूजित भी बतलाया है१। अतः बहुत सम्भव है कि केशवनन्दिके शिष्य उक्त रामचन्द्रमुमुक्षु भी इसी नंद्यन्तनाम वाली परम्पराके विद्वान हों, तो इनका समय भी वि० की १२वीं १३वीं शताब्दी हो सकता है। पर अभी इस सम्बन्धमें प्रामाणिक अनुसन्धानकी आवश्यकता है, उसके होने पर फिर निश्चय पूर्वक कुछ कहा जा सकता है।

१०४ वीं प्रशस्ति 'प्राकृत पंचसंग्रह-टीकाकी' है, पंचसंग्रह नामका एक प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ है, जो मूलतः ५ प्रकरणोंको लिये हुए है। और जिस पर मूलके साथ भाष्य तथा चूर्णि और संस्कृतटीका उपलब्ध है। इस ग्रन्थका सबसे पहले पता इन पंक्तियोंके लेखकने लगाया था जिसका परिचय अनेकांत वर्ष ३ किरण ३ में दिया गया है। यह ग्रन्थ बहुत पुराना है, आचार्य अमितगतिने सं० १०७३ में प्राकृत पंचसंग्रहका

---

१ मंदिरकी दक्षिण तरफका शिलालेख—

ओंनमो वीतरागाय ॥
आसीद्यः कलिकालकलभकरिध्वंसैककंठीरवो-
ऽनेकक्ष्मापतिमौलिचुम्बितपदो यो लोकनन्दी मुनिः ॥
शिष्यस्तस्य समूल सङ्कतिलकश्रीदेवनन्दी मुनिः।
धर्मज्ञानतपोनिधिर्यति-गुण-ग्रामः सुवाचां निधिः ॥१॥
वंशे तस्मिन् विपुलतपसां सम्मतः सत्वनिष्ठो।
वृत्तिपापां विमलमनसा संयजद्योविवेकीः ॥
रम्यं हर्म्यं सुरपति जितः कारितं येन विद्या (?)
शेषां कीर्तिभाँति भुवने रामचन्द्रः स एषः ॥
संवत् १२२३ वर्षे।

See cunningham archer survey India XXI P.68

संशोधन परिवर्धनादिके साथ 'संस्कृत पंचसंग्रह' नामक ग्रन्थ बनाया है। पं० आशाधरजीने मूलाराधनादर्पण नामकी टीकामें इस ग्रन्थकी ५ गाथाएँ उद्धृत की हैं। आचार्य वीरसेनकी धवला टीकामें भी इस ग्रन्थकी मूल गाथाएँ समुद्धृत पाई जाती हैं। जिससे ग्रन्थकी प्राचीनता पर प्रकाश पड़ता है। कसायपाहुडकी कुछ गाथाएँ प्रायः ज्यों-के-त्यों रूपमें और षट्खण्डागमके कुछ मूलसूत्रोंका विषय कहीं कहीं पर मिल जाता है। प्रकृति समुत्कीर्तन प्रकरणके गद्य सूत्र तो षट्खण्डागमके सूत्रोंका स्मरण कराते ही हैं। उक्त पंचसंग्रहकी टीकाके कर्ता भ० सुमतिकीर्ति हैं, जो मूल संघमें स्थित नन्दिसंघ बलात्कारगण और सरस्वतिगच्छके भट्टारक ज्ञानभूषणके शिष्य थे। लक्ष्मीचंद्र और वीरचन्द्र नामके भट्टारक भी इनके सम-सामयिक थे। भट्टारक ज्ञान भूषण इन्हींके अन्वयमें हुए हैं।

भ० सुमतिकीर्तिने प्रस्तुत ग्रन्थकी टीका ईडर (ईलाव) के ऋषभदेवके मन्दिरमें वि० सं० १६२० भाद्रपद शुक्ला दशमीके दिन समाप्त की थी। इस ग्रन्थका उपदेश उन्हें 'हंस' नामके वर्णीसे प्राप्त हुआ था। इस टीकाका संशोधन भी भ०ज्ञानभूषणने किया था। कर्मकाण्ड टीका, १६० गाथात्मक कर्मप्रकृति टीका को भी भ० सुमतिकीर्तिने ज्ञानभूषणके साथ बनाया था और उन्हींके नामांकित किया था।

इनके अतिरिक्त 'धर्मपरीक्षारास' नामका एक ग्रन्थ और भी मेरे देखनेमें आया है, जिसकी पत्र संख्या ८३ है, जो गुजराती भाषामें पद्यबद्ध है और जिसकी रचना हांसौट नगरमें विक्रम सम्वत् १६२५ में बन कर समाप्त हुई है। इसके सिवाय, ऐ० प० दि० जैन सरस्वतीभवन बम्बईकी सूचीमें 'उत्तर छत्तीसी' नामका एक संस्कृत ग्रन्थ और भी गणित विषय पर लिखा गया है और उसके कर्ता भी भ० सुमतिकीर्ति बतलाए गये हैं। सम्भव है कि यह भी उन्हींकी कृति हो। और भी उनकी रचनाएँ होंगी, पर वे सामने न होनेसे उनके सम्बन्धमें विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता। सुमतिकीर्ति भी ईडरकी भट्टारकीय गद्दीके भट्टारक थे।

१०५वीं और १०६ वीं प्रशस्तियाँ 'रात्रिभोजन त्याग और 'नेमिनाथ पुराण'की हैं, जिनके कर्ता ब्रह्मनेमिदत्त हैं। ब्रह्मनेदिमत्तका परिचय ९वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

१०७ वीं प्रशस्ति 'समवसरण पाठ' की है, जिसके कर्ता प० रूपचन्द्रजी हैं। जो विक्रमकी १७वीं शताब्दीके विद्वान थे और भट्टारकीय पंडित होनेके कारण 'पांडे' की उपाधिसे अलंकृत थे। आपको हिन्दीके सिवाय संस्कृत भाषाके विविध छन्दोंमें कविता करनेका अच्छा अभ्यास था। आपका जन्म स्थान कुह नामके देशमें स्थित 'सलेमपुर' था। आप अग्रवाल वंशके भूषण गर्गगोत्री थे। आपके पितामहका नाम मामट और पिता का नाम भगवानदास था। भगवानदासकी दो पत्नियाँ थीं, जिनमें प्रथमसे ब्रह्मदास नामके पुत्रका जन्म हुआ। दूसरी 'चाचो' से पांच पुत्र समुत्पन्न हुए थे—हरिराज, भूपति, अभयराज, कीर्तिचन्द्र और रूपचन्द्र। इनमें अन्तिम रूपचन्द्र ही प्रसिद्ध कवि थे और जैन सिद्धान्तके अच्छे मर्मज्ञ विद्वान् थे। वे ज्ञान-प्राप्तिके लिये बनारस गए और वहांसे शब्द और अर्थरूप. सुधारसका पानकर दरियापुरमें लौटकर आये थे। दरियापुर वर्तमानमें बाराबंकी और अयोध्याके मध्यवर्ती स्थानमें बसा हुआ है, जिसे दरियाबाद भी कहा जाता है। वहां आज भी जैनियोंकी बस्ती है और जिनमन्दिर बना हुआ है।

हिन्दीके प्रसिद्ध कवि बनारसीदासजीने अपने 'अर्धकथानक' में लिखा है कि संवत् १६७२ में आगरा में पं० रूपचन्द्रजी गुनीका आगमन हुआ और उन्होंने सिहुना साहूके मन्दिरमें डेरा किया। उस समय आगरामें सब अध्यात्मियोंने मिलकर विचार किया कि उक्त पांडेजीसे आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती द्वारा संकलित गोम्मटसार ग्रन्थका वाचन कराया जाय। चुनांचे पंडितजीने गोम्मटसार ग्रन्थका प्रवचन किया और मार्गणा, गुणस्थान, जीवस्थान तथा कर्मबन्धादिके स्वरूपका विशद विवेचन किया। साथ ही, क्रियाकाण्ड और निश्चयनय व्यवहारनयकी यथार्थ

कथनीका रहस्य भी समझाया और यह भी बतलाया कि जो नयदृष्टिसे विहीन हैं उन्हें वस्तुतत्त्वकी उपलब्धि नहीं होती तथा वस्तु स्वभावसे रहित पुरुष सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते। पांडे रूपचन्द्रजीके वस्तुतत्त्व विवेचनसे पं० बनारसीदासजीका वह एकान्त अभिनिवेश दूर हो गया, जो उन्हें और उनके साथियोंको 'नाटक समयसार' की रायमल्लीय टीकाके अध्ययनसे हो गया था और जिसके कारण वे जप, तप, सामायिक, प्रतिक्रमणादि क्रियाओंको छोड़कर भगवानको चढ़ा हुआ नैवेद्य भी खाने लगे थे। यह दशा केवल बनारसीदासजीकी ही नहीं हुई किन्तु उनके साथी चन्द्रभान, उदयकरन और थानमल्लकी भी हो गई थी। ये चारों ही जने नग्न होकर एक कोठरीमें फिरते थे और कहते थे कि हम मुनिराज हैं। हमारे कुछ भी परिग्रह नहीं है, जैसाकि अर्ध कथानकके निम्न दोहे से स्पष्ट है :—

"नगन होहिं चारों जनें, फिरहिं कोठरी मांहि।
कहहिं भये मुनिराज हम, कछू परिग्रह नांहि॥"

पांडे रूपचन्द्रजीके वचनोंको सुनकर बनारसीदासजीका परिणमन और ही रूप हो गया। उनकी दृष्टिमें सत्यता और श्रद्धामें निर्मलताका प्रादुर्भाव हुआ। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई और उन्होंने उसे दूर किया। उस समय उनके हृदयमें अनुपम ज्ञानज्योति जागृत हो उठी थी और इसीसे उन्होंने अपनेको 'स्याद्वाद परिणतिसे परिणत' बतलाया है।

सं० १६६३ में पं० बनारसीदासजीने आचार्य अमृतचन्द्रके 'नाटक समयसारकलशका' हिन्दी पद्यानुवाद किया और संवत् १६६४ में पांडे रूपचन्द्रजीका स्वर्गवास हो गया१।

१—अनायास इसही समय नगर आगरे थान।
रूपचन्द्र पंडित गुनी आयो आगम जान॥६३०॥
तिहुनासाहु देहरा किया, तहां आय तिन डेरा लिया।
सब अध्यात्मी कियो विचार, ग्रन्थ बचांयो गोम्मटसार॥६३१॥
तामें गुनथानक परवान, कह्यो ज्ञान अरु क्रिया विधान।

अर्ध कथानकके इस उल्लेखसे मालूम होता है कि प्रस्तुत पांडे रूपचन्द ही उक्त 'समवसरण' पाठके रचयिता हैं। चूँकि उक्त पाठ भी संवत् १६६२ में रचा गया है और पं० बनारसीदासजीने उक्त घटनाका समय भी अर्ध कथानकमें सं० १६६२ दिया है, इससे मालूम होता है कि उक्त पाठ आगरेकी उपर्युक्त घटनासे पूर्व ही रचा गया है। इसीसे प्रशस्तिमें उसका कोई उल्लेख नहीं है। अन्यथा पांडे रूपचन्द्रजी उस घटनाका उल्लेख उसमें अवश्य ही करते। अस्तु, नाटक समयसारमें इन्हीं रूपचन्द्रजीका समुल्लेख किया गया है वे संवत् १६६२ के रूपचन्द्रजीसे भिन्न नहीं हैं।

इनकी संस्कृत भाषाकी एक मात्र कृति 'समवसरण पाठ' अथवा 'केवलज्ञानकल्याणार्चा' है। इसमें जैन तीर्थंकरके केवलज्ञान प्राप्त कर लेने पर जो अन्तर्बाह्य विभूति प्राप्त होती है अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायरूप घातियाकर्मोंके विनाशसे अनन्तचतुष्टयरूप आत्म-निधिकी समुपलब्धि होती है उसका वर्णन है। साथ ही बाह्यमें जो समवसरणादि विभूतिका प्रदर्शन होता है वह सब उनके गुणातिशय अथवा पुण्यातिशयका महत्व है—वे उस विभूतिसे सर्वथा अलिप्त अंतरीक्ष विराजमान रहते हैं और वीतराग विज्ञानरूप आत्मनिधिके द्वारा जगतका कल्याण करते हैं—संसारके दुखी प्राणियोंको छुटकारा पाने और शाश्वत सुख प्राप्त करनेका सुगम मार्ग बतलाते हैं।

जो जिय जिस गुनथानक होइ, जैसी क्रिया करै सब कोइ ॥६३२॥
भिन्न भिन्न विवरण विस्तार, अन्तर नियत बहुरि व्यवहार।
सबकी कथा सब विध कही, सुनिकै संसै कछु ना रही ॥६३३॥
तब बनारसी ओरहिं भयो, स्याद्वादपरिनति-परिनयो।
पांडे रूपचन्द्र गुरुपास, सुन्यौ ग्रन्थ मन भयौ हुलास ॥६३४॥
फिर तिस समै बरसके बीच, रूपचन्द्रकौं आई मीच।
सुन-सुन रूपचन्द्रके बैन, बनारसी भयौ दिढ़ जैन ॥६३५॥

कविने इस पाठकी रचना आचार्य जिनसेनके आदिपुराणगत 'समवसरण' विषयक कथनको दृष्टिमें रखते हुए की है। प्रस्तुत ग्रन्थ दिल्लीके बादशाह जहांगीरके पुत्र शाहजहांके राज्यकालमें, संवत् १६७२ के अश्विन महीनेके कृष्णपक्षमें, नवमी गुरुवारके दिन, सिद्धयोगमें और पुनर्वसु नक्षत्रमें समाप्त हुआ है; जैसाकि उसके निम्न पद्यसे स्पष्ट है :—

श्रीमत्संवत्सरेऽस्मिन्नरपतिनुतयद्विक्रमादित्यराज्ये—
ऽतीते द्वगनंद भद्रांशुकृतपरिमिते (१६७२) कृष्णपक्षेत्र मासे (?)
देवाचार्ये प्रचारे शुभनवमतिथौ सिद्धयोगे प्रसिद्धे,
पौनर्वस्वित्पुडस्थे (?) समवसृतिमहं प्राप्तमाप्ता समाप्तिं ॥३४॥

ग्रन्थकर्ताने इस पाठके बनवाने वाले श्रावकके कुटुम्बका विस्तृत परिचय दिया है। जो इस प्रकार है :—

मूलसंघान्तर्गत नन्दिसंघ बलात्कारगण, सरस्वतिगच्छके प्रसिद्ध कुन्दकुन्दान्वयमें वादीरूपी हस्तियोंके मदको भेदन करने वाले सिंहकीर्ति हुए, उनके पट्टपर धर्मकीर्ति, धर्मकीर्तिके पट्टपर ज्ञानभूषण, ज्ञानभूषणके पट्ट पर भारती भूषण तपस्वी भट्टारकोंके द्वारा अभिवन्दनीय विगतदूषण भट्टारक जगत्भूषण हुए। इन्हीं भट्टारक जगद्भूषणकी गोलापूर्व[1] आम्नायमें दिव्यनयन हुए। उनकी पत्नीका नाम दुर्गा था। उससे दो पुत्र हुए। चक्रसेन और मित्रसेन। चक्रसेनकी स्त्रीका नाम कृष्णा-

---

१ गोलापूर्व जाति जैन समाजकी ८४ उपजातियोंमें से एक है। इस जातिका अधिकतर निवास बुंदेलखंडमें पाया जाता है। यह जाति विक्रमकी ११वीं, १२वीं, १३वीं और १४वीं शताब्दीमें खूब समृद्ध रही है। इसके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ सं० १२०२ से लेकर १६वीं शताब्दी तककी पाई जाती हैं। ये प्राचीन मूर्तियाँ महोबा, छतरपुर, पपौरा, आहार और नावई आदि के स्थानोंमें उपलब्ध होती हैं, जिन पर प्रतिष्ठा करने कराने आदिका समय भी अंकित है। इनके द्वारा निर्मित अनेक शिखरबन्द मन्दिर भी यत्र तत्र मिलते हैं जो उस जातिकी धर्मनिष्ठाके प्रतीक हैं, अनेक ग्रन्थोंका

वती था और उससे केवलसेन तथा धर्मसेन नामके दो पुत्र हुए। मित्रसेन-की धर्मपत्नीका नाम यशोदा था उससे भी दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें प्रथम पुत्रका नाम भगवानदास था, जो बड़ा ही प्रतापी और संघका अधि-नायक था। और दूसरा पुत्र हरिवंश भी धर्म-प्रेमी और गुण-सम्पन्न था। भगवानदासकी पत्नीका नाम केशरिदे था, उससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे—महासेन, जिनदास और मुनिसुव्रत। संघाधिप भगवानदासने जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिष्ठा करवाई थी और संघराजकी पदवीको भी प्राप्त किया था। वह दान-मानमें कर्णके समान था। इन्हीं भगवानदासकी प्रेरणासे पंडित रूपचन्द्रजीने प्रस्तुत पाठकी रचना की थी। पांडे रूपचन्द्रजी ने इस ग्रंथकी प्रशस्तिमें नेमसिंह नामके अपने एक प्रधान शिष्यका भी उल्लेख किया है पर वे कौन थे और कहां के निवासी थे, यह कुछ मालूम नहीं हो सका।

उक्त पाठ के अतिरिक्त पांडे रूपचन्द्रजी की निम्न कृतियोंका उल्लेख और भी मिलता है जिनमेंसे रूपचन्द शतक, पंचमंगल पाठ और कुछ जकड़ी आदि प्रकाशित हो चुके हैं×, परन्तु 'नेमिनाथरासा' और अनेक

निर्माण भी किया कराया गया है। सं० १५४० में श्रावणवदि १० को श्रावण वदि १० को मूलसंघ सरस्वतिगच्छके भ० जिनचन्द्रके प्रशिष्य भ० भुवनकीर्तिके समय गोलापूर्व जातिके साहू सानपतिके सुपुत्र पहंपाने कर्मक्षयनिमित्त उत्तरपुराण लिखा था। यह ग्रन्थ नागौर भंडारमें सुरक्षित हैं। इन सब उल्लेखोंसे इस जातिकी महत्ता और ऐतिहासिकताका भली-भांति परिज्ञान हो जाता है। आज भी इसमें अनेक प्रतिष्ठित विद्वान, त्यागी और श्रीमान पाये जाते हैं। अन्वेषण होने पर इस जातिके विकास आदि पर विशेष प्रकाश पड़ सकता है। चंदेरी और उसके आस-पासके स्थानोंमें भी इस जातिके अनुयायी रहे हैं।

× पंचमंगलपाठ अर्थ सहित प्रकाशित हो चुका है, कुछ जकड़ी और रूपचन्द शतक पं० नाथूरामजी प्रेमीने 'जैनहितेषी' मासिक पत्रमें प्रकाशित किये थे; उनके अच्छे संस्करण निकालनेकी आवश्यकता है।

पद तथा संस्कृतका उक्त पाठ अभी तक अप्रकाशित ही हैं। रूपचन्द शतक-में सौ दोहे पाए जाते हैं जो बड़े ही शिक्षाप्रद हैं और विषयाभिलाषी भोगी जनोंको उनसे विमुख करानेकी प्रौढ़ शिक्षाको लिए हुए हैं। साथ ही आत्मस्वरूपके निर्देशक हैं।

नेमिनाथरासा एक सुन्दर कृति है जिसे मैंने सं० १९४४ में जयपुरमें आमेरके भट्टारक महेन्द्रकीर्तिके ग्रन्थ-भण्डारको अवलोकन करते हुए एक गुटकेमें देखा था और उसका आदि अन्त भाग नोट कर लिया था, जो इस प्रकार है:—

पणविविपंच परमगुरु मण-वच-काय ति-सुद्धि।
नेमिनाथ गुण गावउ उपजै निर्मल बुद्धि॥
सोरठ देश सुहावनौ पुहमीपुर परसिद्ध।
रस-गोरस परिपूरनु धन-जन-कनक समिद्ध॥
× × × ×
रूपचन्द जिन विनवै, हो चरननिको दासु।
मैं इय लोग सुहावनौ, विरच्यौ किंचित रासु॥ ४६॥
जो यह सुरधरि गावहि, चितदे सुनहिं जि कान।
मन वांछित फलु पावहिं ते नर नारि सुजान॥ ५०॥

इनकी एक और नवीन रचना देहलीके शास्त्रभण्डारमें मुझे प्राप्त हुई थी उसका नाम है 'खटोलनागीत'। इस रूपक खटोलनागीतमें १३ पद्य दिये हुए हैं जो भावपूर्ण हैं और आत्मसम्बोधनकी भावनाको लिए हुए हैं, जिन्हें भावार्थके साथ अनेकान्त वर्ष १० किरण २ में दिया जा चुका है।

इन सब रचनाओं परसे विज्ञ पाठक पांडे रूपचन्दजीके व्यक्तित्वका अनुमान कर सकते हैं। उनकी रचनायें कितनी सरल और भावपूर्ण हैं इसका भी सहज ही अनुभव हो जाता है।

१०८वीं प्रशस्ति 'सुखनिधान' नामक ग्रन्थकी है, जिसके कर्ता कवि जगन्नाथ हैं। जिनका परिचय ५९वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

१०९वीं और ११९वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः 'पद्मचरितटिप्पण' और

'पुराणसार' नामके ग्रन्थों की हैं, जिनके कर्ता मुनि श्रीचन्द्र हैं, जो लालबागड़संघ और बलात्कारगणके आचार्य श्रीनन्दीके शिष्य थे। श्रीचन्द्रने पण्डित प्रवचनसेनसे रविषेणाचार्यके पद्मचरितको सुनकर विक्रम सम्वत् १०८७ में सुप्रसिद्ध धारानगरीमें राजा भोजदेवके राज्यकालमें पद्म-चरित' टिप्पणको बनाकर समाप्त किया है।

इनकी दूसरी कृति 'पुराणसार' है जिसे उन्होंने उक्त धारा नगरीमें जयसिंह नामक परमार वंशी राजा भोजके राज्यकालमें सागरसेन मुनिसे महापुराण जानकर वि० सं० १०८५ में अथवा इसके आस-पासके समयमें रचा है। चूँकि प्रशस्तिमें लेखकोंकी कृपासे सम्वत् सम्बन्धी पाठ अशुद्ध हो गया है। इसीसे आस-पासके समयकी कल्पना की गई है। इन दो कृतियोंके अतिरिक्त मुनि श्रीचन्द्रकी दो कृतियोंका पता और भी चलता है। उनमें प्रथम ग्रन्थ महाकवि पुष्पदन्तके उत्तरपुराणका टिप्पण[1] है, जिसे उन्होंने सागरसेन नामके सैद्धान्तिकसे महापुराणके विषमपदोंका विवरण जानकर और मूल टिप्पणका अवलोकनकर उक्त टिप्पणकी रचना वि० सम्वत् १०८० में अपने भुजदण्डसे शत्रुराज्यको जीतने वाले राजा भोज-देवके राजकालमें की है१।

चौथी कृतिका उल्लेख विक्रमकी १३वीं शताब्दीके विद्वान पंडित आशाधरजीने भगवती आराधनाकी 'मूलाराधनादर्पण' नामक टीकाकी ५८६ नम्बरकी गाथाकी टीका करते हुए निम्न वाक्योंके साथ किया है—'कूरं भक्तं, श्रीचन्द्र टिप्पणके त्वेवमुक्तं। अत्र कथयार्थप्रतिपत्ति-र्यथा चन्द्रनामा सूपकार : इत्यादि।' इससे स्पष्ट है कि पं० आशा-

---

१—'श्रीविक्रमादित्य संवत्सरे वर्षाणामशीत्यधिकसहस्रे महापुराण-विषमपदविवरणं सागरसेनसैद्धान्तात्परिज्ञाय मूलटिप्पणिकां चावलोक्य कृतमिदं समुच्चय टिप्पणं अज्ञपातभीतेन श्री संघा (नन्द्या) चार्य सत्कवि शिष्येण श्रीचन्द्रमुनिना निजदौर्दण्डाभिभूतरिपुराज्यविजयिनः श्रीभोज-देवस्य।' —उत्तरपुराण टिप्पण

धरजीके समयमें भगवती आराधना पर श्रीचन्द्रका कोई टिप्पण मौजूद था। इस टिप्पण ग्रन्थके कर्ता उक्त श्रीचन्द्र ही जान पड़ते हैं। यह भी हो सकता है कि इस टिप्पणके कर्ता उक्त श्रीचन्द्रसे भिन्न कोई दूसरे[1] ही व्यक्ति हों, पर अधिक सम्भावना तो इन्हीं श्रीचन्द्रकी जान पड़ती है।

११०वीं प्रशस्ति 'श्री देवताकल्प' की है जिसके कर्ता भट्टारक अरिष्ट-नेमि अथवा मुनि नेमिनाथ त्रैविद्यचक्रवर्ती हैं। त्रैविद्यचक्रवर्ती नामकी एक उपाधि थी जिसके धारक अनेक आचार्य एवं भट्टारक हो गये हैं। यह उपाधि तीन भाषाओंके विज्ञ विद्वानोंको दी जाती थी। भ० अरिष्टनेमि गुणसेनके शिष्य और वीरसेनके प्रशिष्य थे।

ग्रन्थमें कोई रचनाकाल दिया हुआ नहीं है और न किसी राजादिकका भी कोई समुल्लेख किया गया है। ऐसी हालतमें भट्टारक अरिष्टनेमिका समय निश्चित करना इस समय साधन-सामग्रीके अभावमें सम्भव नहीं है। प्रशस्तिमें वीरसेनके शिष्य गुणसेन बतलाये गए हैं। ये गुणसेन वे ही जान पड़ते हैं जो सिद्धान्तसारके कर्ता नरेन्द्रसेन द्वारा स्मृत हुए हैं। यदि यह अनुमान ठीक हो तो कहना होगा कि भ० अरिष्टनेमि सेन-परम्पराके विद्वान थे और उनका काल विक्रमकी ११वीं १२वीं शताब्दी जान पड़ता है।

१११ वीं प्रशस्ति 'क्षपणासारगद्य' की है, जिसके कर्ता आचार्य माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव हैं, जो भाषात्रयमें निपुण होनेके कारण 'त्रैविद्य देव' की उपाधिसे अलंकृत थे। माधवचन्द्रने इस ग्रन्थकी रचना राजा भोजराजके बाहुबली नामक महामात्यकी संज्ञप्ति (ज्ञान प्राप्ति) के लिये की है। ये राजा भोजराज कौन थे, उनका राज्य कहाँ पर था और बाहुबली मंत्रीका क्या कुछ जीवन-परिचय है? आदि बातों पर प्रशस्ति परसे कोई प्रकाश नहीं पड़ता। हाँ, ग्रन्थका रचनाकाल प्रशस्तिमें जरूर दिया हुआ है, उससे मालूम होता है कि यह ग्रन्थ शक सं० ११२५ (वि० सं० १२६०)

---

[1] देखो, श्रीचन्द्र नामके तीन विद्वान् नामका मेरा लेख, अनेकान्त वर्ष ७ किरण ९–१० पृष्ठ १०३।

के दुंदुभि संवत्सरोंमें 'दुल्लकपुर' नामके नगरमें समाप्त हुआ है। यह दुल्लकपुर नगर आज कल कहाँ है यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका।

प्रशस्ति में उल्लिखित भ० सकलचन्द्र ही माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवके गुरु जान पड़ते हैं, जो मुनिचंद्रसूरिके शिष्य थे। प्रस्तुत सकलचन्द्र वे भट्टारक ज्ञात होते हैं जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं० ५० में पाया जाता है जो लगभग शक सं० १०६८ का लिखा हुआ है। इसमें अभयनन्दीके शिष्य सकलचन्द्रको सकलागममें निपुण बतलाया है। हो सकता है कि इन सकलचन्द्रके साथ क्षपणासारके कर्ताका कोई सामंजस्य बैठ सके। अथवा क्षपणासारके कर्ताके गुरु कोई भिन्न ही सकलचन्द्र हों। क्षपणासार ग्रंथकी प्रति जयपुरके तेरापंथी मन्दिरके शास्त्रभण्डारमें सं० १८१८ की लिखी हुई है।

माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव नामके कई ग्रन्थकार हो गए हैं। जिनमें एक माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव वे हैं जो आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके शिष्य थे और जिन्होंने त्रिलोकसारकी संस्कृतटीका लिखी है और माधवचन्द्र द्वारा रचित कतिपय गाथाएँ भी त्रिलोकसारमें आचार्य नेमिचंद्रकी सम्मतिसे मूलग्रंथमें यत्र तत्र समाविष्ट की गई हैं[1]। आचार्य नेमिचन्द्रका समय विक्रमकी ११वीं शताब्दी सुनिश्चित है; क्योंकि राजा राचमल्ल द्वितीयके मंत्री और प्रधान सेनापति चामुण्डरायने अपना पुराण शक सं० ६०० (वि० सं० १०३५) में समाप्त किया है। अतः यही समय उनके शिष्य माधवचन्द्र त्रिविद्यदेवका है। पर नेमिचन्द्रके शिष्य माधवचन्द्र त्रैविद्य इस क्षपणासारके कर्तासे भिन्न जान पड़ते हैं। वे एक नहीं हो सकते; क्यों कि इन दोनोंके समयमें १२५ वर्षके करीबका अन्तर पड़ता हैं। इनके सिवाय, मुनिदेवकीर्तिके शिष्य माधवचन्द्रव्रती और शुभचन्द्रके शिष्य माधवचन्द्र इन दोनोंसे भी यह भिन्न प्रतीत होते हैं, जिनका उल्लेख क्रमशः श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं० ३९ और ४१ में पाया जाता है।

---

१ गुरुणेमिचन्द्रसम्मदकदिवयगाहा तहिं तहिं रइया।
माहवचंदतिविज्जेणियमणुसरणिज्ज मज्जेहिं॥

११२ वीं प्रशस्ति 'षट्दर्शनप्रमाणप्रमेयसंग्रह' नामक ग्रन्थ की है। जिसके कर्ता भट्टारक शुभचन्द्र हैं। ये शुभचन्द्र कारणूरगण* के विद्वान थे, जो सिद्धान्तरूपी समुद्रके पारको पहुँचे हुए थे और विद्वानोंके द्वारा अभिवंदनीय थे। भट्टारक शुभचन्द्रने इस ग्रन्थमें आचार्य समन्तभद्रकी आप्तमीमांसागत प्रमाणके 'तत्त्वज्ञानं प्रमाणं' नामक लक्षणका उल्लेख करते हुए उसके भेद-प्रभेदोंकी चर्चा की है। ग्रन्थमें रचनाकाल दिया हुआ नहीं है, ये शुभचन्द्र कर्नाटक प्रदेशके निवासी हैं।

११३ वीं प्रशस्ति 'तत्त्वार्थवृत्तिपद' की है, यह ग्रन्थ गृद्धपिच्छाचार्यके तत्त्वार्थ सूत्रपर आचार्य प्रवर देवनन्दी अपर नाम (पूज्यपाद) के द्वारा रची गई 'तत्त्वार्थवृत्ति' (सर्वार्थसिद्धि) के अप्रकट (विषय) पदोंका टिप्पण है। जिसके कर्ता आचार्य प्रभाचन्द्र हैं जो पद्मनंदीके शिष्य थे। इनका परिचय ९४ वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

११४ वीं प्रशस्ति 'करकण्डु चरित्र' की है। जिसके कर्ता भट्टारक शुभचंद्र हैं। जिनका परिचय ३२वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

११५ वीं प्रशस्ति 'शांतिकविधि' की है जिसके कर्ता पं० धर्मदेव हैं, जो पौरपाटान्वय (परवारकुल) में उत्पन्न हुए थे। और वाग्भट्ट नामक श्रावकके पुत्र वरदेव (नरदेव) प्रतिष्ठा शास्त्रके जानकार हुए। उनके छोटे भाई श्रीदत्त थे जो सर्व शास्त्र विशारद थे। उनकी मानिनी नामकी धर्मपत्नी थी उससे धर्मदेव नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था और गोगा नामका दूसरा। प्रस्तुत धर्मदेव ही इस शान्तिकविधिके रचयिता हैं। इनका समय क्या है यह ग्रन्थ-प्रशस्ति परसे कुछ भी ज्ञात नहीं होता। पर विक्रमकी १५वीं, १६वीं शताब्दीसे पूर्वका यह ग्रन्थ नहीं जान पड़ता।

---

* कारणूरगणमें अनेक विद्वान् हो गए हैं। श्रवणबेल्गोलके समीपवर्ती सोमवार नामक ग्रामकी पुरानी बस्तिके समीप शक सं० १००१ के उत्कीर्ण किये हुए शिलालेखमें कारणूरगणके प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेवका उल्लेख निहित है।

११६वीं प्रशस्ति 'अम्बिकाकल्प' की है जिसके कर्ता भ० शुभचन्द्र हैं, जिन्होंने जिनदत्तके अनुरोधसे ब्रह्मशीलके पठनार्थ एक दिनमें इस ग्रन्थकी रचना की है। भ० शुभचन्द्र नामके कई विद्वान हो गए हैं। उनमें से यह ग्रन्थ कृति कौनसे शुभचंद्रकी है यह ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्तिपरसे कुछ भी ज्ञात नहीं होता, बहुत सम्भव है कि इसके रचयिता ३२ नं० की प्रशस्ति वाले भ० शुभचन्द्र हों जिनका समय १६वीं, १७वीं शताब्दी सुनिश्चित है।

११७वीं प्रशस्ति 'तत्त्वार्थरत्नप्रभाकर' अर्थात् तत्त्वार्थ टिप्पण' की है जिसके कर्ता भट्टारक प्रभाचन्द्र हैं जो आचार्य नयसेनकी संततिमें होने वाले हेमकीर्ति भट्टारकके शिष्य और भ० धर्मचन्द्रके पट्ट शिष्य थे और काष्ठान्वयमें प्रसिद्ध थे। इन्होंने सकीट नगरमें. जो एटा जिलेमें आबाद हैं, लंबकंचुक (लमेचू) आम्नायके सकरू (तू) साहूके पुत्र पंडित सोनिककी प्रार्थना पर उमास्वातिके प्रसिद्ध तत्त्वार्थसूत्र पर 'तत्त्वाथरत्न प्रभाकर' नामकी यह टीका 'जैता' नामक ब्रह्मचारीके प्रबोधनार्थ लिखी हैं। इसका रचनाकाल वि० सं० १४८६ भाद्रपद शुक्ला पंचमी है जिससे यह प्रभाचन्द्र विक्रमकी १५वीं शताब्दीके उत्तरार्धके विद्वान हैं

११८वीं प्रशस्ति 'गणितसारसंग्रह' की है, जिसके कर्ता आचार्य महावीर हैं। प्रस्तुत ग्रन्थमें गणितका सुन्दर विवेचन किया गया है इस ग्रन्थकी रचना आचार्य महावीरने राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्षके राज्यकालमें की है। अमोघवर्षके राज्यकालकी प्रशस्तियाँ शक सं० ७३८ से ७९९ तक की मिली हैं[१]। शक सम्वत ७८८ का एक ताम्रपत्र भी मिला है, जो उनके राज्यके ५२वें वर्षमें लिखा गया है[×]। इन उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि राजा अमोघवर्षने सन् ८१५ से ८७७ तक राज्य किया है। अमोघवर्षके गुरु

---

[१] देखो, भारतके प्राचीन राजवंश भाग ३ पृ० ३९।

[×] Dr. Altekar, The Rasetrakuta and Their Times. P. 71.

जिनसेनाचार्य थे । पार्श्वाभ्युदयकाव्यके सर्गोंकी अन्तिम पुष्पिकाओंमें अमोघवर्षको 'परमगुरु' लिखा१ है और ग्रन्थकी अन्तिम प्रशस्तिमें उनके राज्यके सर्वदा बने रहनेकी कामना की गई है२ । और गणितसार-संग्रहके छठवें पद्यमें नृप तुंगदेवके धर्मशासनकी वृद्धिकी कामना की गई है३ । इतना ही नहीं, किन्तु ग्रन्थके प्रारंभिक मंगलपद्योंके बाद ५ पद्योंमें राजा अमोघवर्षके जैनदीक्षा लेनेके बाद उन्हें प्राणिवर्गको सन्तुष्ट करने तथा निरीति निरवग्रह करने वाला स्वेष्टहितैषी बतलाया गया है । साथ ही पापरूपी शत्रुओंका अनीहित चित्तवृत्तिरूपी तपोग्निमें भस्म होनेका समुल्लेख है और वे काम-क्रोधादि अन्तरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेके कारण अवन्ध्यकोप हो गए थे । तथा सम्पूर्ण जगतको वशमें करनेवाले और स्वयं किसीके वशमें नहीं होने वाले अपूर्वमकरध्वज भी थे । राजमण्डलको वश करनेके अतिरिक्त तपश्चरण द्वारा संसारचक्रके परिभ्रमणको विनिष्ट करने वाले रत्नगर्भ (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रयके धारक) ज्ञानवृद्धि और मर्यादावप्रभेदी द्वारा यथाख्यात चारित्ररूपी समुद्रको प्राप्त हुए थे । इन सर्व उल्लेखोंमें राजा अमोघवर्षकी मुनिवृत्तिका चित्र अंकित किया गया है । राजा अमोघवर्षके विवेकपूर्वक राज्यत्याग करनेका उल्लेख उन्होंने स्वयं अपनी 'रत्नमाला' के अन्तिम पद्यमें किया है । जिसमें उनका विवेक पूर्वक राज्य छोड़कर अन्तिम जीवन जैनमुनिके रूपमें बितानेका स्पष्ट उल्लेख किया गया है ।

आचार्य महावीरने अपना यह ग्रन्थ कब बनाया इसका स्पष्ट उल्लेख ग्रन्थ प्रशस्तिमें नहीं है । हो सकता है कि ग्रंथका समाप्ति-सूचक कोई

---

१ 'इत्यमोघवर्ष परमेश्वर परमगुरु श्रीजिनसेनाचार्य विरचिते मेघदूत वेष्टिते पार्श्वाभ्युदये भगवत्कैवल्य वर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ।'

२ 'भुवनभवतुदेवः सर्वदामोघवर्षः ।'

३ विध्वस्तैकान्तपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिनः ।
देवस्य नृपतुंगस्य वर्धतां तस्य शासनम् ॥

अन्तिम पद्य ग्रन्थमें रहा हो, और वह लेखकोंकी कृपासे छूट गया हो; क्योंकि ग्रंथमें अन्तिम समाप्ति-सूचक कोई प्रशस्ति लगी हुई नहीं है। यह प्रशस्ति ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन बम्बईकी सम्वत् १४७५ की लिखी हुई प्रति परसे ली गई है। आद्य प्रशस्तिके पद्योंसे यह स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ राजा अमोघवर्षके विवेकसे राज्यत्याग देनेके बाद लिखा गया है। अतः इस ग्रन्थकी रचना सन् ८७७ के बाद हुई जान पड़ती है।

११९वीं प्रशस्ति 'पुराणसार' की है, जिसके कर्ता मुनि श्रीचन्द्र हैं। जिनका परिचय १०९वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

१२०वीं प्रशस्ति 'शान्तिनाथपुराण' की है जिसके कर्ता भट्टारक श्री भूषण हैं। जिनका परिचय ७१वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

१२१वीं प्रशस्ति 'वृषभदेवपुराण' की है जिसके कर्ता भट्टारक चन्द्र-कीर्ति हैं, जिनका परिचय २९वीं पार्श्वपुराणकी प्रशस्तिमें दिया गया है।

१२२वीं प्रशस्ति 'सुभगसुलोचनाचरित' की है जिसके कर्ता भट्टारक 'वादिचन्द्रसूरि' हैं, जिनका परिचय १८वीं 'ज्ञानसूर्योदयनाटक' की प्रशस्तिमें दिया गया है।

१२३ वीं और १२४ वीं प्रशस्तियाँ आचार्य पुंगव धरसेनके शिष्य भगवान पुष्पदन्त भूतबलीके षट्खण्डागमकी प्रसिद्ध टीका धवला और गुणधराचार्यके 'पेज्जदोसपाहुड' (कषाय प्राभृत) की टीका जयधवलाकी हैं। जिनमेंसे प्रथमके कर्ता आचार्य वीरसेन और दूसरीके वीरसेन तथा उनके शिष्य जिनसेनाचार्य हैं। आचार्य वीरसेन और जिनसेन अपने समयके महान विद्वान और तपस्वी योगीन्द्र थे। आचार्य जिनसेनने[1] अपने गुरु

१—श्री वीरसेन इत्यात्तभट्टारकपृथुपथः ।
स नः पुनातु पूतात्मा वादिवृन्दारको मुनिः ॥
लोकवित्वं कवित्वं च स्थितं भट्टारके द्वयं ।
वाग्मिता वाग्मिनो यस्य वाचा वाचस्पतेरपि ॥ —आदिपु०

वीरसेनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि वे वादि-वृंदारक, लोकवित्, कवि और वाग्मी थे इतना ही नहीं; किन्तु उन्हें श्रुतकेवलितुल्य भी बतलाया है, उनकी सर्वार्थगामिनी नैसर्गिक प्रज्ञाका अवलोकनकर मनीषियोंको सर्वज्ञकी सत्तामें कोई सन्देह नहीं रहा था। धवला टीकाकी अन्तिम प्रशस्तिमें उन्हें सिद्धान्त छन्द ज्योतिष व्याकरण और प्रमाणशास्त्रोंमें निपुण बतलाया है। साथ ही यह भी सूचित किया है कि सिद्धांत-सागरके पवित्र जलमें धोई हुई शुद्धबुद्धिसे वे प्रत्येकबुद्धोंके साथ स्पर्धा करते थे१। आचार्य जिनसेनके शिष्य गुणभद्रने उनकी देहको ज्ञान और चारित्रकी अनुपम सामग्रीसे निर्मित बतलाया है२। इसमें सन्देह नहीं कि आचार्य वीरसेन असाधारण प्रज्ञाके धनी, कविचक्रवर्ती कुशल टीकाकार और विविध विषयोंके प्रकाण्ड विद्वान थे। धवला टीका उनके विशाल पाण्डित्य और बहुश्रुतज्ञताका फल है। वह कितनी प्रमेय बहुल है और सूत्ररूप गंभीर विवेचनाको कितने संक्षिप्त रूपमें प्रस्तुत करती है और सचमुचमें कैसी सूत्रार्थ दर्शिनी है यह अध्येताजन भलीभांति जानते हैं। प्राकृत और संस्कृत मिश्रित भाषा भी उनकी बड़ी ही प्रांजल और मधुर प्रतीत होती है। तपश्चर्या और ज्ञानसाधनाके साथ-साथ उनकी अनुपम साहित्य-सेवाने उन्हें और उनकी कृतियोंको अमर बना दिया है।

१—यं प्राहुः प्रस्फुरद्बोधदीधितिप्रसरोदयं।
श्रुतकेवलिनं प्राज्ञाः प्रज्ञाश्रमण सत्तमम्॥
यस्य नैसर्गिकीं प्रज्ञां दृष्ट्वा सर्वार्थगामिनीं।
जाताः सर्वज्ञसद्भावे निरारेका मनीषिणः॥
प्रसिद्धसिद्धसिद्धांतवार्धिवार्धौतशुद्धधीः।
सार्धं प्रत्येकबुद्धैर्यः स्पर्धते धीद्धबुद्धिभिः॥ —जयधवला

२—ज्ञानचारित्रसामग्रीमग्रहीदिव विग्रहम्।
विराजते विधातुं यो विनेयानामनुग्रहम्॥ —उत्तरपुराण प्रशस्ति

आचार्य वीरसेन मूलसंघके 'पंचस्तूपान्वय'* में हुए हैं। पंचस्तूपान्वयकी परम्परा एक प्राचीन परम्परा है जो बादमें 'सेनसंघ' के नामसे लोकमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुई बतलाई जाती है। वीरसेन आचार्य चन्द्रसेनके प्रशिष्य और आचार्य आर्यनंदीके शिष्य थे। वीरसेनने चित्रकूटमें जाकर एलाचार्यके समीप षट्खण्डागम और कषाय-प्राभृत जैसे सिद्धान्त ग्रंथोंका अध्ययन किया था और फिर उन्होंने ७२ हजार श्लोक प्रमाण 'धवला' और बीस हजार श्लोक प्रमाण जयधवलाके पूर्वभागका निर्माण किया था। इन दोनों टीकाग्रन्थोंके अतिरिक्त आचार्य गुणभद्रने अपने उत्तरपुराणमें‡ 'सिद्धभूपद्धति टीका' के रचे जानेका और भी उल्लेख

---

* 'पंचस्तूपान्वय' की दिगम्बर परम्परा बहुत प्राचीन है। आचार्य हरिषेणने अपने कथाकोशमें वैरमुनिके कथाके निम्नपद्यमें मथुरामें पंचस्तूपोंके बनाये जानेका उल्लेख किया है—

महारजतनिर्माणान स्वस्तिकान् मणिनायकैः ।
पञ्चस्तूपान्विधायाग्रे समुच्चजिनवेश्मनाम् ॥

आचार्य वीरसेनने धवलामें और उनके प्रधानशिष्य जिनसेनने जयधवला टीका प्रशस्तिमें पंचस्तूपान्वयके चन्द्रसेन और आर्यनंदी नामके दो आचार्योंका नामोल्लेख किया है जो आचार्य वीरसेनके गुरु प्रगुरु थे। इन दोनों उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि पंचस्तूपान्वयकी परम्परा उस समय चल रही थी और वह बहुत प्राचीनकालसे प्रचारमें आ रही थी। पंचस्तूपनिकायके आचार्य गुहनंदीका उल्लेख पहाड़पुरके ताम्रपत्रमें पाया जाता है. जिसमें गुप्त संवत् १५९ सन् ४७८ में नाथशर्मा ब्राह्मणके द्वारा गुहनंदीके विहारमें अर्हन्तोंकी पूजाके लिये तीन आमों और अशर्फियोंके देनेका उल्लेख है (एपिग्राफिया इंडिका भा० २० पेज ५९)। इससे स्पष्ट है कि सन् ४७८ से पूर्व 'पंचस्तूपनिकाय' का प्रचार था और उसमें अनेक आचार्य होते रहे हैं।

‡ सिद्धभूपद्धतिर्यस्य टीकां संवीक्ष्य भिक्षुभिः ।
टीक्यते हेलयान्येषां विषमापि पदे पदे ॥—उत्तरपुराण ६

किया है। जो सिद्धभूपद्धति ग्रन्थ पद पद पर अत्यन्त विषम अथवा कठिन था वह वीरसेनकी उक्त टीकासे भिक्षुओंके लिये अत्यन्त सुगम हो गया। यह ग्रन्थ किस विषयका था, इसकी कोई सूचना कहींसे प्राप्त नहीं होती। हाँ, श्रद्धेय 'प्रेमी'जीने उसे गणितका ग्रन्थ बतलाया है। हो सकता है कि वह गणितका ग्रन्थ हो अथवा अन्य किसी विषयका। यदि गणितका ग्रन्थ होता तो आचार्य वीरसेन और जिनसेन उसका धवला जयधवलामें उल्लेख अवश्य करते। अस्तु, खेद है कि ऐसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ आज भी हमारी आंखोंसे ओझल है। नहीं मालूम किसी भण्डारमें उसका अस्तित्व है भी, अथवा नहीं। वास्तवमें इस दिशामें समाजकी उपेक्षा बहुत खलती है। उसके प्रमादसे जैन संस्कृतिकी कितनी ही महत्वपूर्ण कृतियाँ दीमकों व कीटकादिकोंका भक्ष्य बन गई और बनती जा रही हैं।

धवला टीकाकी अन्तिम प्रशस्तिका पाठ लेखकोंकी कृपासे कुछ भ्रष्ट एवं अशुद्ध हो गया है। डा० हीरालालजी एम० ए० ने धवलाके प्रथम खण्डमें प्रशस्तिके उन पद्योंका कुछ संशोधन कर उसे शक सम्वत् ७३८ (वि० सं० ८७३) की कृति बतलाया है१। परन्तु बाबू ज्योतिप्रसादजी एम० ए० लखनऊने उसे विक्रम सम्वत् ८३८ की रचना बतलाया है२। और डा० हीरालालजीके द्वारा संशोधित पाठको अशुद्ध बतलाते हुए ज्योतिषके आधारसे उक्त गणनाको भ्रामक ठहराया है। इस कारण धवला टीकाका रचनाकाल अभी विवादका विषय बना हुआ है। उसके सम्बन्धमें अभी और भी अन्वेषण करनेकी आवश्यकता है, जिससे उक्त दोनों मान्यताओं पर पूरा विचार किया जा सके और अन्तिम निष्पक्ष निर्णय किया जा सके। इसके लिये हैदराबादके आस-पासके प्राचीन स्थानों, मूर्तिलेखों, शास्त्रभंडारों और शिलालेखोंका संकलन एवं मन्थन करनेका प्रयत्न करना आवश्यक है। इन परसे सामग्रीका संकलन होने पर नया प्रकाश पड़नेके

---

१ देखो, धवला प्रथमखण्ड प्रस्तावना पृष्ठ ३५

२ देखो, अनेकान्त वर्ष ८ किरण २

साथ-साथ कई ऐतिहासिक गुत्थियाँ भी सुलझनेकी आशा है।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि आचार्य वीरसेनने धवला टीकाको राष्ट्रकूट राजा जगतुंगदेव (गोविन्द तृतीय) के राज्यकालमें प्रारम्भ करके उनके उत्तराधिकारी राजा बोद्दणराय (अमोघवर्ष) के राज्यकालमें समाप्त किया था। अमोघवर्ष गोविन्द तृतीयके पुत्र थे और जो नृपतुंग, पृथिवी-वल्लभ, लक्ष्मीवल्लभ, वीरनारायण, महाराजाधिराज और परम भट्टारक जैसी अनेक उपाधियोंके स्वामी थे। इन्होंने ६३ वर्ष पर्यन्त राज्यशासन किया है। अमोघवर्ष राज्य करते हुए भी जैनगुरु जिनसेनाचार्यके समीप में बीच बीचमें कुछ समयके लिये जाया करते थे और एकान्तवास द्वारा आत्म-साधनाकी ओर अग्रसर होनेका प्रयत्न करते थे। फलस्वरूप उन्होंने विवेकपूर्ण राज्यका परित्याग कर 'रत्नमाला' नामकी पुस्तक बनाई है। उनके जैन संयमी जीवनका दिग्दर्शन उन्हींके राज्यमें रचे जाने वाले महावीराचार्यके 'गणितसारसंग्रह'के प्रारम्भिक पद्योंमें पाया जाता है। कुछ भी हो, वीरसेनाचार्य विक्रमकी ९वीं शताब्दीके बहुश्रुत विद्वान थे। उनके अनेक शिष्य थे[1] जिनमें जिनसेनाचार्यको प्रमुख स्थान प्राप्त था जिनसेन विशाल बुद्धिके धारक, कवि और विद्वान् थे। इन्हींसे आचार्य गुणभद्रने लिखा है कि—जिस प्रकार हिमाचलसे गंगाका, सकलज्ञसे (सर्वज्ञसे) दिव्यध्वनिका और उदयाचलसे भास्कर (सूर्य) का उदय होता है उसी प्रकार वीरसेनसे जिनसेन उदयको प्राप्त हुए हैं। जिनसेन वीरसेनके वास्तविक उत्तराधिकारी थे। जयधवलाकी अन्तिम प्रशस्तिमें उन्होंने अपना परिचय बड़े ही सुन्दर ढंगसे दिया है और लिखा है कि 'वे अविद्ध-कर्ण थे—कर्णवेध संस्कार होनेसे पूर्व ही दीक्षित हो गए थे और बादमें उनका कर्णवेध संस्कार ज्ञानशलाकासे हुआ था। वे बालब्रह्मचारी थे और

---

[1] आचार्य वीरसेनके शिष्योंमें सम्भवतः जिनसेन विनयसेनके सिवाय पद्मसेन और देवसेन भी रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं, पर ऐसा निश्चित उल्लेख मेरे देखनेमें नहीं आया।

शरीरसे दुबले-पतले थे परंतु तप गुणमें दुर्बल नहीं थे। बड़े साहसी, गुरुभक्त और विनयी थे और बाल्यावस्थासे जीवनपर्यंत अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत के धारक थे। स्वाभाविक मृदुता और सिद्धांतमर्मज्ञता गुण उनके जीवन-सहचर थे। इनकी गम्भीर और भावपूर्ण सूक्तियां बड़ी ही सुन्दर और रसीली हैं, कवितारस और अलंकारोंके विचित्र आभूषणोंसे अलंकृत हैं। बाल्यावस्थासे ही उन्होंने ज्ञानकी सतत आराधनामें जीवन बिताया था, सैद्धांतिक रहस्योंके मर्मज्ञ तो थे ही और उनका निर्मल यश लोकमें सर्वत्र विश्रुत था। इन्होंने अपने गुरु वीरसेनाचार्यकी मृत्युके बाद जयधवलाकी अधूरी टीकाको शक सम्वत् ७५९ [वि० सम्वत् ८९४] में समाप्त किया था। इसके अतिरिक्त इनकी दो कृतियां और हैं, आदिपुराण और पार्श्वाभ्युदय काव्य। इनमें आदिपुराण पौराणिक ग्रंथ होते हुए भी उच्च-कोटिका एक महाकाव्य है जो भव्य, मधुर, सुभाषित और रस-अलंकारादि काव्योचित गुणोंसे अलंकृत है। रचना सौष्ठव देखते ही बनता है। रचना सूक्ष्म अर्थ और गूढ़ पदवाली है। यह ग्रंथ अधूरा रह गया था जिसे उनके शिष्य गुणभद्रने १६२० श्लोक बनाकर पूरा किया है और फिर उत्तरपुराणकी रचना स्वयं की है पार्श्वाभ्युदय काव्य तो अपनी कोटिका एक ही है, उसमें मेघदूतके विरही यक्षकी कथा और पद्योंको कितने अच्छे ढंगसे समाविष्ट किया गया है यह देखते ही बनता है।

जयधवलाकी इस प्रशस्तिमें पद्मसेन, देवसेन और श्रीपाल नामके तीन विद्वानोंका उल्लेख किया गया है। जिससे वे जिनसेनके सधर्मा अथवा गुरुभाई जान पड़ते हैं और जयधवलाको तो उन्होंने श्रीपालके द्वारा सम्पादित भी बतलाया है। इससे श्रीपाल आचार्य उस समयके सिद्धांतज्ञ सुयोग्य विद्वान् जान पड़ते हैं।

१२५ वीं प्रशस्ति 'आराधना पताका' की है, जिसके कर्ता वीरभद्राचार्य हैं। प्रस्तुत ग्रंथमें ९९० गाथाएँ पाई जाती हैं और ग्रन्थका रचनाकाल वि० सं० १००८ दिया है। वीरभद्राचार्यकी गुरुपरम्परा क्या है और वे कहाँ के निवासी थे, यह उक्त प्रशस्ति परसे कुछ ज्ञात नहीं होता।

१२६ वीं और १२७ वीं प्रशस्तियां क्रमशः 'रिष्ट समुच्चय-शास्त्र' और 'अर्घकाण्ड' की हैं, जिनके रचयिता दुर्गदेव हैं जो संयमसेन मुनीन्द्रके शिष्य थे। संयमसेनकी बुद्धि षट्दर्शनोंके अभ्याससे तर्कमय हो गई थी, वे पंचांग शब्द-शास्त्रमें कुशल तथा समस्त राजनीतिमें निपुण थे और वादिरूपी गजोंके लिये सिंह थे, तथा सिद्धांत समुद्रके रहस्यको पहुँचे हुए थे। उन्हींकी आज्ञासे 'मरणकरण्डिका' आदि अनेक प्राचीन ग्रंथोंका उपयोगकर 'रिष्ट समुच्चय' नामके इस ग्रन्थकी रचना की गई है। यह ग्रंथ वि० संवत् १०८६ की श्रावण शुक्ला एकादशीको मूलनक्षत्रके समय लक्ष्मी निवास श्रीनिवास राजाके राज्यकालमें कुम्भनगरके शांतिनाथ मंदिरमें बनकर समाप्त हुआ है। प्रशस्तिमें दुर्गदेवने अपनेको 'देशयती' बतलाया है, जिससे वे श्रावकके व्रतोंके अनुष्ठाता क्षुल्लक साधु जान पड़ते हैं। इस ग्रंथकी कुल गाथा संख्या २६१ है और यह ग्रंथ बादको 'सिंघी जैन सीरीज' में प्रकाशित भी हो चुका है।

इनकी दूसरी कृति 'अर्घकांड' है जिसकी गाथा संख्या १४६ है, जो वस्तुओंकी मन्दी-तेजीके विज्ञानको लिए हुए है। यह इस विषयका महत्वपूर्ण ग्रन्थ जान पड़ता है। ग्रन्थमें रचनाकाल दिया हुआ नहीं है। यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है और प्रकाशनके योग्य है।

तीसरा ग्रन्थ मन्त्रमहोदधि' है जिसका उल्लेख 'बृहट्टिप्पणिका'[1] में 'मंत्रमहोदधि प्रा० दिगंबर श्री दुर्गदेवकृत–मू० गा० ३६' इस रूपमें किया गया है। यह अभीतक अप्राप्य है। इसके अन्वेषणकी आवश्यकता है।

१२५वीं और १२६वीं प्रशस्तियां क्रमशः 'परमागमसार' और 'भाव-संग्रह' ग्रंथों की हैं, जिनके कर्ता श्रुतमुनि हैं। श्रुतमुनि मूलसंघ, देशीयगण और पुस्तकगच्छकी इंगलेश्वर शाखामें हुए हैं। उनके अणुव्रत गुरु बालेंदु या बालचंद्र थे, महाव्रतगुरु अभयचन्द्र सैद्धांतिक थे और शास्त्रगुरु अभयसूरि तथा प्रभाचंद्र नामक मुनि थे, जो सारत्रयमें—समयसार प्रवचनसार

---

१ देखो, जैन साहित्य संशोधक प्रथमखण्ड, अंक ४ पृ० १५७

और पंचास्तिकायसारमें--निपुण थे। श्रुतमुनिने चारुकीर्ति नामके मुनिका भी जयघोष किया है जो श्रवणबेलगोलकी भट्टारकीय गद्दीके पट्टधर थे और चारु-कीर्ति नाम उनका रूढ हुआ जान पड़ता है; क्योंकि उस गद्दी पर बैठनेवाले सभी भट्टारक 'चारुकीर्ति' नामसे सम्बोधित होते हैं। भावसंग्रहकी प्रशस्ति-में उसका रचनाकाल दिया हुआ नहीं है, किन्तु परमागमसारकी प्रशस्तिमें उसका रचनाकाल शक सम्वत् १२६३ (वि० सम्वत् १३९८) वृष-सम्वत्सर मगसिर सुदी सप्तमी गुरुवारके दिन बतलाया गया है१। जिस-से श्रुतमुनि विक्रमकी १४वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धके विद्वान जान पड़ते हैं।

१३०वीं प्रशस्ति 'आयज्ञानतिलक' सटीक की है, जिसके कर्ता भट्ट-वोसरि हैं, जो दिगम्बराचार्य श्रीदामनन्दीके शिष्य थे। यह ग्रन्थ शास्त्रका एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें २५ प्रकरणोंमें ४१५ गाथाएँ दी हुई हैं। ग्रन्थकर्ताकी स्वोपज्ञ वृत्ति भी साथमें लगी हुई है, जिससे विषयको सम-झनेमें बहुत कुछ सहायता मिल जाती है। यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित ही है। ग्रन्थकी रचना कब हुई और यह टीका कब बनी इनके जाननेका अभी कोई स्पष्ट आधार प्राप्त नहीं है।

हाँ, यह बतलाया गया है कि भट्टवोसरिके गुरु दामनन्दी थे। यह दामनन्दी वे ही प्रतीत होते हैं जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं० ५५ में पाया जाता है। जिसमें लिखा है कि दामनन्दीने महावादी 'विष्णुभट्ट' को वादमें पराजित किया था। इसी कारण लेखमें उन्हें 'विष्णु-भट्ट घरट्ट' जैसे विशेषणसे उल्लेखित किया है। उक्त लेखके अनुसार दामनन्दी उन प्रभाचन्द्राचार्यके सधर्मा अथवा गुरुभाई थे जिनके चरण धाराधीश्वर जयसिंह द्वारा पूजित थे और जिन्हें उन गोपनन्दी आचार्यका सधर्मा भी बतलाया गया है जिन्होंने कुवादि दैत्य 'धूर्जटि' को वादमें

---

१ सगगाले हु सहस्से विसय-तिसट्ठी १२६३ गदे दु विसवरसे।
मगसिर सुद्ध सत्तमि गुरवारे गंथ संपुण्णो ॥

—परमागमसार प्रशस्ति।

पराजित किया था। 'भूजंटि' का अर्थ महादेव भी होता है अतः यह संभव प्रतीत होता है कि यह महादेव वही हों जिनका उल्लेख टीकामें किया गया है।

यदि उक्त दामनन्दी शिलालेख-गत ही हैं जिसकी बहुत कुछ सम्भावना है तो इनका समय आचार्य प्रभाचन्द्रके समकक्ष विक्रम की ११ वीं शताब्दी होना चाहिये और इनके शिष्य भट्टवोसरिका विक्रम की १२ वीं शताब्दीका पूर्वार्ध अथवा दस-पांच वर्ष पीछेका हो सकता है। क्योंकि प्रभाचन्द्र का समय १२ वीं शताब्दीके पूर्वार्ध तक पहुंचता है।

१३१वीं प्रशस्ति 'अध्यात्म तरंगिणी टीका' की है, जिसके कर्ता मुनि गणधरकीर्ति हैं। अध्यात्म तरंगिणी नामक संस्कृत भाषाका एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसकी श्लोक संख्या चालीस है। इस ग्रन्थका नाम बम्बईके ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवनकी प्रतिमें, तथा श्री महावीरजीके शास्त्र भण्डारकी प्रतिमें भी 'योगमार्ग' दिया हुआ है। चूंकि ग्रन्थमें 'योगमार्ग' और योगीका स्वरूप बतलाते हुये आत्म-विकासकी चर्चा की गई है। इस कारण ग्रन्थका यह नाम भी सार्थक जान पड़ता है। इस ग्रन्थके कर्ता हैं आचार्य सोमदेव। यद्यपि सोमदेव नामके अनेक विद्वान हो गए हैं; परन्तु प्रस्तुत सोमदेव उन सबसे प्राचीन प्रधान और लोकप्रसिद्ध विद्वान थे। सोमदेवकी उपलब्ध कृतियाँ उनके महान पाण्डित्यकी निदर्शक हैं। संस्कृत भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था, वे केवल काव्यमर्मज्ञ ही न थे; किन्तु राजनीतिके प्रकाण्ड पण्डित थे। वे भारतीय काव्य-ग्रन्थोंके विशिष्ट अध्येता थे। दर्शनशास्त्रोंके मर्मज्ञ और व्याकरण शास्त्रके अच्छे विद्वान थे उनकी वाणीमें ओज, भाषामें सौष्ठवता और काव्य-कलामें दक्षता तथा रचनामें प्रसाद और गाम्भीर्य है। सोमदेवकी सूक्तियाँ हृदयहारिणी थीं। इन्हीं सब कारणोंसे उस समयके विद्वानोंमें आचार्य सोमदेवका उल्लेखनीय स्थान था।

आचार्य सोमदेव 'गौड़संघ' के विद्वान आचार्य यशोधरदेवके प्रशिष्य

और नेमिदेवके शिष्य थे। सोमदेवने अपना यशस्तिलक चम्पू नामका काव्य ग्रन्थ बनाकर उस समय समाप्त किया था, जब शक सम्वत् ८८१ (वि० सं० १०१६) में सिद्धार्थ संवत्सरान्तर्गत चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिन, श्रीकृष्णदेव (तृतीय), जो राष्ट्रकूट वंशके राजा अमोघवर्षके तृतीय पुत्र थे, जिनका दूसरा नाम 'अकालवर्ष' था, पाण्ड्य, सिंहल, चोल और चेर आदि राजाओंको जीतकर मेल्पाटी (मेलाड़ि नामक गाँव) के सेना शिविरमें विद्यमान थे। उस समय उनके चरणकमलोपजीवी सामन्त बद्दिगको जो चालुक्यवंशीय राजा अरिकेसरी प्रथमके पुत्र थे—गंगधारा नगरीमें उक्त ग्रंथ समाप्त हुआ था*।

शक सम्वत् ८८८ वि० सं० १०२३) के अरिकेसरी वाले दानपत्रसे, जो उनके पिता बद्दिगदेवके बनवाए हुए शुभधाम जिनालयके लिए आचार्य सोमदेवको दिया गया था। उससे यह स्पष्ट है कि यशस्तिलकचम्पूकी रचना इस ताम्रपत्रसे सात वर्ष पूर्व हुई है×।

यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि जैन समाजके दिगम्बर श्वेताम्बर विभागोंमेंसे श्वेताम्बर समाजमें राजनीतिपर सोमदेवके 'नीति-वाक्यामृत' जैसा राजनीतिका कोई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा गया हो यह ज्ञात नहीं होता, पर दिगम्बर समाजमें राजनीति पर सोमदेवाचार्यका 'नीति-वाक्यामृत तो प्रसिद्ध ही है। परन्तु यशस्तिलकचम्पूमें राजा यशोधरका

---

* शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेष्वष्टस्वेकाशीत्यधिकेषु गतेषु (८८१) सिद्धार्थसंवत्सरान्तर्गतचैत्रमास - मदनत्रयोदश्यां पाण्ड्य - सिंहल-चोल-चेरमप्रभृतीन्महीपतीन्प्रसाध्य मेलपाटी प्रवर्धमानराज्यप्रभावे सति तत्पाद-पद्मोपजीविनः समधिगत पञ्चमहाशब्दमहासामन्ताधिपतेश्चालुक्यकुलजन्मनः सामन्तचूडामणेः श्रीमदरिकेसरिणः प्रथमपुत्रस्य श्रीमद्बद्दिगराजस्य लक्ष्मी-प्रवर्धमान वसुधारायां गङ्गधारायां विनिर्मापितमिदं काव्यमिति।

—यशस्तिलकचम्पू प्रशस्ति

× देखो, एपिग्राफिका इंडिका पृष्ठ २८१ में प्रकाशित करहाड ताम्रपत्र।

चरित्र चित्रण करते हुए कविने उक्त ग्रन्थके तीसरे आश्वासमें राजनीतिका विशद विवेचन किया है। परन्तु राजनीतिकी वह कठोर नीरसता, कवित्वकी कमनीयता और सरसताके कारण ग्रन्थमें कहीं भी प्रतीत नहीं होती और उससे आचार्य सोमदेवकी विशाल प्रज्ञा एवं प्रांजल प्रतिभाका सहजही पता चल जाता है।

सोमदेवाचार्यके इस समय तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, नीतिवाक्यामृत, यशस्तिलकचम्पू और अध्यात्मतरंगिणी। इनके अतिरिक्त नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिसे तीन ग्रन्थोंके रचे जानेका और भी पता चलता है—युक्तिचिंतामणि, त्रिवर्गमहेन्द्रमातलिसंजल्प और षण्णवतिप्रकरण। इसके सिवाय, शकसंवत् ८८८ के दानपत्रमें आचार्य सोमदेवके दो ग्रन्थोंका उल्लेख और भी है जिसमें उन्हें 'स्याद्वादोपनिषत्' और अनेक सुभाषितोंका भी कर्ता बतलाया है। परन्तु खेद है कि ये पाँचों ही ग्रन्थ अभी तक अनुपलब्ध हैं। सम्भव है अन्वेषण करने पर इनमेंसे कोई ग्रन्थ उपलब्ध हो जाय। ऊपर उल्लिखित उन आठ ग्रन्थोंके अतिरिक्त उन्होंने और किन ग्रन्थोंकी रचना की है यह कुछ ज्ञात नहीं होता।

आचार्य सोमदेवके इस अध्यात्मतरंगिणी ग्रन्थ पर एक संस्कृत टीका भी उपलब्ध है, जिसके कर्ता मुनि गणधरकीर्ति हैं। टीकामें पद्य गत वाक्यों एवं शब्दोंके अर्थके साथ-साथ कहीं-कहीं उसके विषयको भी स्पष्ट किया गया है। विषयको स्पष्ट करते हुए भी कहीं-कहीं प्रमाणरूपमें समन्तभद्र, अकलंक और विद्यानंद आदि आचार्योंके नामों तथा ग्रन्थोंका उल्लेख किया गया है, टीका अपने विषयको स्पष्ट करनेमें समर्थ है। इस टीकाकी इस समय दो प्रतियां उपलब्ध हैं, एक ऐलक पन्नालाल दिगंबर जैन सरस्वती भवन झालरापाटनमें और दूसरी पाटनके श्वेताम्बरीय शास्त्र-भंडारमें, परन्तु वहाँ वह खण्डित रूपमें पाई जाती है—उसकी आदि अन्त प्रशस्ति तो खण्डित है ही। परन्तु ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती-भवन झालरापाटनकी प्रति अपनेमें परिपूर्ण है। यह प्रति संवत् १५३३

आश्विन शुक्ला २ के दिन हिसारमें (फेरोजापत्तन) में कुतुबखानके राज्य-काल में सुवाच्य अक्षरोंमें लिखी गई है, जो सुनामपुरके वासी खंडेलवाल वंशी संघाधिपति श्रावक 'कल्हू' के चार पुत्रोंमेंसे प्रथम पुत्र धीराकी पत्नी धनश्रीके द्वारा जो श्रावकधर्मका अनुष्ठान करती थी, अपने ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयार्थ लिखाकर तात्कालिक भट्टारक जिनचंद्रके शिष्य पंडित मेधावीको प्रदान की गई है❀ । इससे यह प्रति ५०० वर्षके लगभग पुरानी है ।

टीकाकार मुनि गणधरकीर्ति गुजरात देशके रहने वाले थे । गणधर-कीर्तिने अपनी यह टीका किसी सोमदेव नामके सज्जनके अनुरोधसे बनाई है, टीका संक्षिप्त और ग्रन्थार्थकी अवबोधक है । टीकाकी अन्तिम प्रशस्तिमें टीकाकारने अपनी गुरुपरम्पराके साथ टीकाका रचनाकाल भी दिया है। गुरु परम्परा निम्न प्रकार है:—

सागरनंदी,स्वर्णनंदी,पद्मनंदी,पुष्पदंत कुवलयचंद्र और गणधरकीर्ति।

गणधरकीर्तिने अपनी यह टीका विक्रम संवत् ११८६ में चैत्र शुक्ला पंचमी रविवारके दिन गुजरातके चालुक्यवंशीय राजा जयसिंह या सिद्धराज जयसिंहके राज्यकालमें बनाकर समाप्त की है—जैसाकि उसके निम्न पद्योंसे प्रकट है :—

एकादशशताकीर्णे नवाशीत्युत्तरे परे ।
संवत्सरे शुभे योगे पुष्पनक्षत्रसंज्ञके ॥१७॥
चैत्रमासे सिते पक्षेऽथ पंचम्यां रवौ दिने ।
सिद्धा सिद्धिप्रदा टीका गणभृत्कीर्तिविपश्चितः ॥१८॥
निस्त्रिंशतजितारति विजयश्रीविराजसि ।
जयसिंहदेव सौराज्ये सज्जनानन्ददायनि ॥१९॥

❀ सम्वत् १५३३ वर्षे आसोज सुदि २ दिने हिसार फेरोजापत्तने लिखितमिति । ग्रन्थवृद्धिके भयसे प्रशस्ति पद्य नहीं दिये हैं।

१३२वीं प्रशस्ति 'चन्द्रप्रभपुराण' की है जिसके कर्ता पं० शिवाभिराम हैं। जिनका परिचय ५८ वीं 'षट् चतुर्थवर्तमानजिनार्चन' की प्रशस्तिमें दिया हुआ है।

१३४ वीं प्रशस्ति 'द्रव्यसंग्रहवृत्ति' की है जिसके कर्ता पं० प्रभाचन्द्र हैं जो समाधितंत्रादिके प्रसिद्ध टीकाकार प्रभाचन्द्राचार्यसे भिन्न जान पड़ते हैं। क्योंकि इस प्रशस्तिके आदि मंगल पद्यकी भी वृत्ति दी गई है, जिसमें इस ग्रन्थका नाम 'षट्द्रव्यनिर्णय' बतलाया गया है। प्रभाचन्द्राचार्यने अपने ग्रन्थोंके मंगलपद्योंकी कहीं पर भी कोई टीका नहीं की है। ऐसी स्थितिमें उक्त 'द्रव्यसंग्रहवृत्ति' उन प्रभाचन्द्राचार्यकी कृति नहीं हो सकती, वह किसी दूसरे ही प्रभाचन्द्र नामके विद्वानकी कृति होनी चाहिए। हाँ, यह हो सकता है कि षट्द्रव्यनिर्णय नामका कोई विवरण प्रभाचन्द्राचार्यका बनाया हुआ हो, जो ग्रंथके मंगलाचरणमें प्रयुक्त है और मंगलाचरण वाले पद्यकी वृत्ति बनाने वाले कोई दूसरे ही प्रभाचंद्र रहे हों और यह भी संभव है कि उक्त पद्य भी वृत्तिकारका ही हो, प्रभाचन्द्राचार्यका नहीं हो; क्योंकि इस नामके अनेक विद्वान हो चुके हैं। पं० प्रभाचंद्र कब हुए, उनकी गुरु परम्परा क्या है और उन्होंने इस वृत्तिकी रचना कब की? यह कुछ ज्ञात नहीं होता।

१३५वीं, १३६वीं, १३७वीं और १३८वीं ये चारों प्रशस्तियाँ क्रमशः 'पंचास्तिकाय-प्रदीप', 'आत्मानुशासनतिलक', 'आराधनाकथाप्रबंध' और 'प्रवचनसरोजभास्कर' नामके ग्रंथोंकी हैं जिनके कर्ता प्रभाचन्द्राचार्य हैं, जिनका परिचय ६४ वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

१३९ वीं प्रशस्ति 'त्रैलोक्यदीपक' की है, जिसके कर्ता पं० वामदेव हैं। जो मूलसंघके भट्टारक विनयचन्द्रके शिष्य-त्रैलोक्यकीर्तिके प्रशिष्य और मुनि लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य थे। पंडित वामदेवका कुल नैगम था। नैगम या निगम कुल कायस्थोंका है, इससे स्पष्ट है कि पंडित वामदेव कायस्थ थे। अनेक कायस्थ विद्वान जैनधर्मके धारक हुए हैं। जिनमें हरिचंद्र,

पद्मनाम और विजयनाथ माथुर आदिका नाम उल्लेखनीय है। पण्डित वामदेव प्रतिष्ठादिकार्योंके ज्ञाता और जिनभक्तिमें तत्पर थे। उन्होंने नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीके त्रिलोकसारको देखकर इस ग्रन्थकी रचना की है। इस ग्रन्थकी रचनामें प्रेरक पुरवाडवंशमें कामदेव प्रसिद्ध थे उनकी पत्नीका नाम नामदेवी था, जिनसे राम लक्ष्मणके समान जोमन और लक्ष्मण नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें जोमनका पुत्र नेमदेव नामका था, जो गुणभूषण और सम्यक्त्वसे विभूषित था, वह बड़ा उदार, न्यायी और दानी था। उक्त नेमदेवकी प्रार्थनासे ही इस ग्रन्थकी रचना की गई है। इस ग्रन्थमें तीन अधिकार हैं जिनमें क्रमशः अधः, मध्य और ऊर्ध्वलोकका वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें रचनाकाल दिया हुआ नहीं है जिससे यह निश्चित बतलाना तो कठिन है कि वामदेवने इस ग्रन्थकी रचना कब की है। परन्तु इस ग्रन्थकी एक प्राचीन मूल प्रति संवत् १४३६ में फीरोजशाह तुगलकके समय योगिनीपुर (देहली) में लिखी हुई ८६ पत्रात्मक उपलब्ध है। वह अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजीके शास्त्रभण्डारमें मौजूद है*। और जिससे उक्त ग्रंथका रचनाकाल सं० १४३६ से बादका नहीं हो सकता। बहुत सम्भव है कि उक्त ग्रंथ संवत् १४३६ के आस-पास रचा गया हो। ऐसी स्थितिमें वामदेवका समय विक्रमकी १५ वीं शताब्दीका पूर्वार्ध है। इनकी दूसरी कृति 'भावसंग्रह' है जो देवसेनके प्राकृत भाव संग्रहका संशोधित, अनुवादित और परिवर्धित रूप है। यह ग्रन्थ माणिकचंद्र दि० जैन ग्रंथमालामें छपा हुआ है और इनकी क्या रचनाएँ हैं यह निश्चित रूपसे कुछ ज्ञात नहीं होता। यहाँ यह बात खास तौरसे नोट करने लायक है कि मुनिश्री कल्याणविजयजीने 'श्रमण भगवान महावीर' नामक पुस्तकके जिनकल्प और स्थविरकल्प नामक प्रकरणके पृष्ठ ३१४ में वामदेवका समय सोलहवीं शताब्दी और रत्ननंदीका समय १७वीं शताब्दी लिखा है, जो उक्तग्रन्थमें की गई ऐतिहासिक भूलोंका नमूना मात्र है,

* देखो, महावीर अतिशय क्षेत्र कमेटी द्वारा प्रकाशित आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुरकी ग्रंथ सूची पृ० २१८, ग्रन्थ नं० ३०६, प्रति नं० २।

उन्होंने इस प्रकरणमें जो भद्दी भूलें की हैं उन्हें यहाँ दिखलानेका अवसर नहीं है। वस्तुतः वामदेवका समय १६ वीं शताब्दी नहीं है बल्कि विक्रमकी १५ वीं शताब्दीका पूर्वार्ध है। इसी तरह भद्रबाहु चरित्रके कर्ता रत्ननंदीका समय १६ वीं शताब्दीका द्वितीय तृतीय चरण है, १७ वीं शताब्दी नहीं है।

१४० वीं प्रशस्ति 'आदिपुराणटीका' के ४२ से ४७ पर्वों तक की टीका की है, जिसके कर्ता भट्टारक ललितकीर्ति हैं जिनका परिचय १५ वीं प्रशस्तिमें दिया जा चुका है।

१४१वीं प्रशस्ति 'वाग्भट्टालंकारावचूरि-कविचन्द्रिका' की है जिसके कर्ता कवि वादिराज हैं। जो तक्षकपुर (वर्तमान टोडानगर) के निवासी थे और वहांके राजा राजसिंह के मन्त्री थे, जो भीमसिंहके पुत्र थे। इनके पिताका नाम पोमराजश्रेष्ठी था और ज्येष्ठ भ्राताका नाम पं० जगन्नाथ था, जो संस्कृत भाषाके विशिष्ट विद्वान और अनेक ग्रन्थोंके रचयिता थे। इनकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र सोगानी था। इनके चार पुत्र थे, रामचन्द्र, लालजी, नेमिदास और विमलदास। विमलदासके समय टोडामें उपद्रव हुआ था और उसमें एक गुटका लुट गया और फट गया था, बादमें उसे छुड़ाकर, सुधार तथा मरम्मत कराकर अच्छा किया गया था। कविने राज्यकार्य कितने समय किया, यह कुछ ज्ञात नहीं होता।

कविकी इस समय दो रचनाएँ उपलब्ध हैं वाग्भट्टालंकारकी उक्त टीका और ज्ञानलोचन स्तोत्र नामका एक स्तोत्र ग्रन्थ। दूसरा ग्रन्थ माणिकचन्द्र दिगम्बरजैन ग्रन्थमालासे प्रकाशित सिद्धान्तसारादि संग्रहमें मुद्रित हो चुका है और पहला ग्रन्थ अभीतक अप्रकाशित है। कविने उसे सम्वत् १७२६ को दीपमालिकाके दिन गुरुवारको चित्रा नक्षत्र और वृश्चिक लग्नमें बनाकर समाप्त किया है। कविवर वादिराजने अन्य किन-किन ग्रन्थोंकी रचना की, यह अभी कुछ ज्ञात नहीं है। यह अपने समयके सुयोग्य विद्वान और राजनीतिमें दक्ष सुयोग्य मन्त्री थे।

१४२वीं प्रशस्ति 'रामचरित्र' की है जिसके कर्ता ब्रह्मजिनदास हैं। जिनका परिचय ७वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

१४३ से १६६वीं तककी २४ प्रशस्तियाँ, ज्येष्ट जिनवरकथा, रविव्रतकथा, सप्तपरमस्थानव्रतकथा मुकुटसप्तमीकथा, अक्षयनिधि व्रतकथा, षोडशकारण-कथा, मेघमालाव्रतकथा, चन्दनषष्ठीकथा, लब्धिविधानकथा, पुरन्दरविधानकथा, दशलाक्षणीव्रतकथा, पुष्पांजलिव्रतकथा, आकाशपंचमीकथा, मुक्तावली-व्रतकथा, निर्दुःखसप्तमीकथा, सुगन्धदशमीकथा, श्रवणद्वादशीकथा, रत्न-त्रयव्रतकथा, अनन्तव्रतकथा, अशोकरोहिणीकथा, तपोलक्षणपंक्तिकथा, मेरुपंक्तिकथा, विमानपंक्तिकथा, और पल्लविधानकथा की हैं। जिनके कर्ता श्रुतसागर हैं, जिनका परिचय १०वीं प्रशस्तिमें दिया गया है।

१६७वीं प्रशस्ति 'छन्दोऽनुशासन'की है जिसके कर्ता कवि वाग्भट × हैं जो नेमिकुमारके पुत्र थे; व्याकरण, छन्द, अलंकार, काव्य, नाटक, चम्पू और साहित्यके मर्मज्ञ थे; कालीदास, दण्डी, और वामन आदि विद्वानोंके काव्य-ग्रन्थोंसे खूब परिचित थे और अपने समयके अखिल प्रज्ञालुओंमें चूड़ामणि थे, तथा नूतन काव्यरचना करनेमें दक्ष थे। ❀ इन्होंने अपने पिता नेमिकुमारको महान् विद्वान् धर्मात्मा और यशस्वी बतलाया है और लिखा है कि वे कान्तेय कुलरूपी कमलोंको विकसित करने वाले अद्वितीय भास्कर थे और सकल शास्त्रोंमें पारङ्गत तथा सम्पूर्ण लिपि भाषाओंसे

× वाग्भट नामके अनेक विद्वान हुए हैं। उनमें अष्टाङ्गहृदय नामक वैद्यक ग्रन्थके कर्ता वाग्भट सिंहगुप्तके पुत्र और सिन्धुदेशके निवासी थे। नेमिनिर्माण काव्यके कर्ता वाग्भट प्राग्वाट या पोरवाड़वंशके भूषण तथा छाहड़के पुत्र थे। और वाग्भटालङ्कार नामक ग्रन्थके कर्ता वाग्भट सोमश्रे-ष्ठीकेपुत्र थे। इनके अतिरिक्त वाग्भट नामके एक चतुर्थ विद्वानका परिचय ऊपर दिया गया है।

❀ नव्यानेकमहाप्रबन्धरचनाचातुर्यविस्फूर्जित-
स्फारोदारयशःप्रचारसततव्याकीर्णविश्वत्रयः।

परिचित थे और उनकी कीर्ति समस्त कविकुलोंके मान सन्मान और दानसे लोकमें व्याप्त हो रही थी। और मेवाड़देशमें प्रतिष्ठित भगवान पार्श्वनाथ जिनके यात्रामहोत्सवसे उनका अद्भुत यश अखिल विश्वमें विस्तृत होगया था। नेमिकुमारने राहडपुरमें* भगवान नेमिनाथका और नलोटकपुरमें बाईस देवकुलकाओं सहित भगवान आदिनाथका विशाल मन्दिर बनवाया था ×। नेमिकुमारके पिताका नाम 'मक्कलप' और माताका नाम महादेवी था, इनके राहड और नेमिकुमार नामके दो पुत्र थे, जिनमें नेमिकुमार लघु और राहड ज्येष्ठ थे। नेमिकुमार अपने ज्येष्ठ भ्राता राहडके परम भक्त थे और उन्हें आदर तथा प्रेमकी दृष्टिसे देखते थे। राहडने भी उसी नगरमें भगवान आदिनाथके मन्दिरकी दक्षिण दिशामें बाईस जिन-मन्दिर बनवाये थे, जिससे उनका यशरूपी चन्द्रमा जगतमें पूर्ण हो गया था—व्याप्त हो गया था +।

कवि वाग्भट्ट भक्तिरसके अद्वितीय प्रेमी थे, उनकी स्वोपज्ञ काव्यानुशासनवृत्तिमें आदिनाथ नेमिनाथ और भगवान पार्श्वनाथका स्तवन किया

श्रीमन्नेमिकुमार-सूरिरखिलप्रज्ञालुचूड़ामणिः।
काव्यानामनुशासनं वरमिदं चक्रे कविर्वाग्भटः॥

छन्दोनुशासनकी अन्तिम प्रशस्तिमें भी इस पद्यके ऊपर के तीन चरण ज्योंके त्यों पाये जाते हैं, सिर्फ चतुर्थ चरण बदला हुआ है, जो इस प्रकार है—

'छन्दःशास्त्रमिदं चकार सुधियामानन्दकृद्वाग्भटः'।

* जान पड़ता है कि 'राहडपुर' मेवाड़देशमें ही कहीं नेमिकुमारके ज्येष्ठ भ्राता राहडके नामसे बसाया गया होगा।

× देखो, काव्यानुशासनटीकाकी उत्थानिका पृष्ठ १।

+ नाभेयचैत्यसदने दिशि दक्षिणस्यां, द्वात्रिंशति विदधता जिनमन्दिराणि।
मन्ये निजाग्रजवरप्रभुराहडस्य, पूर्णीकृतो जगति येन यशः शशांकः।
—काव्यानुशासन पृष्ठ ३४

गया है। जिससे यह सम्भव है कि इन्होंने किसी स्तुति ग्रन्थकी भी रचना की हो; क्योंकि रसोंमें रति (शृंगार) का वर्णन करते हुए देव-विषयक रतिके उदाहरणमें निम्न पद्य दिया है—

नो मुक्त्यै स्पृहयामि विभवैः कार्यं न सांसारिकैः,
किंत्वायोज्य करौ पुनरिदं त्वामीशमभ्यर्थये ।
स्वप्ने जागरणे स्थितौ विचलने दुःखे सुखे मन्दिरे,
कान्तारे निशिवासरे च सततं भक्तिर्ममास्तु त्वयि ।

इस पद्यमें बतलाया है—'कि हे नाथ ! मैं मुक्तिपुरी की कामना नहीं करता और न सांसारिक कार्योंके लिये विभव धनादि सम्पत्ति) की ही आकांक्षा करता हूँ; किन्तु हे स्वामिन् हाथ जोड़कर मेरी यह प्रार्थना है कि स्वप्नमें, जागरणमें, स्थितिमें, चलनेमें दुःख-सुखमें, मन्दिरमें, वनमें, रात्रि और दिनमें निरन्तर आपकी ही भक्ति हो ।'

इसी तरह कृष्ण नील वर्णोंका वर्णन करते हुए राहडके नगर और वहां प्रतिष्ठित नेमिजिनका स्तवन-सूचक निम्न पद्य दिया है—

सजलजलदनीला भातियस्मिन्वनाली मरकतमणिकृष्णो यत्र नेमिर्जिनेंद्रः।
विकचकुवलयालि श्यामलं यत्सरोम्भःप्रमुदयति न कांस्कांस्तत्पुरं राहडस्य॥

इस पद्यमें बतलाया है—'कि जिसमें वन-पंक्तियां सजल मेघके समान नीलवर्ण मालूम होती हैं और जिस नगरमें नीलमणि सदृश कृष्णवर्ण श्री नेमिजिनेन्द्र प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें तालाब विकसित कमलसमूहसे पूरित हैं वह राहडका नगर किन-किनको प्रमुदित नहीं करता ।

महाकवि वाग्भट्टकी इस समय दो कृतियां उपलब्ध हैं छन्दोऽनुशासन और काव्यानुशासन। उनमें छन्दोऽनुशासन काव्यानुशासनसे पूर्व रचा गया है; क्योंकि काव्यानुशासनकी स्वोपज्ञवृत्तिमें स्वोपज्ञछन्दोऽनुशासनका उल्लेख करते हुए लिखा है कि उसमें छन्दोंका कथन विस्तारसे किया गया है। अतएव यहांपर नहीं कहा जाता * ।

---

* 'अयं च सर्वप्रपंचः श्रीवाग्भट्टाभिधस्वोपज्ञछन्दोऽनुशासने प्रपंचित इति नात्रोच्यते ।'

जैनसाहित्यमें छन्दशास्त्र पर 'छन्दोऽनुशासन+, स्वयम्भूछन्द१ छन्दकोष२ और प्राकृतपिंगल३ आदि अनेक छन्द ग्रन्थ लिखे गये हैं। उनमें प्रस्तुत छन्दोऽनुशासन सबसे भिन्न है। यह संस्कृत भाषाका छन्द ग्रन्थ है और पाटनके श्वेताम्बरीय ज्ञानभण्डारमें ताड़पत्र पर लिखा हुआ विद्यमान है४। उसकी पत्रसंख्या ४२ और श्लोक संख्या २४० के करीब है और स्वोपज्ञवृत्ति या विवरणसे अलंकृत है। इस ग्रन्थका मंगल पद्य निम्न प्रकार है—

+ यह छन्दोनुशासन जयकीर्तिके द्वारा रचा गया है। इसे उन्होंने माण्डव्य पिंगल, जनाश्रय, सेतव, पूज्यपाद (देवनन्दी) और जयदेव आदि विद्वानोंके छन्द ग्रन्थोंको देखकर बनाया है। यह जयकीर्ति अमलकीर्तिके शिष्य थे। सम्वत् १२९२ में योगसारकी एक प्रति अमलकीर्तिने लिखवाई थी इससे जयकीर्ति १२वीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध और १३वीं शताब्दीके पूर्वार्धके विद्वान जान पड़ते हैं। यह ग्रन्थ जैसलमेरके श्वेताम्बरीय ज्ञानभण्डारमें सुरक्षित है। (देखो गायकवाड़ संस्कृतसीरीजमें प्रकाशित जैसलमेर भाण्डागारीय ग्रन्थानां सूची।)

१ यह अपभ्रंशभाषाका महत्त्वपूर्ण मौलिक छन्द ग्रन्थ है इसका सम्पादन एच० डी० वेलंकरने किया है। देखो बम्बई यूनिवर्सिटी जनरल सन् १९३३ तथा रायल-एशियाटिक सोसाइटी जनरल सन् १९३५)

२ यह रत्नशेखरसूरिद्वारा रचित प्राकृतभाषाका छन्दकोश है।

३ पिंगलाचार्यके प्राकृतपिंगलको छोड़कर, प्रस्तुत पिंगल ग्रन्थ अथवा 'छन्दोविद्या' कविवर राजमलकी कृति है जिसे उन्होंने श्रीमालकुलोत्पन्न वणिक्पति राजा भारमल्लके लिये रचा था। इस ग्रन्थमें छन्दोंका निर्देश करते हुए राजा भारमल्लके प्रताप यश और वैभव आदिका अच्छा परिचय दिया गया है। इन छन्द ग्रन्थोंके अतिरिक्त छन्दशास्त्र वृत्तरत्नाकर और श्रुतबोध नामके छन्दग्रन्थ और हैं जो प्रकाशित हो चुके हैं।

४ See Patan Catalague of Manuecripts P. 117.

विभुं नाभेयमानम्य छन्दसामनुशासनम् ।
श्रीमन्नेमिकुमारस्यात्मजोऽहं वच्मि वाग्भटः

यह मंगल पद्य कुछ परिवर्तनके साथ काव्यानुशासनकी स्वोपज्ञवृत्तिमें भी पाया जाता है, उसमें 'छन्दसामनुशासनं' के स्थान पर 'काव्यानुशासनम्' दिया हुआ है ।

यह छन्दग्रन्थ पाँच अध्यायोंमें विभक्त है, संज्ञाध्याय १, समवृत्ताख्य २, अर्धसमवृत्ताख्य ३, मात्रासमक ४, और मात्रा छन्दक ५ । ग्रन्थ सामने न होनेसे इन छन्दोंके लक्षणादिका कोई परिचय नहीं दिया जा सकता और न यह ही बतलाया जा सकता है कि ग्रन्थकारने अपनी दूसरी किन-किन रचनाओंका उल्लेख किया है ।

काव्यानुशासनकी तरह इस ग्रन्थमें भी राहड और नेमिकुमारकी कीर्तिका खुला गान किया गया है और राहडको पुरुषोत्तम तथा उनकी विस्तृत चैत्यपद्धतिको प्रमुदित करने वाली प्रकट किया है । यथा—

पुरुषोत्तम राहुडप्रभो कस्य न हि श्रमदं ददाति सद्यः
विततता तव चैत्यपद्धतिर्वातचलध्वजमालभारिणी ।

अपने पिता नेमिकुमारकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि 'घूमने वाले भ्रमरसे कम्पित कमलके मकरन्द (पराग समूहसे पूरित, भडौंच अथवा भृगुकच्छनगरमें नेमिकुमारकी अगाध बावड़ी शोभित होती है । यथा—

परिभमिरभमरकंपिरसरुहमयरंदपुंजपंजरिआ ।
वावी सहइ अगाहा णेमिकुमारस्स भरुअच्छे ॥

इस तरह यह छन्दग्रन्थ बड़ा ही महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है और प्रकाशित करने के योग्य है ।

काव्यानुशासन नामका प्रस्तुत ग्रन्थ मुद्रित हो चुका है । इसमें काव्य-सम्बन्धी विषयोंका—रस, अलङ्कार छन्द और गुण, दोष आदिका—कथन किया गया है । इसकी स्वोपज्ञवृत्तिमें उदाहरण-स्वरूप विभिन्न ग्रन्थोंके

अनेक पद्य उद्धृत किये गये हैं जिनमें कितने ही पद्य ग्रन्थकर्ताके स्वनिर्मित भी होंगे, परन्तु यह बतला सकना कठिन है कि वे पद्य इनके किस ग्रन्थके हैं। समुद्धृत पद्योंमें कितने ही पद्य बड़े सुन्दर और सरस मालूम होते हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये उनमेंसे दो तीन पद्य नीचे दिये जाते हैं :—

कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी हुं हुं प्रतापी प्रिये
हुं हुं तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यविलेपक्रियां ।
मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किङ्कराः के वयं
इत्येवं रतिकामजल्पविषयः सोऽयं जिनः पातु वः ॥

एक समय कामदेव और रति जङ्गलमें विहार कर रहे थे कि अचानक उनकी दृष्टि ध्यानस्थ जिनेन्द्रपर पड़ी, उनके रूपवान् प्रशान्त शरीरको देखकर कामदेव और रतिका जो मनोरंजक संवाद हुआ है उसीका चित्रण इस पद्यमें किया गया है। जिनेन्द्रको मेरुवत् निश्चल ध्यानस्थ देखकर रति कामदेवसे पूछती है कि हे नाथ ! यह कौन है ? तब कामदेव उत्तर देता है कि यह जिन हैं,—राग-द्वेषादि कर्मशत्रुओंको जीतने वाले हैं—पुनः रति पूछती है कि यह तुम्हारे वशमें हुए ? तब कामदेव उत्तर देता है कि हे प्रिये ! यह मेरे वशमें नहीं हुए : क्योंकि यह प्रतापी हैं। तब फिर रति पूछती है यदि यह तुम्हारे वशमें नहीं हुए तो तुम्हें 'त्रिलोक-विजयी' पनकी शूरवीरताका अभिमान छोड़ देना चाहिए। तब कामदेव रतिसे पुनः कहता है कि इन्होंने मोह राजाको जीत लिया है जो हमारा प्रभु है, हमतो उसके किङ्कर हैं। इस तरह रति और कामदेवके संवाद-विषयभूत यह जिन तुम्हारा संरक्षण करें।

शठकमठ विमुक्ताम्भोदसंघातघात-व्यथितमपि मनो न ध्यानतो यस्य नेतुः।
अचलदचलतुल्यं विश्वविश्वैकधीरः,स दिशतुशुभमीशःपार्श्वनाथोजिनोवः

इस पद्यमें बतलाया है कि दुष्ट कमठके द्वारा मुक्त मेघसमूहसे पीड़ित होते हुए जिनका मन ध्यानसे जरा भी विचलित नहीं हुआ वे मेरुके समान अचल और विश्वके अद्वितीय धीर, ईश पार्श्वनाथ जिन तुम्हें कल्याण प्रदान करें।

इसी तरह 'कारणमाला' के उदाहरण स्वरूप दिया हुआ निम्न पद्य भी बड़ा ही रोचक प्रतीत होता है । जिसमें जितेन्द्रियताको विनयका कारण बतलाया गया है और विनयसे गुणोत्कर्ष, गुणोत्कर्षसे लोकानुरंजन और जनानुरागसे सम्पदाकी अभिवृद्धिका होना सूचित किया है, वह पद्य इस प्रकार है—

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं, गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ।
गुणप्रकर्षेणजनोऽनुरज्यते, जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः ॥

इस ग्रंथकी स्वोपज्ञवृत्तिमें कविने अपनी एक कृतिका 'स्वोपज्ञ ऋषभदेव महाकाव्ये' वाक्यके साथ उल्लेख किया है और उसे 'महाकाव्य' बतलाया है, जिससे वह एक महत्वपूर्ण काव्य-ग्रन्थ जान पड़ता है, इतना ही नहीं किंतु उसका निम्न पद्य भी उद्धृत किया है—

यत्पुष्पदन्त-मुनिसेन-मुनीन्द्रमुख्यैः, पूर्वैः कृतं सुकविभिस्तदहं विधित्सुः ।
हास्यायकस्य ननु नास्ति तथापि संतः,शृण्वंतु कंचन ममापि सुयुक्तिसूक्तम्।

इसके सिवाय, कविने भव्यनाटक और अलंकारादि काव्य बनाए थे । परन्तु वे सब अभी तक अनुपलब्ध हैं, मालूम नहीं कि वे किस शास्त्र-भण्डारकी काल कोठरीमें अपने जीवनकी सिसकियाँ ले रहे होंगे ।

ग्रंथकर्ताने अपनी रचनाओंमें अपने सम्प्रदायका कोई समुल्लेख नहीं किया और न यही बतलानेका प्रयत्न किया है कि उक्त कृतियाँ कब और किसके राज्यकालमें रची गई हैं ? हाँ, काव्यानुशासनवृत्तिके ध्यानपूर्वक समीक्षणसे इस बातका अवश्य आभास होता है कि कविका सम्प्रदाय 'दिगम्बर' था; क्योंकि उन्होंने उक्त वृत्तिके पृष्ठ ६ पर विक्रमकी दूसरी तीसरी शताब्दिके महान् आचार्य समन्तभद्रके 'बृहत्स्वयम्भू स्तोत्र' के द्वितीय पद्यको 'आगम आप्तवचनं यथा' वाक्यके साथ उद्धृत किया है[*] । और पृष्ठ ५ पर भी 'जैनं यथा' वाक्यके साथ उक्त स्तवनका

---

[*] प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः ।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥२॥

'नयास्तव स्यात्पदसत्यलांछिता रसोपविद्धा इव लोहधातवः ।
भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥'

यह ६५ वां पद्य समुद्धृत किया है। इसके सिवाय पृष्ठ १५ पर ११ वीं शताब्दीके विद्वान आचार्य वीरनन्दीके 'चन्द्रप्रभचरित' का आदि मङ्गल-पद्य+ भी दिया है और पृष्ठ १६ पर सज्जन-दुर्जन चिन्तामें 'नेमिनिर्वाण काव्य' के प्रथम सर्गका निम्न २० वां पद्य उद्धृत किया है—

गुणप्रतीतिः सुजनांजनस्य, दोषेष्ववज्ञा खलजल्पितेषु ।
अतो ध्रुवं नेह मम प्रबन्धे, प्रभूतदोषेऽप्ययशोऽवकाशः ॥

उसी १६वें पृष्ठमें उल्लिखित उद्यानजलकेलि मधुपानवर्णनं नेमिनिर्वाण राजीमती परित्यागादौ' इस वाक्यके साथ नेमिनिर्वाण और राजमती परित्याग नामके दो ग्रन्थोंका समुल्लेख किया है। उनमेंसे नेमिनिर्वाणके ८ वें सर्गमें जलक्रीड़ा और १० वें सर्गमें मधुपानसुरतका वर्णन दिया हुआ है। हाँ, 'राजीमती परित्याग' नामका अन्य कोई दूसरा ही काव्यग्रन्थ है जिसमें उक्त दोनों विषयोंके कथन देखनेकी सूचना की गई है। यह काव्यग्रन्थ सम्भवतः पं० आशाधरजीका 'राजमती विप्रलम्भ' या परित्याग जान पड़ता है; क्योंकि उसी सोलहवें पृष्ठ पर 'विप्रलम्भ वर्णनं राजमती परित्यागादौ वाक्यके साथ उक्त ग्रन्थका नाम 'राजमती परित्याग' सूचित किया है। जिससे स्पष्ट मालूम होता है कि उक्त काव्यग्रन्थमें 'विप्रलम्भ' विरहका वर्णन किया गया है। विप्रलम्भ और परित्याग शब्द भी एकार्थक है। यदि यह कल्पना ठीक है तो प्रस्तुत ग्रन्थका रचनाकाल १३ वीं शताब्दीके विद्वान् पं० आशाधरजीके बादका हो सकता है।

इन सब ग्रन्थोल्लेखोंसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि ग्रन्थकर्ता उल्लिखित विद्वान् आचार्योंका भक्त और उनकी रचनाओंसे परिचित तथा उन्हींके द्वारा मान्य दिगम्बरसम्प्रदायका अनुसर्ता अथवा अनुयायी था। अन्यथा

+ श्रियं क्रियाद्यस्य सुरागमे नटत्सुरेंद्रनेत्रप्रतिबिंबलांछिता ।
सभा बभौ रत्नमयी महोत्पलैः कृतोपहारेव स वोऽग्रजो जिनः ॥

समन्तभद्राचार्यके उक्त स्तवन पदके साथ भक्ति एवं श्रद्धावश 'आगम और आप्तवचन' जैसे विशेषणोंका प्रयोग करना सम्भव नहीं था।

अब रही 'रचना समयकी बात' सो इनका समय विक्रमकी १४ वीं शताब्दीका जान पड़ता है; क्योंकि काव्यनुशासनवृत्तिमें इन्होंने महाकवि दण्डी वामन और वाग्भटादिकके द्वारा रचे गये दश काव्य-गुणोंमेंसे सिर्फ माधुर्य ओज और प्रसाद ये तीन गुण ही माने हैं और शेष गुणोंका इन्हीं तीनमें अन्तर्भाव किया है*। इनमें वाग्भटालङ्कारके कर्ता वाग्भट विक्रमकी १२ वीं शताब्दीके उत्तरार्धके विद्वान हैं। इससे प्रस्तुत वाग्भट वाग्भटालंकार के कर्तासे पश्चाद्वर्ती हैं यह सुनिश्चित है। किन्तु ऊपर १३ वीं शताब्दीके विद्वान पं० आशाधरजीके 'राजीमती विप्रलम्भ या परित्याग' नामके ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है और जिसके देखनेकी प्रेरणा की गई है। इस ग्रन्थोल्लेखसे इनका समय तेरहवीं शताब्दीके बादका सम्भवतः विक्रमकी १४ वीं शताब्दीका जान पड़ता है।

१८८ वीं प्रशस्ति 'षट्पदक्षेत्रपालपूजा' की है जिसके कर्ता मुनि विश्वसेन हैं, जो काष्ठासंघके नन्दीतट नामक गच्छके रामसेनके वंशमें हुये थे। ग्रन्थकर्ताने प्रशस्तिमें उसका रचनाकाल नहीं दिया है जिससे साधन-सामग्रीके अभावमें यह बतलाना कठिन है कि मुनिविश्वसेनने इस ग्रन्थकी रचना कब की है। फिर भी दूसरे आधारसे उनके समय सम्बन्धमें विचार किया जाता है:—

भट्टारक श्रीभूषणने अपने शान्तिनाथ पुराणमें अपनी गुरु-परम्पराका उल्लेख करते हुए जो गुरु परम्परा दी है उसमें काष्ठासंघके नन्दीतट गच्छ और विद्यागणके भट्टारकोंकी नामावली देते हुए भट्टारक विशालकीर्तिके

---

* इति दण्डिवामनवाग्भटादिप्रणीता दशकाव्यगुणाः। वयं तु माधुर्यौजःप्रसादलक्षणास्त्रीनेव गुणान् मन्यामहे, शेषास्तेष्वेवान्तर्भवन्ति। तद्यथा—माधुर्ये कान्तिः सौकुमार्यं च, ओजसि श्लेषः समाधिरुदारता च। प्रसादेऽर्थव्यक्तिः समता चान्तर्भवति। काव्यानुशासन २. ३१

शिष्य भ० विश्वसेनका नामोल्लेख किया है और उन्हें गुणीजनोंमें मुख्य, वीतभय, विख्यातकीर्ति, कामदेवको जीतने वाले, तथा अपने तर्कके द्वारा मायाचार या छल-कपटको विनष्ट करने वाले लिखा है *। इनके पट्टधर शिष्य भट्टारक विद्याभूषण थे, जो श्रीभूषणके गुरु थे। भ० श्रीभूषणने अपने उक्त पुराणकी रचना वि० सं० १६५१ मगसिर शुक्ला त्रयोदशीके दिन समाप्त की है।

बड़ौदाके बाड़ी मुहल्लेके दि० जैनमन्दिरमें विराजमान भगवान पार्श्वनाथकी मूर्तिको प्रतिष्ठा सं० १६०४ में भट्टारक विद्याभूषणके उपदेशसे हूंबडवंशी अनन्तमतीने कराई थी। इससे स्पष्ट है कि विद्याभूषणके पट्टधर गुरु विश्वसेनका समय विक्रमकी १६ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध जान पड़ता है।

१६९ वीं प्रशस्ति 'वैद्यकशास्त्र' की है जिसके कर्ता वैद्य हरपाल हैं। ग्रन्थ-कर्ताने अपनी गुरुपरम्परा आदिका कोई उल्लेख नहीं किया है; किन्तु ग्रन्थके अन्तमें उसका रचनाकाल विक्रम सं० १३४१ उद्घोषित किया है। जिससे उक्त ग्रन्थ विक्रमकी १४वीं शताब्दीके मध्यकालका बना हुआ है। ग्रन्थकर्ताकी दूसरी कृति 'योगसार' है जिसकी रचना इससे पूर्व हो चुकी थी। यह ग्रन्थ अभी अप्राप्त है, प्राप्त होने पर उसका परिचय दिया जायगा।

१७० वीं प्रशस्ति 'वृहत्सिद्धचक्रपूजा' की है जिसके कर्ता बुध वीरु हैं। जिनका परिचय ९३ नं० की धर्मचक्रपूजा की प्रशस्तिमें दिया गया है।

१७१ वीं प्रशस्ति यशोधर चरित्र' की है। जिसके कर्ता भट्टारक ज्ञानकीर्ति हैं, जो मूलसंघ कुन्दकुन्दान्वय सरस्वती गच्छ और बलात्कार-

---

* विशालकीर्तिश्च विशालकीर्तिः जम्बूद्रुमांके विमले स देवः।
विभाति विद्यार्णव एव नित्यं, वैराग्यपाथोनिधिशुद्धचेताः॥
श्रीविश्वसेनो यतिवृन्दमुख्यो विराजते वीतभयः सलीलः।
स्वतर्कनिर्नाशितसर्वदिग्भः विख्यातकीर्तिर्जितमारमूर्तिः॥५५॥

गणके भट्टारक वादिभूषणके पट्टधर शिष्य थे और पद्मकीर्तिके गुरुभाई थे। इन्होंने इसे बंगदेशमें स्थित चम्पानगरीके समीप 'अकच्छपुर' (अकबरपुर) नामक नगरके आदिनाथ चैत्यालयमें वि० सम्वत् १६५६ में माघशुक्ला पंचमी शुक्रवारके दिन बनाकर पूर्ण किया। साहु नानू वैरिकुलको जीतने वाले राजा मानसिंहके महामात्य (प्रधानमंत्री) खण्डेलवाल वंशभूषण गोधागोत्रीय साहु रूपचन्दके सुपुत्र थे। साहु रूपचन्द जैसे श्रीमन्त थे वैसे ही समुदार, दाता, गुणज्ञ और जिनपूजनमें तत्पर रहते थे। साहु नानूकी प्रार्थना और बुध जयचन्द्रके आग्रहसे इस ग्रन्थकी रचना हुई है।

अष्टापदशैल (कैलाश) पर जिस तरह भरत चक्रवर्तीने जिनालयोंका निर्माण कराया, उसी तरह साहु नानूने भी सम्मेदशैल पर निर्वाण प्राप्त बीस तीर्थंकरोंके मन्दिर बनवाए थे और उनकी अनेक बार यात्रा भी की थी।

भट्टारक ज्ञानकीर्तिने सोमदेव, हरिषेण, वादिराज, प्रभंजन, धनंजय, पुष्पदन्त और वासवसेन आदि विद्वानोंके द्वारा लिखे गए यशोधर महाराजके चरितको अनुभव कर स्वल्पबुद्धिसे संक्षिप्तरूपमें इस ग्रन्थकी रचना की है। ग्रन्थकी आद्य प्रशस्तिमें भ० ज्ञानकीर्तिने अपनेसे पूर्ववर्ती उमास्वाति, समन्तभद्र, वादीभसिंह, पूज्यपाद, भट्टाकलंक और प्रभाचंद्र इत्यादि विद्वानोंका स्मरण किया है। प्रस्तुत ग्रंथ ६ सर्गोंमें समाप्त हुआ है और उसे साहु नानूके नामांकित किया गया है।

—परमानन्द जैन

प्रस्तावनाकी नाम-सूची

विषय	पृष्ठ
अकलंक	६८
अकलंकदेव	४१, ५६
अकलंक (भट्ट)	६०
अकच्छरपुर (अकबरपुर)	११३
अक्षयराम (पंडित)	२५, २६
अक्षयनिधि दशमीकथा	२२
अक्षयनिधिव्रतकथा	१४, १७
अग्रवाल (वंश)	६४, ७६
अजमेर	८
अजितपुराण	४६
अजितसेन (आचार्य)	४६
अजितसेनाचार्य	६१
अध्यात्मतरंगिणी	२६, ३०, ६८
अध्यात्मतरंगिणी टीका	६६
अध्यात्म रहस्य	६
अध्यात्माष्टकस्तोत्र	४
अनगारधर्मामृत स्वो० टी०	६
अनन्तकीर्ति	५२
अनन्तव्रतजिन पूजा	२८
अनन्तमती	८८, ११२
अनन्तवीर्य (आचार्य)	५६, ५७
अनन्तव्रतकथा	१५, १७, २२
अनन्तव्रतपूजा	१२, ४२, ६
अनिरुद्ध	४१
अनेकान्त (मासिक पत्र)	२०, ४५
अपभ्रंशखण्डन	३०
अभयचन्द्र	४४
अभयचन्द्रसैद्धान्तिक	६४
अभयदेव	२६
अभयनन्दी	३६, ४४, ८४
अभयराज	७६
अभयसूरि	६४
अभिमन्यु (पुत्र पं० रामचन्द्र)	२६
अभिषेकपाठटीका	१७
अमरकीर्ति	६, ७२
अमरकोषटीका	६
अमरसिंह	५८
अमलकीर्ति (शिष्य जयकीर्ति)	४२, १०६
अमलकीर्ति (गुरु कमलकीर्ति)	५८, ५६
अमितगति	४३, ६०, ७०, ७४
अमीझरा (पार्श्वनाथ चैत्यालय)	१०
अमृतचन्द्र (आचार्य)	४, ६, ३०, ५४, ७७
अमोघवर्ष (गोविन्द तृतीय -पुत्र)	८६, ८७, ८८, ६२
अमोघवर्ष (तृतीय-अकालवर्ष)	६७
अम्बिकाकल्प	२६, ८६

विषय	पृष्ठ
अयोध्या	७६
अय्यपार्य	४६, ५५
अरिकेशरी (चालुक्यवंशी राजा)	६७
अरिष्टनेमि भट्टारक-(नेमिनाथ द्वैविध चक्रवर्ती)	८३
अरुणमणि (लालमणि)	४६, ५०
अरुंगल (नन्दिसंघकी एक शाखा)	४
अर्कांम्बा (माता अय्यपार्य)	५५
अर्धफालक	६४
अर्जुनवर्मा	८
अटेरनगर	३४
अर्धकथानक	७६, ७७, ७८
अर्हन्नन्दी त्रैविद्य	७१
अलाउद्दीन खिलजी	२१
अवन्तिदेश	६८
अवरंगशाह (औरंगजेब)	५०
अशोकरोहिणी कथा	१५, १७
अष्टम जिनपुराण संग्रह (चन्द्रप्रभ पुराण)	४०
अष्टसहस्री	३६
अष्टांगहृदयोद्योतिनीटीका	६
असग	५३, ५४, ६०
अहार (क्षेत्र)	७६
अहिछत्रपुर	७
अंकलेश्वर (भड़ौंच)	२४

विषय	पृष्ठ
अंगप्रज्ञप्ति (अंगपण्णत्ती)	३०
अंजनापवनंजय नाटक	४५, ४६
आकाशपंचमी कथा	१२, १४, १७, २२
आगरा	७६
आत्मानुशासन तिलक	६४, ६५
	६६, १००
आप्तमीमांसा	८५
आत्मसम्बोधन	५१
आदित्यशर्मा	७२
आदिनाथचरित	२६
आदिनाथ चैत्यालय	२८, ११३
आदिनाथ फाग	५०
आदिनाथ भवन	३४
आदिनाथ-मन्दिर	१०४
आदिनाथरास	१२
आदिपुराण	२१, ४६, ७६, ६३, १०२
आभीरदेश	५०
आमेर (जयपुर)	८१
आयज्ञानतिलक	६५
आराधना कथाकोश	१४
आराधना कथा-प्रबन्ध	१००
आराधना गद्य कथा प्रबन्ध-(कोश)	६४, ६५, ६६
आराधनापताका	६३
आराधनासार टीका	६

विषय	पृष्ठ
आर्यनन्दी	६०
आशाधर ८, १७, ५५, ७५, ११०, १११	
आशापल्ली	२७
आसार्य	६२
इटावा	२८
इष्टोपदेशटीका	८
इन्द्रनन्दि योगीन्द्र	६२, ६३
इन्द्रनन्दि संहिता	६३
इंगलेश्वरशाखा	६४
ईडर	१५, १६, १६, २१
उग्रदित्याचार्य	५७
उज्जैन (नगरी)	४४
उत्तरछत्तीसी	७५
उत्तरपुराण	२१, ८०, ६०
उत्तरपुराणका टिप्पण	८२
उदयकरन	७७
उदयभूषण	४४
उदयसेन	५२
उदितादेवी (पितामही कुशराज)	५
उद्धरणदेव (राजा)	६
उपदेशरत्नमाला	१८
उपासकाध्ययन	५७
उमास्वाति	६०, ८६, ११३
ऋषभदेव महाकाव्य (स्वोपज्ञ)	१०६
ऋषिमंडल यंत्रपूजा	४६, ६४

विषय	पृष्ठ
एकसंधि (भट्टारक)	५५
एकीभावस्तोत्र	४, ४८
एच. डी. वेलंकर	१४, ४२, १०६
एलाचार्य	६०
औदार्य चिंतामणि (स्वो० वृत्तियुक्त)	१७
कनकसेन (जिनसेन शिष्य)	६१
कनकसेन मुनि	६२
कनारा	४७
कमलकीर्ति (भट्टारक)	५८, ५६, ६०, ६४
कमलसागर (ब्रह्मचारी)	२३
करकण्डुचरित	२७, २६, ३०, ८५
करकण्डुरास	१२, १८
करुणाकर (श्रावक)	५५
कर्णामृत पुराण	२५, ३१
कर्नाटककविचरित्र	४६
कर्नाटकप्रदेश	४६, ८५
कर्मकाण्डटीका (कम्मपयडी)	५०, ५१, ७२
कर्मदाह-विधि	३०
कर्मनिर्जरचतुर्दशी कथा	२२
कर्मविपाक	११
कर्मविपाकरास	१२
कर्मसिंह	१६
कर्मसी (वर्णी)	५१
कल्पवल्लीनगर	३३

विषय	पृष्ठ
कल्याणकारक (वैद्यकग्रन्थ)	५७
कल्याणविजय	१०१
कल्याणसिंह	६
कल्लोल	४१
कल्हू	६६
कविचन्द्रिका (टीका वाग्भट्टालंकार)	३८
कषायप्राभृत	६०
कषायपाहुड	७५
कंजिकाव्रतकथा	२२
कन्दर्प	६३
कारगूर (गण)	८५
कानकुब्ज (ब्राह्मणकुल)	३४
कान्तहर्ष	२५
कामचण्डाली कल्प	६१, ६२
कामताप्रसाद	२४
कामदेव	३७, १०१
कार्तिकेयानुप्रेक्षाटीका	२६
कार्पाटि (गोत्र)	५८
कामराज (ब्रह्म)	२६
कामीराय	४७
कायस्थ	५८, ६०, १००
कारंजा	२६
कालिदास	७२, १०३
काव्यानुशासन	१०७

विषय	पृष्ठ
काव्यानुशासनवृत्ति	१०४
काव्यालंकार-टीका	६
काश्यप (गोत्र)	५५
काष्ठान्वय	८६
काष्ठासंघ २१, २५, ३१, ३३ ४२, ४७. ४८, ५०, ५८, ६४, १११	
कान्हरसिंह	४६, ५०
कीर्तिचन्द्र	७६
कीर्तिसागर (ब्रह्म)	२३
कुतुबखान (क्यामखाँ)	६६
कुन्दकुन्द (आचार्य)	६५
कुन्दकुन्दाचार्य	६०
कुन्दकुन्दाचार्य ६, १३, ३०, ४७, ७३, ७६, ११२	
कुम्भनगर	४१, ४७, ६४
कुमारसेन	५५
कुमुदचन्द्र	६४
कुलचन्द्रदेव	६७
कुलभूषण	१६, ६७
कुवलयचन्द्र	६६
कुशराज (महामात्यवीरमदेव)	५
कृष्णदास ब्रह्म)	२५, ३३
कृष्णावती (पत्नी चक्रसेन)	७६
केकडी	७६
केवलज्ञान कल्याणार्चा (समवसरण पाठ)	७८

विषय	पृष्ठ
केवलसेन	८०
केशरिदे (धर्मपत्नी भगवानदास)	८०
केशवनन्दी	७३, ७४
केशवसेनसूरि	२५, ३१
कौशीरा	५
क्रियाकलाप	६
क्रियाकलाप टीका	६६
क्षपणासार गद्य	८३
क्षेमकीर्ति (भ०)	३६, ५८
क्षेमचन्द्रवर्णी	३०
खटोलना गीत	८१
खंडेलवाल	२१, ३२, ३८, ५६, ६६, १०२, ११३
खंडेलवालान्वय	४४
खेतषी (पंडित)	४६
गजपंथ	१६
गदग (तहसील)	६२
गणधरकीर्ति (मुनि)	६६, ६८, ६६
गणितसार संग्रह	८६, ८७, ६२
गणपतिदेव (राजा)	६
गर्गगोत्री	७६
गंगमुनि	६३
गंग या गंगराज	१६
गंगवंशीय	६१
गंगेलवाल (गोत्र)	२१
गुजरात	२५, ४८, ५०

विषय	पृष्ठ
गुजराती (भाषा)	७५
गुणकरसेन	४३
गुणकीर्ति	५, ७, २७, ५०
गुणचन्द्र (भ०)	२८
गुणचन्द्रसूरि	४०
गुणधराचार्य	८८
गुणनन्दी (मुनि)	६३
गुणभद्र	५५, ६०, ६०, ६३
गुणभद्राचार्य	२१, २६, ४१, ६५
गुणसेन	५२, ८३
गुमटाम्बा	४७
गुरुदास (शिष्य श्रीनन्दी)	५७, ५८
गुहनन्दी	६०
गृद्धपिच्छाचार्य	६५, ८५
गोकर्ण	२०
गोगा	८५
गोंडिल्ल	३१
गोधा (गोत्र)	११३
गोनदेव (वसति)	३६
गोपनन्दी	६७, ६५
गोपसेन	४, ५२
गोपाद्रि	६
गोपालवर्णी	४४
गोपीपुरा (सूरत)	२१
गोम्मटसार	६१, ७६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
गोम्मटसार प्राकृत टिप्पण	५१	चन्द्रभान	७७
गोलापूर्व (जाति)	७६, ६०	चन्द्रमती (रानी)	६
गोल्लाचार्य	६७	चन्द्रसूरि	३६
गोविन्द (कवि)	६०	चन्द्रसेन	६०
गोविन्द भट्ट	४५	चम्पा (माता रायमल्ल)	५१
गौड़संघ	६६	चम्पादेवी	३१
ग्रीवापुर	५१	चम्पा (नगरी)	११३
ग्वालियर	६	चंगदेव	३७
ग्यासशाह	३२	चंदेरी	८०
चक्रसेन	७६	चाचो (पत्नी भगवानदास)	७६
चतुर्दशी व्रतोद्यापन	२५	चामुण्डराय	६१, ८४
चतुर्मुखदेव	६७, ६८	चारित्रपुर	३७
चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र	३६	चारित्रभूषण (भ०)	३६
चतुर्विंशति तीर्थंकर पूजा	४६	चारुकीर्ति (मुनि)	६५
चतुर्विंशतिसंधानस्वोपज्ञ टीका	३८,४०	चित्रकूट	६०
चतुर्विंशत्युद्यापन पूजा	१२	चिन्तामणि—पार्श्वनाथ-स्तवन	४६
चतुस्त्रिंशदुत्तरद्वादशशतोद्यापन	१२	चिन्तामणि पूजा	३०
चन्दनषष्ठीकथा	१४, १७	चिन्तामणि मन्दिर	२४
चन्दनाचरित	८६, ३०	चेर (देश)	६७
चन्द्रकीर्ति (भट्टारक)	४१, ४२, ८८	चोल	६७
चन्द्रनन्दी (जिनचन्द्र गुरु)	३५	चोलदेश	५४
चन्द्रप्रभचरित	२६, ३०, ३४, ११०	छतरपुर	७६
चन्द्रप्रभजिनालय	५१	छन्द कोष	१०६
चन्द्रप्रभपुराण	१००	छन्दोनुशासन	४२, १०३, १०६
चन्द्रप्रभ (भगवान)	४१	छन्दोविद्या	१०६

विषय	पृष्ठ
ओहद	७, ८
जगत्कीर्ति	२१
जगतुंग (गोविन्द तृतीय)	६२
जगत्भूषण (भ०)	७६
जगन्नाथ (कवि)	३८,३६,४०,८१,१०२
जनाश्रय	१०६
जम्बूद्वीप पूजा	१२
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	४५
जम्बूस्वामिचरित	६, ११
जयकीर्ति	२५, ३६, ४२, १०६
जयकुमार चरित	२८
जयचन्द्र	११३
जयदामन्	४२
जयधवला	८८, ६०, ६३
जयपुर	५२, ६२, ८१
जयपुराण	२६
जयसिंह	४
जयसिंह (सवाई)	२५
जयसिंह (चालुक्यवंशीय राजा-सिद्धराज)	६६
जयसिंह (धाराधीश्वर)	६५
जयसिंह	७१
जयसिंहदेव	६६
जयसेन	४, ५२, ५३, ६०
जयसेन (आचार्य)	४३
जहाँगीर (बादशाह)	७६
जहानाबाद वर्तमान न्यू देहली)	५०
जिनगुणव्रतोद्यापन	४४
जिनचन्द्र (भ० शुभचन्द्रके पट्टधर)	३५
जिनचन्द्र (भ०)	३२,४५,५०,८०,६६
जिनचन्द्र (मुनि)	२५, २६
जिनदत्त	८६
जिनदास (पंडित)	३२, ३३, ६४
जिनदास (ब्रह्म	६, ११, १२, १०३
जिनदासी धर्मपत्नी जिनदास)	३३
जिनयज्ञ कल्प	६
जिनरत्नकोष	१४
जिनराज	३७
जिनसेन	२१, ४१, ६०, ६१, ७६
जिनसेन सूरि	५१
जिनसेनाचार्य	५५, ८७, ८८, ६२
जिनसहस्रनाम टीका	१७, ७२
जिनाप्य	५४
जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय	५५
जिनेन्द्रभूषण (भ०)	२७, २८, ३४
जीवराज (पंडित)	२६
जीवराज पापड़ीवाल	३५
जीवंधर चरित	२६, ३०
जैता (ब्रह्मचारी)	८६

विषय	पृष्ठ
जैतुगदेव	८
जैनपाल	५
जैनसाहित्य और इतिहास	६
जैनेन्द्र महान्यास	६४
जैसलमेर	४२
जैसवाल	५
जोमन	१०१
ज्ञानकीर्ति	११२, ११३
ज्ञानदीपिका	६
ज्ञानभूषण (भ०) ७, ८३, ३०, ४७, ५०, ५१, ७०, ७२, ७६	
ज्ञानसागर (ब्रह्म)	१७
ज्ञानसागर भट्टारक (श्री ज्ञानभूषण-शिष्य)	४६
ज्ञानसूर्योदय नाटक	२३, ८८
ज्ञानार्णवगद्यटीका (तत्त्वत्रय प्रकाशिका)	१४, ३४
ज्येष्ट जिनवर कथा	१४, १७, २२
ज्येष्ट जिनवरव्रतोद्यापन	४६
ज्योतिप्रसाद एम० ए०	६१
ज्वालिनीकल्प	६१, ६२, ७२
झालरापाटन	६८
झेर	४१
टोडानगर	२१, ३६
डूँगरपुर	४१

विषय	पृष्ठ
डूँगरसिंह	६
तक्कपुर (टोडानगर)	१०२
तत्त्वज्ञानतरंगिणी	४८, ५०, ५१
तत्त्वत्रय प्रकाशिका	१७
तत्त्वदीपिका (प्रवचनसारटीका)	६
तत्त्वसारटीका	५८
तत्त्वार्थवृत्ति	१७, ३५, ७०
तत्त्वार्थवृत्तिपद	८५
तत्त्वार्थवृत्तिपद विवरण	६४ ६५, ६६
तत्त्वार्थसूत्र	६५, ८६
तपागच्छ (ब्रह्म ?)	४४
तपोलक्षणपंक्तिकथा	१५, १७
तर्दवाड़ी जि० बीजापुर	५५
ताराचन्द्र (प्रधानमंत्री सवाई जयसिंह)	२५
तारासिंह	४१
तिहुना (साहू)	७६
तुंगीगिर	१६
तेजपाल विबुध	३२
तेरापंथी बड़ा मन्दिर (जयपुर)	४६
तेरापंथी मन्दिर	८४
तैलपदेव	५०
तोमर (वंश)	६
तौलव (देश)	५०
तौलव देश	४७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
त्रिपंचाशत्क्रियावतोद्यापन	४३	दिगम्बराचार्य	४१
त्रिभंगीसारटीका	२६	दिल्ली	६, २१, ३६, ४१, ७६
त्रिलोककीर्ति	२६	दिविजदुर्ग	४१
त्रिलोकप्रज्ञप्ति	४५	दिव्यनयन	७६
त्रिलोकसार	८४, १२१	दीपचन्द्र पाण्ड्या	३६
त्रिलोकसारटीका	२७	दुर्गदेव	६४
त्रिवर्ग महेन्द्रमातलिसंजल्प	६८	दुर्गा (पत्नी दिव्यनयन)	७६
त्रिवर्णाचार	२६	दुल्लकपुर	८४
त्रिविक्रम	७१	देवकी (माता पं० रामचन्द्र)	२६
त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र	६	देवकीर्ति मुनि	८४
त्रिलोककीर्ति	२३	देवगिरि	४२
त्रैलोक्यकीर्ति	१००	देवचन्द्र (कवि)	४५
त्रैलोक्यदीपक	१००	देवचन्द्र (मुनि)	४७
त्रैलोक्यदीपिका	४	देवदत्त (दीक्षित)	३४, ६३
त्रैलोक्यनन्दी	६५	देवनन्दि (गुरु नेमचन्द्र)	२३
थानभल्ल	७७	देवनन्दि (पूज्यपाद)	६५, ८५
दक्षिण प्रान्त	५०	देवपाल	८
दण्डी	१०३	देवरवल्लभ	४५
दरियापुर	७६	देवागमस्तोत्र	४५
दरियावाद	७६	देवेन्द्रकीर्ति (भट्टारक)	२१, १५, १६
दशलक्षणव्रतकथा	१२	२६, २६, ४३ ४४	
दशलक्षिणीव्रतकथा	१४, ७१, २२,	देशीगण	४७, ६७, ६८, ६४
दामनन्दी	६५, ६६	देवसूरि	६६
दामोदर	६४	देवसेन	५८
दिगम्बर	६४	देवसेन	६३, १०१

विषय	पृष्ठ
देहली	८, १ ७३८, २०, ६४,
देहली-पंचायती मन्दिर	४४
द्यालपाल (नागराजके पिता)	५८
द्रवणाधीश्वर	६२
द्रविडसंघ	४
द्राविड (संघ)	५०
द्रव्यसग्रहवृत्ति	१००
द्रोपदि नामक प्रबन्ध	५३
द्विसंधानकाव्य-टीका (पदकौमुदी)	२३
धनकलशकथा	२२
धनजी सवा	२४
धनपालरास	१२
धरसेन	८८
धरसेनाचार्य	५५
धवला	८८, ६०
धनजय	२३, ४८, ६०, ११३
धन्यकुमारचरित्र	११, १४, ४१, ५२
धर्मकीर्ति (भ०)	२८, २९, ७६
धर्मचक्रपूजा	६३, ६४, ११८
धर्मचन्द्र	१३, ३३, ८६
धर्मदास (ब्रह्मचारी)	११
धर्मदास (विक्कराज पुत्र)	३२
धर्मदेव	८५
धर्मपंचविंशतिका (धर्मविलास)	११
धर्मपरीक्षा	२७
धर्मपरीक्षारास	७०, ७२
धर्मप्रश्नोत्तर श्रावकाचार	११
धर्मरत्नाकर	४, ५३
धर्मश्री (पत्नी धर्मदास)	३२
धर्मसेन	४, ७, ४८, ५०, ५२, ८०
धर्मोपदेशपीयूषवर्ष	१३, १४, १८
धंग	५६
धरवाड	६२
धरसेन (पं०	३६
धारा (नगरी)	६५, ६८, ६९, ८२
धीरा कल्हू पुत्र)	९९
धूर्जटि	९५, ९६
ध्यानस्तव	३५
नन्दीसंघ	१८, ३०, ७५, ७९
नन्दी (गण)	६७
नन्दीतटगच्छ	३१, ४२, ४८, १११
नन्दीश्वरकथा	३०
नन्दीश्वर पूजा	६४
नन्दीश्वरविधान	४२
नन्दीश्वरव्रतकथा	२२
नयनन्दी	६५, ६६, ७८
नयसेन	८६
नयामन्दिर धर्मपुरा (देहली)	२७
नरवदा (नदी)	७३
नरसिंहाचार्य	४६

विषय	पृष्ठ
नरेन्द्रकीर्ति (भट्टारक)	२६, ३८
नरेन्द्रसेन आचार्य	५२, ५३, ६१, ८३
नलोटकपुर	१०४
नवकार पैंतीसपूजा	४४
नवलक्षपुर	३३
नागकुमारचरित्र	६१
नागकुमार पंचमीकथा	२६
नागचन्द्रसूरि	४७, ५१
नागदेव (कवि)	३७
नागराज (समन्तभद्रभारतीस्तोत्र)	५८
नाठकसमयसार कलश	७७
नाथशर्मा	६०
नानकदेव	५६
नानू (साहमहामात्य राजामानसिंह)	११३
नामदेवी	१०१
नारायणदास (पुत्र जिनदास)	३३
नालछे (नलकच्छपुर)	८
नावई	७६
नित्य महोद्योत	६
निर्दुःख सप्तमीकथा	१२, १४, १७, २२
निर्दोषसप्तमीव्रतकथा	५२
निःशल्याष्टमी विधानकथा	२२
नीतिवाक्यामृत	६७, ६८
नीलग्रीव	६३

विषय	पृष्ठ
नृपतुङ्गदेव	८७
नेमिकुमार	१०३, १०४, १०७
नेमिचन्द्र	२३
नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती	२६, ६१, ७६, १०१
नेमिचन्द्राचार्य	१८
नेमिदत्त (अह्म)	१३, १४, १७, १८, ७१
नेमिदास (वादिराजपुत्र)	६६, १०२
नेमिदेव	६७, १०१
नेमिनरेन्द्रस्तोत्र स्वोपज्ञ)	४०
नेमिनाथ	८१, १०४
नेमिनाथपुराण	१३, १४, ७६
नेमिनाथरासा	८०, ८१
नैमिनिर्वाणकाव्य	७, १४, ११०
नेमिनिर्वाणकाव्यपंजिका	५१
नेमिसेन	४८, ५५,
नेमीश्वरसार	५२
नैगम (कुल)	१००
नोधक नगर	२४
न्यायकुमुदचन्द्र (लघीयस्त्रयटीका)	६६, ७०
न्यायविनिश्चयविवरण	४, ७०
पद्मति (असगके पिता	५३
पट्टावली	२१
पदार्थदीपिका	३६
पद्म (श्रेष्ठी)	३२

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पद्मकीर्ति	११३	परीक्षामुख	६६
पद्मचरित	२८	पर्पट (महामात्य सिन्धुराज)	४३
पद्मचरितटिप्पण	८१	पल्यविधानकथा	१५, १७
पद्मनन्दि	१३	पल्योपम विधानविधि	३०
पद्मनन्दी १५, १६, २०, २१, २७, २६, ३१, ४१, ४४, ८५,		पत्रमदूत	२५
पद्मनन्दी (मुनि-प्रभाचन्द्र शिष्य)	१८	पहंपा (सानपतिपुत्र)	८०
पद्मनन्दी (सैद्धान्तिक)	६५, ६७	पहाड़पुर	६०
पद्मनाभ (कायस्थ)	५, ६	पंचकल्याण कोद्यापनविधि	४४
पद्मनाभ	१०१	पंचत्थिपाहुड	६५
पद्मपुराण	२६, २८, ४२	पंचनमस्कार दीपक	२२
पद्मसिंह	४१	पंचमङ्गल पाठ	८०
पद्मसेन	५२, ६३	पंचपरमेष्ठिवर्णन	१२
पद्मश्री	६०	पंच परमेष्ठिपूजा	२८
पद्मावती (देवी)	३२	पंचमेरुपूजा	४२
पद्मशोकावली	४७	पंचसंग्रह	७०, ७५
पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन ७५, ६६, ६८,		पंचसंग्रह (संस्कृत)	७५
पपौरा	७६	पंचस्तूपनिकाय	६०
परमागमसार	६४, ६५	पंचस्तूपान्वय	६८
परमार्थोपदेश	५१	पंचस्तोत्र-टीका	४८,५१
परमार्दि (राजा)	५५	पंचायती मंदिर [देहली]	४६, ७३
परमार्दिदेव	५६	पंचास्तिकाय	३६
परमार्दि (परमार्द्धिदेव	५६	पंचास्तिकाय प्रदीप	६४,६५,६६,१००
परमाल (परमार्दिदेव)	५६	पंचास्तिकायसार	६५
		पाण्डव	६७
		पाण्डवराजा	४६

विषय	पृष्ठ
पाण्डव पुराण १८, २४,	२६, ३०, ४८, ४६,
पार्श्वनाथकाव्य-पंजिका	२६,३०
पार्श्वनाथ	४७
पार्श्वनाथ [भ०]	४८
पार्श्वनाथचरित्र	४
पार्श्वनाथजिन	१०४
पार्श्वनाथजिनालय	२५, ४२, ५०
पार्श्वनाथजिनेन्द्र	१०८
पार्श्वनाथपुराण	११
पार्श्वनाथमन्दिर रोहितासपुर)	६४
पार्श्वनाथ-स्तवन	१८
पार्श्वपुराण २४, ४१,	४२, ७०, ८७, ८८, ६२
पिंगल	१०६
पिंगलाचार्य	१०६
पुण्यास्रवकथाकोश	७३
पुरवाड-वंश	१०१
पुरंदरविधानकथा	२२
पुस्तक गच्छ	४७, ६४
पुष्कर (गच्छ)	२३, २६,
पुष्करगण	२१, ५०, ५८, ६४
पुराणसार	१०, ५७, ८२, ८८
पुरुषार्थानुशासन	६०
पुष्पदन्त	८८, ८६, १०६, ११३

विषय	पृष्ठ
पुष्पसेन (मुनि)	५५
पुष्पांजलिव्रतकथा	१४, १७, २२
पुहमीपुर	८१
पूज्यपाद (देवनंदी)	५५, ६०, १०६, ११३
पूरणमल्ल	३३
पृथ्वीराज चौहान	५६
पेज्जदोसपाहुड (कषायप्राभृत)	८८
पेमार्दि (जोगमका पुत्र)	५५
पेरोजशाह (बादशाह)	२०, ३२
पोमराज (श्रेष्ठी)	१०२
पौरपाटान्वय (परवारकुल)	८५
प्रकृतिसमुत्कीर्तन	७५
प्रतिष्ठातिलक	४६
प्रतिष्ठापाठ	५५
प्रद्युम्नचरित्र	३१, ४३, ५१
प्रद्युम्नरास	१२
प्रभंजन	११३
प्रभाचन्द्र १३, ५७, ६५, ६६, ६७, ६८, ६६, ७०, ८५, ८६, ६४, ६६, ११३	
प्रभाचन्द्र पण्डित	६६, १००
प्रभाचन्द्राचार्य	६५, १००,
प्रमाणनयतत्त्वालोक	६६
प्रमाणनिर्णय	४, ३६,

विषय	पृष्ठ
प्रमेयकमलमार्तण्ड (परीक्षामुखटीका)	६९, ७०
प्रमेयरत्नाकर	९
प्रवचन सरोजभास्कर	६४,६५,६६,१००
प्रवचनसार	३९,६५
प्रवचनसेन (पंडित)	८२
प्रह्लाद	२०, ४२,
पंचसंग्रह (प्राकृत) टीका	७४
प्राकृत पिंगल	१०६
प्राकृतलक्षण सटीक	२९, ३०
प्राकृत शब्दानुशासन	७१
प्राग्वाट (पोरवाड)	७
प्रायश्चित समुच्चय सचूलिक वृत्ति	५७
प्रियंकर	३७
प्रीतिंकर महामुनि चरित	१४
प्रेम (धर्मपत्नी सोमदेव)	२०
फतेहपुर	२१
फारसीतवारीख	१६
फीरोजसाह तुग़लक	२१,१०१
बटेश्वर (शौरीपुर)	२८
बडवानी	७३
बडोली	१०
बडौदा	४८
बहिंग	६७
बनारसीदास	७६,७६

विषय	पृष्ठ
बरला नगरी (चोलदेश)	५४
बलशक्ति (बलात्कारगण)	४४
बलात्कार (गण)	१३,१५,२८,२९,३०
बलात्कारगण, २८, ५०७५, ७९, ८२, ११२	
बागड	५०,५१
बागड देश (बाग्वर)	२५,५०
बाडी-मुहल्ला (बड़ौदाका)	४८
बाबर (मुगल बादशाह)	६४
बाराबंकी	७६
बालेन्दु (बालचन्द्र)	६४
बाल्हीक नगर	२४
बाहुबली (भोजराज महात्म्य)	८३
बिंभ (वैद्यराज)	३२
बीजाव	६३
बुन्देलखण्ड	७९
बृहट्टिप्पणिका	६४
बृहत्षोडशकारण पूजा	४४
बृहत्सिद्धचक्र पूजा	१२
ब्रह्मदास	७६
ब्रह्मशील	८६
ब्रह्मसेन	५२
ब्राह्मण (कुल)	४७
भक्तामरस्तवनपूजन	४९
भक्तामरस्तोत्र वृत्ति	

विषय	पृष्ठ
भगवती आराधना	८२,७३
भगवती आराधना-पंजिका	१६
भगवानदास (रूपचन्द पिता)	७६, ७८, ८०
भट्टाकलंक	११३
भडौंच (भृगुकच्छ नगर)	१०७
भदौरिया (राजा)	३४
भद्रबाहु	४१, १६७
भद्रबाहु चरित्र	१०२
भरतेश्वराभ्युदय	६
भवराज	५, २०
भविष्यदत्तकथा	५२
भविष्यदत्तचरित्र	२६
भानुकीर्ति	४७
भानुभूपति	१६
भावनापद्धति (भावनाचतुस्त्रिंशिका	
भारतीय ज्ञानपीठ	३८
भारमल्ल राजा)	१०६
भावकीर्ति (असग विद्यागुरु)	५४
भाव शतक	५८
भाव संग्रह	६४, ६५, १०१
भावसेन	४, ५०, ५२
भास्कर नन्दी	३५, ३६
भीमसिंह	१६, १०२
भीमसेन (भ०)	३१

विषय	पृष्ठ
भुल्लण (कुशराज पितामह)	५
भुवनकीर्ति	३३, ५०, ८०
भूतबली	८८,
भूतिलकभागापुरी	२५
भूपति	७६
भूपालचतुर्विन्शति-टीका	८
भैरवपद्मावतीकल्प-सटीक	६१,७२
भोज (धाराधीश्वर) राजा	६५,६७,६८, ६६, ७०, ७१,
भोजराज (राजा)	८३
भोजराज मंत्री (रावभाणजी)	१६
मकलय	१०४
मतिसागर	४
मदनपराजय	३७
मदनपुर	५६
मधूक नगर	२३
मलय (देश)	६३
मरण करण्डिका	६४
मलयकीर्ति	६०
मल्लिनाथ	७२
मल्लिनाथ चरित्र	११
मल्लिभूषण	१३, १५, ७२
मल्लिषेण (आचार्य)	६१, ६२, ७२
मल्लुगित	३७
मल्लू इकबालखां	६

विषय	पृष्ठ
मल्हणा (धर्मपत्नी पं० रामचन्द्र)	२६
मसूतिकापुर	७०
महापुराण	६१, ८२,
महाभिषेक	१७
महादेवी	
महापुराण	६६, ७२
महापुराण-संस्कृत टीका	२१
महाराज	२०
महाराष्ट्र	५०
महाराष्ट्र ग्राम	३४
महावीरजी	६६
महासेन (आचार्य)	४३
महासेन (भगवानदास पुत्र)	८०
महीपाल (वैश्य)	३१
महीपाल चरित	३६
महेन्द्रकीर्ति (भ०)	८१
महेन्द्रदत्त (पुत्र विमलू)	२०८
महेन्द्रभूषण (भ०)	२८
महोबा	५६, ७६,
मह्य (रायमल्ल पिता)	५१
मंगल (ब्रह्म)	२५
मंगलदास (ज्येष्ठ भ्राता कृष्णदास)	३३
मन्त्र महोदधि	६४
माइन्द्र (ठक्कुर)	३८
मांडवगढ (मांडू)	८
मांडव्य	१०६

विषय	पृष्ठ
माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला	३८, १०१, १०२
माणिक्यनन्दी	६५, ६६, ७०
माणिक्यसेन (मुनि)	५५
माथुर (गच्छ)	२१, ५०, ५८
माथुर	६०
माथुर (संघ)	६६
माथुरान्वय	५८, ६४
माधवचन्द्र (भ० शुभचन्द्र शिष्य)	८४
माधवचन्द्र (व्रती)	८४
माधवचन्द्र (त्रैविद्यदेव)	८४
माधवचन्द्र (आचार्य	८३
मानसिंह (राजा)	११३
मानिनी	८५
मान्यखेट (मलखेड़ा)	६३
मामट (पितामह)	७६
मालव (देश)	४०
मालवा	१४
मित्रसेन	७६, ८०
मुकुटसप्तमीकथा	१४, १७, २२,
मुक्तावलीव्रतकथा	१४, १७
मुडासा	३५
मुनिचन्द्र	४७
मुनिचंद्रसूरि	८४
मुनिसुव्रतपुराण	३३
मुनिसेन	१०६
मुहम्मदशाह (द्वितीय)	१६

विषय	पृष्ठ
मुञ्ज (धाराधिप)	१६०
मुञ्ज (राजा)	४३
मुञ्जदेव	४३
मूलगुन्द	६१,६२
मूलसघ, १३, १५, १८, २३, २६, २८, ३१, ४४, ४७, ५०, ५१, ६५, ६७, ७५, ७६, ८०, ९०, ९४, १००, ११२	
मूलसंघान्वयी	५५
मूलसंघी	५६
मूलाचार	१०
मूलाचार-प्रदीप	११
मूलाराधनादर्पण	६. ७५, ८२,
मेघदूत	६३
मेघमालाव्रतकथा	१४,१७
मेघमालोद्यापन पूजा	१२
मेदपाट (मेवाड़)	३१
मेधावी	६६
मेधावी (जिनचन्द्र शिष्य)	३६,४५
मेरुपंक्तिकथा	१५, १७
मेदपाटी (मेलाड़ि नामक गांव)	६७
मेवाड़	२५
मेवाड़ (देश)	१०४
मैथिली कल्याणनाटक	४६
मैनपुरी	३४
मोक्षसप्तमीकथा	१२

विषय	पृष्ठ
मौजमाबाद (जयपुर)	५१
मौनव्रतकथा	२८,४०
यशसेन (भट्टारक)	६४
यशः कीर्ति	२७, २८, २६, ५०,
यशस्तिलकचन्द्रिका	१७
यशस्तिलकचम्पू	४, १४, ६७, ६८
यशोधरा (ध० प० मित्रसेन)	८०
यशोधर (राजा)	६
यशोधर चरित्र ४, ५, ७, ११,१४,१७, २४, २६, ३१, ५३, ११२	
यशोधर देव	६६
यशोधर महाकाव्य-पंजिका	५६
यशोधर रास	१२
युक्ति चिन्तामणि	६८
योगदेव (पं०)	४७
योगसग्रहसार	५६
योगसार	१०६,११२
योगिनीपुर (दिल्ली)	१०१
रइधू (कवि)	५८
रत्नविधानकथा	२२
रघुपति (महात्मा)	४१
रट्टदेव (देव)	३६
रणस्तम्भ (रणथम्भौर)	३२
रतन (चन्द्र)	२०
रत्नचन्द्र (भट्टारक)	३१
रत्नकरण्डश्रावकाचारटीका	६६

विषय	पृष्ठ
रत्नकीर्ति (भ०)	७, १३, १८, २८, ३३, ३६, ५२
रत्नकीर्ति (मुनि)	५६
रत्नत्रयव्रतकथा	१५, १७, २२,
रत्नत्रयविधान	६
रत्ननन्दी	३६, १०१, १०२
रत्नभूषण	२५
रत्नपाल (ब्रह्म)	४६
रत्नमाला	८७, ९२
रत्नसागर	२७
रत्नशेखरसूरि	१०६
रत्नाकरसूरि	३६
रल्लो	५
रविभद्र (अनन्तवीर्यगुरु)	५६
रविव्रतकथा	१४, १७
रविषेण (आचार्य)	२८, ६०
राघव (ब्रह्म)	४६, ५०
राघवपाण्डवीयकाव्य	२३
राचमल	८४
राचमल्ल	६१
राजकुमार	३८
राजमल्ल	१०६
राज (जी) मती विप्रलम्भ (परित्याग)	६, ११०, १११
राजश्री (शिष्या यशसेन)	६४
राजसिंह (राजा)	१०२
राजावलीकथे	४५
राजेन्द्र चन्द्र	४७
रात्रि भोजनत्यागकथा	७६, १३, १४,
राम [चन्द्र] (नागदेव पुत्र)	३७
रामकीर्ति (भ०)	२६, ४२
रामचन्द्र	१०२
रामचन्द्र (पं०)	२६
रामचन्द्र (वादिराज पुत्र)	३६
रामचन्द्र (मुनि)	२७, ७२, ७५
रामचन्द्र (मुमुक्षु)	७३, ७४
रामचरित्र	६, ११, १०३
रामनगर	२५
रामनन्दी (गणी)	६५
रामसेन (भट्टारक)	३१, ३२ ४२, ४८, १११
रामसेनान्वय (ग०)	३१
रायमल्ल (ब्रह्म)	५१
रायल एशियाटिक सोसाइटी जनरल	१०६
रावणपार्श्वनाथस्तोत्र	२०
राव नारायणदास	१६
राव पुन्जो जी	१६
राव भाणजी (राजा)	१५, १६
राष्ट्रकूटवंश	६७
राहड	१०४
राहडपुर	१०४

विषय	पृष्ठ
रिखश्री (माता जिनदास)	३३
रिष्टसमुच्चय	६४
रूपचन्द्र (पं०)	७६, ७१, ११३
रूपचन्द्र पांडे	७७,८०
रूपचन्द्रशतक	८०
रूरा	२८
रेखा (पुत्र धर्मदास)	३२
रेराज	५
रोहिणीव्रत कथा	२२
रोहितासपुर (रोहतक)	६४
लक्ष्मण (साहू)	२७
लक्ष्मण	१०१
लक्ष्मी (मातानागराज)	५८
लक्ष्मीचन्द्र	१३,१५,१७
लक्ष्मीचन्द्र (मुनि)	१००
लक्ष्मीभूषण	३४
लक्ष्मणश्री	५
लक्ष्मीसेन	३१,४८
लखमसेन	७
लब्धिविधानकथा	१५१६,२२
ललितकीर्ति	२८,२९,१०२
ललितकीर्ति (भ०)	२१,२२,३३,४७
ललितपुर	५६
लंबकंचुक (कुल)	२०,२६,२९
लंबकंचुक (लमेचू)	५६,८६
लालजी	१०२

विषय	पृष्ठ
लालजी (लालजीमल पुत्र वादिराज)	३९
लाल (ड) वागड (संघ)	४, ४३
लाड वागडसंघ	५२,६६,९२
लूणकरण (पं०)जीकाशास्त्र भंडार	६२
लूणकरण (पं०)	४८
लोणा	५
लोहपत्तन (नगर)	३३
लोहाचार्य अन्वय	५०
वघेरवाल (जाति)	८,२६
वट्टकेर	६०
वत्स (गोत्र)	४५
वनमाली	४९
वप्पनन्दी	६२
वर(नर)देव	८५
वर्धमान	४५
वर्धमानचरित्र	११
वर्धमानटोला	१८
वर्द्धमानचरित्र	२१
वर्द्धमान चरित्र	५३
वसुनन्दी	५५,५७
वंगदेश	११३
वागडदेश	४७
वागडसंघ	४
वाग्भट (ट्ट) कवि	७,१०३,१०४
वाग्भट (वाग्भट्टालंकारके कर्ता)	७

विषय	पृष्ठ
वाग्भट (श्रावक)	८६७
वाग्भटालंकार	७
वाग्भटालंकारावचूरि-कविचन्द्रिका	१०२
वाग्वर (वागड़)	४ ३०३२
वाघास (कुल)	७२
वाणी (सरस्वती) गच्छ	३६
वादिचन्द्रसूरि	२३,८८
वादिभूषण	११३
वादिराज (आचार्य)	४,३०,५७,७०,११३
वादिराज (भ्राता जगन्नाथ कवि)	३८,३६
वादिराज (मंत्री राजसिंह)	१०२
वादिराज सूरि	५८
वादीभसिंह	७३, ११३
वामदेव	१००,१०१,१०२
वासवनन्दी (पंडित)	६२
वासवसेन (मुनि)	७
वासवसेन	११३
वासाधार (साहू)	२०
वासुपूज्य जिनालय	२७
वाहणषष्ठीव्रतकथा	१२
विक्रान्त कौरव नाटक	४६
विजयकीर्ति (भट्टारक)	१८,३०
विजयनाथ माथुर	५०, १०१
विजयसार	४१
विजोलिया	१६
विज्जलदेव	५६
विट्ठलदेवी	४७
विद्यागण	४८,
विद्या (गण)	१११
विद्यानन्द	६८
विद्यानन्दि	१२, १३, १५, २५, ७२
विद्यानुवाद	६२
विद्याभूषण (भट्टारक)	४२, ४८, ४६, ११२
विनयचन्द्र	८,२३,१००,
विनयदेवी (पत्नी भोजराज)	१६
विनयश्री (आर्या)	१७
विन्ध्य वर्मा	८
विमलदास	३६, १०२
विमलश्री (आर्या)	१७
विमलसेन	४८
विमलसेन गणधर	५८
विमानपंक्तिकथा	१५, १७
विरुवट्ट (क्षुल्लक)	६३
विलासपुर	५५,५६
विशालकीर्ति	१३,२३,४७,१११
विश्वभूषण (भ०)	२७,३४
विश्वसेन (भ०)	७८,७२
विश्वसेन (मुनि)	१११, ११२
विषापहारस्तोत्रटीका	४७, ४८
विष्णु भट्ट	६५
वीणा (धर्मपत्नीपद्मसिंह)	४१

विषय	पृष्ठ
वीररागस्तोत्र	२०
वीरनन्दी	६०, ११०
वीरभद्राचार्य	६३
वीर भोजदेव (राजा)	२००
वीरमदेव	५, ६,
वीयराय	१६
वीरसेन ५२, ८३, ८८, ६०, ६१, ६२	
वीरसेन (आचार्य)	७५
वीरसेनाचार्य	६३
वीरिका	२५
वीरिका (माता कृष्णदास)	२३
वीरु (कवि)	६४
वीरु (बुध)	६३, ११२
वेंकट रंगनाथ शर्मा	७२
वृत्तरत्नाकर	१०६
वृषभ-चरित्र (आदिनाथपुराण)	११
वृषभदेवपुराण	४१, ४२, ८८
वृहती (भार्या विमलू)	२०८
वृहत्कलिकुण्डपूजा	४६
वृहत्सिद्धचक्रपूजा	६३, ६४, ११२
वृहद्गुर्जरवंश	४१
व्रतकथाकोष	१२
व्रततिथिनिर्णय	२३
वैजेणी	२६
वैद्यकशास्त्र	११२
वैरिति (असगकी माता)	५३

विषय	पृष्ठ
वोसरि (भट्ट)	६५, ६६
शकुन्तला	७२
शहाबुद्दीन गौरी	८
शब्दाम्भोजभास्कर	६४, ६६
शब्दाम्भोरुह भास्कर	६७
शङ्खदेवाष्टक	४७
शाकवाटपुर (सागवाडा)	३०
शांतिकविधि	८४
शान्तिजिनस्तोत्र	२०
शान्तिनाथ चैत्यालय	६३
शान्तिनाथ जिनालय	४४
शान्तिनाथ पुराण ३५, ५३, ५४, ४८, ४६, ८८	
शान्तिनाथ मन्दिर	६४
शान्तिनाथ स्तवन	१८
शान्तिषेण	४, ५२
शारदा स्तवन	४४
शाहजहाँ (जहांगीर पुत्र)	७६
शिवकोटि	६०)
शिवाभिराम (पं०)	४०, १००
शीतलनाथ	३१
शुभकीर्ति	१३
शुभचन्द्र (भट्टारक) १८, १६, २३, २६, ३०, ४४, ४५, ५५, ५८, ५६, ८४, ८५, ८६	
शुभधाम जिनालय	६७

विषय	पृष्ठ
शृङ्गारसमुद्रकाव्य	४०
शृङ्गारमञ्जरी	४०
शेरशाह (बादशाह)	३३
शौरिपुर	३४
श्रमणभगवान महावीर	१०१
श्रवण द्वादशी कथा	१५.१७
श्रवणबेलगोल	६७,८४,९५
श्रावकाचार सारोद्धार	१८,१९
श्रीकुमार	४५
श्रीघोषर	१६
श्रीकृष्णदेव (तृतीय)	६७
श्रीकृष्ण (राजा)	६३
श्रीचन्द्र	५७, ८२, ८३, ८८
श्रीचन्द्र-टिप्पण	८२
श्रीदत्त	८५
श्रीदेव पं०)	५६
श्रीदेवताकल्प	८३
श्रीधन (मुनि-विद्याधर)	५८
श्रीधर (विबुध)	२६
श्रीनाथ (राजा)	५४
श्रीनन्दी (नयनन्दी गुरु)	५७
श्रीनन्दी (बलात्कारगणाचार्य)	५७
श्रीनन्दी चतुर्थ)	५८
श्रीनन्दी	६५,८२
श्रीनन्दी गुरू	५७
श्रीनिवास (राजा)	६४

विषय	पृष्ठ
श्रीपाल	६३
श्रीपाल आख्यान	२४
श्रीपालचरित(त्र)	११,१३,१४,१७,१८
श्रीपाल (त्रैविद्य)	५८
श्रीपालदेव	४
श्रीपालरास	१२,५२
श्रीपाल (वर्णी)	३०
श्रीपुराण	४६
श्रीभूषण (भट्टारक)	३०, ४१, ४२, ४८,४९,८८,१११
श्रीमाल (कुल)	१०६
श्रीरत्नी	८
श्रीवत्स (गोत्र)	४७
श्रुतकीर्ति (भट्टारक)	४९,५०
श्रुतबोध	१०६
श्रुतमुनि	६४,६५
श्रुतसागर (ब्रह्म)	६३,१४,१५,१६,१७, ३४ ७२
श्रुतस्कंधकथा	२२
श्रुतस्कंधपूजा	१७
श्रेणिकचरित्र	२९-३०
श्रेणिकरास	१२
श्वेताम्बर	६७
श्वे० ज्ञानभंडार-जैसलमेर	१०६
श्वेताम्बरीयज्ञानभंडार	६८,१०६
षट्खण्डागम	७५,९०

विषय	पृष्ठ
षट्चतुर्थवर्तमानजिनार्चन	४०, १००
षट्दर्शनप्रमाणप्रमेयसंग्रह	८५
षट्द्रव्यनिर्णय	१००
षट् पाहुडटीका	१७
षट्रसकथा	२२
षण्णवतिक्षेत्रपालपूजा	१११
षण्णवतिप्रकरण	४८
षोडशकारण कथा	१४,१७,२२
षोडशकारणव्रतोद्यापन	२५
षोडशकारणयन्त्र	३४
सकरू (दू) साहू	८६
सकलकीर्ति (भट्टारक)	६,१०,११, १६,२६,५०
सकलचन्द्र (भट्टारक)	२१,८४
सकलभूषण (भट्टारक)	१८,२६
सकलविधिविधान (काव्य)	६६
सकीटनगर (एटा)	८६
सज्जनचित्तवल्लभ	६२
सतना	२०
सत्यवाक्य	४५
सद्भाषितावली	११
सप्तव्यसन-कथा-समुच्चय	३०
सपादलक्ष	८
सबलीकरहटक	५
समकितरास	१२
समन्तभद्र (आचार्य)	४१,४५,६० ८५, ६८,१०६, ११३
समन्तभद्र-भारती	५८
समवसरणपाठ	७६,८०
समाधितन्त्र	१००
समाधितंत्र(शतक)टीका	६६
सम्मेदशिखर	३२,३४
समयसार	३६
सम्यक्त्वकौमुदी	२२
संयमकीर्ति	५८
संयमसेन	६४
सरस्वतिगच्छ	६,१३,१५, १८,२३ २६,३१,५०,७५,७६,८०,११२
सरस्वति-स्तवन	५१
सरस्वती	८
सरस्वती(भारती)-कल्प	६१,७२
सर्वसाधु	३५,३६
सल्लक्षण	८
सलेमपुर	७६
सहस्रकीर्ति (भट्टारक)	२७, २६, ५०
सहस्रनामस्तोप० टी०	६
सन्तोष (जैसवाल)	५
संशयवदन विदारण	३०
साकुम्भरी	३२
सागपत्तन (सागवाड़ा)	३२
सागरचन्द्र (मुनि)	६
सागरनन्दी	६६
सागरसेन (मुनि)	८२

विषय	पृष्ठ
सागवाड़ा	२८,५०
सागारधर्मामृत (स्वोपज्ञटीका-सहित)	६
साङ्गसिद्धशब्दानुशासन	७२
सानपति (साहू)	८०
सामन्तसिंह	४१
सारचतुर्विंशतिका	११
सार्द्धद्वयद्वीपपूजा	१२
सालपुरारेंज	७३
सप्तपरमस्थानकथा	१४,१७,२२
सांतिरसव्वा (आर्यिका)	६३
सिद्धचक्रकथा	४४
सिद्धचक्रपाठ	२२
सिद्धचक्रमन्त्रोद्धार स्तवन-पूजन	४६
सिद्धचक्राष्टकटीका	१७
सिद्धभक्तिटीका	१७
सिद्धभूपद्धतिटीका	६०,६१
सिद्धान्तसारदीपक	११
सिद्धान्तसार	५२,५३,८३
सिद्धान्तसार-भाष्य	५१
सिद्धान्तसारादिसंग्रह	१०२
सिद्धिविनिश्चय-टीका	५६
सिंघीजैनसीरीज	६४
सिंधुराज	४३
सिंहकीर्ति	७६
सिंहनन्दी	१४,२३
सिंहपुरा	४
सिंहल	६७
सुकमालचरित्र	११
सुखनिधान	३८,४०,८१
सुखबोधवृत्ति (तत्त्वार्थसूत्रटीका)	४७
सुगंधदशमीकथा	१५,१७,२२
सुदर्शनचरित	१२, १४,७०
सुदर्शनसार	५२
सुदंसणचरिउ	६५
सुनामपुर	६६
सुभग (रामचन्द्र पिता)	२६
सुभगसुलोचना-चरित	२३,८८
सुभटवर्मा	८
सुभद्राहरण	४६
सुभाषितरत्नसन्देह	४३
सुभौमचक्रिचरित्र	३१
सुमतिकीर्ति (भट्टारक)	१८,२८, ५०, ५१,७२,७५
सुमतिसागर (भट्टारक)	४४
सुलोचनाचरित्र	२४,२५
सुहृज्जन	३२
सूपकारसार (शास्त्र)	२०
सूरजमल्ल	१६
सूरत	१५,४१
सेठकूचा मन्दिर दिल्ली	५२
सेतव	१०६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
सोमकीर्ति (भट्टारक)	३१,५३	स्वयंभूस्तोत्र	१०६
सोगानी (गोत्र)	३६,१०२	स्वयंभूस्तोत्र-टीका	६६
सोजित्रा	४१,४६	स्वरूपसम्बोधन-वृत्ति	३०
सोनिक	८६	हनुमच्चरित	१२
सोमदेव (गोकर्ण-पुत्र)	२०	हनुवन्तकथा	५२
सोमदेव	४,६०,११३	हमीरदे (धर्मपत्नी हेमराज)	३२
सोमदेव (श्रावक)	६६	हरखचन्द दुर्गादास	२८
सोमदेव (सूरि)	२६	हरदेव (चंगदेव पुत्र)	३७
सोमदेव (यति)	१६६	हरपाल (वैद्य)	११२
सोमदेव (आचार्य)	१४,६६,६७,६८	हरिचंद्र	६०,१००
सोमवार (ग्राम	८५	हरितनु	४१
सोमेश्वर तृतीय (सोलंकी राजा)	५५	हरिपति	३२
सोरठ देश	८१	हरिराज	२०,७६
सोलहकारणव्रतकथा	१२	हरिवंश	८०
सेनगण	४७	हरिवंशपुराण	१,११,२८,२६,४६,५८
सेनवंश	६२	हरिवंशरास	११
सेनसंघ	६०	हरिषेण	२१३
सैराज	५	हर्ष (कृष्णदास पिता)	३३
सौराष्ट्र (देश)	२०	हर्षसागर (ब्रह्म)	२७,३४
सौर्यपुर (सूरत)	४६	हस्तिमल्ल	४५,५५
स्वर्णनन्दी	६६	हंस (वर्णी)	७५
स्वर्णाचल-माहात्म्य	३४, ६३	हंसराज	५
स्तोत्र (तर्क ग्रंथ)	३०	हिसार (फेरोजापत्तन)	६६
स्मरपराजय	३८	हीरालाल एम. ए.	६१
स्याद्वादोपनिषत्	६८	हींगा (कविगोविन्द पिता)	६०
स्वयंभूछन्द	१०६	हुँबड (जाति)	३१,४८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
हूबड (वंश)	५१	हेमराज	५
हूँमड (वंश)	१८,११२	हेमराज पाटनी	३२
हेम ग्राम)	६३	हेलाचार्य	६२,६३
हेमकीर्ति	५८,८६	होलिकाचरित्र	२४
हेमचन्द्र (नागदेव पुत्र)	३७	होलीरेणुकाचरित्र	३२,३३
हेमचन्द्र	४४,६४	होय्यसल (वंश)	५८
हेमचन्द्राचार्य	७२	हैदराबाद	६१
		हैहय (वंश)	५५

शुद्ध-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१६	चवक्रवालः	चक्रवालः
१२	२०	लिखते	लिखन्ति
१३	१८	स्मण	स्मरण
१५	१८	गुरूणामुप–	गुरूणामुप-
१६	२	यशोधरचरित	सुदर्शनचरित
१८	१५	सुगरु—	सुगुरु—
,,	१८	सकल गुणनिधैः	सकलगुणनिधि-
२२	२०	दोषैरवालोकित-	दोषैरनालोकित-
,,	२४	हु मान् (?)	महान्
२३	२४	(१८७४)	(१८८४)
२६	३	विजयनिवरत्नं	विजयिनि वररत्नं
३४	४	विश्वभूषण-विरचिते	विश्वभूषण-पट्टाभरण-जिनेन्द्रभूषण-विरचिते ।
३८	६	कर्यो	कार्यो
३९	८	कोविदः	कोविदाः
४१	१८	भुवनत्रये	भुवनत्रयम् ॥
४३	९	वृषभाङ्कित)	वृषभाङ्कितम् ।
,,	१९	संस्ते	स्तुते
४५	१४	तदा···च्छ्री	तदाज्ञया श्री
,,	२५	काव्य···जिका	काव्यपंजिका
४७	८	कवित्तमदतः	कवित्वमदतः
४९	२३	सूरिश्च···न्द्रादि-	सुरेन्द्रचन्द्रादि
५०	१४	महान्त ॥१७१	महान् ।
,,	२	सदा ॥१७२॥	सदा ॥१७१॥*

* इससे आगेके सब श्लोकनम्बर एक अङ्क कम जानने चाहिए ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५३	२०	बाल सबुद्धयै	बालसंबुद्धयै
५४	६	गुणगेय (?) कीर्त्ति-	गुणिगेयकीर्त्ति-
,,	१६	समाप्तेदं	समाप्तमिदं
५७	१०	यथागमः	यथागमम् ।
,,	२४	जयत्परं ।	जयत्यरं ॥
५८	१५	(सु)	(सदा सु)
६१	१०	गरुभुंवन	गुरुभुंवन-
६३	१८	संसुतां	संस्तुतां
६७	७	मवेद्	भवेद्
,,	१५	शास्त्रेऽस्मिन्नादितं	शास्त्रेऽस्मिन् गदितं
६८	१	कनकच्चार संछायं	कनत्काञ्चनसच्छायं
,,	७	श्रीयशःकीर्त्तिरेनः (?)	श्रीयशःकीर्त्तिरेषः ।
७४	१६	यस्यांशदेशेप्सित-	यस्यांसदेशे स्थित-
७६	१५	(जिनदेव)	(नागदेव)
७६	१७	यदामलपदपद्मं	यदमलपदंपद्म
७७	२५	(जिन ?)	×
८०	८	तस्माच्चि(न्त्य)तिमिदं	तस्माच्चिन्त्यमिदं
८१	२३	सिद्धाचरै···कैः	सिद्धाचरैः स्वकैः
८२	५	शिवाभिरामात्र	शिवाभिरामाच्च
८३	१३	विद्याचिणो (?)	विद्याचणो
,,	२१	समस्यलं (?)	समस्थलम् ।
८७	१३	परदेव तत्र (?)	परदेवताऽत्र ।
,,	१७	लक्ष्मादिचन्द्रो—	लक्ष्म्यादिचन्द्रो
८७	२३	श्रद्धाकं	श्रद्धाङ्क
८९	१५	मंडलं	मंडले
,,	,,	वनीसेवति (?)	वनीसेविते

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९२	७	चित्तेनाचालमेव	चित्ते नाचलमेव
,,	८	निःकाशित	निःकाषित
,,	२२	समाप्ताः	समाप्ता
९६	२	माप्नुलभ्या (?)	माप्नु लब्ध्वा ।
,,	१७	सर्वे	सर्वैः
१००	१६	चम्पामिती सामिधा (?)	॥६॥ चम्पावतीत्याभिधा ।
,,	१२	वादीन्दुकं ॥७॥	वादीन्दुकम् ॥६॥*
,,	२४	दर्शज्ञान	दर्शनज्ञान
१०२	१३	वेत्ता	वेत्ता
,,	१७	चारित्र	चरित्र
१०३	११	ग्याद्वाभडः	लाटवागड़ः
१०४	१०	सद्दृष्टिवन्तो (वान) त्र	सद्दृष्टिवान्सोऽत्र
,,	२३	अष्टादशतीर्थेन	अष्टादशतीर्थाय
१०५	८	श्रीमते (?)	श्रीमत्
,,	,,	मे दुरांमतिः ?)	मेदुरां मतिम्
१०६	५	परमा	परया
१११	१०	गणिः	गणी
११२	८	कल्याभ्युदये	कल्याणाभ्युदये
११३	२०	स्वनादिर्ष्यति	स्वनादीर्ष्यति
१२१	६	विरहति दनिशः (?)	विहरति ह्यनिशं
,,	९	भात	भाति
,,	१७	दुर्जयदाभुयंग	दुर्जनताभुजंग–
,,	१८	कृतानागरः (?)	कृताऽऽननगरः
१२२	१६	तत्तत्त्वोसारोप	तत्तत्त्वसारोप

* इससे आगे एक अंक कम समझना चाहिए ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२२	२४	गामितं मसंग्निलित् (?)	गामि-संत्तमससंग्लपित्
१२३	१५	गगणाऽऽपगाः	गगनाऽऽऽपगाः
१२४	१२	शुकुन	शकुन
१३५	२१	गृहिता	गृहीता
१३८	२१	सरसलिलवत्	सरःसलिलवत्
१४२	१५	प्रवर्तते (तु ?)	प्रवत्त (ताम् ?
१४३	१७	स्वामि विनेयानां	स्वामी विनेयानां
१४५	२२	नरोचनाकातः (?)	लोचनकान्तः
१४६	१२	आसाद्यथुसदा [?]	आसाद्य थुसदां
१४८	१	मुरगोपेता	मुद्गरोपेता
१५६	१७	कृत्वा	कृता
१५८	८	तुच्छतमा (?) त्र	(खलु) तुच्छतमेन
१६०	६	शीलनिधि शलीलं (१)	शीलनिधिः सुशीला
१६३	५	घनाथ तारकाः (?)	घनाघनोऽथ तारकाः
१६४	६	वर्णलंकाहारिणी	वर्णालंकारधारिणी
१६५	६	नेमिचचन्द्र'	नेमिचन्द्र'
,,	१६	पटिय दुष्ट (?)	षट्पिष्ठ-
,,	१८	गमकि	गमक
,,	२२	माधवेनः सूद्वंडात्मक	माधवेन षट्खंडात्मक
१६८	८	पर्याम,	पर्याय-
,,	१४	मलमप्रतिमबोधं	ममलप्रतिमप्रबोधं
१६६	२३	द्वाप्टे	द्वयष्टे
१७०	१६	विशस्य ? दूरीकृतलागुण ?	विज्ञस्यादूरीकृतकलागुण ।
१७१	२२	गुरुणामत्रदेशो (?) न	गुरूणामुपदेशेन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७२	१२	आर्यंवे (?) सुरसत्प्रिये ।	आर्यंवर्षे सुरप्रिये
१७३	२४	विदुषो	विज्ञो यो
१७६	१३	शक्रे	शुक्रे
१७७	६	जयास्युच्चकैः (?)	जयत्युच्चकैः
१७६	१४	जिनभूतिराम्यं (?)	जिनभूतिरम्यं
१८०	२२	देवेन्द्रस्त्वद्यशः पेतुः करैः	देवेन्द्रास्त्वद्यशः पेतुः करे
,,	,,	धृत्वास्त्ववकीम् (?)	धृत्वा स्त्ववल्लकीम् ।
,,	२३	ते	तं
१८१	५	विदो मथत् (?)	विदोऽभवन् ।
१८५	२४	यत्करणौ	यत्कर्णौ
१८७	७	निर्लोडितान्यगम-	निर्लोडितान्यागमं
१८८	,,	महरिणो	महरिसिणो
१८८	११	करणाए	करुणाए
१८६	१२	तावेत्थो महीफलंमि विदिट्ठ'	तावत्थेय महीयलम्मि विदिट्ठं
,,	१५	णयरणाए (?)	णयरणाहे
१६२	१३	नामिऊण	नमिऊण
,,	१४	सव्वन्नं	सव्वरणुं
१६६	११	नवासीत्युत्तरे	नवाशीत्युत्तरे
१६८	८	विऽद्वेष	विद्वेष
२१८	१२	सद्गवाक्य—	सद्गुरुवाक्य—
२२४	१५-१६	श्लोक नं० १६ दुबारा छप गया है । अतः उसे निकाल कर आगे के श्लोक नम्बर सुधार लेवें ।	



जैनग्रन्थ-प्रशस्तिसंग्रह

(आद्यन्तादिभागसंचयात्मक)

—*०:❀:०*—

१. न्यायविनिश्चय-विवरणम् (वादिराजसूरिः)

आदिभाग :—

श्रीमज्ज्ञानमयो दयोन्नतपदव्यक्तो विविक्तं जगत्
कुर्वन्सर्वतनूमदीनगुणसख्यैर्विश्वं वचोरश्मिभिः ।
व्यातन्वन्भुवि भव्यलोकनलिनीषंडेष्वखंडश्रियं
श्रेयः शाश्वतमातनोतु भवतां देवो जिनोऽहंपतिः ॥१॥
विस्तीर्ण-दुर्नयमय-प्रबलान्धकार-दुर्बोध-तत्त्वमिह वस्तुहितावबद्धं ।
व्यक्तीकृतं भवतु नः सुचिरं समंतात् सामंतभद्रवचनस्फुटरत्नदीपैः ॥२॥
गूढमर्थमकलंकवाङ्मयागाधभूमिनिहितं तदर्थिनाम् ।
व्यञ्जयत्यमलमनन्तवीर्यवाक् दीपवर्तिरनिशं पदे पदे ॥३॥
यत्सूक्तसारसलिलस्नपनेन संतश्चेतो मलं सकलमाशु विशोधयन्ति ।
लंघ्यन्न यत्पदमतीवगभीरमन्यैस्ते मां पुनस्तु(न्तु)मतिसागरतीर्थमुख्याः ॥४
प्रणिपत्य स्थिरभक्त्या गुरून्परानप्युदारबुद्धिगुणान् ।
न्यायविनिश्चय-विवरणमभिरमणीयं मया क्रियते ॥५॥

विद्यासागरपारगैर्विरचितास्संत्येव मार्गाः परे
ते गंभीर-पद-प्रयोग-विषया गम्याः परं तादृशैः ।
बालानां तु मया सुखोचितपदन्यासक्रमश्चिन्त्यते
मार्गोऽयं सुकुमारवृत्तिकतया लीलाऽऽगमाऽन्वेषिणाम् ॥६॥
अभ्यस्त एव बहुशोऽपि मयैव पन्था जानामि निर्गममनेकमनन्यदृश्यं ।
तन्मामिहादरवशेन कृतप्रचारं के नामदूषणशरैः परिपन्थयन्ति ॥७॥
अथवा येषामस्ति गुणेषु सस्पृहमतिर्ये वस्तुसारं विदुः
तेषामत्र मनः प्रविष्टमसकृत्तुष्टिं परां गच्छति ।
ये वस्तु-व्यवसाय-शून्य-मनसो दोषाभिदित्सा पराः
क्लिश्नंतोऽपि हितै न दोषकणिकामप्यत्र वक्तुं क्षमाः ॥८॥

अपि च—

यस्य हृद्यमलमस्ति लोचनं वस्तुवेदि सुजनस्स मन्यति ।
मत्सरेण परिमन्यते परो विद्यया तु परया न मन्यते ॥९॥

तदास्तां प्रस्तुतमुच्यते—

जयति सकल-विद्या-देवतारत्नपीठं हृदयमनुपलेपं यस्य दीप्तं स देवः ।
जयति तदनु शास्त्रं तस्य यत्सर्वमिथ्यासमय-तिमिरघाति-ज्योतिरेकं नराणाम्१०

अन्तभाग :—

श्रीमन्न्यायविनिश्चयस्तनुभृतां चेतोदृगुर्वानिलः
सन्मार्गं प्रतिबोधयन्नपि च तान्निःश्रेयसप्रापणं ।
येनाऽयं जगदेकवत्सलधिया लोकोत्तरं निर्मितो
देवस्तार्किक-लोकमस्तकमणिर्भूयात्स वः श्रेयसे ॥१॥
विद्यानंदमनन्तवीर्यसुखदं श्रीपूज्यपादं दया-
पालं सन्मतिसागरं कनकसेनाराध्यमभ्युद्यमी ।
शुद्धयशीतिनरेन्द्रसेनमकलंकं वादिराजं सदा
श्रीमत्स्वामिसमन्तभद्रमतुलं वंदे जिनेन्द्रं मुदा ॥२॥

भूयोभेदनयावगाहगहनं देवस्य यद्वाङ्मयं
कस्तद्विस्तरतो विविच्य वदितुं मंदः प्रभुर्मादृशः ।
स्थूलः कोपि नयस्तदुक्तिविषयो व्यक्तीकृतोऽयं मया
स्थेयाच्चेतसि धीमतां मतिमल-प्रक्षालनैकक्षमः ॥३॥
व्याख्यानरत्नमालेयं प्रस्फुरन्नयदीधितिः ।
क्रियतां हृदि विद्वद्भिस्तुदंती मानसं तमः ॥४॥
श्रीमत्सिंहमहीपतेः परिषदि प्रख्यातवादोन्नति-
स्तर्कन्यायतमोपहोदयगिरिः सारस्वतः श्रीनिधिः ।
शिष्यः श्रीमतिसागरस्य विदुषां पत्युस्तपःश्रीभृतां
भर्तुः सिंहपुरेश्वरो विजयते स्याद्वादविद्यापतिः ॥५॥

इत्याचार्यवर्य-स्याद्वादविद्यापति-विरचितायां न्यायविनिश्चय-तात्पर्यविद्योतिन्यां व्याख्यानरत्नमालायां तृतीयः प्रस्तावः समाप्तः । समाप्तं च शास्त्रं ।

२. धर्मरत्नाकर (जयसेनसूरि)

आदिभाग :—

लक्ष्मीं निरस्तनिखिलापदमाप्नुवन्तो लोकप्रकाशरवयः प्रभवन्ति भव्याः ।
यत्कीर्तिकीर्त्तनपरा जिनवर्धमानं तं नौमि कोविदनुतं सुधिया सुधर्मम ॥१॥

अन्तभाग :—

यस्या नैवोपमानं किमपि हि सकलद्योतकेषु प्रतर्क्य-
मंत्येनैकेन नित्यं श्लथयति सकलं वस्तुतत्त्वं विचक्ष्यं ।
अन्येनान्त्येन नीति जिनपतिमहितां संविकर्षत्यजस्रं,
गोपी मंथानवद्या जगति विजयतां सा सखी मुक्तिलक्ष्म्याः ॥६६॥

इति श्रीसूरिश्रीजयसेन-विरचिते धर्मरत्नाकरे उक्ताऽनुक्त-शेषविशेष-सूचको विंशतितमोऽवसरः ॥

श्रीवर्धमाननाथस्य मेदार्यो दशमोऽजनि ।
गणभृद्वच्चधा धर्मो यो मूर्तो वा व्यवस्थितः ॥१॥
मेदार्येण महीभिर्विहरता तेपे तपो दुश्चरं

श्रीखंडिल्लकपत्तनान्तिकरणाभ्यर्द्धिप्रभावात्तदा ।
शाट्यैनाप्युपतप्तता सुरतरुप्रख्यां जनानां श्रियं
तेनागीयत झाडवागड इति त्वेको हि संघोऽनघः ॥२॥
धर्मज्योत्स्नां विकिरति सदा यत्र लक्ष्मी-निवासाः
प्रापुश्चित्रं सकलकुमुदायत्युपेता विकाशम् ।
श्रीमान्सोभून्मुनिजननुतो धर्मसेनो गणींद्र-
स्तस्मिन रत्नत्रितयमदनीभूतयोगीन्द्रवंशे ॥३॥
भंजन्वादीन्द्रमानं पुरि पुरि नितरां प्राप्नुवन्नुद्यमानं
तन्वन् शास्त्रार्थदानं रुचि रुचि रुचिरं सर्वथा निर्निदानं ।
विद्वादर्शोपमानं दिशि दिशि विकिरन् स्वं यशो योऽसमानं
तेभ्यः श्री(तस्माच्छ्री) शांतिषेणः समजनि सुगुरुः पापधूली-समीरः ॥४॥
यत्रास्पदं विदधती परमागमश्रीरात्मन्यमन्यत्मतीत्वमिदं तु चित्रम् ।
वृद्धा च संततमनेकजनोपभोग्या श्रीगोपसेनगुरुराविरभूत्स तस्मात् ॥५॥
उत्पत्तिस्तपसां पदं च यशसामन्यो रविस्तेजसा-
मादिः सद्वचसां विधिः सुतरसामासन्निधिः श्रेयसां ।
आवासो गुणिनां पिता च शमिनां माता च धर्मात्मनां
न ज्ञातः कलिना जगत्सुबलिना श्रीभावसेनस्ततः ॥६॥
ततो जातः शिष्यः सकलजनतानंदजननः(कः)
प्रसिद्धः साधूनां जगति जयसेनाख्य इह सः ।
इदं चक्रे शास्त्रं जिनसमय-सारार्थ-निचितं
हितार्थं जंतूनां स्वमतिविभवाद्गर्व-विकलः ॥७॥
यावद्द्योतयतः सुधाकररवी विश्वं निजांशुत्करै-
र्यावल्लोकमिमं बिभर्ति धरणी यावच्च मेरुः स्थिरः ।
रत्नांशुच्छुरितोत्तरंगपयसो यावत्पयोराशय—
स्तावच्छास्त्रमिदं महर्षिनिवहैः स्तात्पाठ्यमानं श्रिये ॥८॥
इति श्रीसूरिजयसेनविरचितं धर्मरत्नाकरनामशास्त्रं समाप्तम् ।

३. यशोधरचरित्र (पद्मनाभ कायस्थ)

आदिभाग :—

परमानन्दजननीं भवसागरतारिणीं ।
सतां हि तनुतां ज्ञानलक्ष्मीं चन्द्रप्रभः प्रभुः ॥१॥

अन्तभाग :—

उपदेशेन ग्रंथोऽयं गुणकीर्तिमहामुनेः ।
कायस्थ-पद्मनाभेन रचितः पूर्वसूत्रतः ॥१०७॥
संतोष-जैसवालेन संतुष्टेन प्रमोदिना ।
अतिश्लाघितो ग्रंथोऽयमर्थसंग्रहकारिणा ॥१०८॥
साधोर्विजयसिंहस्य जैसवालान्वयस्य च
सुतेन पृथ्विराजेन ग्रंथोयमनुमोदितः ॥१०९॥

इति श्रीयशोधरचरित्रे दयासुन्दराभिधाने महाकाव्ये साधुश्रीकुशराज-कारापिते कायस्थ-श्रीपद्मनाभ-विरचिते अभयरुचिप्रभृतिसर्वेषां स्वर्गगमनं (स्वर्गगमनवर्णनो नाम) नवमः सर्गः ।

जातः श्रीवीरसिंहः सकलरिपुकुलव्रातनिर्घातपातो
वंशे श्रीतोमराणां निजविमलयशोव्याप्तदिक्चक्रवालः ।
दानैर्मानैर्विवेकैर्न भवति समता येन साकं नृपाणां
केषामेषा कवीनां प्रभवति धिषणा वर्णने तद्गुणानां ॥१॥
ईश्वरचूडारत्नं विनिहतकरघातवृत्तसंहातः
चन्द्र इव दुग्धसिंधोस्तस्मादुद्धरणभूपतिर्जनितः ॥२॥
यस्य हि नृपतेः यशसा सहसा शुभ्रीकृतत्रिभुवनेऽस्मिन् ।
कैलाशति गिरिनिकरः क्षीरति नीरं शुचीयते तिमिरं ॥३॥
तत्पुत्रो वीरमेन्द्रः सकलवसुमतीपालचूडामणिर्यः
प्रख्यातः सर्वलोके सकलबुधकलानंदकारी विशेषात् ।
तस्मिन् भूपालरत्ने निखलनिधिगृहे गोपदुर्गे प्रसिद्धिं
भुंजाने प्राज्यराज्यं विगतरिपुभयं सुप्रजःसेव्यमानं ॥४॥

वंशेऽभूज्जैसवाले विमलगुणनिधिर्भूलणः साधुरत्नं
साधुश्रीजैनपालोभवदुदितयास्तत्सुतो दानशीलः ।
जैनेन्द्राराधनेषु प्रमुदितहृदयः सेवकः सद्गुरूणां
लोणाख्या सत्यशीलाऽजनि विमलमतिर्जैनपालस्य भार्या॥५॥
जाताः षट् तनयास्तयोः सुकृतिनोः श्रीहंसराजोभवत्
तेषामाद्यतमस्ततस्तदनुजः सैराजनामाऽजनि ।
रैराजो भवराजकः समजनि प्रख्यातकीर्तिर्महा-
साधुश्रीकुशराजकस्तदनु च श्रीक्षेमराजो लघुः ॥६॥
जातः श्रीकुशराज एव सकलक्ष्मापालचूडामणेः
श्रीमत्तोमर-वीरमस्य विदितो विश्वासपात्रं महान् ।
मंत्री मंत्रविचक्षणः क्षणमयः क्षोणारिपक्षः क्षणात्
क्षोणीमीक्षणरक्षणक्षम[म]तिर्जैनेन्द्रपूजारतः ॥७॥
स्वर्गस्पर्द्धिसमृद्धिकीर्तिविमलश्चैत्यालयः कारितो
लोकानां हृदयंगमो बहुधनैश्चन्द्रप्रभस्य प्रभोः ।
येनैतत्समकालमेवरुचिरं भव्यं च काव्यं तथा
साधुश्रीकुशराजकेन सुधिया कीर्तेश्चिरस्थापकं ॥८॥
तिस्रस्तस्यैव भार्या गुणचरितयुतास्तासु रल्होभिधाना
पत्नी धन्या चरित्रा व्रतनियमयुता शीलशौचेन युक्ता ।
दात्री देवार्चनाढ्या गृहकृतिकुशला तत्सुतः कामरूपो
दाता कल्याणसिंहो जिनगुरुचरणाराधने तत्परोऽभूत ॥९॥
लक्षणश्रीः द्वितीयाभूत्सुशीला च पतिव्रता
कौशीरा च तृतीयेयमभूद्गुणवती सती ॥१०॥
शान्तिर्देशस्य भूयात्तदनु नरपतेः सुप्रजाना जनाना
वक्तृणां वाचकानां तथैव (?) ॥११॥
यावत्कूर्मस्य पृष्ठे भुजगपतिरयं तत्र तिष्ठेद्गरिष्ठे
यावत्तत्रापि चंचद्विकटफणिफणामंडले क्षोणिरेषा ।

यावत्क्षोणौ समस्तत्रिदशपतिवृतश्चारुचामीकराद्रि-
स्तावद्भव्ये विशुद्धं जगति विजयतां काव्यमेतच्चिराय ॥१२॥
कायस्थ-पद्मनाभेन बुधपादाब्जरेणुना ।
कृतिरेषा विजयतां स्थेयादाचन्द्रतारकं ॥१३॥
[इति श्रीपद्मनाभ-कायस्थ-विरचितं यशोधरचरित्रं समाप्तम्]

यशोधरचरित्र (वासवसेन मुनि)

आदिभाग :—

जितारातीन् जिनान्नत्वा सिद्धान् सिद्धार्थसंपदः ।
सूरीनाचारसंपन्नानुपाध्यायांस्तथा यतीन् ॥१॥
जनन्या समवेतस्य यशोधर-महीभुजः ।
चरितं पावनं वक्ष्ये यथाशक्ति यथागमं ॥२॥
सर्वशास्त्रविदां मान्यैः सर्वशास्त्रविशारदैः ।
प्रभंजनादिभिः पूर्वं हरिषेण-समन्वितैः ॥३॥
बहुक्रं तत्कथं शक्यं मया बालेन भाषितुं ।
तथापि तत्क्रमांभोज-प्रणामार्जित-पुण्यतः ॥४॥
प्रोच्यमानं समासेन संसारासातशातनं ।
वदतां शृण्वतां यच्च तत्संतः शृणुतादरात् ॥५॥

अन्तभाग :—

मारिदत्तादयश्चान्ये आर्यासंघं तथैव च ।
सौधर्मादिकग्रैवेयपर्यंतं नाकमाश्रिताः ॥१८७॥
[1]"कृतिर्वासवसेनस्य वागडान्वयजन्मनः ।

---

१ यह प्रशस्ति-पद्य जैनसिद्धान्तभवन आराकी सं० १७३२ वाली एक प्रतिमें नहीं है किन्तु दूसरी सं० १५८१ की लिखी हुई उस प्रतिमें पाया जाता है जो रामसेनान्वयी भ० श्रीरत्नकीर्तिके प्रपट्टधर और भ० लक्ष्मसेन के पट्टधर भ० धर्मसेनके समयमें लिखी गई है ।

इमां यशोधराभिख्यां संशोध्याधीयतां बुधैः ॥१००॥"

इति यशोधरचरिते मुनिवासवसेनकृते काव्ये अभयरुचिभट्टारक-अभयमत्योः स्वर्गगमनो चंडमारी-धर्मलाभो यशोमत्यादयोन्ये यथायथं नाकनिवासिनो नाम अष्टमः सर्गः समाप्तः ।

नेमिनिर्वाणकाव्य (कविवाग्भट)

आदिभाग :—

श्रीनाभिसूनोः पदपद्मयुग्मनखाः सुखानि प्रथयंतु ते वः ।
समलमन्नाकि-शिरःकिरीट-संघट्ट-विस्रस्तमणीयितं यैः ॥१॥

अन्तभाग :—

[1]भिल्लो विंध्यनगे वणिग्वरगुणश्चेभ्यादिकेतुः सुरः ।
चिंतायाति खगे महेंद्रसुमना भूपोऽमरादिर्जितः ।
सोऽव्याद्च्युतनायको नरपतिः स्वादिप्रतिष्ठोऽप्यह-
मिन्द्रो यश्च जयंतके सुरवरो नेमीश्वरः पातु वः ॥८६॥
अहिछत्रपुरोत्पन्न-प्राग्वाट-कुलशालिनः ।
छाहडस्य सुतश्चक्रे प्रबन्धं वाग्भटः कविः ॥८७॥

इति श्रीनेमिनिर्वाणे महाकाव्ये महाकविश्रीवाग्भटविरचिते नेमिनिर्वाणाभिधानो नाम पंचदशमः सर्गः समाप्तः ।

६. भूपाल-चतुर्विंशति-टीका (पं० आशाधर)

आदिभाग :—

प्रणम्य जिनमज्ञानां सज्ञानाय प्रचक्षते ।
आशाधरो जिनस्तोत्रं श्रीभूपालकवेः कृतिः ॥१॥

---

१ ये अन्तके दोनों पद्य निर्णयसागर बम्बई से प्रकाशित हुए ग्रन्थमें नहीं है किन्तु आरा सि० भवन तथा देहलीकी प्रतियोंमें पाये जाते हैं।

अन्तभाग :—

उपशमइव मूर्तिः पूतकीर्तिः स तस्मा-
दजनि विज(न)यचंद्रः सच्चकोरैकचंद्रः ।
जगदमृतसगर्भाः शास्त्रसंदर्भगर्भाः
शुचिचरितसहिष्णोर्यस्य विन्वंति वाचः ॥२६॥

विनयचन्द्रस्यार्थमित्याशाधरविरचिता भूपालचतुर्विंशतिजिनेन्द्रस्तुते-
ष्टीका परिसमाप्ता । [जयपुर प्रति

७. जम्बूस्वामिचरित्र (अ० जिनदास)

आदिभाग :—

श्रीवर्धमानतीर्थेशं वंदे मुक्तिवधूवरम् ।
कारुण्यजलधिं देवं देवाधिप-नमस्कृतम् ॥१॥

अन्तभाग :—

श्रीकुंदकुंदान्वयमौलिरत्नं श्रीपद्मनंदी विदितः पृथिव्याम् ।
सरस्वतीगच्छ-विभूषणं च बभूव भव्यालिसरोजहंसः ॥२३॥
ततोभवत्तस्य जगत्प्रसिद्धे पट्टे मनोज्ञे सकलादिकीर्तिः ।
महाकविः शुद्धचरित्रधारी निर्ग्रंथराजा जगति प्रतापी ॥२४॥
जयति सकलकीर्त्तिः पट्टपंकेजभानु-
र्जगति भुवनकीर्तिर्विश्वविख्यातकीर्तिः ।
बहुयतिजनयुक्तः सर्वसावद्यमुक्तः
कुसुमशरविजेता भव्यसन्मार्गनेता ॥२५॥
विबुधजननिषेव्यः सत्कृतानेककाव्यः
परमगुणनिवासः सद्व्रतालीविलासः ।
विजितकरणमारः प्राप्तसंसारपारः
स भवतु गतदोषः शर्मणे वः सतोषः ॥२६॥

षष्ठाष्टमादेस्तपसो विधाता, क्षमाभिधः श्रीनिलयं धरित्र्याम् ।
जीयाज्जितानेकपरीषहारिः, संबोधयन् भव्यगणं चिरं सः ॥२७॥
भ्रातास्ति तस्य प्रथितः पृथिव्यां, सद्ब्रह्मचारी जिनदासनामा ।
तेनेति तेने चरितं पवित्रं, जंब्वादिनाम्नो मुनिसत्तमस्य ॥२८॥
देशे विदेशे सततं विहारं, वितन्वता येन कृताः सुलोकाः ।
विशुद्धसर्वज्ञ मत-प्रवीणाः, परोपकारव्रततत्परेण ॥२९॥
स ब्रह्मचारी किल धर्मदासस्तस्यास्तिशिष्यः कविब्रह्मसंज्ञः ।
सौजन्यवल्लीजलदः कृतोयं, तद्योगतो व्याकरणप्रवीणः ॥३०॥
कविर्महादेव इति प्रसिद्धस्तन्मित्रमास्ते द्विजवंशरत्नम् ।
महीतले नूनमसौकृत(ति)श्च साहाय्यतस्तस्य सुधर्महेतोः ॥३१॥
ग्रंथः कृतोऽयं जिननाथभक्त्या गुणानुरागाच्च महामुनीनाम् ।
पूजाभिधानाद्धितेन नित्यं(नूनं)महाप्रशस्तः परमार्थबुद्धया ॥३२॥

× × × ×

एकविंशतिप्रमाणानि शतानि च चरित्रके ।
त्रिंशदुक्तानि श्लोकानां शुभानां संति निश्चितम् ॥३७॥

इति श्रीजम्बूस्वामिचरित्रे भ० सकलकीर्तिशिष्य-ब्रह्मजिनदास-विरचिते विद्युच्चर महामुनि-सर्वार्थसिद्धिगमनो नामैकादशमः सर्गः ॥११॥

८. सुदर्शनचरित्र (विद्यानंदी मुमुक्षु)

आदिभाग:—

ज्ञानरत्नाब्धितारेशं सर्वविद्याधिपं प्रभुं ।
आदिदेवं नमस्यामि भव्यराजीवभास्करं ॥१॥
चंद्रप्रभोः द्युतिः पायात्सतामंतःप्रकाशिनी ।
नित्यं करोति चंद्रस्य न कृष्णे सातत्तोधिका ॥२॥
कर्मारातिजये शूरं वंदे शांतिं शिवश्रिये ।
संसारवन्हदावाग्नौ पतज्जीवेषु तायिनं ॥३॥

स्मरादीनां विजेतारं तं वीरं प्रणमाम्यहं ।
ज्ञानलक्ष्म्या हि भर्त्तारं निःप्रत्यूहं च शंकरं ॥४॥
शत्रूणां ये विजेतारश्चाभ्यंतरनिवर्त्तिनां ।
प्रणमामि जिनान् शेषान् सर्वपापापनुत्तये ॥५॥
सुदर्शनमुनिं वंदे धीरं सद्ब्रह्मचारिणं ।
येन कर्मारिमाहत्य प्राप्तं सिद्धत्वमद्भुतं ॥६॥
तनुतां गुरवः सर्वे पूज्या मे शर्मसंपदम् ।
सर्वविघ्नहरा वंद्यास्तुत्याः सुरनराधिपैः ॥७॥
जिनराजमुखोत्पन्नां विमलां ज्ञानसंपदम् ।
दायिनीं शारदां स्तोष्ये मुहुरज्ञानहानये ॥८॥
मोहांधकारतरिणिं तपस्तेजोऽनुसारिणं ।
गणेशं गौतमं वंदे संयतं जगदुत्तमं ॥९॥
कवित्व-नलिनीग्राम-निबोधन-सुधाद्युणिं ।
वंद्यैर्वंद्यमहं वंदे कुंदकुंदाभिधं मुनिं ॥१०॥
यस्य यशोरवेर्नष्टा कुष्माण्डास्या बौद्धकौशिकाः ।
स्तुष्येऽकलंकसूरिं तं मोह-मारंग-कन्धरम् ॥११॥
क्रोधसारंगकीलालं जिनसेनमहाकविं ।
कुवादिहंससारंगं वंदेऽहं तद्गुणाप्तये ॥१२॥
आवश्यकलता कन्द-प्रसारण-घनागमं ।
रत्नकीर्तिमहं भक्त्या स्तौमि गच्छाधिपं विभुं ॥१३॥
परवादि-महाकव्याद्वारणे लक्ष्मणाग्रजं ।
वागर्थमिह वंदेऽहं प्रभेन्दुं सूरिसत्तमं ॥१४॥
क्षमा-सर्वस्व-धरणिं बोधबीजस्य भूमिकां ।
मुनीन्द्रं गतसन्देहं पद्मनन्दि स्तुवेऽनिशम् ॥१५॥
जीवाजीवादितत्त्वानां देशकं च गुणार्णवं ।
देवेन्द्रकीर्तिं भक्त्याऽहं मुनिं नौमि मुनीश्वरम् ॥१६॥

विद्यानन्दि-मुनीन्द्रेण तस्य शिष्येण धीमता ।
स्वस्यान्यस्योपकाराय दिने जातु मनोहरं ॥१७॥
चिन्तितं मानसे श्रेयो यतिना तत्कथं भवेत् ।
शुभोपदेशतोऽस्माकं पुनस्तस्य च योगतः ॥१८॥ (युग्मं)
येन श्रुतेन भव्यानामघं याति भवार्जितं ।
सुदर्शनमुनेर्वृत्तं वक्ष्येऽहं तत्समासतः ॥१९॥

अन्तभाग :—

योगत्रयेषु निष्णातः विशालकीर्तिशुद्धधीः ।
श्रीकुंदकुंदसंताने बभूव मुनिसत्तमः ॥९८॥
तत्पट्टेऽजनि विख्यातः पंचाचारपवित्रधीः ।
शुभकीर्तिमुनिश्रेष्ठः शुभकीर्तिः शुभप्रदः ॥९९॥
धर्मचन्द्रस्ततो रत्नकीर्तिः शुद्धवचोनिधिः ।
प्रभेन्दुः पद्मनन्दिश्च ख्यातः कामाद्रिमर्दनः ॥१००॥
भारतीगच्छपंकेज-विकाशन-दिवाकरः ।
देवेन्द्रनामकीर्त्यंते कीर्त्यते लोकविश्रुतः ॥१०१॥
विद्यानन्दिमुनिख्यातस्तस्य शिष्यो गुणाग्रणीः ।
सुदर्शनस्य तेनेदं चरितं शमिणो कृतं ॥१०२॥
तनुतां साधवः सर्वं चतुःसंघसमुद्भवाः ।
मया कृति(त)मिदं शोध्यं लोके तैर्विशदाशयैः ॥१०३॥
ये लेखयंति लिखंते पठंति पाठयंति च ।
सुदर्शनमुनेरेष चरित्रं ते सुखाश्नुते ॥१०४॥
यदक्षरस्वरैर्मात्राहीनं प्रमादतो हह ।
तं शोध्यं शुद्धचरितैः मुनिभिः मे कृतं तथा ॥१०५॥
गान्धारपुर्यां जिनमाथचैत्ये छत्रध्वजाभूषितरम्यदेशे ।
कृतं चरित्रं स्वपरोपकारकृते पवित्रं हि सुदर्शनस्य ॥१०६॥

नित्यं नमामि तमहं जिनपार्श्वनाथं पद्मावती-धरणयक्ष-नुतं त्रिकालं ।
येनाखिलं निरसितं किलकर्मजालं नालं क्षमो रचयितुं स्तवनं तदीयं ॥१०७॥

जिनान्तिमं नागनरेंद्रवंद्यं, श्रीवर्द्धमानं गतरागबंधं ।
अंतातिगं सर्वगुणांबुराशिं, वंदे भवाब्ध्युत्तरणैकहेतोः ॥१०८॥

पंचैते परमेष्ठिनः सुखकराः कारुण्यपूर्णाशयाः,
सार्द्धं श्रीजिनधर्म आगमयुतः सद्रव्यराशिस्तुतः ।
चैत्यं श्रीजिननायकस्य सततं चैत्यालयं मेस्य(?) वै,
शश्वन्मे शरणं भवाब्धितरणं भूयाद्भवापन्नुदे ॥१०९॥

इति श्रीसुदर्शनचरित्रे पंचनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षुश्रीविद्यानन्दि-विरचिते सुदर्शनमहामुनिमुक्तिगमनो नाम द्वादशमः परिच्छेदः समाप्तः ।
संवत् १७७६ वर्षे शुभं भव । [दिल्ली, धर्मपुरा, नयामन्दिर ।

६. सुदर्शनचरित्र (मुमुक्षु विद्यानन्दी)

आदिभाग :—

नत्वा पंचगुरून् भक्त्या पंचमं गतिनायकान् ।
सुदर्शनमुनेश्चारुचरित्रं रचयाम्यहं ॥ १ ॥
येषां स्मरणमात्रेण सर्वे विघ्ना घना यथा ।
वायुना प्रलयं यांति तान्स्तुवे परमेष्ठिनः ॥२॥

(इसके बाद वृषभादि चतुर्विंशतितीर्थंकरों तथा सिद्धोंका स्मरण है)

जिनेन्द्र-वदनांभोज-समुत्पन्नां सरस्वतीं ।
संस्तुवे त्रिजगन्मान्यां सन्मतेव सुखप्रदां ॥१८॥
यस्याः प्रसादतो नित्यं सतां बुद्धिः प्रसर्पति ।
प्रभाते पद्मनीवोच्चैस्तां स्तुवे जिनभारतीं ॥१९॥
नमामि गुणरत्नानामाकरान्-श्रुतसागरान् ।
गौतमादिगणाधीशान् संसाराम्बोधितारकान् ॥२०॥

कवित्वनलिनी-ग्राम-प्रबोधन-दिवामणिं ।
कुंदकुंदाभिधं नौमि मुनीन्द्रं महिमास्पदं ॥२१॥
जिनोक्त-समतत्त्वार्थसूत्रकर्ता कवीश्वरः ।
उमास्वातिमुनिर्नित्यं कुर्यान्मे ज्ञानसंपदां ॥२२॥
स्वामी **समन्तभद्राख्यो** मिथ्यातिमिरभास्करः ।
भव्यपद्मौघसंस्कर्ता जीयान्मे(द्यो) भावितीर्थकृत् ॥२३॥
विप्रवंशाऽग्रणीः सूरिः पवित्रः **पात्रकेशरी** ।
संजीयाज्जिनपादाब्जसेवनैकमधुव्रतः ॥२४॥
यस्य वाक्किरणैर्नष्टा बौद्धौघाः कौशिका यथा ।
भास्करस्योदये स स्यादकलङ्कः श्रिये कविः ॥२५॥
श्रीजिनेन्द्र-मतांभोधि-वर्द्धनैकविधूत्तमं ।
जिनसेनं जगद्वंद्यं संस्तुवे मुनिनायकं ॥२६॥
मूलसंघाग्रणीर्नित्यं **रत्नकीर्तिगुरुर्महान्** ।
रत्नत्रय-पवित्रात्मा पायान्मां चरणाश्रितं ॥२७॥
कुवादिमत्तमातंग-विमर्दीकरणे हरिः ।
गुणभद्रो गुरुर्जीयात्कवित्वकरणे प्रभुः ॥२८॥
भट्टारको जगत्पूज्यः **प्रभाचन्द्रो** गुणाकरः ।
वंद्यते स मया नित्यं भव्यराजीवभास्करः ॥२९॥
जीवाजीवादितत्त्वानां समुद्योतदिवाकरं ।
वंदे **देवेन्द्रकीर्तिं** च सूरिवर्यं दयानिधिं ॥३०॥
मद्गुरुर्योविशेषेण दीक्षालक्ष्मीप्रसादकृत् ।
तमहं भक्तितो वंदे **विद्यानन्दी** सुसेवकः ॥३१॥
सूरिराशाधरो जीयात् सम्यग्दृष्टिशिरोमणिः ।
श्रीजिनेन्द्रोक्त-सद्धर्म-पद्माकर-दिवामणिः ॥३२॥
इत्याप्त-भारती-साधु-संस्तुतिं शर्मदायिनीं ।
मंगलाय विधायोच्चैः सच्चरितं सतां ब्रुवे ॥३३॥

सुच्छमेधोऽपि संक्षेपात् सुदर्शनमहामुनेः ।
वृत्तं विधाय पूतोस्मि सुधा-स्पर्शोपि शर्मणे ॥३४॥

इति श्रीसुदर्शनचरिते पंचनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षुश्रीविद्यनंदि-विरचिते श्रीमद्वीरतीर्थंकरपरमदेवसमागमाख्यवर्णनो नाम प्रथमोधिकारः ।

अन्तभाग :—

गांधारपुर्यां जिननाथगेहे छत्रध्वजाद्यैः परिशोभितेऽत्र ।
कृतं चरित्रं स्वपरोपकार-कृते पवित्रं हि सुदर्शनस्य ॥४२॥
श्रीमूलसंघे वरभारतीये गच्छे बलात्कारगणेऽतिरम्ये ।
श्रीकुंदकुंदाख्यमुनीन्द्रवंशे जातः प्रभाचन्द्र-महामुनीन्द्रः ॥४७
पट्टे तदीये मुनिपद्मनंदी भट्टारको भव्यसरोजभानुः ।
जातो जगत्त्रयहितो गुणरत्नसिंधुः कुर्यात्सतां सारसुखं यतीशः ॥४८॥
तत्पट्टपद्माकरभास्करोऽत्र देवेन्द्रकीर्तिर्मुनिचक्रवर्ती ।
तत्पादपंकेजसुभक्तियुक्तो विद्यादिनंदी चरितं चकार ॥४९॥
तत्पट्टे जिनमल्लिभूषणगुरुश्चारित्रचूडामणिः
संसाराम्बुधितारणैकचतुरश्चिन्तामणिः प्राणिनां ।
सूरिश्रीश्रुतसागरो गुणनिधिः श्रीसिंहनन्दी गुरुः ।
सर्वे ते यतिसत्तमाः शुभतरा कुर्वन्तु वो मंगलं ॥५०॥
गुरुणामुपदेशेन सच्चरित्रमिदं शुभं ।
नेमिदत्तो व्रती भक्त्या भावयामास शर्मदं ॥५१॥

इति श्रीसुदर्शनचरिते पंचनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके ब्रह्मश्रीनेमिदत्त-विरचिते ..... एकदशमोधिकारः । [जयपुर प्रति

नोट—१०वीं संधितक ग्रन्थकारका नाम मुमुक्षुविद्यानन्दी ही दिया है और इस ग्यारहवें अधिकारके उक्त श्लोक नं० ४९में भी इसे विद्यानंदि-कृत सूचित किया है; परन्तु इस अन्तिम संधिमें ब्रह्मनेमिदत्तका नाम दिया है, जो चिन्तनीय है। क्या ५२वें पद्यानुसार ब्र०नेमिदत्तके द्वारा

इस ग्रन्थके भावित ('भावयामास') होनेसे ही यह नाम बादको दिया गया है ? विद्यानंदिके नामका दूसरा भी यशोधरचरित है जिसकी प्रशस्ति इससे पहले नं० ८ पर दी गई है। दोनोंमें विद्यानन्दीकी गुरुपरम्परा एक है और पद्योंका कितना ही साम्य है। फिर भी दोनोंको रचनापरसे सर्वथा एक नहीं कहा जा सकता।

१०. श्रीपालचरित्र (श्रुतसागर)

आदिभाग :—

अर्हतः संस्तुवे सिद्धान् वंदे निर्ग्रंथनायकान् ।
श्रयामि पाठकान् सेवे साधूनाराधये मुदा ॥१॥
सिद्धान् जगच्छिरोरत्नप्रायान् वंदामहे सदा ।
त्रिशुद्धयैर्यां यदाऽध्येति मानवः श्लाघ्यते तदा ॥२॥
संसारसरितानाथ-समुत्तरण-कारणम् ।
जिनं नत्वा ब्रुवे वृत्तं श्रीपालनृपतेः शुभम् ॥३॥

(मध्यका कथाभाग गद्यात्मक है)

अन्तभाग :—

सिद्धचक्रव्रतात्मोऽयमीदृशाऽभ्युदयो बभौ ।
निःश्रेयसमितोऽस्मभ्यं ददातु स्वगतिं प्रभुः ॥१॥
श्रीविद्यानंदिपादाब्जे मत्तभृंगेण धीमता ।
श्रुतादिसागरेणेयं संपत्पालकथा कृता ॥२॥

इति श्रीपालनृपचरित्रं समाप्तं ।

११. श्रीपालचरित्र (ब्र० नेमिदत्त)

आदिभाग :—

नत्वा श्रीमज्जिनाधीशं सुराधीशार्चितक्रमं ।
श्रीपालचरितं वक्ष्ये सिद्धचक्रार्चनोत्तमं ॥१॥

(ऋषभादि २४ तीर्थंकरों, सिद्धों आदिके स्मरणके अनन्तर—)

एतेषां शमहेतूनां चरणस्मृतिमंगलं ।
कृत्वाऽहं तुच्छबुद्धयापि श्रीपालचरितं ब्रुवे ॥२२॥
यच्चरित्रं सदासर्व्वरोगसंतापनाशनं ।
सिद्धचक्रव्रतोपेतं सिद्धौषधिमिवोत्तमं ॥२३॥
यत्पुरा रचितं पूर्वसूरिभिः श्रुतसागरैः ।
तदहं चापि वक्ष्यामि किमाश्चर्यमतः परं ॥२४॥

अन्तभाग :—

गच्छे श्रीमति मूलसंघतिलके सारस्वतीये शुभे ।
श्रीमद्वारकपद्मनन्दिसुविपो देवेन्द्रकीर्तिस्ततः ॥२२॥
विद्यानन्दिगुरुस्ततो गुणनिधिः पट्टे तदीये सुधीः ।
श्रीमद्वारकमल्लिभूषणगुरुः सद्बोधसिंधुर्महान् ॥२३॥
तच्छिष्यो गुणरत्नरंजितमतिः श्रीसिंहनन्दी गुरुः
सद्रत्नत्रयमंडितोऽति नितरां भव्यौघनिस्तारकः ।
तेषां पादपयोजयुग्ममधुपः श्रीनेमिदत्तो यती
चक्रे चारुचरित्रमेतदुचितं श्रीपालजं शं क्रियात् ॥२४॥
श्रीमोत्तमवंशमंडनमणिः संब्रह्मचारी शुभः ।
श्रीभट्टारक-मल्लिभूषणगुरोः पादाब्जसेवारतः ।
जीयादत्रमहेन्द्रदत्तसुयती संज्ञानवान्निर्मलः
सूरिः श्रीश्रुतसागरार्यतिनां सेवापरः सन्मतिः ॥२५॥
ख्याते मालवदेशस्थे पूर्णाशानगरे वरे ।
श्रीमदादिजिनागारे सिद्धं शास्त्रमिदं शुभं ॥२६॥
संवत्सार्द्धसहस्रे च पंचाशीतिसमुत्तरे(१५८५) ।
आश्विने शुक्लपंचम्यां संपूर्णे रविवासरे ॥२७॥

इति श्रीसिद्धचक्रपूजातिशय-प्राप्त-श्रीपालमहाराज-चरित्रे भट्टारक-

श्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्यश्रीसिंहनंदि-ब्रह्मशान्तिदासानुमोदिते ब्रह्म-नेमिदत्तविरचिते श्रीपालमुनीन्द्रनिर्वाणगमनवर्णनो नाम नवमो सर्गः ॥९॥

१२. धर्मोपदेशपीयूषवर्ष (ब्र० नेमिदत्त)

आदिभाग :—

श्रीसर्वज्ञं प्रणम्योच्चैः केवलज्ञानलोचनं ।
सद्धर्म्मं देशयाम्येष भव्यानां शर्महेतवे ॥१॥

अन्तभाग :—

इत्थं श्रीजिनभाषितं शुभतरं धर्मं जगद्द्योतकं
सद्रत्नत्रयलक्षणं द्वितयगं देवेन्द्रचन्द्रार्चितं ।
ये भव्या निजशक्तिभक्तिसहिताः संपालयंत्यादरात्
ते नाकीं(कें)द्र-नरेंद्र-चक्रि-पदवीं भुक्त्वा शिवं यांति च ॥१६॥
गच्छे श्रीमति मूल[संघ]तिलके सारस्वतीये शुभे
विद्यानंदिगुरुप्रपट्टकमलोल्लासप्रदो भास्करः ।
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः सिद्धांतसिंधुर्महां-
स्तच्छिष्यो मुनिसिंहनंदिमुगुरुर्जीयात् सतां भूतलें ॥१७॥
तेषां पादाब्जयुग्मे निहितनिजमतिर्नेमिदत्तः स्वशक्त्या
भक्त्या शास्त्रं चकार प्रचुरसुखकरं श्रावकाचारमुच्चैः ।
नित्ये भव्यैर्विशुद्धैः सकलगुणनिधैः प्राप्तिहेतुं च मत्वा
युक्त्या संसेवितोऽसौ दिशतु शुभतमं मंगलं सज्जनानां ॥१८॥
लेखकानां वाचकानां पाठकानां तथैव च ।
पालकानां सुखं कुर्यान्नित्यं शास्त्रमिदं शुभं ॥१९॥

इति धर्मोपदेशपीयूषवर्षनामश्रावकाचारे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणशिष्य-ब्रह्मनेमिदत्त-विरचिते सल्लेखनाक्रम-व्यावर्णनो नाम पंचमोऽधिकारः ।

१३. उपदेशरत्नमाला (भ० सकलभूषण)

आदिभाग :—

वंदे श्रीवृषभं देवं दिव्यलक्षणलक्षितम् ।
प्रीणित-प्राणिसद्वर्गं युगादिपुरुषोत्तमम् ॥१॥
× × × ×
श्रीकुंदकुंदनामानं यतीशं जितमत्सरम् ।
उमास्वाति समंतादिभद्रांतं पूज्यपादकम् ॥१५॥
अकलंकं कलाधारं नेमिचन्द्रं मुनीश्वरम् ।
विद्यानंदं प्रभाचन्द्रं पद्मनंदिगुरुं वरम् ॥१६॥
श्रीमत्सकलकीर्त्याख्यं भट्टारकशिरोमणिम् ।
भुवनादिसुकीर्त्यन्तं गच्छाधीशं गुणोद्धुरम् ॥१७॥
ज्ञानभूषणनामानं ज्ञानज्ञातभवस्थितिम् ।
वरं विजयकीर्तिं च कीर्तिव्यासमुभूतलं ॥१८॥
शुंभच्छोभाभरभ्राजमानं श्रीशुभचन्द्रकम् ।
सुबुद्धि(सुमति)कीर्तिसंयुक्तं नौमि प्रारब्धसिद्धये ॥१९॥

अन्तभाग :—

श्रीमूलसंघतिलके वरनंदिसंघे गच्छे सरस्वतिसुनाम्नि जगत्प्रसिद्धे ।
श्रीकुंदकुंदगुरुपट्टपरंपरायां श्रीपद्मनंदिमुनिपः समभूज्जिताङ्गः ॥२२५॥
तत्पट्टधारी जनचित्तहारी पुराणमुख्योत्तमशास्त्रकारी ।
भट्टारकः श्रीसकलादिकीर्तिः प्रसिद्धनामाऽजनि पुण्यमूर्तिः ॥२२६॥
भुवनकीर्तिगुरुस्तत ऊर्जितो भुवनभासनशासनमंडनः ।
अजनि तीव्रतपश्चरणोद्यमो विविधधर्मसमृद्धिसुदेशकः ॥२२७॥
श्री(सं)ज्ञानभूषेण परि(वि)भूषितांगः प्रसिद्धपांडित्यकलानिधानः ।
श्रीज्ञानभूषाख्यगुरुस्तदीयपट्टोदयाद्रावि(र)व भानुरासीत् ॥२२८॥
भट्टारकः श्रीविजयादिकीर्तिस्तदीयपट्टे धरिलब्धकीर्तिः ।

महामना मोक्षसुखाभिलाषी बभूव जैनावनिपार्श्वपादः ॥२२९॥
भट्टारकः श्रीशुभचन्द्रसूरिस्तत्पट्टपकेरुहतिग्मरश्मिः ।
त्रैविद्यवंद्यः सकलप्रसिद्धो वादीभसिंहो जयताद्धरित्र्यां ॥२३०॥
पट्टे तस्य प्रीणितप्राणिवर्गः, शांतो दांतः शीलशाली सुधीमान् ।
जीयात्सूरिः श्रीसुमत्यादिकीर्तिर्गच्छाधीशः कम्रकान्तिः कलावान् ॥२३१॥
तस्याभूच्च गुरुभ्राता नाम्ना सकलभूषणः ।
सूरिर्जिनमते लीनमनाः संतोषपोषकः ॥२३२॥
तेनोपदेशसद्रत्नमालासंज्ञो मनोहरः ।
कृतः कृतिजनानंद-निमित्तं ग्रंथ एषकः ॥२३३॥
श्रीनेमिचन्द्राचार्यादियतीनामाग्रहात्कृतः ।
सद्धर्मानाटोलादि-प्रार्थनातो मयैषकः ॥२३४॥
सप्ताविंशत्यधिके षोडशशतवत्सरेषु(१६२७) विक्रमतः ।
श्रावणमासे शुक्ले पक्षे षष्ट्यां कृतो ग्रन्थः ॥२३५॥
न मया ख्यातिनिमित्तं न चाभिमानेन विरचितो ग्रंथः ।
धर्मरतानां गृहिणां हिताय च स्वस्य पुण्याय ॥२३६॥

× × × ×

सहस्रत्रितयं चैव त्रिशतं त्र्य(तथैवा)शीति-संयुतम् ।
अनुष्टुप्छंदसां चास्य प्रमाणं निश्चितं बुधैः ॥२४३॥

इति श्रीभट्टारक-श्रीशुभचन्द्रशिष्याचार्य-श्रीसकलभूषण-विरचितायामुपदेशरत्नमालायां पुण्यषट्कर्मप्रकाशिकायां तपोदानमाहात्म्य-वर्णनो नामाऽष्टादशः परिच्छेदः समाप्तः ।

१४. श्रावकाचारसारोद्धार (मुनि पद्मनन्दी)

आदिभाग :—

स्व-संवेदन-सुव्यक्त-महिमानमनश्वरं ।
परमात्मानमाद्यंतविमुक्तं चिन्मयं नुमः ॥१॥

श्रीनाभेयो जिनो भूयाद्भूयसे श्रेयसे सवः ।
जगज्ज्ञानजले यस्य दधाति कमलाऽऽकृतिं ॥२॥
वंदारु-त्रिदशाधीश-शिरोमणि-विभार्चितं ।
यदंघ्रिद्वितयं सोऽस्तु संपदे शशिलांछनः ॥३॥

अन्तभाग :—

इति श्रावकाचारसारोद्धारे श्रीपद्मनन्दिमुनिविरचिते द्वादशव्रतवर्णनो नाम तृतीयः परिच्छेदो समाप्तः ॥३॥

यस्य तीर्थंकरस्येव महिमा भुवनातिगा ।
रत्नकीर्तिर्यतिः स्तुत्यः स न केषामशेषवित् ॥१॥
अहंकारस्फारी भवदमितवेदांतविबुधो—
ल्लसत्सिद्धांतश्रेणी-दृषण-निपुणोक्तिद्युतिभरः ।
अभीती जैनेन्द्रेऽजनि रजनिनाथ-प्रतिनिधिः
प्रभाचन्द्रः सान्द्रोदयशमितापथ्यतिचरः ॥२॥
महाव्रति-पुरंदरः प्रशमदग्धा(दग्धभवा)ङ्कुरः
स्फुरत्यपरपौरुषस्थितिरशेषशास्त्रार्थवित् ।
यशोभर-मनोहरीकृत-समस्तविश्वंभरः
परोपकृति-तत्परो जयति पद्मनन्दीश्वरः ॥३॥
श्रीमत्प्रभेन्दुप्रभुपादसेवा-हेवाकिचेष्टाऽप्रसरत्यग्रभावः ।
सच्छ्रावकाचारमुदारभेनं श्रीपद्मनन्दी रचनां चकार ॥४॥
श्रीलंबकंचुककुले विततांतरिक्षे, कुर्वन् स्वबांधवसरोजविकाशलक्ष्मीं ।
लुंपन् विपक्षकुमुदव्रजभूरिकांतिं, गोकर्णहेलिरुदियाय लसत्प्रतापः ॥५॥
भुवि सूपकारसारं पुण्यचया येन निर्ममे कर्मा ।
भीमइव सोमदेवो गोकर्णात्सोभवत्पुत्रः ॥६॥
सती मतल्लिका तस्य यशः कुसुमवल्लिका ।
पत्नी श्रीसोमदेवस्य प्रेमा प्रेमपरायणा ॥७॥

विशुद्धयोः स्वभावेन ज्ञानलक्ष्मी जितेन्द्रियोः ।
नया इवाऽभवन् सप्तभंगीरस्तनयास्तयोः ॥८॥
वासाधर-हरिराजौ प्रह्लादः शुद्धधीश्च महराजः ।
भवराजो रत्नाख्यः सतनाख्यश्चेत्यमी सप्त ॥९॥
वासाधरस्याद्भुतभाग्यराशेर्मिषात्तयोर्वेश्मनि कल्पवृक्षः ।
अगण्यपुण्योदयतोऽवतीर्णो वितीर्णचेतोऽभिमतार्थसार्थः ॥१०॥
वासाधरेण सुधिया गांभीर्याद्यदि ऋणीकृतो नाब्धिः ।
कथमन्यथा स वडवाज्वलनज्वलनसूत्रस्थितोद्वलति ॥११॥
सांद्रानन्दस्वरूपाद्भुतमहिमपरब्रह्मविद्याविनोदा-
च्चांतं जैनेन्द्रपादार्च्चनविमलविधौ पात्रदानाच्च पाणिः ।
वाणी सन्मंत्रजापी प्रवचनवचनाकर्णनात्कर्णयुग्मं
लोकालोकावलोकान्न विरमति यशः साधुवासाधरस्य ॥१२॥
शीतांशूराजहंसत्यमितकुवलयत्युल्लसत्तारकालि-
स्निग्धांशुः स्मेररक्तोत्थस्थलति जगदिदं चांतरीयत्यशेषं ।
जंभालत्यंतरिक्षं कनकगिरिरयं चक्रवाकत्युदग्रः
साधोवासाधरौदार्यगुणनिलय यशो वारिपूरो त्वदीयः ॥१३॥
द्वितीयाप्यद्वितीयो भूद्धैर्यौदार्यादिभिर्गुणैः ।
पुत्रः **सोमदेवस्य हरिराजाऽभिधः सुधीः ॥१४॥**
गुणैः सदात्मप्रतिपक्षभूतैः संगं करोत्येष विवेकचक्षुः ।
इतीव सेर्ष्यैर्हरिराजसाधुर्दोषैरवालोकितशीलसिंधुः ॥१५॥
संप्राप्य रत्नत्रितयैकपात्रं रत्नं सुतं मंडनमुर्व्वरायाः ।
श्रीसोमदेवः स्वकुटुम्बभार-निर्व्वाह-चिंता-रहितो बभूव ॥१६॥
हृष्टं शिष्टजनैः सपत्नकमलैः कुत्रापि लीनं जवा-
दर्थिप्रोद्धतनीलकंठनिवहैश्छन्नं प्रमोदो हु मान् (?)।
तृष्णाधूलिकणोत्करैर्विगलितं स्थाने मुनीन्द्रैः स्थितिं ।
वृष्टिं दानमथंविन्वति(?) परां रत्नाकरोम्भोधरो ॥१७॥

संतोनाम्नां पत्न्यां जिनराजध्यानकृत्सद्वरिराजः।
पुत्रं मनःसुखाख्यं धर्म्मादुत्पादयामास ॥१८॥
सति प्रभुत्वे पि मदो न यस्य रतिः परस्त्रीषु न यौवनेऽपि।
परोपकारैकनिधिः स साधुर्धर्म्मात्सुखः कस्य न माननीयः ॥१९॥
जैनेंद्राँहिसरोजभक्तिरचला बुद्धिर्विवेकांचिता
लक्ष्मीर्दीनसमर्पिता सकरुणं चेतः सुधायुग्वचः।
रूपं शीलयुतं परोपकरणव्यापारनिष्ठं वपुः
शास्त्रं चापि मनःसुखे गतमदं काले कलौ दृश्यते ॥२०॥
संघभारधरो धीरः साधुर्वासाधरः सुधीः।
सिद्धये श्रावकाचारमचीकरदमुं मुदा ॥२१॥
यावत्सागरमेखला वसुमती यावत्सुवर्णाचलः
स्वरणुंररी कुलसंकुगमितं(?)·····।
चिन्तास्क(?)·····लोकप्रकाशोद्यतो
तावन्नंदतु पुत्र-पौत्रसहितो वासाधरः श्रावकः ॥२२॥

[आमेर-प्रति

१५. महापुराण-टीका (भ० ललितकीर्ति)

आदिभाग:—

नत्वा श्रीमज्जिनेशानं लोकालोकप्रकाशकम्।
टीकां महापुराणस्य कुर्वे स्वाभीष्टसिद्धये ॥१॥

अथ श्रीमज्जिनसेनाचार्यः श्रीमद्गुणभद्राचार्यवर्यसंसेवितपाद-पंकेरुहयुग्मो रत्नत्रयमंडितमूर्तिर्निःशेषविघ्नसमाप्त्यर्थं भगवन्नमस्क्रियारूपं मंगलमाचष्टे।·····

अन्तभाग:—

वर्षे सागरनागभोगिकुमिते (१८७४) मार्गे च मासेऽसिते
पक्षे पद्मति-सत्तिथौ रविदिने टीका कृतेयं वरा।

काष्ठासंघवरे च माथुरवरे गच्छे गणे पुष्करे
देवः श्रीजगदादिकीर्तिरभवत्ख्यातो जितात्मा महान् ॥२॥
तच्छिष्येण च मंदतान्वितधिया भट्टारकत्वं गता
शुभद्वै ललितादिकीर्त्यभिधया ख्यातेन लोके ध्रुवम् ।
राजच्छ्रीजिनसेनभाषितमहाकाव्यस्य भक्त्या मया
संशोध्यैव सुपठ्यतां बुधजनैः क्षांतिं विधायादरात् ॥२७॥

१६. पंचनमस्कार-दीपक (भ० सिंहनन्दि)

आदिभाग :—

नमाम्यर्हन्तं देवेशं लक्ष्मीरात्यंतिकी स्वयं ।
यस्य निर्धूत-कर्मेन्ध-धूमस्यापि विराजते ॥१॥

अन्तभाग :—

श्रीमूलसंघे वरपुष्कराख्ये गच्छे सुजातः शुभचन्द्रसूरिः ।
तस्याऽत्र पट्टेऽजनि सिंहनन्दिर्भट्टारकोऽभूद्विदुषां वरेण्यः ॥५३॥
तेनेदं रचितं ग्रंथं नाम्ना पंचनमस्कृति-
दीपकं विस्तरभिया संक्षिप्तं चाल्पमेधसा ॥५४॥
अब्दैस्तत्त्वरसर्तुचंद्रकलिते (१६६७) श्रीविक्रमादित्यजे
मासे कार्तिकनामनीह धवले पक्षे शरत्संभवे ।
वारे भास्वति सिद्धनामनि तथा योगेषु पूर्णातिथौ
नक्षत्रेऽश्विनिनाम्नि तत्त्वरसिकः पूर्णीकृतो ग्रंथकः ॥५५॥
श्लोकैः सप्तशतैर्गणितं वक्तुः श्रोतुः सुखप्रदं ।
ग्रन्थस्य पंचनत्याख्यदीपकस्याऽस्य तिष्ठता ॥५६॥
इति बहुतरमपि फलविषयं पंचनमस्कारग्रन्थे संक्षिप्य पूर्णीकृतं ।

१७. द्विसंधानकाव्य-टीका (पं० नेमिचन्द्र)

आदिभाग :—

श्रीमान् शिवानन्दनयीशवंद्यो भूयाद्विभूत्यै मुनिसुव्रतो वः ।
सद्धर्मसंभूतिनरेन्द्रपूज्यो भिन्नेन्द्रनीलोल्लसदंगकांतिः ॥१॥
जीयान्मृगेन्द्रो विनयेन्दुनामा संवित्सदाराजितकंठपीठः ।
प्रच्छीवसादीभ-कपोलभित्ति प्रमाद्यरैः स्वैर्नखरैर्विदार्य ॥२॥
तस्याथ शिष्योऽजनि देवनन्दी सद्ब्रह्मचर्यव्रत-देव-नन्दी ।
पादाम्बुजद्वंद्वमनिंद्यमर्च्यं तस्योत्तमांगेन नमस्करोमि ॥ ३ ॥
त्रैलोक्यकीर्तेश्चरणारविंदं पारं भवाणोर्धितटीं[1] प्रणम्य ।
पिपासतां राघव-पांडवीयां टीकां करिष्ये पदकौमदीं ताम् ॥४॥

अन्तभाग :—

इति निरवद्यविद्यामण्डनमण्डित-पण्डितमण्डली-मण्डितस्य षट्तर्क-चक्रवर्तिनः श्रीमद्विनयचन्द्रपण्डितस्य गुरोरंतेवासिनो देवनन्दिनाम्नः शिष्येण सकलकलोद्भव-चारुचातुरी-चंद्रिकाचकोरेण नेमिचन्द्रेण विरचितायां द्विसंधानकवेर्धनंजयस्य राघवपांडवीयापरनाम्नः[2] काव्यस्य 'पदकौमुदी' नाम दधानायां टीकायां श्रीरामकृष्णयुधिष्ठराभ्युदयवर्णनं[3] नामाष्टादशः सर्गः समाप्तः ॥१८॥

१८. ज्ञानसूर्योदय-नाटक (भ० वादिचन्द्र)

आदिभाग :—

अनाद्यनन्तरूपाय पंचवर्णात्ममूर्तये ।
अनंतमहिमाप्ताय सदोंकार नमोस्तु ते ॥१॥

---

१ 'पारे नयार्णोदधिसं' इति आरा सि० भ० प्रतौ पाठः ।
२ 'राघवपांडवीयाभिधानस्य' इति आरा सि० भ० प्रतौ पाठः ।
३ 'नायकाभ्युदय-रावण-जरासंध-वर्णनं' इति आ० सि० भ० प्रतौ पाठः ।

तस्मादभिन्नरूपस्य वृषभस्य जिनेशतुः ।
नत्वा तस्य पदांभोजं भूषिताऽखिलभूतलं ॥२॥
भूपीठभ्रांतभूतानां भूयष्टिानंददायिनीं ।
भजे भवापहां भाषां भवभ्रमणभंजिनीं ॥३॥
येषां ग्रन्थस्य संदर्भो प्रोस्फुरीति विदां हृदि ।
ववंदे तान् गुरून् भूयो भक्तिभारनमच्छिरः ॥४॥

नाद्यंते सूत्रधारः—आदिष्टोस्मि ।

ब्रह्मश्रीकमलसागर—ब्रह्मश्रीकीर्तिसागराभ्यां सकलागमामबारिधि-चंद्रावताराणां सरस्वतीगच्छशृंगारहाराणां श्रीमन्मूलसंघोदयाद्रिप्रकटन-प्रभाकराणां चंचच्छिखि-शिखंडशोभितकरकमलानां त्रिविद्यविद्याचक्रवर्तिनां दिगम्बरशिरोमणीनां श्रीमत्प्रभाचन्द्रसूरीश्वराणां शिष्यैरस्मद्गुरुभिश्च श्रीमद्वादिचन्द्रसूरिभिर्निर्माय ज्ञानसूर्योदयं नामनाटकं प्रदत्तमासीत् तत्सभ्यानां पुरतोऽभिनेतव्यं अस्ति चाधुना सर्वेषां कुतूहललालसं चेतः । इति प्रस्तावः ।

अन्तभाग :—

मूलसंघे समासाद्य ज्ञानभूषं बुधोत्तमाः ।
दुस्तरं हि भवांभोधिं सुतरिं मन्वते हृदि ॥१॥
तत्पट्टामलभूषणं समभवद्दैगम्बरीये मते
चंचद्धर्मकरः स भाति चतुरः श्रीमत्प्रभाचन्द्रमाः ।
तत्पट्टेऽजनि वादिवृन्दतिलकः श्रीवादिचन्द्रो यति-
स्तेनायं व्यरचि प्रबोधतरणिर्भव्याब्जसंबोधनः ॥२॥
वसुवेदरसाब्जांके (१६४८) वर्षे माघे सिताष्टमी-दिवसे ।
श्रीमन्मधूकनगरे सिद्धोऽयं बोधसंरंभः ॥३॥ १८३॥

इति सूरिश्रीवादिचन्द्रं विरचिते ज्ञानसूर्योदयनाटके चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

संपूर्णोयं ग्रन्थः । स्वस्ति ।

१९. षोडशकारणव्रतोद्यापन (केशवसेन सूरि)

आदिभाग :—

श्रीमंतं धरणीश्वराच्चितपदं पापापहं हंसभं
हंसास्यं हरिहंसदोदयमहं स्तुत्वार्षभं देवतां ।
भक्त्या षोडशकारणार्च्चनविधिं विद्वज्जनोल्लासकं ।
कुर्वे केशवसेनसूरिरतुलश्रीधर्म्मणे सन्मणिः ॥१॥

अन्तभाग :—

दिक्संघेऽभूद्रामसेनक्रमेण श्रीमान् विद्वद्रत्नभूषो भदंतः ।
चारित्राभो जातभानुश्चकास्ति, तत्पट्टे वै श्रीजयाद्यंतकीर्तिः ॥१३॥
वेदनंदरसचंद्रवत्सरे (१६६४) मार्गमासि सितसप्तमीविधौ(तिथौ) ।
रामनामनगरे मया कृतार्च्चान्यपुण्यनिवहाय सूरिणा ॥१४॥

श्रीमत्केशवसेनसूरिगदितां पूजां पठंत्येव ये
शृण्वन्ति त्वथ पाठयन्ति सुनरा नार्यश्च सद्भावतः ।
ये चात्रैव लिखाप्य पुस्तकमथ प्रायः सुभक्त्याय वै
दास्यंत्यर्थमिनप्रतापमखिलैश्वर्यं लभंतेऽन्तके ॥१५॥

इति श्रीआचार्यकेशवसेन-विरचितं षोडशकारणव्रतोद्यापनं संपूर्णं ॥

२०. चतुर्दशीव्रतोद्यापन (अज्ञातराम)

आदिभाग :—

श्रीवीरं शिरसानम्य वक्ष्ये संक्षेपतस्तरां ।
चतुर्दश्युपवासानामष्टषष्ठिशतप्रमां ॥१॥

अन्तभाग :—

शास्त्राब्धेः पारगामी परममुनिरभून्मंडलाचार्य्यमुख्यः
श्रीविद्यानन्दिनामा निखिलगुणनिधिः पुण्यमूर्तिः प्रसिद्धः ।

तच्छिष्यो संप्रधारी(!)विबुधजनमनोहर्षसंदानदक्षो
दक्षोऽवैरामनामा विधिरसुमकरोल्पूजनाया विधेश्च ॥१॥
श्रीजयसिंहभूपस्य मंत्रिमुख्योऽग्रणीः सतां ।
श्रावकस्साराचंद्राख्यस्तेनेदं व्रतसमुद्धृतं ॥२॥
तंदवसमुद्दिश्य पूर्व्वशास्त्रानुवृत्तितः ।
व्रतोद्योतनमेतेन कारितं पुण्यहेतवे ॥३॥
अब्दे द्विशून्याष्टैकांके (१८००) चैत्रमासेसिते दले ।
पंचम्यां च चतुर्दश्या व्रतस्योद्योतनं कृतं ॥४॥
इति प्रतिमासान्तचतुर्दशीव्रतोद्यापनविधि-पूजा-जयमाला संपूर्णं ।

२१. त्रिभंगीसारटीका (सोमदेवसूरि)

आदिभाग :—

सर्वज्ञं करुणार्णवं त्रिभुवनाधीशार्च्यपादं विभुं
षड्जीवादिपदार्थसार्थकलने लब्धप्रशंसं सदा ।
तं नत्वाऽखिलमंगलास्पदमहं श्रीनेमिचन्द्र जिनं
वक्ष्ये भव्यजनप्रबोधजननीं टीकां सुबोधाऽभिधां ॥१॥
जिनेन्द्रवक्त्राम्बुरुहादिनिर्गतां स्याद्वादरूपां गुणशालिनीं सदा ।
निरस्य जाड्यं प्रदधाति या मतिं तां भारतीं नौमि परंपवित्रां ॥२॥
कर्मद्रुमोन्मूलनदिक्करीन्द्रं सिद्धान्तपाथोनिधिदृष्टपारं ।
षट्त्रिंशदाचार्यगुणैः प्रयुक्तं नमाम्यहं श्रीगुणभद्रसूरिं ॥३॥
या पूर्वा श्रुतटीका कर्णाट्[सु]भाषया विहिता ।
लाटीयभाषया सा विरच्यते सोमदेवेन ॥४॥
अतीन्द्रियसुखप्राप्त्यै निर्मुक्तैर्जन्मसंततेः ।
भाविता जायते सम्यग्भावना बंधमोक्षयोः ॥५॥
प्रणिपत्य नेमिचन्द्रं वृषभाद्यान् वीरपश्चिमाञ्जिनान् सर्वान् ।
वक्ष्ये सुभाषयाऽहं विशदां टीकां त्रिभंग्याख्यां ॥६॥

अन्तभाग :—

अमितगुणगणः साध्वीभदेवाख्यसोमः
विजयनिवरतं कामसुद्योतकारी ।
गतकलिलकलंकः सर्वदा यः स्ववृत्तः
स जयति जिनबिंबस्थापनाचार्यचार्यः(वर्यः) ॥१॥

यथाऽमरेन्द्रस्य पुलोम[जा]प्रिया नाराय[ण]स्याब्धिसुता बभूव ।
तथाभदेवस्य वैजैणिनाम्नी प्रिया सुधर्मा सुगुणा सुशीला ॥२॥
तयोः सुतः सद्गुणवान् सुवृत्तः सोमोऽभिधः कौमुदवृद्धिकारी ।
व्याघेरवालंबुनिधेः सुरत्नं जीयाच्चिरं सज्जनीनवृत्तिः ॥३॥
श्रीमज्जिनोक्तानि समंजसानि शास्त्राणि लेभे स यथाक्रमशक्त्या ।
श्रीमूलसंघाब्धिविवर्द्धनेन्दोः श्रीपूज्यपाद-प्रभुसत्प्रसादात् ॥४॥
न ज्ञातृत्वाभिमानेन न यशःप्रसरेच्छया ।
कृतिः किन्तु मदीयेयं स्वबोधायैव केवलं ॥५॥
शब्दशास्त्रविरोधं यत् यदागमविरोधि च ।
न्यूनाधिकं च यत्प्रोक्तं शोधितं तन्मनीषिभिः ॥६॥
श्रीसद्मांह्रियुगे जिनस्य निकटे लीनः शिवाशाधरः ।
सोमः सद्गुणभाजनं सविनयः सत्पात्रदाने रतः ॥
सद्रत्नत्रययुक् सदा बुधमनो(जना)ह्लादी चिरं भूतले ।
नंद्याद्येन विवेकिना विरचिता टीका सुबोधाभिधा ॥

इति त्रिभंगीसारटीका समाप्ता ।

२२. यशोधरचरित्र (भ० श्रुतसागर)

आदिभाग :—

विद्यानंदीश्वरं देवं नाभिराजसमुद्भवं ।
स्तुवेहं मरुदेव्यंगसंभवं वृषभं जिनं ॥१॥

अकलंकं जिनाधीशमजितं विजयात्मजं ।
जितशत्रुमहाराजनंदनं प्रणमाम्यहं ॥२॥
समंतभद्रं सर्वज्ञं स्वस्ति श्रावस्तिसंभवं ।
दृढराज-सुषेणोत्थं संभवं चिंतयाम्यहं ॥३॥
शिवकोटिप्रदं वंदे शरण्यमभिनंदनं ।
स्वयंवर-महाराज-सिद्धार्था-स्वामिनी-सुतं ॥४॥
उमास्वामिनमर्हंतं श्रयामि सुमतीश्वरं ।
श्रीमेघरथराजेंद्र-मंगलाजं सुमंगलं ॥५॥
भद्रबाहुं जगद्भद्रं भजे पद्मप्रभं विभुं ।
कौशांबी-धरणाधीश-सुसीमा-सुतनूद्भवं ॥६॥
गुप्तिगुप्तं पुरीकाशीपतिश्रीप्रतिष्ठितं ।
सुपार्श्वं पृथिवीषेणा-सुतनीलांग[भं] भजे ॥७॥

(ग्रन्थ सामने न होनेसे अगले पद्य नहीं दिये जा सके ।)

अन्तभाग :—

श्रीमद्वीरजिनेन्द्र-शासन-शिरोरत्नं सतां मंडनं
सादाद्यस्यमोक्षकारि करुणाकुन्मूलसंघेऽभवत् ।
वंशे श्रीमत्कुंदकुंदविदुषो देवेन्द्रकीर्तिर्गुरुः
पट्टे तस्य समुज्जयगुणो विद्यादिनंदीश्वरः ॥२७१॥
तत्पादपावनपयोरुहमत्तभृंगः श्रीमल्लिभूषणगुरुर्गरिमप्रधानः ।
संप्रेरितोहममुनाभयरुच्यभिख्ये भट्टारकेण चरिते श्रुतसागराख्यः ॥२७२॥
क्षांत्यार्जवादिगुणवेश्म तपोनिधानं चारित्रसद्म करुणानिधिरात्मपूज्यः ।
सद्धर्ममूर्तिरिह सोपि महेंद्रकीर्तिराचार्यवर्यविनुतो [ऽनु]मतं चकार॥२७३॥

विद्यादिनंदिगुरुपूर्वगिरा च भक्त्या ।
संप्रार्थितश्च मुनिनाऽमरकीर्तिनाम्ना ।
श्रीरत्नराज-ऋषिणा गुरुभक्तिभाजा
राजाधिराज-नत-पादकज-द्वयेन ॥२७४॥

तर्क-व्याकरणार्हत-प्रविलसत्सिद्धांतसारामल-
छंदोलंकृतिपूर्वनव्यकृतधीसंश्रव्यकाव्योच्चये ।
चंचारुधिया प्रमोदितमतिर्भूयः कृताभ्यर्थनः
साधुश्रीमतिसागरेण कृतवानेतच्चरित्रं शुभं ॥२७५॥
गंधारसारनगरे संघाभ्यर्च्चनमनेकशः शुचा(श्रुत्वा) ।
श्रुतसागरेण रचितं शास्त्रमिदं सिद्धिदं भवतु ॥२७६॥

इति श्रीभट्टारकश्रीविद्यानंदि-प्रियशिष्यसूरिश्रीश्रुतसागर-विरचिते यशोधरमहाराजचरिते अभयरुच्याऽभयमति-मारदत्त-यशोमति-कल्याणमित्र-कुसुमावली-श्रीसुदत्तभट्टारक-स्वर्गगमनवर्णनं नाम चतुर्थः परिच्छेदः ।

[आमेर-प्रति

२३. भविष्यदत्तचरित्र (विबुध श्रीधर)

आदिभाग :—

श्रीमतं त्रिजगन्नाथं नमामि वृषभं जिनं ।
इन्द्रादिभिः सदा यस्य पादपद्मद्वयी नता ॥१॥

(आगे चन्द्रप्रभ, शान्ति, पार्श्व, महावीर आदिकी स्तुति है)

यज्जिनेन्द्रमुखोद्गीतं यद्गणेशप्रकाशितं ।
यन्मुनीन्द्रगणैर्ग्रंथे कथितं ग्रंथवेदिभिः ॥८॥
श्रेमद्वेदोमयूतायां(?)स्थितेन नयशालिना ।
श्रीलंबकंचुकाऽनूकनभोभूषणभानुना ॥९॥
प्रसिद्धसाधुधामैकदनुजेन दयावता ।
प्रवरोपासकाचार-विचाराहित-चेतसा ॥१०॥
गुरुदेवार्चनादानध्यानाध्ययनकर्मणा ।
साधुना लक्ष्मणाख्येन प्रेरितो भक्तिसंयुता ॥११॥
तदहं शक्तितो वक्ष्ये चरितं दुरितापहं ।
श्रीमद्भविष्यदत्तस्य कमलश्रीतनूभुवः ॥१२॥

समोपरोक्षतः संतः शृण्वंतु स्थिरमानसाः ।
निःश्रेयसाय मुंचंतु खलभावं खलाहृदः (?)॥१३॥

अन्तभाग :—

चन्द्रप्रभस्य जगतामधिपस्य तीर्थे यातेयमद्भुतकथा कविकंठभूषा ।
विस्तारिता च मुनिनाथगणैः क्रमेण ज्ञाता मयाप्यपरसूरिमुखाम्बुजेभ्यः ॥५१॥
भक्त्याऽत्र ये चरितमेतदनूनबुद्ध्या शृण्वंति संसदि पठंति च पाठयंति ।
दत्वा धनं निजकरेण च लेखयंति व्युद्ग्राहभावरहिताश्च लिखंति संतः॥५२॥
ते भवंति मललक्षणशुद्धाः श्रीधरामलमुखा जनमुख्याः ।
प्राप्तचिंतितसमस्तसुखार्थाः शुभ्रकीर्तिधवलीकृतलोकाः ॥५३॥

इति श्रीभविष्यदत्तचरिते[1] विबुधश्रीधर-विरचिते साधुलक्ष्मण-नामांकिते श्रीवर्द्धन-नंदिवर्द्धन-मोक्षगमनवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः समाप्तः ॥

२४. त्रिलोकसार-टीका (सहस्रकीर्ति)

आदिभाग :—

यस्योक्ति-शीतलसुधारसविप्रसंगाज्जन्माग्नितापपरितापित-भव्यजीवः ।
निर्वांति नेमिमभिनम्य मुनीन्द्रचन्द्रं त्रैलोक्यसारचरवृत्तिमहं करिष्ये ॥२॥

सकलसैद्धान्तिकचक्रचूडामणि-श्रीनेमिचन्द्रभट्टारकोऽभिमतदेवता-श्री-नेमिजिननमस्कारप्रतिपादनार्थं निर्विघ्नाभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं च स्वशास्त्रादौ नमस्कारमाह ।

अन्तभाग :—

असापत्न्यां सुधीः साधुर्वासुपूज्य-जिनालये ।
सहस्रकीर्तिराख्यातो नानाभव्यावबोधनः ॥१॥

---

१ इस ग्रन्थकी एक जीर्णप्रति, संवत् १४८६ आषाढ वदि ६ गुरुवार-की लिखी हुई, देहली-धर्मपुराके नया मन्दिरमें मौजूद है, जिसमें प्रारंभके दो पत्र नहीं और कुछ पत्र जीर्णोद्धार-द्वारा नये भी शामिल किये गये हैं ।

तेनाकृते त्रिजगती वय-बुद्धि-वृद्धा वृत्तिर्दिगम्बरधरार्णववर्णकीर्णा।
यावज्जगद्भवतमिदं मरुतां त्रयेण तावत्सतामियमलं मुदमातनोतु ॥२॥
इति त्रैलोक्यसार-टीका समाप्ता।

२५. धर्मपरीक्षा (रामचन्द्र मुनि)

आदिभाग :—

प्रणिपत्य जिनं भक्त्या स्याद्वादवरनायकम्।
कथां धर्मपरीक्षाख्यामभिधास्ये यथागमम् ॥१॥

अन्तभाग :—

इति श्रीरामचन्द्रेण मुनिना गुणशालिना।
ख्याता धर्मपरीक्षा सा कृता कृतिरियं ततः ॥१॥
श्रीपूज्यपादसद्वंशे जातोऽसौ मुनिपुंगवः।
पद्मनन्दी इति ख्यातो भव्यव्यूह-प्रवन्दितः ॥२॥
तच्छिष्यो रामचन्द्राख्यो भद्रश्चारुगुणान्वितः।
वेदिता सर्वशास्त्राणां ख्यातो धर्मरताशयः ॥३॥
स च शुद्धव्रतोपेतः समयादिविवर्जितः।
समयः सर्वसत्त्वानां तत्प्रार्थनवशाद्धरः ॥४॥
यावद्व्योम्नि प्रवर्त्तन्ते शशांकरवितारकाः।
तावद्धर्मपरीक्षेयं वर्तिष्यति सदाशये ॥५॥
पद्मनिवासभूता हि कथा पद्मायनी वरा।
तथा धर्मपरीक्षा च मिथ्यात्वाज्ञानध्वंसिनी ॥६॥
इति धर्मपरीक्षाकथा समाप्ता।

२६. करकण्डुचरित्र (भ० जिनेन्द्रभूषण)

आदिभाग :—

पार्श्वनाथजिनं वन्दे विश्वविघ्नौघनाशनम्।
कमठोपसर्ग-दैत्यारि-नाशने सौख्य-कारणम् ॥१॥

अन्तभाग :—

वक्तुं सर्वमिह क्षमः किल भवेत्कस्योत्तमा भारती ॥१५॥

इति श्रीमुमुक्षु-सिद्धान्तचक्रवर्ति-श्रीकुन्दकुन्दाचार्यानुक्रमेण श्रीभट्टारक-विश्वभूषण-विरचिते श्रीमज्जिनेन्द्रपुराणान्तर्गत-भगवत्पूजाफल-व्यावर्णने श्रीकरकण्डु-सहस्रारकाप्तिवर्णनो नाम चतुर्थोधिकारः सम्पूर्णः ।

करकण्डुकथा सम्पूर्णा ।

२७. अनन्तजिन-व्रतपूजा (भ० गुणचन्द्र)

आदिभाग :—

श्रीसर्वज्ञं नमस्कृत्य सिद्धं साधूंस्त्रिधा पुनः ।
अनन्तव्रतमुख्यस्य पूजां कुर्वे यथाक्रमम् ॥१॥

अन्तभाग :—

इत्यनंतविधेः पूजां व्यरचद्गुणचंद्रकः ।
श्लोकः सप्तशती पंचसप्तत्यूना यतीश्वरः ॥१॥
संवत्षोडशत्रिंशदैष्यफलके(१६३३) पक्षेऽवदाते तिथौ
पक्षत्यां गुरुवासरे पुरुजिनेट्-श्रीशाकमार्गे पुरे ।
श्रीमद्डुम्बडवंशपद्मसविता हर्षाख्यदुर्गो वणिक्
सोयं कारितवाननंतजिनसत्पूजां वरे वाग्वरे ॥२॥
श्रीमूलसंघेवविद्यातिनीह प्रद्योतमानेऽन्यमतानि नेशुः ।
सारस्वतो गच्छ इहैव नंद्यात् श्रीमद्बलात्कारगणाभियुक्ते ॥३॥
श्रीरत्नकीर्तिभगवज्जगतो वरेण्यश्चारित्ररत्ननिवहस्य वभार भारम् ।
तद्दीक्षितो यतिवरो यशकीर्तिकीर्तिश्चारित्ररंजितजनोद्धहिता सुकीर्तिः ॥४॥
तच्छिष्यो गुणचंद्रसूरिरभवच्चारित्रचेतोहर-
स्तेनेदं वरपूजनं जिनवरानन्तस्य युक्त्याऽर्चि ।
येऽत्र ज्ञानविकारिणो यतिवरास्तैः शोध्यमेतद्ध्रुवं
नंद्यादारविचंद्रमज्जयतरं संघस्य मांगल्यकृत् ॥५॥

इत्याचार्यगुणचंद्रविरचिता श्रीअनन्तनाथजिनपूजा उद्यापनसहिता समाप्ता ।

२८. पद्मपुराण (भ० धर्मकीर्ति)

आदिभाग :—

शक्रालीं-मौलि-रत्नांशु-वारिधौत-पदाम्बुजं ।
ज्ञानादिमहिमव्याप्तविष्टपं विष्टपाधिपं ॥१॥
मुनिसुव्रतनामानं सुव्रताराधितक्रमं ।
वंदे भक्तिभरानम्रः श्रेयसे श्रेयसि स्थितं ॥२॥

अन्तभाग :—

अथाभवन्मूलसुसंघ एव गच्छे सरस्वत्यधिके(भिधे) गणे च ।
बलात्कृतौ श्रीमुनिपद्मनन्दी श्रीकुंदकुंदान्वयजप्रसूतिः ॥२४॥
देवेन्द्रकीर्तिश्च बभूव तस्य पट्टे महिष्टे सुमहानुभावः ।
त्रिलोककीर्तिस्तत तत्र(एव) दीक्षो भट्टारकस्तत्पदलक्ष्यनिष्ठः ॥२५॥
सहस्रकीर्तिर्मुनिवृन्दसेव्यस्तत्पट्टपाथोधिनिशाधिनाथः ।
तदीयशिष्यः पद-पद्मनन्दी बभूव नाम्ना मुनिपद्मनन्दी ॥२६॥
पट्टे तदीयेऽखिलसंघसेव्यो यशःसुकीर्तिः शुभकीर्तिसिंधुः ।
बभूव भट्टारक-सत्पदस्थो मुनिः स्मरारेः हनने प्रवीणः ॥२७॥
तत्पट्टपंकेजविकाशनेयः साम्यं विभर्त्तीह सहस्रभानोः ।
हतस्मराजितदुःकषायो(?) विनष्टदुर्भावचयो महात्मा ॥२८॥
यं वीक्ष्य लोके व्रतभासुरांगं तपस्विनं शास्त्रविदं मुनीशं ।
भजंति मिथ्यात्वभयं न जातु क्रियापरं शीलनिधिं सुशांतं ॥२९॥
यं सेवमाना सततं सुशिष्या विज्ञात-तत्त्व-व्रत-भासुरांगाः ।
भवंति नूनं जगती-प्रकाशास्तपःकृशांगा रविणो गुणोघैः ॥३०॥
यं सेवमानः समकुन्दिजातं मुनीशमासीदुद्धररत्नपालः ।
पटुत्व-वाग्मित्व-कवित्व-वेत्ता ..... सद्गुणरत्नपात्रं ॥३१॥
एवं विधोऽसौ मुनिसंघसेव्यो भट्टारको भासितदिक्समूहः ।
संघस्य कल्याणततिः प्रदेया नाम्ना गुरुः श्रीललितादिकीर्तिः ॥३२॥

तच्छिष्यस्तत्पदस्थो व्रतनिचययुतो जैनपादाब्जभृंगो
नाम्ना धर्मादिकीर्तिर्मुनिविमलमनास्तेन चैतत्पुराणं।
स्वल्पप्रज्ञेन दृब्धं निजदुरितचय-प्रक्षयाय हिताय
भव्यानां च परेषां श्रवण-सुपठने प्रोद्यतानामजस्रं ॥३३॥
मूलकर्ता पुराणस्य श्रीजिनश्चोत्तरस्तथा।
गणीशो यतयोन्ये च उत्तरोत्तरकर्तृकाः ॥३४॥
इदं श्रीरविषेणस्य पुराणं वीक्ष्य निर्मितः।
चिरं स्थेयात् क्षितौ भव्यैः श्रुतं चाधीतमन्वहं ॥३५॥
संवत्सरे द्व्यष्टशते मनोज्ञे चैकोनसप्तत्यधिके(१६६९) सुमासे।
श्रीश्रावणे सूर्यदिने तृतीयातिथौ च देशेषु हि मालवेषु ॥३६॥

× × × ×

इति श्रीपद्मपुराणे भट्टारकश्रीधर्मकीर्तिविरचिते पद्मदेवनिर्वाणगमनं नाम चतुश्चत्वारिंशः पर्वः ॥४४॥

२९. हरिवंशपुराण (भ० धर्मकीर्ति)

आदिभाग :—

श्रीमंतं त्रिजगन्नाथं नेमिनाथं जिनाधिपम्।
अरिष्टखंडने नेमिं वन्देऽनन्तगुणार्णवम् ॥१॥
पुरुदेवादि-वीरान्तान् शेषांस्तीर्थंकरान्मुदा।
वन्देऽनन्तगुणालीढान्प्रातिहार्यादिभूषितान् ॥२॥
सप्तत्यग्रशतक्षेत्र्यान्सतो भूतान्भविष्यतः।
नमामि श्रीजिनान् घातिकर्मसंघातघातकान् ॥३॥
सिद्धानष्टगुणोपेतान्पंचाचारादिसंगतान्।
आचार्यान्पाठकान्वंदे तथा साधूंस्तपोधनान् ॥४॥
जिनेन्द्र-वक्त्र-संजातां सुरासुरमुनीडिताम्।
भारतीं नौमि दुर्जाड्य-नाशिनीं विश्वदीपिकाम् ॥५॥

वन्दे वृषभसेनादीन् गौतमान्तान् गणेशिनः ।
चतुर्ज्ञानधरान्सम्यक् पूर्वाङ्ग-रचनोद्यतान् ॥६॥
कुन्दकुन्दादिकाचार्यान् कवीन्द्रान्नौमि भक्तितः ।
प्रदीपायितमेतत्र (?) यैर्मिथ्यास्वतमोवृते ॥७॥
तथा ललितकीर्त्याख्यमीडे भट्टारकं गुरुम् ।
क्रियते यत्प्रसादेन कृतिरेषा बुधोचिता ॥८॥

अन्तभाग :—

वीरेणोक्तं पुरा चैतद्गौतमाद्यैस्ततोऽखिलम् ।
श्रुतकेवलिभिस्तद्वत्ततः श्रीगुणभद्रकैः ॥९०॥
संक्षेपेण च तद्दीक्ष्य प्रोक्तं तच्च मया पुनः ।
उक्तमेतच्चिरं नंद्यात्पठितं पाठितं बुधैः ॥९१॥

नानाकथातत्त्वरहस्यपूर्णं पूजाव्रतत्याग-तपोगुणाढ्यम् ।
स्वर्गापवर्गैकनिदानभूतं पुराणमेतत्सुचिरं प्रजीयात् ॥९२॥
श्रीमूलसंघेऽजनि कुन्दकुन्दः सूरिर्महात्माखिलतत्त्ववेदी ।
सीमंधरस्वामिपदप्रवन्दी पद्मह्वयो जैन-मत-प्रदीपः ॥९३॥
तदन्वयेऽभूद्यशकीर्तिनामा भट्टारको भाषितजैनमार्गः ।
तत्पट्टवान् श्रीललितादिकीर्तिर्भट्टारकोऽजायत सत्क्रियावान् ॥९४॥

जयति ललितकीर्तिर्जीततत्त्वार्थसार्थो
नय-विनय-विवेक-प्रोज्वलो भव्यबन्धुः ।
जनपदशतमुख्ये मालवेऽलं यदाज्ञा
समभवदिह जैन-ज्योतिका दीपिकेव ॥९५॥
तत्पट्टाम्बुजहर्ष-वर्ष-तरणिर्भट्टारको भासुरो
जैनग्रन्थविचार-केलिनिपुणः श्रीधर्मकीर्त्याह्वयः ।
तेनेदं रचितं पुराणममलं गुर्वाज्ञया किञ्चन
संक्षेपेण विबुद्धिनापि सुहृदा तत्शोध्यमेतद् ध्रुवम् ॥९६॥

यशोलाभाभिमानार्थं न ग्रन्थोऽयं कृतो मया ।
स्वश्रेयसे तथान्येषामुपकाराय केवलम् ॥९७॥
एतद्ग्रन्थकृते बाल्ये फलं कर्मक्षयं ध्रुवं ।
ततः संसारवाराब्धिः सुतरो मे भविष्यति ॥९८॥
हीनाधिकमभूत्किंचिद्यदिह विदुषांवरैः-
स्तच्छोध्यं कृपया तत्र हास्यः कर्यो न मे मनाक् ॥९९॥
को हेयो विदुषामनादृतिरथ कः पोषणीयोऽपि कः ।
को मासो गदितश्च का वरनदी किं पाठनीयं पुरा ॥
निंद्या का महतां तथा जिनपतेः का पूजनीया मुदा ।
ज्ञातव्यस्त्रिकवर्णनामसुगतैर्मध्याक्षरैर्ग्रंथकृत् ॥१००॥

अधमः । कार्मणः । स्वकीयः । कार्तिक । यमुना । गणित । विकृतिः । प्रतिमा । **धर्मकीर्तिमुनिकृति ।**

वर्षे द्व्यष्टशते चैकाग्रसप्तत्यधिके(१६७१) रवौ ।
आश्विने कृष्णपंचम्यां ग्रन्थोऽयं रचितो मया ॥१०१॥

३०. हरिवंसपुराण (पं० रामचन्द्र)

आदिभाग :—

श्रीमते नेमिनाथाय केवलज्ञानमूर्तये ।
स्याद्वादवादिने नित्यं नमोस्तु भवहारिणे ॥१॥
यल्लोकेन्द्रानलं नेमिं प्रह्वीकृत्य गुणार्णवम् ।
हरिवंशपुराणस्य समासो वर्ण्यते मया ॥२॥
जिनसेन-समुद्रस्य पारं गन्तुं न पार्यते ।
भव्यैः कालप्रभावेन तदर्थ-श्रुति-सुन्दरः ॥३॥
लम्बकंचुकवंशोऽसौ जातो जन-मनोहरः ।
शोभनाङ्गी सुभगाख्यो देवकी यस्य वल्लभा ॥४॥

तदात्मजः कलावेदी विश्वगुणविभूषितः ।
रामचन्द्राभिधः श्रेष्ठी मल्हणा वनिता प्रिया ॥५॥
तत्सूनुर्जनविख्यातः शीलपूजाद्यलंकृतः ।
अभिमन्युर्महादानी तत्प्रार्थनवशादसौ ॥६॥
शृण्वन्ति य इदं भक्त्या भव्याः सुकृतमूर्तयः ।
प्राप्नुवन्ति महाभोगान्तपो(तो)ऽपवर्गमच्युतम् ॥७॥
चारुवाक्यप्रबोधेन कथां संकलनात्मना ।
प्रोच्यते जिनसेनेन शृण्वन्तु भुवि कोविदः ॥८॥

अन्तभाग :—

यादवान्वय-विभूषिणी-भुवा दान-पूजन-विनोद-चेतसा ।
कारितेयमभिमन्युना मुदा सान्वयश्रवणहेतुका कथा ॥३॥
यदुक्तं जिनसेनेन सूरिणा भव्यबंधुना ।
तन्मया रामचन्द्रेण संक्षेपेणैव भाषितम् ॥४॥
यावद्रत्नाकरो लोके यावन्मेरुधुरीशिता ।
तावदयं समासो हि तिष्ठतां महदाशये ॥५॥

इति श्रीहरिवंशपुराणसमासे अभिमन्युश्रेष्ठिनाम्नांकिते नेमिनाथ-परिनिर्वाणवर्णनं पंचमाऽधिकरणं समाप्तं ॥

३१. जयपुराण (ब्रह्म कामराज)

आदिभाग :

श्रीमन्तं श्री(त्रि)जगन्नाथं वृषभं नृसुरार्चितम् ।
भव-भीति-निहन्तारं वन्दे नित्यं शिवाप्तये ॥१॥

अन्तभाग :—

प्रकथ्यतेऽन्वयोऽथात्र ग्रंथकृद्ग्रंथभक्तयः ।
मूलसंघे वरे बीरपारंपर्याच्चतुर्गुणे ॥७६॥

अभूद्गणो बलात्कारः पद्मनन्द्यादिपंचसु ।
नामास्मिन् च मुनिग्रावशारदाबलवाच्ककात् ॥८०॥
आचार्यात्कुन्दकुन्दाख्यात्तस्मादनुक्रमादभूत् ।
स सकलकीर्तियोगीशो ज्ञानी भट्टारकेश्वरः ॥८१॥
येनो[द्]धृतो गतो धर्मो गुर्जरे वाग्वरादिके ।
निर्ग्रंथेन कवित्वादिगुणेनेवार्हता पुरा ॥८२॥
तस्माद्भुवनकीर्तिः श्रीज्ञानभूषणयोगिराट् ।
विजयकीर्तयोऽभूवन् भट्टारकपदेशिनः ॥८३॥
तेभ्यः श्रीशुभचन्द्रः श्रीसुमतिकीर्तिसंयमी ।
गुणकीर्त्याह्वया आसन् बलात्कारगणेश्वराः ॥८४॥
ततः श्रीगुणकीर्तिर्यः पट्ट-व्योमदिवाकरः ।
वादिनां भूषणो भट्टारकोऽभूद्वादिभूषणः ॥८५॥
तत्पट्टाधीश्वरो विश्वव्यापिनिश्वेतकीर्तिधृत् ।
रामकीर्तिरभूदन्य[द्]रामो वा सुखदैर्गुणैः ॥८६॥
तत्मात्स्वगच्छपतिरस्ति स पद्मनन्दी निष्णातलोकसुखकारकपद्मनंदी ।
भट्टारको जिनमताम्बर-पद्मनंदी श्रीरामकीर्तिपदभूधर-पद्मनंदी ॥८७॥
यः शब्दतर्कपरमागमविद्विरागी रागी शिवे विहित-सर्वतपःसमूहः ।
भात्यत्र वस्त्रपरिवर्जन-जातरूपः काले कलौ परिहृताखिलवस्तुलोभः ॥८८॥
वस्त्राणां त्यजनक्षणेऽस्य यतिनो वंशादिवालस्यविद्-
धृत्वाग्रे समरादिसिंहनृपतिः खड्गं पुरस्येति सः ।
प्राहाऽसिं प्रविती(र्य) मां मुनिवर त्वं चाम्बराणि प्रभो
राजन्यं कुरु संप्रगृह्य स तदा स्वाङ्गीकृताद्राचलत् ॥८९॥
गिरिपुराधिपतिर्नृपुंगवस्तमभिवीक्ष्यमुदोल्लसते प्रभुः ।
गिरिधरादिमदाससमाह्वयः जलधिरम्बुचयेन विधुं यथा ॥९०॥
तदुपदेशवशेन तदीयसत्प्रवरपुण्यभराकृतसाहसं ।
जयपुराणमिदं तनुबुद्धिना रचितमंगजनाथसुवर्णिना ॥९१॥

नाम्नध्वंशभव-पंडितजीवराज-मेधाबलात्सकलसौख्यकरकृतोयं ।
जैनालयः स्थपति-बुद्धिभरादपूर्वो ग्रंथानु वा जयभृतो जिनदर्शनोव्यं(?)॥९२
भट्टारकस्य गुरुबन्धुरभूत्प्रसिद्धो मेधावतः सुमतिकीर्तिमुनेर्गुणाढ्यः ।
आचार्यमुख्यसकलादिभभूषणाख्यस्तच्छिष्यसूरिरभवत्सनरेन्द्रकीर्तिः॥९३
पूर्णस्य वक्तृकवितादिगुणैरदभ्रैः शिष्यो बभूव नृपमान्यनरेन्द्रकीर्तेः ।
वर्णीस्मराभवपुषः सहिलाद्रकाख्यः शिष्योस्ति तस्य जयसेवककामराजः॥९४

मात्रा-संधि-विभक्ति-लिङ्ग-वचनालंकार-रीत्यादिभिः
प्रोक्तं यद्रहितं सरस्वति मया ग्रंथेत्र सूरीश्वरैः ।
निर्वाह्यो चिदभावतः क्षम मयि त्वं तद्धिते बालके
मातेवास्फुटवाग्यते शिवकरा तारुण्यकालाद्रुते(?)॥९५॥
दुःसंध्यादिमलं विनाश्य गुणिनः संवीक्ष्य यूयं बुधा
हर्षैतः कविचिल्लवं कुरुत भो ग्रंथद्रुहं स्वात्मनि ।
शुद्धं सज्जनतागुणादुदमिवाकूतादिनैर्मल्यदं
गंभीरं पृथुलं त्रिवर्गसलिलं पंकं शरद्वाशराः(?)॥९६॥

भूयात्पुराणरचनाभवपुण्यतो मे सम्यक्त्वदेन सहितो भवसौख्यवर्गात् ।
अन्योत्थकर्मंजनकाद्विमुखस्य दृक्चिचारित्ररत्ननिचयो न हितस्वतोन्यः॥९७॥
अमृतवार्द्धिखभूमिसुदर्शना विजयनामनगाचलमंदिर(?) ।
चपलरूक्षसमूहैः सहिता दुमे(?) जयतु यावदिदं भुवनत्रये ॥९८॥
शिल्पिरुत्पादयत्येव जिनबिम्बं तथा कविः ।
शास्त्रं तन्मान्यतामेति मान्यं तन्मानितं जनैः ॥९९॥

राष्ट्रस्यैतत्पुराणं शकमनुजपतेर्मेदपाटस्य पुर्यां
पश्चात्संवत्सरस्य प्ररचितमटतः पंचपंचाशतो हि ।
अभ्राभ्राक्षैकसंवच्छरनिकरयुजः(१५५५) फाल्गुणे मासि पूर्णे
मुख्यायामौदयायां सुकविविनयिनो लालजिष्णोश्च वाक्यात्॥१००॥
सकलकीर्तिकृतं पुरुदेवजं समवलोक्य पुराणमियं कृतिः ।
जयमुनेर्गुणपालसुतस्य च बृहदलं जिनसेनकृतं कृता ॥१०१॥

इति श्रीजयाङ्के जयनाम्नि पुराणे भट्टारक-श्रीपद्मनंदि-गुरूपदेशाद्ब्रह्म-कामराजविरचिते पंडितजीवराजसाहाय्यात् त्रयोदशमः सर्गः ।

३२. कार्तिकेयानुप्रेक्षा-टीका (भ० शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

शुभचंद्रं जिनं नत्वाऽनंतानंतगुणार्णवम् ।
कार्तिकेयानुप्रेक्षाष्टीकां वक्ष्ये शुभश्रिये ॥१॥

अन्तभाग :—

श्रीमूलसंघेऽजनि नन्दिसंघो वरो बलात्कारगणः प्रसिद्धः ।
श्रीकुंदकुंदो वरसूरिवर्यो विभाति भाभूषणभूषितांगः ॥२॥
तदन्वये श्रीमुनिपद्मनन्दी ततोऽभवच्छीसकलादिकीर्तिः ।
तत्पट्टधारी भुवनादिकीर्तिः श्रीज्ञानभूषो वरचित्तभूषः ॥३॥
तदन्वये श्रीविजयादिकीर्तिस्तत्पट्टधारी शुभचंद्रदेवः ।
तेनेयमाकारि विशुद्धटीका श्रीमत्सुमत्यादि-सुकीर्तिकीर्तिः ॥४॥
सूरिश्रीशुभचंद्रेण वादि-पर्वत-वज्रिणा ।
त्रिविद्येनानुप्रेक्षाया वृत्तिर्विरचिता वरा ॥५॥
श्रीमद्विक्रमभूपतेः परिमिते वर्षे शते षोडशे
माघे मासि दशाग्रवन्हिसहिते(१६१३) ख्याते दशम्यां तिथौ ।
श्रीमच्छ्रीमहिसार-सारनगरे चैत्यालये श्रीगुरोः
श्रीमच्छ्रीशुभचंद्रदेव-विहिता टीका सदा नन्दतु ॥६॥

वर्णिश्रीक्षेमचंद्रेण विनयेन कृतप्रार्थना ।
शुभचंद्रगुरो स्वामिन् कुरु टीकां मनोहरां ॥७॥
तेन श्री शुभचन्द्रेण त्रैविद्येन गणेशिना ।
कार्तिकेयानुप्रेक्षाया वृत्तिर्विरचिता वरा ॥८॥
तथा साधुसुमत्यादिकीर्तिना कृतप्रार्थना ।
सार्थीकृता समर्थेन शुभचन्द्रेण सूरिणा ॥९॥

भट्टारक-पदाधीशा मूलसंघे विदांवराः ।
रमा-वीरेन्दु-चिद्रूप-गुरवो हि गणेशिनः ॥१०॥
लक्ष्मीचंद्रगुरुः स्वामी शिष्यस्तस्य सुधीयशाः ।
वृत्तिर्विस्तारिता तेन श्रीशुभेन्दुप्रसादतः ॥११॥

इति स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा-टीकायां त्रैविद्यविद्याधर-षड्भाषाकवि-चक्रवर्तिभट्टारकश्रीशुभचंद्र-विरचितायां धर्मानुप्रेक्षायां द्वादशोऽधिकारः ॥

३३. चन्द्रप्रभचरित (भ० शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

श्रीवृषं वृषभं वन्दे वृषदं वृषभाङ्कित ।
वृषभादिसमाश्लिष्ट-पादद्वितयपंकजं ॥१॥

(इसके आगे चन्द्रप्रभादिकी स्तुतिके आठ पद्य हैं ।)

ज्ञानभूषान् जिनान् शेषान् स्वदर्थप्रतिपादकान् ।
मुक्तयङ्गनासमाश्लिष्टानीडेऽनन्तसुशर्मणे ॥१०॥
सप्तभंगीविधिं प्राप्तां गां जैनीं वैष्णवीं[1] स्तुवे ।
यस्य प्रसादतः सर्वे बोबुध्यन्ते जनाः समे ॥११॥
गुरूनखिलसन्मार्ग-द्योतकान् ज्ञानभूषणान् ।
विजये कीर्तिसंप्राप्तांस्तोष्टुवीमि स्वसिद्धये ॥१२॥
जिनसेनादयः पूर्वसूरयः सूरसन्निभाः ।
मया संस्ते शिवं दद्युः परमात्मध्यानवेदिनः ॥१३॥
तदध्वनि विवक्षामो गंतु शक्तिविवर्जिताः ।
स्थाने तत्सूरसंघोत्थे मार्गे गच्छंति तारकाः ॥१४॥

अन्तभाग :—

श्रीमूलसंघेऽजनि पद्मनन्दी तत्पट्टधारी सकलादिकीर्तिः ।
तत्पट्टधारी भुवनादिकीर्तिर्जीयाच्चिरं धर्मधुरीणदत्तः ॥५६॥

---

१ व्यापनशीलां ।

तत्पट्टेऽजनि बोधबुद्धिनिखिलन्यायादिशास्त्रार्थक-
श्चिद्रूपामृतपानलालसमतिः श्रीज्ञानभूषो जयी ।
जीयात् पंचमकालकल्पशिखरी तत्पट्टधारी चिरं
श्रीमत्कीर्तिविजयादिकीर्तिमुनिपो जीयाच्च शास्त्रार्थवित् ॥५७॥
सोमप्रभः सोमसमानतेजाः श्रीसोमसल्लांछन इद्धकांतिः ।
सोमः सुमूर्तिश्च करोतु साम्यं श्रीशोभचंद्रस्य सुयोगिनः सः ॥५८॥
यः संस्तुणोति भजते निखिलं चरित्रं
यः कामयति प्रथयतीन्दुनिभस्य भावात् ।
यः पाठयन् पठयति जिनभक्तिरागात्
स सिद्धिभीरुमुखपंकजमश्नुते हि ॥५९॥
श्लोकाः षष्ठ्यधिकाः सर्वे शतपंचदशामलाः ।
प्रमाणमस्य विज्ञेयं लेखकैः पाठकैः सदा ॥६०॥

इति श्रीचन्द्रप्रभचरिते भट्टारकश्रीशुभचन्द्रविरचिते भगवतो निर्वाण-गमनो नाम दशमो सर्गः ।

३४. पार्श्वकाव्य-पंजिका (भ० शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

श्रीपार्श्वं पार्श्वमानम्य सुपार्श्व-निहितोत्तमम् ।
पद-वैषम्य-संभेत्तीं वक्ष्ये तत्काव्यपंजिकाम् ॥१॥

अन्तभाग :—

श्रीमूलसंघेऽजनि नन्दिसंघस्तत्राभवच्छ्रीसकलादिकीर्तिः ।
शास्त्रार्थकारी खलु तस्य पट्टे भट्टारकः श्रीभुवनादिकीर्तिः ॥१॥
तत्पट्टोदयपर्वते रविरभूत् श्रीज्ञानभूषो यतिः
मिथ्यामार्ग[महा]न्धकारतरणिश्चारित्रचूडामणिः ।
सम्यक्स्वीकृतशास्त्रसद्व्रतभरः सच्छामलीलायुतः
पायाद्वो भवदुःखतस्त्रिजगति प्रख्यातनामा मुनिः ॥२॥

प्रकटतत्पदपंकजभानुमान् सकलतार्किकवंदितपद्युगः ।
विजयकीर्ति[गुणी] गुणसागरः स भवताम[व]ाद्यतिनायकः ॥३॥

तदीय-पट्ट-पर्वत-प्रचण्ड-चण्डदीधितिः
स्फुरद्यशाः सुधीधनः कृपापरः परोदयः ।
सुनव्य-भव्य-गद्य-पद्य-गीति-रीति-वेदकः
सुशौभचन्द्रसन्मुनिर्गणाधिपः पुनातु नः ॥४॥

वादविद्याविनोदेन रञ्जितानेकभूपतिः ।
सौभद्रः(शौमेन्दुः) मे श्रियं देयाद्धाचा तर्पित-सज्जनः ॥५॥

विजित-वादिगणो गतमत्सरः सकलसूरिगुणोदयसुन्दरः ।
शममयः सुकलः सुविदांवरः सुशुभचन्द्र गुरुर्गुणबंधुरः ॥६॥

दुर्व्याख्येदं मंदधीभिः पार्श्वकाव्यं सुभाकरम् ।
मत्वेति मतिमांस्तस्य पंजिकामकरोद्गणी ॥७॥

श्रीभूषणः स्वस्य गुरोः सुशिष्यः सूरिः स्वयं शास्त्रविदां मतश्च ।
तदा·····श्रीशुभचन्द्रदेवः चक्रे सुपंजी जिनकाव्यकाण्यां ॥८॥

वर्णिश्रीपालनामा मतिमतमहितो मार्गसर्गी निसर्गा-
दग्रस्त्रैविद्यविद्याविधिविकचसरो जातभास्वद्विवस्वान् ।
सार्थं ग्रंथार्थवेत्ता विशदमिदमरं पुस्तकं प्राक् सुपार्श्व-
काव्यस्य वै सुपंज्याः लिखितललितवाक् वाग्मिनां चोपजीव्यः॥९॥

पंजिकेयं चिरं चित्ते स्थेयात्सद्विदुषां स्थिरम् ।
कृता श्रीशुभचन्द्रेण श्रीभूषणसमाग्रहात् ॥१०॥

श्रीपार्श्वपूज्यपादो गणिगणविनुतः श्रीप्रभाचन्द्रदेवः
सिद्धः श्रीवर्धमानो वरविजययशाः ज्ञानभूषोऽकलंकः ।
दिव्यश्रीभूषणोग्रवरविधिविदुषां शाश्वतश्रीशुभेन्दुः
श्रीपालः पातु पापात्प्रमितियरिणतिर्वादिराजश्च युष्मान् ॥११॥

इति श्रीपार्श्वनाथ-काव्य- जिका समाप्ता ।

३५. श्रेणिकचरित्र (भ० शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

श्रीवर्द्धमानमानंदं नौमि नानागुणाकरं ।
विशुद्धध्यानदीप्तार्चिर्हुतकर्मसमुच्चयं ॥१॥
बाल्येपि मुनि-संदेह-निर्नाशाद्यो जिनेश्वरः ।
सन्मतित्वं समापन्नः सन्मत्याख्यां समाश्रितः ॥२॥
अमराहिफणामर्द्दान्महावीरसुनामभाक् ।
बाल्ये यो बलतां प्राप्तो वीराणां वीरतां गतः ॥३॥
जरत्तृणमिवात्यंतं राज्यं प्राज्यं नरेश्वरं(च नश्वरं)।
मत्वा त्यक्त्वाश्रितो दीक्षां यो वीरो विश्ववंदितः ॥४॥

अन्तभाग :—

जयतु जितविपक्षो मूलसंघः सुपक्षो
हरतु तिमिरभारं भारती-गच्छवारः (वाणः=प्रकाशः?) ।
नयतु सुगतमार्गं शासनं शुद्धवर्गं
जयतु च शुभचंद्रः कुंदकुंदो मुनीन्द्रः ॥१७॥
तदन्वये श्रीमुनिपद्मनंदी विभाति भव्याकर-पद्मनन्दी ।
शोभाधिशाली वरपुष्पदंतः सुकांति-संभिन्न-सुपुष्पदन्तः ॥१८॥
पुराण-काव्यार्थ विदांवरत्वं विकाशयन्मुक्तिविदांवरत्वं ।
विभातु वीरः सकलाद्यकीर्तिः कृतापकेनौ(?) सकलाद्यकीर्तिः ॥१९॥
भुवनकीर्तिर्यतिर्जयताद्यमी भुवनपूरितकीर्तिचयः सदा ।
भुवनबिम्बजिनागमकारणो भव-नवाम्बुद-वातभरः परः ॥२०॥
तत्पट्टोदयपर्वते रविरभूद्भव्याम्बुजं भासयन्
सन्नेत्रास्त्रहरं तमो विघटयन्नानाकरैर्भासुरः ।
भव्यानां सुगतश्च विग्रहमतः श्रीज्ञानभूषः सदा
चित्तं चंद्रकसंगतः शुभकरः श्रीवर्द्धमानोदयः ॥२१॥

जगति विजयकीर्तिः पुण्यमूर्तिः सुकीर्तिः
जयतु च यतिराजो भूमिपैः सृष्टपादः ।
नय-नलिन-हिमांशुर्ज्ञानभूषस्य पट्टे
विविध-परविवादि-क्ष्माधरे वज्रपातः ॥२२॥
तच्छिष्येण शुभेन्दुना शुभमनः श्रीज्ञानभावेन वै
पूतं पुण्यपुराणमानुषभवं संसारविध्वंसकः ।
नो कीर्त्या व्यरचि प्रमोहवशतो जैने मते केवलं
नाहंकारवशात्कवित्तमदतः श्रीपद्मनाभेर्हितं ॥२३॥
इदं चरित्रं पठतः शिवं वै श्रोतुश्च पद्मेश्वरवत्पवित्रं ।
भविष्णु संसारसुखं नृदेवं संभुज्य सम्यक्त्वफलप्रदीपं ॥२४॥
चंद्रार्क-हेमगिरि-सागर-भू-विमानं
गंगानदीगमन-सिद्धशिलाश्च लोके ।
तिष्ठंति यावदमितो वरमर्त्यशेवा(देवा ?)
स्तिष्ठंतु कोविदमनोम्बुजमध्यभूताः ॥२५॥
इति श्रीश्रेणिकभवानुबद्ध-भविष्यत्पद्मनाभपुराणे पंचकल्याणवर्णनं नाम पंचदशः पर्वः ।१५॥

३६. पाण्डवपुराण (भ० शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

सिद्धं सिद्धार्थसर्वस्वं सिद्धिदं सिद्धिसत्पदं ।
प्रमाण-नय-संसिद्धं सर्वज्ञं नौमि सिद्धये ॥१॥
वृषभं वृषभं भांतं वृषभांकं वृषोन्नतं ।
जगत्सृष्टि-विधातारं वन्दे ब्रह्माणमादिमं ॥२॥
चन्द्राभं चन्द्रशोभाढ्यं चन्द्रार्च्यं चन्द्रसंस्तुतं ।
चन्द्रप्रभं सदाचन्द्रमीडे सच्चन्द्रलांछनं ॥३॥

शान्तिं शान्तेर्विधातारं सुशांतं शांतकिल्बिषम् ।
तन्नमामि निरस्ताऽघं मृगांकं षोडशं जिनम् ॥४॥
नेमिर्धर्मरथेनेमिः शास्तु संशितशासनः ।
जग(जीया)ज्जगत्त्रयीनाथो निर्जितानंगसम्मदः ॥५॥
वर्धमानो महावीरो वीरः सन्मति-नामभाक् ।
स पातु भगवान् विश्वं येन बाल्ये जितः स्मरः ॥६॥
गौतमो गौतमो गीष्पो गणेशो गणनायकः ।
गिरः गणनतो नित्यं भातु भा-भारभूषितः ॥७॥
युधिष्ठिरं कर्मशत्रु-युधिस्थिरं स्थिरात्मकं ।
दधे धर्मार्थसंसिद्धं मानसे महित मुदा ॥८॥
भीमं महामुनिं भीमं पापारिन्नयकारणे ।
संसारासातशान्त्यर्थं दधे हृदि धृतोन्नतिं ॥९॥
अर्जुनस्य प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य जितात्मनः ।
स्मरामि स्मरमुक्तस्य स्मररूपस्य मुस्मृतेः ॥१०॥
नकुलो वै सदा देवैः सेवितः शुद्धशासनः ।
सहदेवो बली कौल्यमलनाशी विभाति च ॥११॥
भद्रबाहुर्महाभद्रो महाबाहुर्महातपाः ।
स जीयात् सकले येन श्रुतं ज्ञाने कलौ विदा ॥१२॥
विशाखो विश्रुता शाखा सुशाखो यस्य पातु मां ।
स भूतले मिलन्मौलिहस्तभूलोक-संस्तुतः ॥१३॥
कुन्दकुन्दो गणी येनोर्जयंतगिरिमस्तके ।
सोऽवताद्वादिता ब्राह्मी पाषाणघटिता कलौ ॥१४॥
समन्तभद्रो भद्रार्थो भातु भारतभूषणः ।
देवागमेन येनाऽत्र व्यक्तो देवागमः कृतः ॥१५॥
पूज्यपादः सदा पूज्य-पादः पूज्यैः पुनातु मां ।
व्याकरणार्णवो येन तीर्णो विस्तीर्णसद्गुणः ॥१६॥

अकलंकोऽकलंकः स कलौ कलयतु श्रुतं ।
पादेन ताडिता येन मायादेवी घटस्थिता ॥१७॥
जिनसेनो यतिर्जीयाज्जिनसेनं कृतं वरं ।
पुराणपुरुषाख्यार्थं पुराणं येन धीमता ॥१८॥
गुणभद्रभदन्तोऽत्र भगवान् भातु भूतले ।
पुराणादौ प्रकाशार्थं येन सूर्यायितं लघु ॥१९॥
तत्पुराणार्थमालोक्य कृत्वा सारस्वतं श्रुतम् ।
मानसे पाण्डवानां हि पुराणं भारतं ब्रुवे ॥२०॥

× × × ×

वीरो विश्वगुणाश्रितो गुणगणा वीरं श्रिता सिद्धये ।
वीरेणैव विधीयते व्रतचयो वीराय स्वस्त्यस्तु च ॥
वीराद्धर्मतत एव धर्मनिचयो वीरस्य सिद्धिर्वरा ।
वीरे याति जगत्त्रयं जितमदं संजायते निश्चितं ॥१५४॥

इति श्रीपाण्डवपुराणे महाभारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपाल-साहाय्यसापेक्षे श्रेणिकस्य जिनवन्दनोत्साहवर्णनं नाम प्रथमं पर्व ॥१॥

अन्तभाग :—

श्रीमूलसंघेऽजनि पद्मनन्दी तत्पट्टधारी सकलादिकीर्तिः ।
कीर्तिः कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्री सकला पवित्रा ॥१६७॥
भुवनकीर्तिरभूद्भुवनाधिपैर्भुवनभासनचारुमतिः स्तुतः ।
चरतपश्चरणोद्यतमानसो भवभयाद्विस्वगेट् क्षितिवत क्षमी ॥१६८॥
चिद्रूपवेत्ता चतुरश्चिरन्तनश्चिद्भूषणश्चर्चितपादपङ्कजः ।
सूरिश्च[illegible]न्द्रादिचयैश्चिनोतु वै चारित्रशुद्धिं खलु नः प्रसिद्धिदां ॥१६९॥
विजयकीर्तिर्यतिर्मुदितात्मको जितत्ता(?)ऽन्यमतः सुगतैः स्तुतः ।
अवतु जैनमतः सुमतो मतो नृपतिभिर्भवतो भवतो विभुः ॥१७०॥
पट्टे तस्य गुणाम्बुधिर्व्रतधरो धीमान् गरीयान् वरः

श्रीमच्छ्रीशुभचन्द्र एव विदितो वादीभसिंहो महान् ॥१७१॥
तेनेदं चरितं विचारसुकरं चाकारि चंचद्रुचा ।
पांडोः श्रीशुभसिद्धिमातजनकं सिद्ध्यै सुतानां सदा ॥१७२॥
चन्द्रनाथचरितं चरितार्थं पद्मनाभचरितं शुभचन्द्रं ।
मन्मथस्य महिमानमतंद्रो जीवकस्य चरितं च चकार ॥१७३॥
चन्दनायाः कथा येन दृब्धा नान्दीश्वरी तथा ।
आशाधरकृतार्चायाः वृत्तिः सद्वृत्तशालिनी ॥१७४॥
त्रिंशच्चतुर्विंशतिपूजनं यः सद्वृद्धसिद्धार्चनमाव्यधत्त ।
सारस्वतीयार्चनमत्र शुद्धं चिंतामणीयार्चनमुच्चरिष्णुः ॥१७५॥
श्रीकर्मदाहविधिबंधुरसिद्धसेवां नानागुणौघ-गणनाथसमर्च्चनं च ।
श्रीपार्श्वनाथवरकाव्यसुपंजिकां च यः संचकार शुभचन्द्रयतीन्द्रचन्द्रः१७६
उद्यापनमदीपिष्ट पल्योपमविधेश्च यः ।
चारित्रशुद्धितपसश्च चतुस्त्रिंशदात्मनः ॥१७७॥
संशयवदनविदारणमपशब्दसुखंडनं परं तर्कं ।
सतत्त्वनिर्णयं च वरस्वरूपसंबोधनीं वृत्तिं ॥१७८॥
अध्यात्मपद्मवृत्तिं सर्वार्थापूर्वसर्वतोभद्रम ।
योऽकृत सद्व्याकरणं चिन्तामणिनामधेयं च ॥१७९॥
कृता येनाऽङ्गप्रज्ञप्तिः सर्वाङ्गार्थ-प्ररूपिका ।
स्तोत्राणि च पवित्राणि षड्वादाः श्रीजिनेशिनां ॥१८०॥
तेन श्रीशुभचन्द्रदेवविदुषा सत्पाण्डवानां परं
दीप्यद्वंशविभूषणं शुभभरभ्राजिष्णुशोभाकरं ।
शुभद्वारतनाम निर्मलगुणं सच्छुब्दचिन्तामणिं
पुण्यस्पुण्यपुराणमत्र सुकरं चाकारि प्रीत्या महत् ॥१८१॥
श्रीपालवर्णिना येनाकारि शास्त्रार्थसंग्रहे ।
साहाय्यं स चिरं जीयाद्वरविद्या-विभूषणः ॥१८२॥

× × × ×

श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहते रम्याष्टसंख्ये शते
रम्येऽष्टाधिकवत्सरे(१६०८) सुखकरे भाद्रे द्वितीया-तिथौ ।
श्रीमद्वागवरनीवृतीडमतुले श्रीशाकवाटे पुरे
श्रीमच्छ्रीपुरुधाम्नि च विरचितं स्थेयात्पुराणं चिरं ॥१८६॥

इति श्रीपांडवपुराणे भारतनाम्नि भट्टारक-श्रीशुभचन्द्र-प्रणीते ब्रह्म-श्रीपालसाहाय्यसापेक्षे पांडवोपसर्गसहन-केवलोत्पत्ति-मुक्ति-सर्वार्थसिद्धिगमन-श्रीनेमिनिर्वाणगमन-वर्णनं नाम पंचविंशतितमं पर्व ॥२५॥

३७. जीवंधरचरित्र (भ० शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

श्रीसन्मतिः सतां कुर्यात्समीहितफलं परं ।
येनाप्येत महामुक्तराजस्य चरवैभवः ॥१॥
(इसके बाद सिद्धादि परमेष्ठि-स्मरणके ४ पद्य हैं ।)
गौतमं धर्मपारीणं पूज्यपादं प्रबोधकं ।
समंतभद्रमानंदमकलंकं गुणाकरं ॥६॥
जिनसेनं शुभासीनं ज्ञानभूषं परं गुरुं ।
शुभचंद्रं प्रणम्योच्चैर्वक्ष्ये श्रीजीवकोद्भवं ॥७॥
इति श्रीजीवंधरस्वामिचरिते काष्ठांगार-वर्णनो नाम प्रथमोल्लासः ।

अन्तभाग :—

ये(ते)षां धर्मकथासुयोगसुविधिज्ञानप्रमोदागमा-
चार-श्रीशुभचंद्र एष भविनां संसारतः संभवे ।
मार्गादर्शनकोविदं हृतदितं तामस्यभारं सदा
छिंद्याद्वाक्किरणैः कथंचिदतुलैः सर्वत्र सुव्यापिभिः ॥८५॥
श्रीमूलसंघो यतिमुख्यसेव्यः श्रीभारतीगच्छविशेषशोभः ।
मिथ्यामतध्वान्तविनाशदक्षो जीयाच्चिरं श्रीशुभचन्द्रभासी ॥८६॥

श्रीमद्विक्रमभूपतेर्वसुहतद्वैतेशते[१६००] समह[७](के?)
केंदै[४]र्न्यूनतरे समे (१६०३?)शुभतरे मासे वरेण्ये शुचौ ।
वारे गीष्पतिके त्रयोदशतिथौ सन्नूतने पत्तने
श्रीचंद्रप्रभधाम्नि वै विरचितं चेदं मया तोषतः ॥८७॥
आचंद्रार्कं चिरं जीयाच्छुभचंद्रेण भाषितं ।
चरितं जीवकस्याऽत्र स्वामिनः शुभकारणं ॥८८॥

इति श्रीमुमुक्षु-शुभचंद्रविरचिते श्रीमज्जीवंधरस्वामिचरिते जीवंधर-स्वामिमोक्ष-गमनवर्णनं नाम त्रयोदशो लंभः ॥१३॥

३८. चंदनाचरित (भ० शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

चकार करुणाक्रांतः कृतिं कर्मठकर्मणः ।
यस्तं केवलिनं कामं चेक्रियेहं कृतार्थकं ॥१॥
सिद्धध्यानाः सदासिद्धाः सिद्धिवृद्धिसमृद्धयः ।
एधंते स्म विशुद्धा नः शुद्धिं ददतु धर्मिणां ॥२॥

अन्तभाग :—

जयति जितविपक्षः पालितानेकपक्षः कृतसकलसुशिक्षः प्रास्तदीप्यत्सुदक्षः ।
विहितसमितिरक्षो मूलसंघाग्र्यलक्षः जिनपदकरपक्षो ध्वस्तपापाकरेक्षः ॥९३॥
स्वगुरुविजयकीर्तिः प्रस्फुरत्सोमकीर्ति-
र्भव्यजलधिसुतृप्तिः शास्त्रा(स्त्रवार)ब्धिपूर्तिः ।
जिनपतिमतवर्तिर्विश्वदुःखापहर्तिः
जयतु जनसुभूर्तिर्नष्टकष्टोत्तरार्तिः ॥९४॥
शास्त्राण्यनेकान्यवगाह्य कृत्वा पुराणसल्लक्षणकानि भूरि ।
सच्चंदनाचारुचरित्रमेतच्चकार च श्रीशुभचन्द्रदेवः ॥९५॥
श्रीज्ञानभूषणपदे विजयादिकीर्तिस्तत्पादपंकजमधुव्रत एव सेव्यः ।
श्रीमूलसंघपदभृत् शुभचन्द्रदेवः शीलेशशीलमहिमानमिमं चकार ॥९६॥

अकृत-सुकृत-कर्ता सर्व्व-सावद्य-हर्ता
शम-दम-यम-हर्ता(भर्ता) शोभचन्द्रः सुभर्ता ।
चरितममलवर्ता चंदनायाश्च पर्ता
जनन-जलधिभर्ता कर्मकामारिशर्ता ॥६७॥
शीलं सर्वगुणान्वितं वरगुणाः शीलं बुधाः कुर्व्वते
शीलेनैव समाप्यते परगुणः स्वस्त्यस्तुशीलाय वै ।
शीलात्सद्व्रतसंचयः सममयाच्छीलस्य सर्वे गुणाः
शीले चित्तमहं दधे धृतिधरे हे शील मां पाहि वै ॥६८॥
श्रीचंदनायाश्चरितं पवित्रं ये चिन्वते चेतसि चित्स्यभावाः ।
ईक्षंत एवं क्षणतः समग्रं मोक्षं तके क्षीणविपक्षपक्षाः ॥२६६॥
वाग्वरे वाग्वरे देशे वाग्वरैर्विदिते क्षितौ ।
चंदनाचरितं चक्रे शुभचंद्रो गिरौपुरे ॥२००॥
शीलतो जयति चंदनबालिकेयं वीरस्य संसदि समाप जयं जयंती ।
र्म्मारिपक्षमखिलं च समेष्यतीदं मोक्षं परं परमका दशकांगवेत्री ॥२०१॥

इति श्रीशीलविलासे चंदनाचरिते भट्टारक-श्रीशुभचंद्र-विरचिते दनार्यकादिभवान्तरवर्णनं नाम पंचमपर्व ॥ इति चंदनाचरित्रं संपूर्णम्

३६. प्राकृतलक्षण-सटीक (भ० शुभचन्द्र)

आदिभाग:—

श्रीज्ञानभूषणं देवं परमात्मानमव्ययं ।
प्रणम्य बालसबुद्धयै वक्ष्ये प्राकृतलक्षणं ॥१॥

अन्तभाग :—

यदुक्तं सूत्रतन्त्रेऽस्मिन् शब्दचिन्तामणौ स्फुटं ।
विचार्य बुद्धिसंसिद्धयै शुभचन्द्रेण सूरिणा ॥१॥
श्रीमूलसंघे शिवसाधुसंघे श्रीकुन्दकुन्दान्वयपद्मसूर्य्यः ।
निरस्तमोहः सकलादिकीर्तिर्जीयात्सदा श्रीभुवनादिकीर्त्तिः॥२॥

तत्पट्टपद्मे रविवद्विभाति विभासुरो भोगभवारिभेदी ।
श्रीज्ञानभूषो नरलोकलोक्यो लोकाग्रलोकोत्तमलोकनेच्छुः ॥३॥
विजयकीर्तिर्यतिर्जगत्सु गुरुर्भरिमागीर्मदितांगिगणो गणी ।
गिरति स्म गुणिनो गतयेऽग्रणीः सुगुरुणां रविगुः समगुः समः॥४॥
षट्तर्कचंचुचरणोद्धतवादिमत्तमातङ्गकुम्भमदभेदनपंचतुण्डः ।
श्रीमच्छुभेन्दुगणपो गुणगेय(?)कीर्तिश्चिन्तामणिं विशदशब्दमयं चकार॥५॥
शुभचन्द्रमुनीन्द्रेण लक्षणाब्धिं विगाह्य वै ।
प्राकृतं लक्षणं चक्रे शब्दचिन्तामणौ स्फुटं ॥६॥
शब्दचिन्तामणिं धीमान् योऽध्येति धृतिसिद्धये ।
प्राकृतानां सुशब्दानां पारं याति सुनिश्चितं ॥७॥
प्राकृतं लक्षणं रम्यं शुभचन्द्रेण भाषितं ।
योऽध्येति वै सुशब्दार्थधनराजो भवेन्नरः ॥८॥

इति मुमुक्षु-भट्टारक-श्रीज्ञानभूषणपट्टोदयाचलद्युमणि-सकलतार्किकचूडामणि-भट्टारकश्रीविजयकीर्त्तिपट्टप्रकटत्रैविद्यविद्याविशदभट्टारकश्रीशुभचंद्रविरचितायां स्वोपज्ञशब्दचिन्तामणिवृत्तौ तृतीयस्याऽध्यायस्य चतुर्थपादः समाप्तः।

समाप्तेदं प्राकृतव्याकरणम् ॥

४०. अध्यात्मतरङ्गिणी (भ० शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

जयतु जितविपक्षः पालिताशेषशिष्यो विदितनिजस्वतत्त्वश्चोदितानेकसत्त्वः ।
अमृतविधुयतीशः कुन्दकुन्दो गणेशः श्रुतसुजिनविवादः स्याद्विवादाधिवादः॥१

अन्तभाग :—

सम्यक्संसारवल्लीवलय-विदलने मत्तमातङ्गमानी
पापातापेभकुम्भोद्गमन्करकुण्ठकण्ठीरवारिः
विद्वद्विद्याविनोदाकलितमतिरहो मोहतामस्य सार्थाः(?)
चिद्रूपोद्भासिचेता विदितशुभयतिर्ज्ञानभूषस्तु भूयात् ॥२१॥

विजयकीर्तियतिर्जगतां गुरुर्विधृतधर्मधुरोद्वृतिधारकः ।
जयतु शासन-भासन-भास्तीमयमतिर्दलितापरवादिकः ॥३॥
शिष्यस्तस्य विशिष्टशास्त्रविशदः संसारभीताशयो
भावाभावविवेकवारिधितरस्याद्वादविद्यानिधिः ।
टीकां नाटकपद्यजां वरगुणाध्यात्मादिस्रोतस्विनीं
श्रीमच्छीशुभचन्द्र एष विधिवत्संचर्करीति स्म यै ॥४॥
त्रिभुवनवरकीर्तेर्जातरूपात्तमूर्तेः शमदमसमयपूर्तेराग्रहान्नाटकस्य ।
विशदविभववृत्तो वृत्तिमाविश्चकार गतनयशुभचन्द्रो ध्यानसिद्ध्यर्थमेव ॥५॥
विक्रमवरभूपालात्पंचत्रिंशते त्रिसप्ततिव्यधिके(१५७३) ।
वर्षेऽब्याश्विनमासे शुक्ले पक्षेऽथ पंचमी-दिवसे ॥६॥
रचितेयं वरटीका नाटकपद्यस्य पद्ययुक्तस्य ।
शुभचन्द्रेण सुजयतादिद्यासबलं(?) न पद्मांकात् ॥७॥
.....पातनिकाभिश्च भिन्नभिन्नाभिः ।
जीयादाचन्द्रार्कं स्वाऽध्यात्मतरङ्गिणी टीका ॥८॥

इति कुमतद्रुममूलोन्मूलन-महानिर्झरणीश्रीमदध्यात्मतरंगिणी टीका समाप्ता । समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।

४१. कर्णामृतपुराण (केशवसेन सूरि)

आदिभाग :—

लीलावासमलक्षं च श्रीपतिं परमेश्वरं ।
सुलक्षं ज्ञानिनां वंदे पुरुं पावन-शासनं ॥१॥
मातरं जगतां ज्ञान-विधान-परमोदयां ।
ध्यायामि मनसि प्रायो गिरं श्रीशर्महेतवे ॥२॥
अज्ञानतिमिरं येन दारितं ज्ञान-दीप्तिभिः ।
मित्रेणेव सदा तस्मै गुरुवे स्यान्नमस्कृतिः ॥३॥

(आगे सज्जन, खल, चक्का, श्रोताके लक्षण १० पद्योमें है)

दानिनां चक्रिणां तीर्थकृतां शीलवतां सतो ।
राम-कृष्ण-मनोज्ञानां कथा तच्छास्त्रमुच्यते ॥१४॥
अमृताख्यपुराणेऽस्मिन कर्णसाकल्यमुच्यते ।
मरीचिभवप्राचुर्यांकुरः सम्यक्त्वसत्फलं ॥१५॥
बहुनां प्रेमयुक्तानां दानशीलवतां व्रतं ।
कामदेवचरित्रं श्रीश्रीपालकथानकं ॥१६॥
तपःपूजा-सुभावानां कुभावानां कथानकं ।
शूराणां विरहाक्रान्तदेहिनो वृत्तमित्यलं ॥१७॥
[त्रिभिः] कुलकं । इति पुराणद्धारं ।
अगाधोऽयं पुराणब्धिर्मतिर्मेऽल्पा प्रवर्तते ।
तथापि तर्तुमिच्छामि गगनं पक्षिराडिव ॥१८॥
सिद्धोक्त-नीतिसारादि-पुराणोद्धृतसन्मतिं ।
विधास्यामि प्रसन्नार्थं ग्रंथं संदर्भगर्भितं ॥१९॥
खंखाब्धिरसबाणेन्दुश्लोकसंख्या(१५६३००) प्रसूत्रिता ।
नीतिसारपुराणस्य सिद्धसेनादिसूरिभिः ॥२०॥
पूर्वाचार्योद्धृतं तत्त्वं निरीक्ष्य परमात्मनः ।
प्रसादेन सदानन्दं करिष्यामि मनोज्ञ(ग)तं ॥२१॥

× × × ×

इति श्रीकर्णामृतपुराणे धर्मशास्त्रे तत्त्वोद्धारे म० श्रीरत्नभूषणाम्नायालंकार-अह्म श्रीमंगलाग्रज-श्रीपूरमल्लापति-स्थविराचार्य-श्रीकेशवसेन-विरचिते ब्रह्मवर्द्धमानसहाय्यसापेक्षे श्रीभगवदागमनं नाम प्रथमः स्कन्धः ॥१॥

अन्तभाग :—

काष्ठासंघे गरिष्ठे प्रबलमुनियुते रामसेनो भदन्तः
श्रीमानासीत् क्रमेणेन्दुकविशदयशा रत्नभूषाभिधानः ।
तत्पादांभोजभृंगो विमलतरमतिः श्रीजयाद्यन्तकीर्ति-
रास्ते विद्वज्जनानां प्रथम इह जिनाराधनैकस्वभावः ॥८८॥

वाग्वरे जनपदे च वीरिका-कान्त-हर्ष इति नाम तत्सुतः ।
कृष्णदासमुनिपो विराजते प्रेमपूरपरमो दयान्तरः ॥८९॥
नीतिसंग्रहपुराणसागरादुद्धृतोऽखिलहिताय मेऽन्यं(?) ।
धर्मशास्त्रमणिरुत्तमोऽवहाः श्राव्य एव नितरां मनस्विभिः ॥९०॥
केवलं सुमनसा मया कृतो ग्रन्थ एष परमार्थबुद्धितः ।
श्रीपुराणगुरुप-प्रसादतः कृष्णदासकविवेधसा शुभः ॥९१॥
मालवे जनपदे मनोरमे भाति भूतिलकभागा पुरी ।
स्वर्गपस्य भ्रंशपूरिव पावना परमपावनैर्नरः ॥९२॥
तत्र पार्श्वजिनालये शुभे माघमासि उड्डनविक्रमारे(?) ।
सप्तिथौ प्रतिपदि प्रभासिनाऽकार्यंयः(?) च कविता यथागमः ॥९३॥
शोधयंतु निपुणा इदं सदा कर्णदेवसुपुराणमादरात् ।
ये विरोधरहिता विचारिणः सन्तु तेल(?) हितकारणाम् ॥९४॥
लेलिहान-वसु-षड्-विधुप्रमे(१६८८) वत्सरे विविधभावसंयुतः ।
एष एव रचितो हिताय मे ग्रंथ आत्मन इहाखिलांगिनां ॥९५॥
आकर्णयन्ति खलु ये सुनरा नतांगा श्रीकर्णभूपतिपुराणमिदं पवित्रं ।
धुवं लभंत इह ते परमां रमां च कृष्णेन चन्द्रवदनेन निरूपितार्थं ॥९६॥
श्लोकसंख्या समाख्याता खखाम्बरचतुःप्रमा(४००) ।
सदोदयैः सतां श्रेष्ठैः केशवाद्यन्तसूरिभिः ॥९७॥
आगंगासागरं यस्य दक्षिणे गूर्जरे तथा ।
मालवे मेदपाटे च यशो जयति सत्कवेः॥९८॥
दिशां·····शिबिकाधिरूढो भट्टारकस्थापकसूरिमंत्री ।
भट्टारकाचार्य इहास्ति कृष्णके नः पृथिव्यां यत ईशपूज्यः ॥९९॥
नृपैर्भट्टारकाचार्यपदं दत्तं च दक्षिणे ।
यस्य स कृष्णसेनाख्यः कविनाथोजयस्परं ॥१००॥
इति श्रीकर्णामृतपुराणे धर्मशास्त्रे म० श्रीरत्नभूषणाम्नायालंकार-वृषभ-जिनचरण-परिशीलन-लब्धप्रताप-ब्रह्ममंगलाग्रज-राजराजेश्वरपूरमल्लेष्ट-

ब्रह्मचारीश्वर-स्थविराचार्य-श्रीकेशवसेन-कृष्णजिष्णु-विरचिते ब्रह्मवर्धमान-साहाय्यसापेक्षे श्रीकर्णदेवातिशय-निर्वाण-वर्णनं नाम चतुर्विंशतितमः स्कन्धः समाप्तः ॥२४॥

४२. सप्तव्यसनकथासमुच्चय (भ० सोमकीर्ति)

आदिभाग :—

प्रणम्य श्रीजिनान् सिद्धान् आचार्यान् पाठकान् यतीन्।
सर्वद्वन्दविनिर्मुक्तान् सर्वकामार्थदायकान् ॥१॥
ततोपि शारदादेवीं कल्याणावलिवल्लरीं।
जिनेन्द्रवदनोद्भूतां नत्वा भक्त्या प्रमोदितः ॥२॥
गुरूणां चरणं(णौ) नत्वा वक्ष्ये बुद्ध्यानुसारतः।
सप्तानां व्यसनानां हि कथां भव्यहिताय वै ॥३॥

अन्तभाग :—

नन्दीतटाके विदिते हि संघे श्रीरामसेनास्य पद-प्रसादात्।
विनिर्मितो मंदधिया ममायं विस्तारणीयो भुवि साधुसंघैः ॥६९॥
यो वा पठति विमृश्यति भव्योपि [सु]भावनायुक्तः।
लभते स सौख्यमनिशं ग्रन्थं [श्री]सोमकीर्तिना रचितं ॥७०॥
रसनयनसमेते बाणयुक्तेन चन्द्रे(१५२६)
गतवति सति नूनं विक्रमस्यैव काले।
प्रतिपदि धवलायां माघमासस्य सोमे
हरिभदिनमनोज्ञे निर्मितो ग्रन्थ एषः ॥७१॥
सहस्रद्वयसंख्योऽयं सप्तषष्ठिसमन्वितः (२०६७)।
सप्तैव व्यसनाद्यश्च कथासमुच्चयो ततः ॥७२॥
यावत्सुदर्शनो मेरुर्यावच्च सागरा धरा।
तावन्नन्दत्वयं लोके ग्रन्थो भव्यजनाश्रितः ॥७३॥

इतिश्री इत्यार्षे भट्टारक-श्रीधर्मसेनाभः-श्रीभीमसेनदेवशिष्य-आचार्य-

सोमकीर्ति-विरचिते सप्तव्यसनकथासमुच्चये परस्त्रीव्यसनफलवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः । इति सप्तव्यसनचरित्रकथा संपूर्णा ।

४३. प्रद्युम्नचरित्र (भ० सोमकीर्ति)

आदिभाग :—

श्रीमंतं सन्मतिं नत्वा नेमिनाथं जिनेश्वरं ।
विश्वजेताऽपि मदनो बाधितुं नो शशाक यं ॥१॥
वर्द्धमानं जिनं नत्वा वर्द्धमानं सतामिह ।
यद्रूपदर्शनाज्जातस्सहस्रनयनो हरिः ॥२॥
प्रणम्य भारतीं देवीं जिनेन्द्रवदनोद्भवां ।
कृष्णपुत्रस्य चारित्रं वक्ष्ये सूत्रानुसारतः ॥३॥
यदुक्तं चात्र विद्वद्भिर्महासेनादिसूरिभिः ।
तत्कथं शक्यते नूनं मया बालेन भाषितुं ॥४॥
तथापि तत्क्रमांभोजप्रणामार्जितपुण्यतः ।
श्रीप्रद्युम्नाभिधं ग्रन्थं प्रवक्तुं मे श्रमो न हि ॥५॥

× + × ×

जिनसेनादिभिः पूज्यैराचार्यैर्यन्निरूपितं ।
करोमि शक्तिहीनोऽहं तत्पादाम्बुजसेवनात् ॥१२॥

अन्तभाग :—

नन्दीतटाख्ये विमले सुगच्छे श्रीरामसेनो गुणवारिराशिः ।
बभूव तस्यान्वयशोभकारी श्रीरत्नकीर्तिर्दुरितापहारी ॥१६६॥
श्रीलक्ष्मिसेनोऽत्र ततो बभूव शीलालयः सर्वगुणैरुपेतः ।
तस्यैव पट्टोद्धरणैकधीरः श्रीभीमसेनः प्रगुणः प्रवीरः ॥१६७॥
श्रीभीमसेनस्य पदप्रसादात् सोमादिसत्कीर्तियुतेन भूमौ(लोके) ।
रम्यं चरित्रं विततं स्वभक्त्या संशोध्य भव्यैः पठनीयमेतत् ॥१६८॥

संवत्सरे सत्तिथिसंज्ञके वै वर्षेऽत्र त्रिशैकयुते (१५३१) पवित्रे ।
विनिर्मितं पौषसुदेश्च(?)तस्यां त्रयोदशी या बुधवारयुक्ता ॥१६८॥
(आगे ३ पद्य आशीर्वादादिके हैं)

इति श्रीप्रद्युम्नचरित्रे श्रीसोमकीर्त्याचार्य-विरचिते श्रीप्रद्युम्न शंबर-अनुरुद्धादिनिर्वाणगमनो नाम षोडशः सर्गः समाप्तः ॥१६॥ सर्वसंघस्य-कल्याणमस्तु । ग्रन्थाग्रंथ ४८५० ॥

[नोट—आराके जैनसिद्धान्तभवनमें इस ग्रन्थकी जो प्रति संवत् १७६६ ज्येष्ठ शुक्ल ६ की लिखी हुई सन् १६२० में नं० १४७ पर दर्ज है उसके अन्तमें सुर्खीसे यह एक लाइन लिखी हुई है :—
"संवत् १७६५ वर्षे फाल्गुणमासे सुकलपक्षे द्वादसी दिने नादर-साह बादसाहनै दिल्लीमै कतलाम कीया मनुष्योंका प्रहर तीन ३"]

४४. सुभौम-चक्रि-चरित्र (भ० रत्नचन्द्र)

आदिभाग :—

श्रीमंतं त्रिजगन्नाथं प्राप्तानंतचतुष्टयं ।
सरताऽरं जिनाधीशं ससारोत्तारकारणं ॥१॥
(आगे शेष तीर्थंकरों तथा सिद्धादिके स्मरणके ६ पद्य हैं)
वन्दे वृषभसेनादीन् गौतमान्तान् गणेशिनः ।
दीप्तसप्तर्द्धिदीप्राङ्गांश्चतुर्थावगमत्विषः ॥८॥
गुरवः कुन्दकुन्दाद्या गुणचन्द्रा गुणाकराः ।
ध्यानोष्मप्रहतोग्राघशैत्यास्ते सन्तु सिद्धये ॥९॥
श्रीरत्नकीर्तये नित्यं नमः श्रीयशकीर्तये ।
नमः श्रीगुणचन्द्राय जिनपूर्णेन्दवे नमः ॥१०॥
कृत्वेति मंगलं भव्यं क्रियमाणार्थसिद्धिदं ।
समुद्धृत्य पुराणाब्धेश्चरित्रं रच्यते मया ॥११॥

अरतीर्थंकृतस्तीर्थे वर्तमानेऽजनिष्ट तत् ।
सत्सपारशुरामीयं सौभौमं चरितं वरम् ॥१२॥

अन्तभाग :—

अथासीन्मूलसंघेस्मिन् गच्छेसारस्वताभिधे ।
मुनिश्रीकुन्दकुन्दाख्यः श्रीसीमंधरतीर्थगः ॥१॥
तस्यान्वये विदां मान्यः पद्मनन्दी यतीश्वरः ।
भव्यांगि पद्मनंदीव समभूत्तपसां निधिः ॥२॥
भट्टारकवरेण्योऽस्य पट्टे सकलकीर्तिवाक्(भाक् ?) ।
धर्म्मः प्रकाशितो येन सजीयाज्जगदीश्वरः ॥३॥
गुरुर्भुवनकीर्त्याख्यस्तत्पट्टोदयभानुमान् ।
जातवान् जनितानन्दो वनवासी महातपः ॥४॥
गुरुभ्राता तदीयोऽभूद्रत्नकीर्तिर्गणाऽग्रणीः ।
स्थविरो मंडलाचार्य्यपदभाग्धर्म्मकार्यकृत् ॥५॥
तत्पट्टे मंडलाचार्यो यशःकीर्तिर्यशोनिधि-
रजायताऽऽगमाध्यात्मपुराणार्थविचक्षणः ॥६॥
वादित्वस्य परं सीमा गमकस्य परं पदं ।
कवित्वादेः परं धाम गुणचन्द्रस्तदन्वये ॥७॥
जिनचन्द्रो जयत्वत्र बलात्कारगणाग्रणी-
स्तत्पट्टे सर्वथैकान्तनिर्जिताशेषवाक्सूरिः(वादिनः?) ॥८॥
तत्पट्टे सकलचन्द्रोऽभूत्तदीये विपुलोदये ।
सैद्धान्तिकः सतां वंद्यः सूरिवर्यो विदाम्बरः ॥९॥
तस्य पट्टे वरीवर्ति भट्टारकपदस्थितः ।
रत्नचन्द्रो विदांमान्यः स्याद्वादसकलार्थवित् ॥१०॥
सम्वत्षोडशाख्याते व्यशीतिवत्सरांकिते(१६८३) ।
मासे भाद्रपदे श्वेतपंचम्यां गुरुवासके ॥११॥

पत्तने पाटलीपुत्रे मगधांतःप्रवर्तिनी ।
स्वर्धुनीतटगे पार्श्वे सुदर्शनालयमाश्रिते ॥१२॥
सलेमसाहिसद्राज्ये सर्वम्लेच्छाधिपाधिपे ।
रत्नाख्यत्र धराचक्रं निजिताखिलविद्विषि ॥१३॥
श्रीमत्प्रभाचन्द्रगणीन्द्रपट्टे भट्टारकश्रीमुनिचन्द्रकीर्तेः ।
पट्टांबरोद्भासनभानुमाली भट्टारकोऽभूद्विजेन्द्रकीर्तिः ॥१४॥
तच्छिष्यदाम्नायकौ हि सुभगौ खण्डेलवालान्वयौ ।
श्रीतेजपाल-हेमनामपरमौ धनराज-रेखांगजौ ।
संप्रीत्यौ गुरुभक्तिभाजनपरौ सद्दर्शनालंकृतौ ।
चक्राते सुभौमचक्रिचरिते साहाय्यसाद्योपतां ॥१५॥
सौमण्यगोत्रे तेजाख्यो बुधादिपदसंयुतः ।
पट्टणिगोत्रजो हेमपट्टणे च तदन्वये ।
सम्मेदाचलयात्रायै रत्नचन्द्रात्समागताः ।
जगन्महन्नात्मजाचार्य्यजयकीर्तिभिरन्वक्तः ॥१६॥
श्रीमत्कमलकीर्त्याह्वैः सूरिभिश्च सुवर्णिभिः ।
कल्याण-कचराख्यान-कान्हजी-भोगिदासकैः ॥१७॥
श्रीमद्हुम्बडजातीय-महीअत्तवणिक्पतिः ।
चम्पाकुक्षिसमुत्पन्नो रत्नचन्द्रो व्यरीरचत् ॥१८(त्रिभिः कुलकं)
श्रीमत्खंडेलवालेषु अग्रवालेषु दानिषु ।
जैसवालेषु सद्भक्तिकुर्वत्सु श्रावकेषु च ॥१९॥
धनराड्-केसि-पुत्रस्य तेजपालविपश्चितः ।
साहाय्याखिलसामग्रीसापेक्ष्य स्वेप्सितप्रदं ॥२०॥
श्रीमत्खंडेलवालाख्यो हीराख्यभ्रातृजान्वितः ।
हमीर देपतिहेमराजः कारितवानिदं चरितं ॥२१॥(युग्मं)
आद्यवाग्वरदेशस्थ सागपत्तन-वासिनः ।
हेमाख्य-श्रेष्ठिनः पुत्रो जयतान्मङ्गलाभिधः ॥२२॥

बहुब्राणकृष्णदासस्य क्षत्रियान्वयसन्मणेः ।
महौजसौ कुमारौ स्त राजसिंहऽमराऽभिधौ ॥२३॥
भीमाह्वाननात्तत्राकार्यं श्रीहेमकीर्तयः ।
यं पट्टे स्थापयामासूरत्नेन्दुं संघसादरात् ॥२४॥
तेनेदं चरितं वर्णिजेसराज-प्रसादतः ।
वादिचन्द्रानुभावाच्चाऽऽचन्द्रार्कं जयताच्चिरं ॥२५॥

एकोऽपि सिंहसदृशस्सकलावनीशो हत्वा पितुर्वधकृतो नरकं प्रपद्य ।
दुःखं प्रभुज्य बहुधा भरतेऽत्र तस्मान्निर्गत्य तीर्थपदभाग्भविताऽस्तु सिद्धयै २६

इति श्रीसुभौमचरित्रे सूरिश्रीसकलचन्द्रानुचर-भट्टारकश्रीरतनचन्द्र-विरचिते विबुधश्रीतेजपालसाहाय्यसापेक्ष्ये श्रीखण्डेलवालान्वयपट्टणिगोत्राम्बरादित्य श्रेष्ठिश्रीहिमराजनामांकिते सुभौमनरकप्राप्तिवर्णनो नाम सप्तमसर्गः ।

४५. होलीरेणुकाचरित्र (पं० जिनदास)

आदिभाग :—

श्रीसर्वज्ञं नाभिसूनुं जिनेन्द्रं भक्त्या वंदे मोहवल्ली-गजेन्द्रं ।
स्वात्मज्ञानैः सद्वशीभूतखेन्द्रं लक्ष्म्या युक्तं कामपद्मद्विजेन्द्रं ॥१॥
सद्धर्माणां कल्पवल्लीं कवीनां मूर्यां नत्वा शारदां पारदां च ।
संसाराब्धेर्भव्यलोकानुकूलां नित्यां वंद्यां दायिनीं सन्मतेश्च ॥२॥
सर्वैर्देवैः संस्तुतां चेन्द्रमुख्यैर्नागेन्द्राद्यैः संनुतां पूजितां च ।
मर्त्यैर्लोके चक्रिमुख्यैः किमुक्तं प्राज्ञेनार्यां अर्चयाऽगोचरां च ॥३॥
सत्याचारान् गौतमादीन् गुरूंश्च सद्धर्माणां मंगलानां च दातॄन् ।
वन्दे होलीपर्वं धूलेश्च पर्वं सम्यग्दृष्टेर्निर्मलत्वाय स्वस्य ॥४॥

× × × ×

ललितकीर्तिमुनीश्वर-नोदितस्तदपि सच्चरितं रचयाम्यहम् ।
न हि कथं समुदेति कलंकयुक् शशधरो विमले गगनाङ्गणे ॥७॥

अन्तभाग :—

पूर्वं हरपतिर्नाम्ना लब्ध-पद्मावती-वरः ।
पेरोसाहिनरेन्द्रास-सत्पंडितपदोऽप्यभूत् ॥२६॥
पद्माऽभिधः पद्मविशालनेत्रः तदीयवंशांबरभानुरासीत् ।
येन प्रदत्तं बहुधा जनेभ्यो दानं सदानेकगुणालयेन ॥३०॥
श्यामसाहिनरेन्द्राच्च येनासा बहुमान्यता ।
साकुंभरीपुरे रम्यं कारितं जिनमन्दिरं ॥३१॥
आज्ञा यस्य न लोपिता क्षितितले कैश्चिन्नरेन्द्रैरपि
दुष्टव्याधिगजेन्द्रपंचवदनो मिथ्यात्वविध्वंसकः ।
नित्यं यः कृतवान् जिनेश्वरमहाकल्याणकानां विधिं
सत्पाणिडत्यपदस्थितश्चतुरताहंसीसरो भासुरः ॥३२॥
तत्पुत्रो बिभ्रनामाभूत् प्रसिद्धो भुवि वैद्यराट् ।
नसीरसाहिभूपाल-लब्धोत्कर्षो विशालधीः ॥३३॥
माननीयो नरेन्द्राणां भूषतिर्वणिजामिव ।
दान-पूजाद्वितीयश्च सर्वविद्याविदांवरः ॥३४॥
अयं चिरं स्थिरीभूय गृहे वैभवसयुते ।
पश्चाद्धि व्रतिको नूनं समभूत्कर्महानये ॥३५॥
द्वितीयपुत्रोपि सुहृज्जनाख्यो विवेकवान्वादिगजेन्द्रसिंहः ।
आसीत्सदासर्वजनोपकारी खानिः सुखानां जिनधर्मचारी ॥३६॥
भट्टारक-श्रीजिनचन्द्रपट्टे भट्टारकोऽयं समभूद्गुणाढ्यः ।
प्रभेन्दुसंज्ञो हि महाप्रभावः त्यक्त्वा विभूतिं नृपराजसाम्यां ॥३७॥
बिभ्राभिधस्य तनयो धर्मदासाह्वयोप्यभूत् ।
अभिमानहिरण्याद्रिर्वादिनक्षत्रभास्करः ॥३८॥
विवेकिनो वै महमूदसाहि-नृपेण दत्तो बहुमानता हि ।
अस्यापि सद्वैद्यशिरोमणेश्च पद्मावतीदत्तवरस्य नित्यं ॥३९॥

अयं विख्यातकीर्तिश्च रूपनिर्जितमन्मथः ।
सर्वलोकोपकारी च दयालुर्बुद्धिसागरः ॥४०॥
यत्समो दृश्यते नैव कोप्यन्यः पृथिवीतले ।
महाभाग्यश्च सद्वैद्यो बहुना भाषितेन किं ॥४१॥
धर्मश्रीरिति नामतोऽस्य वनिता देवादि-पूजा-रता ।
सौभाग्यादि-गुणान्विताऽतिविमला विख्यातकीर्तिः खलु ।
आसीत्सर्वहिता सुवाक्यकथका दानाऽद्वितीया परा
सम्यग्दृष्टियुता प्रफुल्लवदना दीनोपकारान्विता ॥४२॥
विवेकसत्क्षेत्रस्य परा सीमेव याऽभवत् ।
रोगसंतापितानां च शरदश्चन्द्रिकेव हि ॥४३॥
रेग्वानामास्ति पुत्रो वरगुणनिलयो ह्येतयोः सत्प्रतापो
वैद्याधीशः प्रसिद्धो विविधजननुतो धैर्यमेरुः सदैव ।
भोगाढ्यो बुद्धिसिंधुः शशधरवदनः स्वर्णकांतिः सभाहः
सद्विद्यालंकृतांगो विविधसुखनिधिः भाग्यवांश्चोपकारी ॥४४॥
सन्मानितो रणस्तंभे दुर्गेऽयं बहुसंपदः ।
शेरसाहिनरेन्द्रेण गांभीर्यगुणसागरः ॥४५॥
माननीयो नरेंद्राणां बहूनां वणिजां तथा ।
साहसी चास्त्यसौ नूनमहंकारसुरालयः ॥४६॥
यस्य हंतु न मर्यादा क्षमः कोऽपि न दृश्यते ।
नरः प्रियतमस्याऽपि सर्वेषां च विवेकिनां ॥४७॥
सौन्दर्य-जितकन्दर्पः सुहृद्रूजदिवाकरः ।
योऽस्ति दुर्जननक्षत्रहंसो विमलमानसः ॥४८॥
वांछितार्थप्रदो योऽस्ति सेवकानां हितार्थिनां ।
कलाचयप्रवीणश्च सन्मनुष्यशिरोमणिः ॥४९॥
भार्याऽस्य सद्गुणोपेता नाम्ना रिषसिरि स्मृता ।
गृहे दक्षा च दीनानां कल्पवल्लीव निर्मला ॥५०॥

सदाचारस्ता नूनं महाविनयकारिणी ।
ख्यातनिर्मलकीर्तिश्च शीलसम्यक्त्वसंभृता ॥५१॥
विद्यते ह्येतयोः पुत्रो जिनदासाभिधो वरः ।
बुधः सज्जनमर्यादा माननीयो मनीषिणां ॥५२॥
अधीती बहुविद्यासु आयुर्वेदे विशेषतः ।
अपि योऽस्ति महाधीमान् वरिष्ठो हि विवेकिनां ॥५३॥
नाम्ना भर्तुर्जेवणाद(णादे !)इति ज्ञानदयान्विता ।
जिनदासाऽभिधानस्य भार्या स्याच्छीलसंभृता ॥५४॥
सती सीतासमा साऽपि भर्तारमनुसारिणी ।
धर्मदान-क्रियायुक्ता दम्पत्योर्वरयोस्तयोः ॥५५॥
पुत्रोऽस्य(स्ति)नारायणदाससंज्ञो विराजते निर्मललक्षणैर्हि ।
स्वर्णप्रभः पंकजपत्रनेत्रः पितामहादृष्टिपयोजभानुः ॥५६॥
स्वकीयवंशाम्बरपूर्णचन्द्रः सुबुद्धिमान् यः शुकनाश(स)कोस्ति ।
सुहृज्जनानंदकरो वरिष्ठो दरिद्रवल्ली द्विरदः प्रहृष्टः ॥५७॥
श्रीरणस्तंभसद्दुर्ग-समीपस्थे सुखप्रदे ।
नानावृक्षैः समाकीर्णे सरोभिः सकजैस्तथा ॥५८॥
जिनागारयुते रम्ये नवलक्षपुरे शुभे ।
वासिना जिनदासेन पंडितेन सुधीमता ॥५९॥
दृष्ट्वा पूर्वकथामेकपंचाशत्(५१)श्लोकसंयुतां ।
पुरे सेरपुरे शांतिनाथचैत्यालये वरे ॥६०॥
वसुखकायशीतांशुमिते(१६०८) संवत्सरे तथा ।
ज्येष्ठमासे सिते पक्षे दशम्यां शुक्रवासरे ॥६१॥
अकारि ग्रंथः पूर्णोऽयं नाम्ना दृष्टिप्रबोधकः ।
श्रेयसे बहुपुण्याय मिथ्यात्वापोहहेतवे ॥६२॥
भट्टारक-प्रभाचन्द्र-शिष्यो यो विद्यते भुवि ।
अनेकगुणसम्पन्नो धर्मचन्द्राभिधो मुनिः ॥६३॥

सम्पूर्ण सिद्धांत-विचारणैकः धीरो वरो ज्ञातमहाविवेकः ।
चारित्रपात्रं विधिपूतगात्रः स मे क्रियाद्बोधयुतो रमां हि ॥६४॥
अस्यास्ति शिष्यो ललितादिकीर्तिः मुनिः सदा भव्यजनैश्च पूज्यः ।
दयार्द्रचित्तो विनयेन युक्तः प्रभाववान् शीलपरश्च विद्वान् ॥६५॥
जिनेन्द्रपादांबुज-सत्प्रसादाज्जीयाच्चिरं श्रीजिनदाससंज्ञः ।
साकं हि **नारायणदास**-नाम्ना पुत्रेण सल्लक्षणसंयुतेन ॥६६॥
जिनेन्द्रचरणांभोजपूजनं च भवेद्भुवि ।
यावत्तिष्ठति हेमाद्रिर्यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥६७॥
जिनेशवाणी सुखदा च यावत्संतः कृपार्द्राश्च महीतलेऽपि ।
सुरापगा श्रीजिनदेवभक्तिर्महामुनीनां निवहः कृपार्द्रः ॥६८॥
यावत्पंचनमस्कारमंत्रस्तावदयं शुभः ।
ग्रंथस्तिष्ठतु पुण्याय वाच्यमानो बुधैर्जनैः ॥६९॥
शांतिः श्रीजिनमार्गस्य नरेंद्रस्य तपोभृतां ।
प्रजानां काव्यकर्तृणां भवतात्सुहृदोऽपि च ॥७०॥
यत्किंचिदधिकं न्यूनं शास्त्रेऽस्मिन्नादितं मया ।
जाड्यात्तज्जिन क्षंतव्यं दयासागरवारिज ॥७१॥
त्रिवाद्धिवसुसंख्यैरनुष्टुप्श्लोकैः(८४३)प्रमाणता ।
ग्रंथस्यास्य सुविद्वद्भिर्जिनदासैः कृता स्वयं ॥७२॥

इति श्रीपंडितजिनदासविरचिते मुनिश्रीललितकीर्तिनामाङ्किते होली-रेणुकापर्वचरित्रे दर्शनप्रबोधनाम्नि धूलिपर्व-समयधर्म-प्रशस्तिवर्णनो-नाम सप्तमोऽध्यायः । [जयपुर प्रति

४६. मुनिसुव्रतपुराण (ब्रह्म कृष्णदास)

आदिभाग :—

देवेन्द्रार्च्चितसत्पाद-पंकजं प्रणमाम्यहं ।
आदीश्वरं जगन्नाथं सृष्टिधर्म्मंकरं भुवि ॥१॥

कनकचारसंछायं वृषभांकं वृषोद्धुरं ।
वृषभं जगतां सान्नाच्छर्मणेऽनंतसिद्धये ॥२॥

अन्तभाग :—

काष्ठासंघे वरिष्ठेऽजनि मुनिपनुतो रामसेनो भदंत-
स्तत्पादांभोजसेवाकृत-विमलमतिःश्रीभीमसेनः क्रमेण ।
तत्पट्टे सोमकीर्तिर्यवनपति-करांभोज-संपूजितांघ्रि-
रेतत्पट्टोदयाद्रौ जिनचरणलयी श्रीयशःकीर्तिरेनः(?)॥६१॥
कमलपतिरिवाभूत्सदुदयाद्यंतसेन
उदितविशदपट्टे सूर्यशैलेन तुल्ये ।
त्रिभुवनपतिनाथांघ्रिद्वयासक्तचेता-
स्त्रिभुवनजनकीर्तिर्नाम तत्पट्टधारी ॥६२॥
रत्नभूषणभदंत इनाभो न्याय-नाटक-पुराण-सुविज्ञः ।
वादि-कुंजर-घटाकर-सिंहस्तत्पदेऽजनि रंजनभक्तः ॥६३॥
देवतानिकरसेवितपादः श्रीवृषेशविभुपादप्रसादात् ।
कोमलेन मनसा कृत एष ग्रंथ एव विदुषां हृदिहारः ॥६४॥
शोधयंतु विबुधा विविरोधा यत्पुराणमद एव मयोक्तं ।
संभवन्ति सुजनाः खलु भूमौ ते सदा हितकरा हतपापाः ॥६५॥
इन्द्रदृष्टषट्चंद्रमितेऽथ वर्षे(१६८१) श्रीकार्तिकाख्ये धवले च पक्षे ।
जीवे त्रयोदश्यपरान्हया मे कृष्णेन सौख्याय विनिर्मितोऽयं ॥६६॥
लोहपत्तननिवासमहेभ्यो हर्ष एव वणिजामिव हर्षः ।
तत्सुतः कविविधिः कमनीयो भाति मंगल-सहोदर कृष्णः ॥६७॥
श्रीकल्पवल्लीनगरेगरिष्ठे श्रीब्रह्मचारीश्वर एष कृष्णः ।
कंठावलंब्यूर्जितपूरमल्लः प्रवर्द्धमानो हितमाततान ॥६८॥
पंचविंशतिसंयुक्तं सहस्रत्रयमुत्तमं (३०२५) ।
श्लोकसंख्येति निर्दिष्टा कृष्णेन कविवेधसा ॥६९॥

इति श्रीपुण्यचन्द्रोदये मुनिसुव्रतपुराणे श्रीपूरमल्लांके हर्ष-वीरिका देहज-

ब्रह्मश्रीमंगलदासाग्रज-ब्रह्मचारीश्वर-कृष्णदास-विरचिते रामदेव शिवगमनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः समाप्तः ॥२३॥

४७. चन्द्रप्रभ-चरित (कवि दामोदर)

आदिभाग :—

श्रियं चन्द्रप्रभो नित्यां चन्द्रदश्चन्द्रलांछनः ।
भव्यकुमुदचन्द्रो वश्चन्द्र-प्रभो जिनः क्रियात् ॥१॥
कुशासन-वचोव्रूडजगत्तारण-हेतवे ।
तेन स्ववाक्य-सूरास्त्रैधर्मपोतः प्रकाशितः ॥२॥
युगादौ येन तीर्थेशा धर्मतीर्थः प्रवर्त्तितः ।
तमहं वृषभं वन्दे वृषदं वृषनायकम् ॥३॥
चक्री तीर्थंकरः कामो मुक्तिप्रियो महाबली ।
शान्तिनाथः सदा शान्तिं करोतु नः प्रशान्तिकृत् ॥४॥
येन विध्वंसितो दुष्टः प्रद्युम्नभूपतिर्वरं ।
मुक्तिसीमंतिनीनाथं वीरं नमामि तं जिनम् ॥५॥
(इसके बाद शेष तीर्थंकरों तथा सिद्धादिकोंका स्मरण है)
गुणान्वितां शुभाकारां वृत्तमुक्ताफलाचिताम् ।
मालामिव सदाभूषां स्वकण्ठे भारतीं दधे ॥११॥
जगद्धितकरं सारं विश्वतत्वप्रकाशकं ।
स्तौमि जिनागमं नित्यं ज्ञानातयेऽघनाशनं ॥१२॥
परहित समुद्युक्तांस्त्रैलोक्येश्वर संस्कृतान् ।
गौतमादीन्मुनीन् भक्त्या स्तुवे तद्गुणसिद्धये ॥१३॥
सीमंधर-मुखात् श्रुत्वागमं येनाऽत्र दुःषमे ।
प्रवर्त्तितं हितं कुन्दकुन्दाचार्यं नमाम्यहम् ॥१४॥
परमतेभ-नागारिर्यः कवेर्गुण-सागरः ।
तद्गुणसिद्धये तस्मै नमोऽकलङ्क-योगिने ॥१५॥

यद्वारत्याः कविः सर्वोऽभवत्सज्ज्ञान-पारगः ।
तं कविनायकं स्तौमि समन्तभद्र-योगिनम् ॥१६॥
नाभेयस्य पुराणाब्धिः कृतो येन सुबुद्धिदः ।
स्वसिद्धयै शिरसा वन्दे जिनसेनकवीश्वरं ॥१७॥
सर्वेषां तीर्थकर्तृणां चरिताब्धिः प्रकाशितः ।
येन तं गुणभद्राचार्यकविं नौमि संततम् ॥१८॥
चन्द्रप्रभजिनेशस्य चरितं येन वर्णितं ।
तं वीरनन्दिनं वन्दे कवीशं ज्ञानलब्धये ॥१९॥
येऽन्येऽपि कवयोऽभूवन् जिनगुण-प्रकाशकाः ।
कवित्वसिद्धये सन्तु सर्वे ते मम संस्तुताः ॥२०॥

अन्तभाग :—

भव्यांबुजौघदिनकृद्गणभृत्समानो निश्शेषमुन्यधिपतिः शुभमंडलेशः ।
राजाधिराज-गणसेवित-पादपद्मः ख्यातो बभूव सुवचा भुवि नेमिचन्द्रः ॥६८
सुगुण-गण-समुद्रो विष्टपे ख्यातकीर्तिर्मुनिनरपतिकृन्दैः पूजितांघ्रिः सुरूपी ।
विजितसकलवादी तस्य पट्टे बभूव महिमितजिनधर्मा श्रीयशःकीर्तिनामा ॥
योगीशभूभृद्गणलब्धपूजः कवीशसेव्यः भुवनप्रसिद्धः ।
पट्टे तदीये जितकामनायः श्रीभानुकीर्तिर्दृढशान्तमूर्तिः ॥७०॥
सिद्धान्तादि-पुराणकोशजलधिः प्रध्वस्त मिथ्यातमः
भव्याम्भोज-रविः समस्तगुणभृद्धर्माब्धिचन्द्रोपमः ।
विख्यातो भुवने तपोभरधृतो गच्छाधिराजः शमी
शिष्यस्तस्य सुयोगिसंस्तुतपदः श्रीभूषणो राजते ॥७१॥
भव्यांभोजार्कभानुर्मुनिनृपतिगणैः सेवितांघ्रिः प्रसिद्ध-
स्तर्कालंकारशास्त्रप्रवचन-पटुधीर्ध्वस्त-मिथ्यावादः ।
उद्यद्भानुप्रतापो गुणगणनिलयो जैनधर्मप्रकाशी
तत्पट्टेशस्तपस्वी प्रकटमुमहिमा धर्मचन्द्रो विभाति ॥७२॥

श्रीमूलसंघसुपतेः परिशान्तमूर्तेः चन्द्रप्रभेशचरितं भुवि सारमेतत् ।
शिष्येण तस्य चरितं बहुसौख्यहेतुर्दामोदरेण विदुषा तनुबुद्धिभाजा ॥७३॥
निश्शेषशास्त्रनिपुणाः परकृत्यचित्ताः कृत्स्नप्रदोषरहिता बहुकीर्तिभाजः ।
चन्द्रप्रभस्य चरितं परिशोधयन्तु सारं सतां समुदयाः स्वगुणाप्रभुज्याः॥७४॥
जिनरुचिदृढमूलो ज्ञानविज्ञानपीठः शुभवितरणशाखश्चारुशीलादिपत्रः ।
सुगुणचयसमृद्धः स्वर्गसौख्यप्रसूनः शिवसुखफलदो वै जैनधर्मद्रुमोऽस्तु ॥८४॥

भूभृन्नेत्राचलशशधराङ्कप्रमे(१७२७)
वर्षेऽतीते नवमिदिवसे मासि भाद्रे सुयोगे ।
रम्ये ग्रामे विरचितमिदं श्रीमहाराष्ट्रनाम्नि
नाभेयस्य प्रवरभवने भूरिशोभानिवासे ॥८५॥
रम्यं चतुःसहस्राणि पंचदशयुतानि(४०१५) वै ।
अनुष्टुप्कैः समाख्यातं श्लोकैरिदं प्रमाणतः ॥८६॥

इति श्रीमण्डलसूरिश्रीभूषण-तत्पट्टगच्छेशश्रीधर्मचन्द्रशिष्य-कविदामोदर-विरचिते श्रीचन्द्रप्रभचरिते श्रीचन्द्रप्रभनिर्वाणगमनवर्णनो नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ।

४८. ज्ञानार्णवगद्य-टीका (श्रुतसागर सूरि)

आदिभाग :—

शिवोऽयं वैनतेयश्च स्मरश्चास्यैव कीर्तितः ।
अणिमादि-गुणाऽनर्घ्यरत्न-वार्धिर्बुधैर्मतः ॥१॥

अन्तभाग :—

आचार्यैरिह शुद्धतत्वमतिभिः श्रीसिंहनंद्याह्वयैः
संप्रार्थ्य श्रुतसागरं कृतिवरं भाष्यं शुभं कारितम् ।
गद्यानां गुणवत्प्रियं विनयतो ज्ञानार्णवस्यान्तरे
विद्यानन्दिगुरु-प्रसाद-जनितं देयादमेयं सुखम् ॥
इति श्रीज्ञानार्णव-स्थित-गद्य-टीका तत्वत्रय-प्रकाशिनी समाप्ता ।

४९. सम्मेदशिखरमाहात्म्य (दीक्षित देवदत्त)

आदिभाग :—

ध्यात्वा यत्पदपाथोजं भव्याः संसारपारगाः ।
सारात्सारं सदाधारं तमर्हन्तं नमाम्यहम् ॥१॥
गुरुं गणेशं वाणीं च ध्यात्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ।
सम्मेदशैलमाहात्म्यं प्रकटीक्रियते मया ॥२॥
जिनेन्द्रभूषणयतिर्यति-धर्मपरायणः ।
तस्योपदेशात्सम्मेदवर्णने मद्धिरोत्सुका ॥३॥
भट्टारकपदस्थायी स यतिः सत्कविप्रियः ।
भवाब्धितरणायेह सत्कथापोतसज्जकः ॥४॥
माहात्म्यपूर्तिसिद्ध्यर्थं वन्दे सिद्धगणं हृदि ।
सद्बुद्धिं ते प्रयच्छंतु वाणीं मे काव्यरूपिणीम् ॥५॥
सम्मेदशैलवृत्तांतो महावीरेण भाषितः ।
गौतमं प्रति भूयः स लोहार्येण धीमता ॥६॥
तत्सद्वाक्यानुसारेण देवदत्ताख्यसत्कविः ।
सम्मेदशैलमाहात्म्यं प्रकटीकुरुतेऽधुना ॥७॥

अन्तभाग :—

इति श्रीभगवल्लोहाचार्यानुक्रमेण-श्रीभट्टारकजिनेन्द्रभूषणोपदेशाच्छ्री-मद्दीक्षित-देवदत्तकृते श्रीसम्मेदशिखर-माहात्म्ये समाप्तिसूचको एकविंशति-तमोऽध्यायः ॥२१॥ समाप्तोऽयंग्रन्थः ॥

५०. ध्यानस्तवः (भास्करनन्दि)

आदिभाग :—

परमज्ञानसंवेद्यं वीतबाधं सुखादिवत् ।
सिद्धं प्रमाणतस्साधं सर्वज्ञं सर्वदोषक(कृत्?) ॥१॥

अन्तभाग :—

तस्याऽभवत् श्रुतनिधिर्जिनचंद्रनामा शिष्योऽनुतस्य कृति-भास्करनंदिनाम्ना ।
शिष्येण संस्तवमिमं निजभावनार्थं ध्यानानुगं विरचितं सुविदो विदंतु ॥१००

इति ध्यानस्तवः समाप्तः ।

५१. पदार्थदीपिका (भ० देवेन्द्रकीर्ति)

आदिभाग :—

श्रीसर्वज्ञं जिनं नत्वा सर्वसत्वहितावहं ।
पदार्थदीपिकां सारां टीकां कुर्वे सुकोमलां ॥१॥

अन्तभाग :—

वस्त्रष्टयुक्तसप्तेन्दुयुते (१७८८) वर्षे मनोहरे ।
शुक्ले भाद्रपदे मासे चतुर्दश्यां शुभे तिथौ ॥१॥
ईसरदेति सद्ग्रामे टीका पूर्णतामिता ।
भट्टारक-जगत्कीर्तेः पट्टे देवेन्द्रकीर्तिना ॥२॥
दुष्कर्महानये शिष्यमनोहर-गिरा कृता ।
टीका समयसारस्य सुगमा तत्त्वबोधिनी ॥३॥
बुद्धिमद्भिः बुधैर्हास्यं कर्तव्यं न विवेकिभिः ।
शोधनीयं प्रयत्नेन नयतो विस्तरतां व्रजेत् ॥४॥
बुधैः संपाठ्यमानं च वाच्यमानं श्रुतं सदा ।
शास्त्रमेतच्छुभंकारि चिरं संतिष्ठतां भुवि ॥५॥
पूज्य-देवेन्द्रकीर्तेश(तीश-)शिष्येण स्वांतहारिणा ।
नाम्नेयं लिखिता टीका स्वहस्तेन स्वबुद्धये ॥६॥

[इति समयसारस्य पदार्थदीपिका टीका समाप्ता ।]

५२. नागकुमारपंचमीकथा (पं० धरसेन)

आदिभाग :—

नेमिं नमत्सुरार्धीश-मुनीशमनघश्रियम् ।
नत्वा नागकुमारस्य वक्ष्ये संक्षेपतः कथा ॥१॥

अन्तभाग :—

आसीद्भूरिगुणाकरस्य गुणिनः श्रीवीरसेनस्तुतः
शिष्यः श्रीधरसेनपंडित इति ख्यातः सतामीशितुः ।
गोनर्देयचिन्तातपस्य वसतौ तेन प्रशान्तात्मना
संवेगार्थमियं विशुद्धमनसा साध्वी कथा श्रेयसे ॥१॥
सोढदेवाख्य-रट्टाभ्यां सद्धर्मरसिकत्वतः ।
कारिता पंचमी सेयमाऽऽचन्द्रमभिनन्दतु ॥२॥

इति श्रीधरसेनविरचिते नागकुमारपंचमीकथासमुच्चये नागकुमारनिर्वाण गमनवर्णनो नाम अष्टमः सर्गः ॥८॥*

५३. महीपालचरित्र (भ० चारित्रभूषण)

आदिभाग :—

यस्याशदेशेप्सितकुन्तलाली दूर्वाङ्कुरालीव विभाति नीजा(त्यनीचा ?) ।
कल्याणलक्ष्मीवसतिः स दिश्यादादीश्वरो मंगलमालिकां वः ॥१॥
यस्याः क्रमोपास्तिवशाज्जडोपि विना श्रमं वाङ्मयपारमेति ।
सदा चिदानंदमयस्वरूपा सा शारदा रातु रतिं परां मे ॥२॥

---

* यह प्रशस्ति आजसे कोई ३०–३५ वर्ष पहले सेठ माणिकचन्द हीराचन्द जे० पी० बम्बईके 'प्रशस्तिसंग्रह' रजिष्टर न० १ परसे उद्धृत की गई थी। मूल ग्रन्थ सामने न होनेसे इस ग्रन्थकी रचना करानेवाले सोढदेव आदिका परिचय नहीं दिया जा सका।

मनोवचःकायकृतोपकाराः जयंति संतः सुकृतैकसाराः ।
येषां भिया न स्खलते सतां धीर्हितं नरास्तेपि जयंत्यसंतः ॥३॥
अज्ञोपि विज्ञाय कृतप्रसादः परोपकाराय रसाभिरामं ।
श्रीमन्महीपाल-नरेश्वरस्य चरित्रमेनद्वयामि कामं ॥४॥

अन्तभाग :—

नित्यं सच्छुक्लपक्षस्थितिरतिविशदो नाशितश्यामपक्षो ।
विध्वस्ताशेषदोषो बहुमुनिमहितो भूरिशोभाभिरामः ।
विश्वाल्हादं ददानो हतनिखिलतमाः शश्वदानोदयो च
श्रीमद्वाण्याख्यगच्छो परिविधुवदयं राजते शुद्धवृत्त ॥१॥
कल्याणावलिशालिनोऽत्र सुमनःश्रेणीश्रितो विश्रुतः
श्रीमान् मारकरो गणो विजयते यं(यो?) मेरुवन्निश्चलः ।
विश्वालंकरणस्य विस्तृतजुषः सन्नंदतस्याऽन्वहं
भांति स्फीतियुतस्य यस्य पुरतः पादा इवान्ये गुणाः ॥२॥
तस्मिन् विस्मयकारिचारुचरितश्चारित्रचूडामणिः
श्रीमान् श्रीविजयेन्दुसूरिरभवद्भव्यांगि-चिंतामणिः ।
तत्पट्टे समभून्महीन्द्रमहितः श्रीचेमकीर्तिर्गुरुः
कांस्कान्शेविबुधान् धिनोति नितरां यत्कल्पवृत्तिस्तथा ॥३॥

श्रीरत्नाकरसूरयः समभवन् ज्ञानांबुरत्नाकराः
कीर्तिस्फीतिमनोहरा शुभगुणश्रेणीलतांभोधरा ।
यन्नाम्नाऽत्रबलो गणोयमभवद्रत्नाकराख्यां परां
ख्यातेन क्षितिमंडलेपि सकले सत्यां तमोहारिणा ॥४॥
तस्यानुक्रमपूर्व्वशैलकरिणः कामद्विपोद्यत्सृणिः
सूरीशोऽभयनन्दि इत्यजनि सद्योगीन्द्रचूडामणिः ।
तत्पट्टे प्रकटप्रभावविदिते विध्वस्तवादिव्रणिः
जज्ञे श्रीजयकीर्तिसूरिसमो भव्यात्मचिन्तामणिः ॥५॥

कीर्तिर्यस्य निरस्ततापनिवहा सच्छीलदंडस्थिता
चंचच्चंद्रकलोज्वला दशदिशां श्वेतातपत्रायते ।
तत्पट्टे स्फुटकादिकुंजरघटासिंहो गुरुंद्दोव्रजः ।
सूरीन्द्रो जयताच्चिरं गणधरः श्रीरत्ननंद्याभिधः ॥६॥
तस्यानेकविनेय-सेवितपदांभोज' 'भव्यावली
चंचन्नेत्रचकोरचंद्रसदृशस्थानम्रभूमीपतेः ।
शिष्यासू रचयांचकार चतुरश्चारित्रम्याऽभिधो ।
विश्वाश्चर्यकरं महीपचरितं नानाविचारोद्धुरं ॥७॥
श्रीरत्ननंदिगुरुपादसरोरुहालिश्चारित्रभूषणकवियेदिदं ततान ।
तस्मिन्महीपचरिते भववर्णनाख्यः सर्गः समाप्तमगमत्किल पंचमोऽयं॥८॥

इति श्रीभट्टारकश्रीरत्ननंदिसूरिशिष्य-महाकविवरचारित्रभूषण-विरचिते श्रीमहीपालचरिते पंचमः सर्गः । इति श्रीमहीपालचरित्रं काव्यं संपूर्णं । ग्रन्थ सं० ६६५ । संवत्सरे गुण-रुद्रनेत्र-वसु-चन्द्रयुते १८३६ का भाद्रपदमास-कृष्णपन्नषष्ठ्यां तिथौ । [जयपुर प्रति

५४. मदनपराजय (ठक्कुर जिनदेव)

आदिभाग :—

यदामलपदपद्मं श्रीजिनेशस्य नित्यं शतमख-शतसेव्यं पद्मगर्भादिवंद्यं ।
दुरितवन-कुठारं ध्वस्तमोहांधकारं सदखिलसुखहेतुं त्रिःप्रकारैर्नमामि ॥१॥
यः शुद्ध-रामकुल-पद्म-विकाशनार्को जातोऽर्थिनां सु[र]तरुर्भुवि चंगदेवः ।
तन्नंदनो हरिरसल्कविनागसिंहः तस्मा[द्धि]षग्जनपतिर्भुवि नागदेवः ॥२॥
तज्जावुभौ सुभिषजाविह हेम-रामौ रामातिप्रयंकर इति प्रियदोऽर्थिनां यः ।
तज्जश्चिकित्सित-महांबुधि-पारमासः श्रीमल्लुगिज्जिनपदांबुज-मत्त-भृंगः ॥३॥
तज्जोहं नाग(जिन ?)देवाख्यः स्तोकज्ञानेन संयुतः ।
छंदेऽलंकार-काव्यानि नाभिधानानि वेद्म्यहं ॥४॥

कथा प्राकृतबंधेन हरदेवेन या कृता।
बक्ष्ये संस्कृतबंधेन भव्यानां धर्मवृद्धये ॥५॥

× × × ×

इति श्रीठक्कुरमाइंदसुत-जिनदेव विरचिते स्मरपराजये सुसंस्कृतबंधे मुक्तिस्वयंवरो नाम पंचमः परिच्छेदः ।

अन्तभाग :—

पाठयते यः शृणोतीदं स्तोत्रं स्मरपराजयं ।
तस्य ज्ञानं च मोक्षः स्यात् स्वर्गादीनां च का कथा ॥१॥
तावद्दुर्गतयो भवन्ति विविधास्तावन्निगोद-स्थितिः
तावत्सप्तसुदारुणा हि नरकास्तावद्दरिद्रादयः ।
तावद्दुःसहघोरमोहतमसाच्छन्नं मनः प्राणिनां
यावन्मार-पराजयोद्भवकथामेतां च शृण्वंति न ॥२॥
तथा च—शृणोति वा वक्ष्यति वा पठेत्तु यः कथामिमां मारपराजयोद्भवां ।
सोऽसंशयं वै लभतेऽक्षयं सुखं शीघ्रेण कायस्य कदर्थनं विना ॥३॥
अज्ञानेन धिया विना किल जिनस्तोत्रं मया यत्कृतं
किं वा शुद्धमशुद्धमस्ति सकलं नैवं हि जानाम्यहं ।
तत्सर्वे मुनिपुंगवाः सुकवयः कुर्वंतु सर्वे क्षमां
संशोध्याशु कथामिमां स्वसमये विस्तारयंतु ध्रुवं ॥४॥
इति मदनपराजयं समाप्तं ।

५५. श्वेताम्बरपराजय (कवि जगन्नाथ)

आदिभाग :—

बुभुक्षाद्या यमीशानं न हि दुःखयितुं क्षमाः ।
अनंतसुखसद्भावात्तस्मै श्री नेमये नमः ॥१॥
पदांबुज-मधुव्रतो भुवि नरेन्द्रकीर्त्तिर्गुरोः
सुवादिपदभृद्बुधः प्रकरणं जगन्नाथवाक् ।

सिताम्बरपराजयाह्वयमिदं हि चेक्रीयते
जिनागम-विशालधी-विबुध-लालजीकाश्रया ॥२॥
पंचसहस्रचाग्रकं सांशयिकैर्यत्कुयुक्तिबलतस्तत् ।
सर्वं प्रत्याचष्टे धीरो वादी जगन्नाथः ॥३॥

इद हि नेमिनरेन्द्रस्तोत्रे स्वोपज्ञे—

"यदुत तव न भुक्तिर्नेष्टदुःखोदयत्वाद्वसनमपि न चांगे वीतरागत्वतश्च ।
इति निरुपमहेतू न ह्यसिद्धाद्यसिद्धौ विशदविशदहृष्टीनां हृदिलः(?)सुयुक्तये"—

इति पद्यमाकर्ण्य लालजीनामवर्णिभिरवादि पद्यस्यास्य वृत्तिकरणमिवा(षा)त्पंचसहस्रीमतं सांशयिककल्पितं खंडनीयं ततस्तन्निमित्तमासाद्य सिताम्बरपराजयं नाम प्रकरणं कुरुते । तत्र तावत् केवलिनि कवलाहारवत्त्वेन विरोधमभिधत्ते—

अन्तभाग :—

इति दर्पैता प्रबलतमयुक्ति-कुलिश-चूर्णिताखिलैकान्त-वादिभूधरै-र्दिगम्बरसुरवरैर्मा विवादेनेति ।

वत्से गुणाश्वीतेन्दुयुते (१६०३) दीपोत्सवे दिने ।
भुक्तिवादः समाप्तोयं सितम्बर-कुयुक्तिहा ॥१॥

इति श्वेताम्बरपराजये कवि-गमक-वादि-वाग्मित्वगुणालंकृतेन खांडिल्ल वंशोद्भव पोमराजश्रेष्ठिसुतेन जगन्नाथवादिना कृते केवलिभुक्तिनिराकरणं समाप्तम् ।

५६. चतुर्विंशतिसन्धानकाव्य-सटीक (कवि जगन्नाथ)

आदिभाग :—

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमांकोऽथ धर्मो
हर्यंकः पुष्पदन्तो मुनिसुव्रतजिनोऽनंतवाक् श्रीसुपार्श्वः ।
शांतिः पद्मप्रभोऽरो विमलविभुरसौ वर्द्धमानोप्यजांको
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरं ॥१॥

(खग्धरा छन्दात्मक इसी पद्यको २५ वार लिखकर उसका २५ प्रकारसे अर्थ किया है, एक एक प्रकारमें २४ तीर्थंकरोंकी स्तुति अलग अलग और २५ वें में समुच्चय स्तुति २४ तीर्थंकरोंकी की है।)

प्रणम्यांघ्रियुग्मं जिनानां जगन्नाथपूज्यांघ्रिपाथोरुहाणां।
वरैकाक्षरार्थैर्महायुक्तियुक्तैः सुवृत्तिं च तेषां नुतेश्चकरोमि ॥१॥

वाग्देवतायाश्चरणाम्बुजद्वयं स्मरामि शब्दाम्बुधिपारदं वरं।
यन्नाममात्रस्मरणोल्लयुक्तो(द्यतानि ?)हरंत्यघं कोविदमानसानि ॥२॥

अप्रसिद्धनिनादेषु नात्र कार्या विचारणा।
एकाक्षरसुकोषस्य पद्यं दृष्ट्वाऽवगम्यतां ॥३॥

पद्यस्य यस्य कस्यापि वाच्ययुग्मं हि चित्रकृत्।
चतुर्विंशतिसद्वाच्यैरेतत्कुर्वीत किं न शं ॥४॥

इति प्रस्तावना। चतुर्विंशतिजिनानामेकपद्यं कृत्वा तस्य चतुर्विंशतिभिरर्थैर्जगन्नाथस्तान् स्तौतीति तावदादिजिनस्य वृषभस्य स्तुतिः। तथा हि—अमौ लोकोत्तरः वृषभजिनपतिः।

इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतावेकाक्षर-प्रकाशिकायां भट्टारकश्रीनरेन्द्रकीर्ति-मुख्यशिष्य-पंडितजगन्नाथ-विरचितायां प्रथमतीर्थंकरश्रीवृषभनाथस्तुतिः समाप्ता।

अन्तभाग :—

नयनय(नवनव ?)धररूपांके(१६६९) सुवत्से तपोमास इह विशद्पंचम्यां च सत्सौरिवारे।
विहितजिनमहोंवावत्पुरे सौधशुभ्रे
सुजिननुतिमकार्षीच्छ्रीजगन्नाथनामा ॥२६॥

इति श्रीमदेकाक्षरप्रकाशिका चतुर्विंशतिजिनस्तुतिः समाप्तमगमत् श्रीरस्तु। अथ काव्यफलं स्वरूपं च वच्मः ॥

पद्येस्मिन् मयकाकृतां नुतिमिमां श्रीमच्चतुर्विंशति-
तीर्थेशां कलुषापहां च नितरां तावद्भिरर्थैर्वरैः ।
प्रत्येकं किल वाच्य-वाचकरवैर्बोध्यांबुधैर्वृंत्तितः
पूर्वाह्णादिषु यो ब्रवीति लभते स्थानं जगन्नाथतः ॥१॥
काव्येऽस्मिन्भुवि कोविदाः स्तुतिमये तीर्थंकराणां वरे ।
सल्लभ्ये बुधचित्तमस्कृतिकरे चित्तं दधीध्वं सदा ।
वाक्याशुद्धवचोपि यद्गणितितः कुर्वीध्वम(?)त्रापि सत्(शं ?)
तस्माच्चि(न्त्य)तिमिदं समस्तसुखदं न ज्ञायते किं फलं ॥२॥
जननि भारति सज्जिनतुण्डजे सुसति लोकलतावन(?)तत्परे ।
भव सरस्वति मे कलुषापहा तव पदांबुजभक्तियुजः सदा ॥३॥
इति श्रीचतुर्विंशतिजिन-स्तुतिः कविजगन्नाथकृता पूर्णा ॥

५७. मौनव्रतकथा (गुणचन्द्र सूरि)

आदिभाग :—

सकलज्ञानसम्पूर्णान् नत्वा श्रीजिननायकान् ।
मौनव्रतकथां वक्ष्ये भव्यानां हितसिद्धये ॥१॥

अन्तभाग :—

श्रीमूलसंघेऽघविघातिनीह प्रद्योतमानान्यमतानि नेशुः ।
सारस्वतोगच्छ इहैव नंद्याच्छ्रीमद्बलात्कारगणाभियुक्तः ॥२६॥
श्रीरत्नकीर्तिरभवज्जगतांवरेण्यश्चारित्ररत्ननिवहस्य बभार भारं ।
तद्दीक्षितो यतिवरः कृतिदेवकीर्तिः चारित्ररंजितजनोद्वहितासुकीर्तिः॥२७
तदग्रशि(तच्छि)ष्यो गुणचन्द्रसूरिरभवच्चारित्रचेतोहर-
स्तेनेयं रचिता कथा व्रतवतां पुण्यांकुरोत्पादिका ।
श्रीमत्पंचमतीर्थचैत्यसदने सद्रागलेन्द्रंगके(?)
श्रीमौनव्रतसत्फलार्थकथका नन्दत्वियं भूतले ॥२८॥

इति मौनव्रतकथा समाप्ता ।

४८. षट्चतुर्थ-वर्त्तमान-जिनार्चन (पं० शिवाभिराम)

आदिभाग :—

अथ षट्चतुर्थवर्तमानजिनार्चनं समुदीरयामः ।

यशः समानंदति विष्टपत्रयं यदुग्रतेजः प्रसरत्प्रभाभिरं ।
नरेडिव प्रस्खलिताहितच्युतेर्जिनेशिनस्तं हृदयेऽनिशं दधे ॥१॥

अन्तभाग :—

अभवदजितविद्यो मन्मथारातिभक्तो नृपनिकरशिरोरुमौलिरत्नप्रभार्च्यः ।
पुषदवनिपसूनुर्यः शिवारामनाम्ना व्यरचि जिनवरार्चावृत्तरत्नप्रभार्कैः॥११॥
परमसुखविचित्रं शुद्धसद्भावजातं गुणगणितविनाशं कर्मकांतारदावं ।
विभय-विभवसारं शुद्धजीवावतारं जिनवरपदभक्तेर्यातु भव्यास्पदं मोः ॥१२॥
भवतु विभवभूरिर्मुक्तिकांतार्चकानां भवतु विभवभूरिस्तद्वतानंदितानां ।
भवतु विभवभूरिः सद्गुरूणां जनानां भवतु विभवभूरिः सर्वजीवात्मकानां॥१३॥
विशदविजयसारमालवाख्याख्ययाख्ये दिविजनगरदुर्गे भाति देवालयो वा
जिनवर-पद-भक्तिर्विद्यते यज्जनानां न तु कुमतकुवृत्तिग्रंथपंथात्मकानां ॥१४॥
अरिकुलवनदाहो यत्र सामंतसेनः स्वकुलगतसुवृत्तिस्कंधसालैवभूतः ।
हरितनुजतनूजो वानुरुद्धः धृथिव्यामिव कविकुलपालो राज्यरामां बभार॥१५
तदखिलवरराज्यप्राज्यसाहाय्यसाने रघुपतिरिति नामाभून्महेज्यो महात्मा ।
तदखिलकुलभूपस्तत्सुतो धन्यराजो मम परमसुभक्तो मोत्र साहाय्यकोभूत्॥१६॥
रहितविभवभूषास्त्यक्तसारस्वदेशा जिनवरपदभक्तिमात्रसंगृधनाढ्याः ।
शिवगतजिनभूमेर्वंदनासक्तचित्ताः सुचिरतरविहारं कुर्महे धर्मसिद्धयै ॥१७॥
नवशि(?)च नयनाख्ये कर्मयुक्तेन चंद्रे गतिवति सति जंतौ विक्रमस्यैव काले ।
निपतदतितुषारे माघचंद्रावतारे जिनवरपदचर्चासिद्धये संग्रसिद्धा ॥१८॥

गुणभद्रभद्रलोक्त्या स्वयंसिद्धाक्षरै···कैः ।
जातेयं वीतरागार्चा नमस्कर्तव्यमत्र वै ॥१९॥

यावत्सज्जनचित्तनिश्चलधरा यावज्जलश्रीधरा
यावच्चक्रधरा सुरेश्वरधरा पातालपाताधरा ।
यावच्चन्द्रदिवाकरपृथुधरा यावच्च धर्मस्थिति-
स्तावच्छ्रीजिनराजचंद्रचरणपूजा समानंदतु ॥२०॥
शिवाभिरामाय शिवाभिरामं शिवाभिरामात्र शिवाभिरामैः ।
शिवाभिरामप्रदकं भज त्वं मुहुर्मुहुर्भो वद किं वदामि ॥२१॥

इति श्रीषट्चतुर्थवर्तमानजिनार्चा शिवाभिरामावनिपसूनुकृताऽद्भुततरैक समाप्ता ।

५६. पार्श्वपुराण (भ० चन्द्रकीर्ति)

आदिभाग :—

मुक्तिस्त्रीहृदयाश्लिष्टं केवलश्रीविभूषणं ।
श्रीसर्वज्ञमहं वन्दे प्राप्तानंतचतुष्टयम् ॥१॥

× × ×

स जीयाद्रामसेनाख्यः काष्ठांबरनभोंशुमान् ।
भट्टारकः सदाश्रेष्ठः शब्दशास्त्राब्धिपारगः ॥२०॥
महापुरासत्काव्य-कीर्तनाञ्चितं यशः ।
भूतले यस्य जीयात्स जिनसेनो यतीश्वरः ॥२१॥
यदुत्तरपुराणस्य कर्ता नैयायिकः सुधीः ।
सूरिः श्रीगुणभद्राख्यो भू(जी)याद्भूमंडले कविः ॥२२॥

अन्तभाग :—

स्वस्ति श्रीमति काष्ठसंघतिलके गच्छे सुनन्दीतटे
वादीन्द्रोरुसुपण्डितेन्द्रकविसच्चन्द्रावलीभूषिते ।
आसीद्विश्वयमण्डितो गुणनिधिर्विद्यागणाधीश्वरः
सूरिः श्रीयुतरामसेन इह वै विद्यानवद्यः सदा ॥६५॥

यस्मिन्निवासं विदधे प्रसिद्धा स्याद्वादविद्या सततं मनोज्ञा ।
वृत्तं प्रवृत्तं विशदं च यत्र विजृंभते तस्य कथं न कीर्तिः ॥६६॥
तदन्वयेऽभूत्किल धर्मसेनः सूरिस्तपोभूषितधर्मसेनः ।
नमत्पदाम्भोजसुरेन्द्रसेनः स्याद्वादविन्निर्जितवादिसेनः ॥६७॥
विशदपाद[सु]पंकजभास्करः सकलशास्त्रसुपीतरसोत्करः ।
अखिलसूरिवरस्तपसां निधिर्विमलसेनमुनिः समभूत्सुधीः॥६८॥
तत्पट्टपूर्वाचलचण्डरोचिः सूरीश्वरोऽभूत्सुविशालकीर्तिः ।
यद्देशनाकर्णनतः प्रहृष्टा सुधा न मुह्यन्ति सुधारसेऽपि ॥६९॥
तत्पट्टवारांनिधिशीतरोचिर्भट्टारकोऽभूत्किल दिव्यरोचिः ।
बभूव गच्छेश्वरविश्वसेनः स्वदेशनारंजितसद्रसेनः ॥७०॥
काष्ठासंघे गच्छनन्दीतटीयः श्रीमद्विद्याभूषणाख्यश्च सूरिः ।
आसीत्पट्टे तस्य कामान्तकारी विद्यापात्रं दिव्यचारित्रधारी ॥७१॥
तत्पट्टाम्बरभूषणैकतरणिः स्याद्वादविद्याश्रिणो(?)
विद्वद्वृन्दकुलाभिमानशिखरीप्रध्वंसतीव्राशनिः ।
सच्चारित्रतपोनिधिर्मतिवरो विद्वत्सु शिष्यैर्युतः ।
श्रीश्रीभूषणसूरिराट् विजयते श्रीकाष्ठसंघाग्रणीः ॥७२॥
यदग्रतो नैति गुरुर्गुरुत्वं श्लाघ्यं न गच्छत्युशनोऽपि बुद्ध्या ।
भारत्यपि नैति माहात्म्यमुग्रं श्रीभूषणः सूरिवरः स पायात् ॥७३॥
वाणी यस्योत्कृष्टपीयूषजेत्री रूपं यस्यानन्तसौन्दर्यहारी ।
वत्ते वृत्तानां गणे सोममानं श्रीश्रीभूषाख्यश्च सूरिः स जीयात् ॥७४॥
तस्य श्रीजयवच्छिष्यो जाड्यपात्रं समस्यलं(?) ।
आचार्यश्रीचन्द्रकीर्त्याख्यो रोलंबोऽर्हत्पदाम्बुजे ॥७५॥
श्रीपार्श्वनाथस्य पुराणमुत्तमं सन्तोषकृत्तेन सतां तदुत्तमम् ।
विनिर्मितं भाववतो न भूरिणा श्रीचन्द्रकीर्त्याख्यकवीन्द्रसूरिणा ॥
भूरिशास्त्रनिपुणा विमत्सराः शोधयन्तु सुधियश्च सज्जनाः ।
क्वूटमत्र भणितं च यन्मया पार्श्वनाथसुपुराणसागरे ॥७६॥

× × × ×

श्रीमद्देवगिरौ मनोहरपुरे श्रीपार्श्वनाथालये
वर्षेन्धीषुरसैकमेय(१६५४) इह वै श्रीविक्रमार्केस(श्व)रे।
सप्तम्यां गुरुवासरे श्रवणभे वैशाखमासे सिते
पार्श्वाधीशपुराणमुत्तममिदं पर्याप्तमेवोत्तरम् ॥

यावद्धरामेरुकुलाचलेन्द्रमन्दाकिनीमुख्यपदार्थवर्गाः।
तिष्ठंतु तावत्परमं पुराणं नन्द्यादिदं पार्श्वजिनेश्वरस्य ॥
द्वेसहस्रे तथा सप्तशतीपंचदशोत्तरे(२७१५)।
अस्यैव ग्रन्थराजस्य मानमुक्तं कवीशिनः ॥

इति श्रीत्रिजगदेकचूडामणिश्रीपार्श्वनाथपुराणे श्रीचन्द्रकीर्त्याचार्य-प्रणीते भगवन्निर्वाणकल्याणकव्यावर्णनो नाम पंचदशः सर्गः।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः।

६०. छन्दोनुशासन (जयकीर्ति)

आदिभाग :—

श्रीवर्धमानमानम्य छन्दसां पूर्वमक्षरं।
लक्ष्यलक्षणमावीक्ष्य वक्ष्ये छन्दोनुशासनं ॥१॥
छन्दःशास्त्रं वहित्रं तद्विबुधाः काव्यसागरं।
छन्दो भाग्याश्रयं सर्वं न किंचिच्छन्दसो विना ॥२॥

अन्तभाग :—

माण्डव्य-पिंगल-जनाश्रय-सैतवाख्य-
श्रीपूज्यपाद-जयदेव-बुधादिकानाम्।
छन्दांसि वीक्ष्य विविधानपि सत्प्रयोगान्
छन्दोऽनुशासनमिदं जयकीर्तिनोक्तं ॥

इति जयकीर्तिकृतौ छन्दोनुशासन..... सम्वत् ११६२ असाढ-सुदि १० शनौ लिखितमिदमिति। [जैसलमेर प्रति

६१. प्रद्युम्नचरित (महासेन सूरि)

आदिभाग :—

श्रीमन्तमानम्य जिनेन्द्रनेमिं ध्यानाग्निदग्धाखिलघातिकक्षम् ।
व्यापारयामास न यत्र वाणान् जगद्विजेता मकरध्वजोऽपि ॥१॥
बाल्येपि यस्याप्रतिमं सुरेन्द्रो विलोक्य रूपं पुनरीक्षते स्म ।
चक्षुः सहस्रं युगपद्विधाय नत्वा च तं वीरजिनं विरागम् ॥२॥
जिनेन्द्रवक्त्राम्बुजराजहंसीं प्रणम्य शुक्लामथ भारतीं च ।
उपेन्द्रसूनोश्चरितं प्रवक्ष्ये यथागमं पावनमात्मशक्त्या ॥३॥
कवीन्द्र-सीमानमितैर्यदुक्तं गणेश्वराद्यैरपि विस्तरेण ।
तत्पादपद्मद्वयभक्तिशक्त्या संक्षिप्य तद्वक्तुमयं श्रमो नः ॥४॥

अन्तभाग :—

श्रीलाटवर्गटनभस्तलपूर्णचन्द्रः शास्त्रार्णवान्तगसुधीस्तपसां निवासः ।
कांता(कंतोः) कलावपि न यस्य शरैर्विभिन्नं स्वान्तं बभूव स मुनिर्जयसेननामा॥
तीर्णागमाम्बुधिरजायत तस्य शिष्यः श्रीमद्गुणाकर-गुणाकरसेनसूरिः ।
यो वृत्त-बोध-तपसा यशसा च नूनं प्रापत्परामनुपमामुपमां मुनीनां ॥२॥
तच्छिष्यो विदिताखिलोरुसमयो वादी च वाग्मी कविः
शब्दब्रह्म विचित्रधामयशसां मान्यां सतामग्रणीः ।
आसीत् श्रीमहसेनसूरिरनघः श्रीमुंजराजार्चितः
सीमा दर्शनबोधवृत्ततपसां भव्याब्जनी-बांधवः ॥३॥
श्रीसिन्धुराजस्य महत्तमेन श्रीपर्पटेनार्चितपादपद्मः ।
चकार तेनाभिहितः प्रबन्धं स पावनं निष्ठितमङ्गजस्य ॥४॥
श्रीमत्काममहानरस्य चरितं संसारविच्छेदनः
श्रद्धाभक्तिपराः प्रबुद्धमनसाः शृण्वन्ति ये सत्तमाः ।
संवेगात्कथयन्ति ये प्रतिदिनं योऽधीयते संततं
भूयासुः सकलास्त्रिलोकमहिताः श्रीवल्लभेन्दुश्रियः ॥५॥

श्रीभूपतेरनुचरो मघनो विवेकी शृङ्गारभावघनसागररागसारं ।
काव्यं विचित्रपरमाद्भुतवर्ण-गुम्फ संलेख्य कोविदजनाय ददौ सुवृत्तं ॥८॥

श्रे० माणिक्येन लिखितं । सं० १५६६ वर्षे फाल्गुणसुदि ६ गुरौ ।

[कारंजा प्रति

६२. त्रिपंचाशत्क्रियाव्रतोद्यापन (भ० देवेन्द्रकीर्ति)

आदिभाग :—

श्रीदेवेन्द्रफणीन्द्रवृन्दविनुतं नत्वा जिनं सन्मतिं
हारासारतुषारगौरतनुभां श्रीशारदां शारदाम् ।
वंदित्वा गुणधारिणो मुनिगणान् श्रीगौतमादीन् ध्रुवे
त्रिःपंचाशदभिक्रियाव्रतविशिष्टोद्यापनार्चाविधिः ॥
चन्द्रोपकैः शोभितपुष्पमालाजालं लसत्तोरणमुत्पताकं ।
यो वारकाद्यैः सहितं हिताय विधाय जैनालयमंडपं सत् ॥
पूजोपचारं प्रचुरं पवित्रं पवित्रचित्तः श्रितनीतिवित्तः ।
लात्वा गृही वाऽथ महोत्सवेन भव्यैर्युतश्चैत्यगृहं समेति ॥

× × × ×

ह्रीं बीजपद्मोजमध्यममलं कृत्वा शुभं मंडलं ।
त्रिःपंचाशदभीष्टकोष्टकयुतं सत्पंचवर्णैर्वरैः ॥
चूर्णैः रत्नभवै रर(?) कमलसच्छुभ्रवासो युगैः
सुस्नातार्चितभूषितैर्जिनमहः प्रारभ्यते पंडितैः ।

अन्तभाग :—

भव्याऽग्रवालसुकुलोत्पलपूर्णचन्द्र-श्रीराजमान्य-सुमहत्तरनाथनाम्नः ।
श्राद्धक्रियामहविधिः सदनुग्रहेण देवेन्द्रनामकविना विहितः श्रियेः स्यात् ॥
पद्मावद्धरणीधराढ्यविभवः श्रीविक्रम-स्वीकृतः ।
आजत्सम्भवविप्रराजविबुधो देवेन्द्रपूज्यस्य(श्च)यः ॥

त्रिःपंचाशदभिक्रियाव्रतविधिः पूजाक्रमोऽसौ चतु-
श्चत्वारिंशदिशेव(?)षोडशशतेऽब्दे(१६४४) निर्मितो नन्दतु ॥५॥

× × × ×

जिनाभिषेकस्य विधि विहाय प्रपठ्य शान्त्यै किल शान्तिपाठं।
विसर्जं पुष्पाक्षतकैस्तदीशान् प्रपूज्य संघं सुखमेधतां सः ॥
इति त्रिपंचाशत् क्रियाव्रतोद्यापनं समाप्तं।

६३. बृहत्षोडशकारणपूजा (सुमतिसागर)

आदिभाग :—

अनन्तसौख्यं सुपदं विशालं परंगुणोयं(णौघं ?)जिनदेवसेव्यं।
अनादिकालप्रभवं व्रतेशं त्रिधाह्वये षोडशकारणं वै ॥१॥

अन्तभाग :—

अवन्तिकानामसुदेशमध्ये विशालशालेन विभाति भूतले।
सुशान्तिनाथोऽस्तु जयोऽस्तु नित्यमुज्जेनिकायां परदेव तत्र(?) ॥१॥
श्रीमूलसंघे विपुलेऽथ दूरे(?)ब्रह्मामगच्छे बलशालिने गणे।
तत्राऽस्ति यो गौतमनामधेयान्वये प्रशान्तो जिनचन्द्रसूरिः ॥२॥
श्रीपद्मनन्दिर्भवतापहारी देवेन्द्रकीर्ति .....।
विद्यादिनंदिर्वरमल्लिभूषो लक्ष्मादिचन्द्रोऽभयचन्द्रदेवः ॥३॥
तत्पट्टेऽभयनन्दीशो रत्नकीर्तिगुणाग्रणीः।
जीयाद्भट्टारके लोके रत्नकीर्तिर्जगोत्तमः ॥४॥
सुमतिसागरो देवश्चक्रे पूजामथापहां।
खण्डेलवालान्वये सेयः प्रल्हादोल्हादवान् सुधीः ॥५॥
कर्त्तोपरोधपूजाय (?) मूलसंघविदाग्रणीः।
सुमतिसागरं देवं श्रद्धाकं षोडशकारणं ॥६॥

इति श्रीषोडशकारणोद्यापनपूजा समाप्ता।

६४. पंचकल्याणकोद्यापनविधि (ब्र० गोपाल)

आदिभाग :—

श्रीवीरनाथं प्रणिपत्य मूर्ध्ना वक्ष्ये जिनानां भुवि पंचकं च ।
कल्याणकानां ..... ॥

अन्तभाग :—

श्रीहेमचन्द्रसुगुरोः परमप्रसादात्सारा स्तुतिः सकललोकमनोमेयं(हरेयं ?)।
नंद्यादतूरपि(?)च कौचविरं जिनानां (?) एकांतमासगणनाविधिरत्र मुख्यः॥१॥
गोपालवर्णिनाकारीषुकल्याणकवर्णनं ।
यदि शुद्धमशुद्धं वा शोधयंतु बहुश्रुताः ॥२॥

इति श्रीब्रह्मभीमाग्रहाद्ब्रह्मगोपालकृत-श्रीचतुर्विंशतिजिनपंचकल्याणक-समुच्चयोद्यापनविधिरयं संपूर्णः ॥

६५. सिद्धचक्र-कथा (शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

प्रणम्य परमात्मानं जगदानन्ददायकं ।
सिद्धचक्रकथां वक्ष्ये भव्यानां शुभहेतवे ॥१॥

अन्तभाग :—

श्रीपद्मनंदीमुनिराजपट्टे शुभोपदेशी शुभचन्द्रदेवः ।
श्रीसिद्धचक्रस्य कथाऽवतारं चकार भव्यांबुजभानुमाली ॥१॥
सम्यग्दृष्टिविशुद्धात्मा जिनधर्मे च वत्सलः ।
जालाकः कारयामास कथां कल्याणकारिणीं ॥२॥

६६. अंजनापवनंजय-नाटक (कवि हस्तिमल्ल)

आदिभाग :—

आदौ यस्य पुरश्चराचरगुरोरारब्धसंगीतक-
श्चक्रे नाट्यरसान् क्रमादभिनयन्नाखंडलस्तांडवं ।
यस्मादाविरभूदचिंत्यमहिमा वागीश्वराद्भारती
स श्रीमान् मुनिसुव्रतो दिशतु वः श्रेयः पुराणः कविः ॥१॥

नाद्यते सूत्रधारः । अलमतिप्रसंगेन मारिष । इतस्तावत्प्रविश्य पारिपार्श्वकः । भावं अयम् । सूत्रधारः—आज्ञापितोऽस्मि परिषदा । यथा । अद्य त्वया तत्र भवतः सरस्वतीस्वयंवृतपतेर्भट्टारगोविन्दस्वामिनः सूनुना,श्रीकुमार-सत्यवाक्य-देवरवल्लभोदयभूषणनामार्यमिश्राणामनुजेन कवेर्वर्धमानस्याग्रजेन कविना हस्तिमल्लेन विरचितं विद्याधरनिबंधनमंजनापवनंजयनामनाटकं यथावत्प्रयोगेन नाटयितव्यमिति ।

अन्तभाग :—

श्रीमत्पांड्यमहीश्वरे निजभुजादंडावलंबीकृते ।
कर्णा[टा]वनिमंडलं पदनतानेकावनीसेवति(?) ।
तत्प्रीत्यानुसरन् स्वबन्धुनिवहैर्विद्वद्भिराप्तैः समं ।
जैनागारसमेत···गमे श्रीहस्तिमल्लो वसन् ॥ निष्क्रान्ताः सर्वे ।

इति श्रीगोविन्दभट्टारस्वामिनः सूनुना श्रीकुमार-सत्यवाक्य-देवरवल्लभोदयभूषणनामार्यमिश्राणामनुजेन कवेर्वर्धमानस्याग्रजेन कविना हस्तिमल्लेन विरचिते अंजनापवनंजयंनामनाटके सप्तमोऽङ्कः । समाप्तं चेदमंजनापवनंजयं नाम नाटकं । कृतिरियं हस्तिमल्लस्य ।

६७. शृङ्गारमंजरी (अजितसेनाचार्य)

आदिभाग :—

श्रीमदादीश्वरं नत्वा सोमवंशमवार्थितः ।
रायाख्य-जैनभूपने(पार्थे?) वक्ष्ये शृङ्गारमंजरीम् ॥१॥

अष्टाविंशं शतं तस्याः प्रमाणं श्लोकपद्यतः ।
अनुष्टुप्संख्यया पंचचत्वारिंशं शतं मतं ॥२॥
विदोषं सगुणं रीतिरसालंकारगं मुदे ।
काव्यं कुर्वीत शब्दार्थरचनानिपुणः कविः ॥३॥

× × × ×

अन्तभाग :—

राज्ञो विट्ठलदेवीति ख्याता शीलविभूषणा ।
तत्पुत्रः कामिरायाख्यो 'राय' इत्येव विश्रुतः ॥४६॥
तद्भूमिपालपाठार्थमुदितेयमलं-क्रिया ।
संक्षेपेण बुधैर्ह्येषा यद्यत्रास्ति(?) विशोध्यताम् ॥४७॥

इति श्रीमदजितसेनाचार्य-विरचिते शृङ्गारमंजरीनामालंकारे तृतीयः परिच्छेदः ॥

(दूसरी प्रतिमें [1]) श्रीसेनगणाग्रगण्यतपोलक्ष्मीविराजिताजितसेनदेव-यतीश्वरविरचितः शृङ्गारमंजरी नामालंकारोऽयम् ॥

६८. शङ्खदेवाष्टक (भानुकीर्ति)

आदिभाग :—

शतमखशतवन्द्यो मोक्षकान्ताभिनन्द्यो
दलितमदनचापः प्राप्तकैवल्यरूपः ।
द्रुमतवनकुठारः शङ्खरत्नावतारः
त्रिभुवननुतदेवः पातु मां शङ्खदेवः ॥१॥

अन्तभाग :—

जिनपदकमलालिर्जैनभूतेपि कालि-
र्मुनिपतिमुनिचन्द्रः शिष्यराजेन्द्रचन्द्रः ।

---

१ दोनों प्रति ऐ०प० सरस्वतीभवन बम्बईमें हैं। अगस्त सन् १९२८ में उन्हीं परसे यह प्रशस्ति ली गई थी।

सकलविमलसूक्तिर्भानुकीर्तिप्रयुक्ति-
स्त्रिभुवननुतदेवः पातु मां शङ्खदेवः ॥८॥

६९. तत्वार्थसूत्र-सुखबोधवृत्ति (भ० योगदेव)

आदिभाग :—

विनष्टसर्वकर्माणं मोक्षमार्गोपदेशकं ।
तद्गुणोद्भूतिलाभाय **सर्वज्ञं** जगतो गुरुं ॥१॥
आलंबनं भवांभोधौ पततां प्राणिनां परं ।
प्रणिपत्य **महावीरं** लब्धानंतचतुष्टयं ॥२॥
संक्षेपितागमन्यासां सुग्धबुद्धिप्रबोधिकां ।
सुखबोधाभिधां वक्ष्ये वृत्तिं तत्त्वार्थगोचरां ॥३॥

पादपूज्य(पूज्यपाद)विद्यानन्दाभ्यां यद्वृत्तिद्वयमुक्तं तत्केवलं तर्कागमयोः पाठकैरबलाबालादिभिर्नातुं न शक्यते ततः संस्कृतप्राकृतपाठकानां सुखज्ञानकारणवृत्तिरियमभिधीयते ।

(इसके बाद **'मोक्षमार्गस्य नेतारं'** इत्यादि मंगल पद्य देकर उसकी व्याख्या की है और उसे सूत्रकारकृत सूचित किया है ।)

अन्तभाग :—

शुद्धेद्धतपःप्रभावपवित्रपादपद्मरजः किंजल्कपुंजस्य मनःकोणैकदेशक्रोडीकृताऽखिलशास्त्रार्थाम्बरस्य पंडितश्रीबन्धुदेवस्य गुणप्रबन्धाऽनुस्मरणाज्जातानुग्रहेण प्रमाणनयनिर्णीताखिलपदार्थप्रपंचेन श्रीमद्भुजबल-**भीम**भूपाल-मार्तंडसभायामनेकवालब्धतर्क-चक्रांकत्वेनाबलाब(बा)लादीनामात्मनश्चोपकारार्थं न पांडित्यमदविलासात्सुखबोधाऽभिधां वृत्तिं कृतां महा-**भट्टारकेण कुम्भनगरवास्तव्येन** पंडितश्री**योगदेवेन** प्रकटयंतु संशोध्य बुधा यदत्रायुक्तमुक्तं किंचिन्मतिविभ्रमसंभवादिति ॥

[इति] श्रीप्रचंडपंडितमंडली-मौनव्रतदीक्षागुरोर्योगदेवविदुषः कृतौ सुख-बोधाभिधानतत्वार्थवृत्तौ दशमोऽध्यायः समाप्तः ।

७०. विषापहार-टीका (नागचन्द्रसूरि)

आदिभाग :—

वंदित्वा सद्गुरून् पंचज्ञानभूषणहेतवः ।
व्याख्या विषापहारस्य नागचन्द्रेण कथ्यते ॥१॥

अथातः स्याद्वादविद्यापूर्वकुत्कीलकोटीकिरणमालिना गृहस्थाचार्यकुंजरेण धनंजयसूरिणा सामायिकमनुतिष्ठता तदानीमेव स्वकीयपुत्रस्य सर्पदष्टत्वमाकर्ण्यापि ततोऽचलता भगवद्गुणग्रामदत्तचित्तेनाचलमेव स्तुवता कृतस्य स्तवस्य प्रभावनिःकाशिततद्गतविषनिषेकोद्रेकस्य सत एव विषापहार इति व्यपदेशभाजोऽतिगहनगंभीरस्य सुखावबोधार्थं वागड्देशमंडलाचार्यज्ञानभूषणदेवैर्मुहुर्मुहुरुपरुद्धः कर्णाटाद्रिराजसभे प्रसिद्धः प्रवादिगजकेशरीविरुदकविमदविदारी सद्दर्शनज्ञानधारी नागचंद्रसूरिर्धनंजयसूर्यभिहितार्थं व्यक्तीकर्तुमशक्नुवन्नपि गुरूवचनमलंघनीयमिति न्यायेन तदभिप्रायं विवरीतुं प्रतिजानीते ।

अन्तभाग :—

इयमर्हन्मतक्षीरपारावारपार्वणशशांकस्य मूलसंघदेशीगणपुस्तकगच्छ-पनशोकावलीतिलकालंकारस्य तौलवदेशविदेश-पवित्रीकरणप्रवण-श्रीमल्लितकीर्तिभट्टारकस्याग्रशिष्य - गुणवद्गणपोषण-सकलशास्त्राध्ययन-प्रतिष्ठायात्राद्युपदेशानूनधर्मप्रभावनाधुरीण- देवचंद्रमुनीन्द्रचरणनखकिरणचंद्रिकाचकोरायमाणेन कर्णाय (?) विप्रकुलोत्तंस-श्रीवत्सगोत्रपवित्रपार्श्वनाथगुमटाम्बातनूजेन प्रवादिगजकेशरिणा नागचंद्रसूरिणा विषापहारस्तोत्रस्य कृतव्याख्या कल्पान्तं तत्त्वबोधायेति भद्रम् ।

इति विषापहारस्तोत्र-टीका समाप्ताः ।

७१. पाण्डवपुराण (श्रीभूषणकृत)

आदिभाग :—

प्रणम्य श्रीजिनं देवं सर्वज्ञं संभवं शिवं ।
कुर्वे हि पाण्डवानां हि चरित्रं चित्तरंजनम् ॥१॥

(प्रथम पद्यके बाद वृषभ, चंद्रनाथ, शान्ति, नेमि और महावीर भगवानकी स्तुति करके तदन्तर ब्राह्मीवाणी, गौतमगणधर, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवकी स्तुति की गई है।)

भद्रबाहुर्मुनिर्जीयात् महाज्ञानी महादमी ।
येन कृत्स्नं श्रुतं ज्ञातं पंचमो श्रुतकेवली ॥१२॥
विशाखाचार्यो मां पातु विशाखा भूतलेऽखिले ।
अद्यापि वर्तते शुद्धा देवेन्द्रैरपि संस्तुतः ॥१३॥
स जीयाद्रामसेनोऽपि प्रतिबोधनपंडितः ।
दिग्वासा शुद्धचेतस्को निमित्तज्ञानभास्करः ॥१४॥
समंतभद्रो भद्रार्थो भानुभाभारभूषितः ।
येन देवागमस्तोत्रं कृतं व्यक्तमिहावनौ ॥१५॥
अमितयादिगतियेंष्टः(?) शब्दव्याकरणार्णवः ।
पुनातु पावनामूर्तिर्यस्य संवर्तते क्षितौ ॥१६॥
अकलंकश्चिरं जीयादकलंकोऽवनिश्रुतः ।
पादेन ताडिता येन मायादेवी घटस्थिता ॥१७॥
त्रिषष्टिपुरुषाणां वै पुराणं येन निर्मितम् ।
स जीयाज्जिनसेनश्च संदेहध्वांतभास्करः ॥१८॥
गुणादिभद्रपर्यंता सूरयो भांतु भूतले ।
पुराणपूर्णसन्मार्गदर्शका रवयो यथा ॥१९॥
तं पुराणं समालोक्य गौणभद्रं विशारदं ।
पुराणं पांडवानां हि ब्रुवे सूत्रानुसारतः ॥२०॥
नेमिसेनश्चिरं जीयाद्रिपच्चारिः भवेद्बलात् ।
पद्मावत्यपरं तीर्थमकरोच्चारणर्द्धिवत् ॥२१॥
रत्नकीर्तिः भवेद्रत्नरोहणाचलवत् सदा ।
बाल्येपि येन निष्कामकामोपि कृतवान्मुनिः ॥२२॥
अन्वर्थो धर्मसेनोऽभूद्धर्मसेनो गुणाग्रणीः ।

वैराग्यरसवारीशो दिक्चेलो दमसंयुतः ॥२३॥
विमलसेनको सूरिः रविरिव विराजते ।
नानावस्तुकदंबानां द्योतको भुवनोदरे ॥२४॥
विश्वसेनमुनिर्जीयाद्विशालः सर्वकीर्तिकः ।
स्वन्यायचक्रचक्रेण जितं येनारिमंडलम् ॥२५॥
भाति भूतलये भूरिशोभाभरविभूषितः ।
विद्याभूषणसूरीन्द्रो ग्रंथानां ग्रंथने क्षमः ॥२६॥
ग्रंथार्णवसुगंभीरः क्वाऽत्र मे बुद्धिलाघवी ।
अतोऽहं साहसं मेने सर्वेषां हास्यदायकम् ॥२७॥
बहवः कवयोऽभूवन् जिनसेनादिका वराः ।
तत्पदांभोजनमनात्करिष्ये तत्पुराणकम् ॥२८॥
विवक्षन् हास्यतां याति यथा मूको तथाप्यहं ।
हास्यस्य भाजनं शास्त्रं विविक्षुर्ज्ञानलेशतः ॥२९॥
पंगुर्जिगमिषुर्मेरुमस्तकं निखिलैर्जनैः ।
विहस्यतेऽप्यहं शास्त्रं चिकीर्षुर्रंजसा तथा ॥३०॥
शास्त्रं कर्तुमशक्तोहं यद्यपि सादरो यतः ।
मंदा धेनुर्यथा वत्सं रक्षति क्षीरदानतः ॥३१॥
पूर्वाचार्यकृते ग्रन्थे मार्गसंदर्शनाल्लघु ।
क्रियते पावनं शास्त्रं मया स्वज्ञानशुद्धये ॥३२॥
सूर्यप्रकाशितो मार्गः दीपः किं न प्रकाशयेत् ।
पूर्वाचार्यैः कृतो ग्रंथो मया किं न करिष्यते ॥३३॥

× × × ×

(आगे दुर्जनादिका तथा कथा, वक्ता, श्रोताका स्वरूप वर्णित है ।)

अन्तभाग :—

छंदोऽलंकारगणान्न वेद्मि अनेकशास्त्राणि विवेकजानि ।
जैनेन्द्रमुख्यानि सुलक्षणानि काव्यानि न्यायानि प्रबोधकानि ॥९३॥

गोमट्टसाराणि महार्णवानि त्रैलोक्यसाराणि सुतर्काणि ।
नो विद्मयहं चाष्टसहस्रकानि नानाप्रकाशोद्गमकानि सद्यः ॥९४॥
ईदृग्विधोऽहं सततं विबुध्य भोः साधुवर्गाः प्रविमुच्य कोपं ।
विशोध्यतां मे कृतिमेव बुध्या बाले जने को हि हितं न कुर्यात् ॥९५॥
काष्ठासंघाव्हगच्छे जगति सुविदितः सारनंदीतटांको
धर्माधारोऽस्ति शास्ता मुनिगणसहितस्तत्र विद्यागणोऽपि ।
पूज्याः श्रीरामसेना गुरव इह बभूवुः पुरा पौरमान्याः
शाब्दांतोक्तोपपत्या चरणमनुपमं ये चरंते शरण्याः ॥९६॥
वशे तेषां प्रशस्येऽजनिषत् गुरवो धर्मसेनाभिधाना-
स्तत्पट्टे लब्धवर्णाः सुविमलपदतः सेनसंज्ञाः मुनींद्राः ।
सूरीशास्तत्पदेपि प्रचुरगुणयुताः श्रीविशालास्सुकीर्ति-
संज्ञा विज्ञातशास्त्रास्तृणमणिसुजनाऽमित्रतुल्यस्वभावाः ॥९७॥
तेषां पट्टे सुदक्षाः मुनिजनमहिता विश्वसेनाभिधानाः
सूरींदा वै वितंद्रा स्व(त ?)रणिसममहोद्योतिताशा बभूवुः ।
सूरिस्तेषां हि पट्टे सकलगुणगणाः प्रौढविद्याविभूषाः ॥९८॥
जीयात्तेषां हि पट्टे सकलगुणनिधिश्चारुचारित्रभूषः
श्रीमच्छ्रीभूषणाख्यो विबुधजननुतो जैनतत्त्वार्थवेदी ।
ज्ञाता दाता सुवक्ता परम[त]सकलान् वेत्ति विज्ञानदक्षः
तत्त्वातत्त्वप्रणेता विमलतरगुणश्चारुचारित्रयुक्तः ॥९९॥
शृण्वंति ये भावधिया पठंति चारित्रमेवं प्रवरं विशालं ।
लिख्यापयंत्यादरतो नितांतं भजंति ते सौख्यपरंपरां च ॥१००॥

(आगे दो पद्योंमें आशीर्वाद है ।)

विद्याविभूषोत्तमपट्टधारी शास्त्रस्य वेत्ता वरदिव्यवाणी ।
जीयात्पृथिव्यां जिनधर्मदाता श्रीभूषणोऽसौ यतिराट् नितांतं ॥१०३॥
कृतं चरित्रं शुभपांडवानां भट्टोत्तमानां प्रवरं सुपुण्यं ।
सुश्यादिभूषेण विशुद्धबोधात् पुरातनं वीक्ष्य पुराणमेव ॥१०४॥

श्रीगूर्जरे सौर्यपुरे विशाले वर्णाश्रये वर्णविवर्णनीये ।
इदं चरित्रं कृतमेव भक्त्या श्रीचंद्रनाथालयमाश्रुलभ्या(?) ॥१०५॥
काष्ठासंघमहोल्लोके भाति भूवलये सदा ।
श्रीनंदीतटनामांको विद्यागणगुणांबुधिः ॥१०६॥
तद्वंशे रामसेनोभून्नेमिसेनो महामुनिः ।
तथा श्रीलक्ष्मसेनश्च धर्मसेनो महायतिः ॥१०७॥
विमलसेनसूरिश्च विशालकीर्तिः कीर्तिभृत् ।
विश्वसेनसूरींद्रोभूद्विद्याभूषणनामभाक् ॥१०८॥
तत्पट्टशोभने भानुः श्रीभूषणसूरीश्वरः ।
जीयाज्जैनरतो धीमान् चारित्राचरणे रतः ॥१०९॥
श्रीविक्रमार्कसमयागतषोडशाकें सत्सुंदराकृतिवरे शुभवत्सरे वै ।
वर्षे कृतं सुखकरं सुपुराणमेतत् पंचाशदुत्तरमुसप्तयुते(१६५७) वरेण्ये ॥११०
पौषमासे तथा शुक्ले पक्षे च तृतिया-दिने ।
रविवारे शुभे योगे चरितं निर्मितं मया ॥१११॥
अस्य ग्रंथस्य विज्ञेयाः श्लोकाः पिंडीकृतास्तथा ।
षट्सहस्रयुताः सर्वे वराः सप्तशतान्विताः (६७००) ॥११२॥
श्लोककाव्यान्यपि सर्वे ज्ञेयानि लेखकैस्तथा ।
अत्र भ्रांतिर्न कर्तव्या ग्रन्थाग्रे च विचक्षणैः ॥११३॥
श्रीभूषणेन शुद्धेन निर्मितं चरितं वरं ।
पांडवानां सुपुण्यानां सदा मांगल्यकारिणाम् ॥११४॥
पांडवानां पुराणं हि नानाशब्दार्थपूरितं ।
जगत्यस्मिन् चिरंजीयात् पवित्रं सौख्यकारकं ॥११५॥

इति श्रीपांडवपुराणे भारतनाम्नि भट्टारक-श्रीविद्याभूषण-तत्पट्टाभरण-सूरिश्रीश्रीभूषणविरचिते पांडवोपसर्ग-केवलोत्पत्ति-मुक्तिगमन-सर्वार्थसिद्धिगमन-नेमिनाथमुक्तिगमन-वर्णनं नाम पंचविंशतिपर्व ॥

७२. अजितपुराण (पं० अरुणमणि)

आदिभाग :—

सर्वज्ञाय नमो नित्यं निरावरण-चक्षुषे ।
यद्बोधविशदादर्शे भुवनं भु(भ ?)बनायते ॥१॥

× × ×

सुभद्रं च यशोभद्रं लोहाचार्यं महामुनिं ।
जिनसेनं जितानंगं सर्वसंयतसेवितं ॥३०॥
पुराणं गदितं येन त्रिषष्टिपुरुषाश्रितं ।
वंदेऽहं गुणभद्रं च महागुणगणैर्वृतं ॥३१॥
सूरिः श्रीश्रुतकीर्त्याख्यः सर्वशास्त्रार्थकोविदः ।
तनोतु भवतां भावं भवभ्रमणनाशनम् ॥३२॥
तेषां वाणीं नमाम्युच्चैः त्रैलोक्यार्थप्रदीपिकां ।
त्रिजगन्मंगलकरीं मुनीन्द्रैः सेवितां सदा ॥३३॥

अन्तभाग :—

श्रीमच्छ्रीकाष्ठसंघे मुनिगणनातीतदिग्वस्त्रयु(जु)ष्टे
तस्मिंश्रीमाथुराख्ये वृषभ-वृषयुते गच्छश्रेष्ठाधिपूज्ये ।
तन्मध्ये सर्वश्रेष्ठे परमपदप्रदे पुष्कराख्ये गणे च
लोहाचार्यान्वये च विगतकलुषितसंयतानेकजाताः ॥११॥
काष्ठसंघगणनायकधीरं धर्मसाधनविधानपटीयं ।
राजते सकलसंघसमेतं धर्मसेनगुरुरेष विदेतं ॥१२॥
धर्मोद्धारविधिप्रवीणमतिकः सिद्धांतपारंगमी
शीलादिव्रतभारकः शम-दम-क्षांति-प्रभा-भासुराः ।
वैभारादिकतीर्थराजरचितः प्राज्यप्रतिष्ठोदयः
तत्पट्टाब्जविकाशनैकतरणिः श्रीभावसेनो गुरुः ॥१३॥

कर्मग्रंथ-विचारसारसरिणी रत्नत्रयस्याकरः
श्रद्धाबंधुरलोकलोकनलिनी-नाथोपमः सांप्रतम् ।
तत्पट्टेऽचलचूलिकासुतरणिः कीर्त्यादिविश्वंभरे
नित्यं भाति **सहस्रकीर्तियतिपः** ख्यातोऽसि(स्ति) दैगंबरः॥१४॥
श्रीमांस्तस्य **सहस्रकीर्तियतिनः** पट्टे विकृष्टेऽभवत्
क्षीणांगो गुणकीर्तिसाधुरनघो विद्वज्जनानंदितः ।
मायामानमदादिभूधरपवी राद्धान्तवेदी गणी ।
हेयाहेयविचारचारुधिषणः कामेभकंठीरवः ॥१५॥
जीयाच्छ्रीगुणकीर्तिसाधुरसिकश्चारित्रदृग्ज्ञानभाक्
श्रीमन्माथुरसंघपुष्करशशी निर्मुक्तदंभारवः ।
तत्पट्टे व्रतशीलसंयमनदीनाथो यशःकीर्तिराट्
दुर्दैकैककुदर्पकामममथनो निर्ग्रन्थमुद्रावरः ॥१६॥
निःपापे जिनपादपंकजधरं विष्णुश्चेतोगृहः(?) ।
शास्त्रारंभसुतुंडतांडवकरः स्याद्वादसप्रेक्षणः ॥१७॥
तत्पट्टे श्रीजिनचंद्रसूरिर्धीणी जिनस्येव बभौ बुधेषु ।
विद्यात्रयी कंठविराजमानः तस्य त्रयीरत्नपवित्रगात्रः ॥१८॥
तच्छिष्यजातः **श्रुतकीर्तिसाधुः** श्रुतेषु सर्वेषु विशालकीर्तिः ।
तपोमयी ज्ञानमयी च कीर्तिर्यस्यर्षिसंघेषु बभौ शशीव ॥१९॥
तच्छिष्यजातो बुधराघवाख्यो गोपाचले कारितजैनधामा ।
तपोधनश्रीश्रुतसर्वकोविदः नरेश्वरैर्वंदितपादपद्मः ॥२०॥
तच्छिष्यज्येष्ठो बुधरत्नपालो द्वितीयकः श्री **वनमालिनामा** ।
तृतीयकः **कान्हरसिंघसंज्ञः** तस्यात्मजो **लालमणिः** प्रवीणः ॥२१॥
स्वशक्तिभाजा मणिना सुभक्तिना धियाल्पयोक्ता रविवंशपद्धतिः ।
यदत्र किंचिद्रचितं प्रमादतः परस्परव्याहतिदोषदूषितं ॥२२॥
तदप्रमादास्तु पुराणकोविदाः सृजंतु जंतुस्थितिशांतिवेदिनः ।
प्रशस्तवंशो **रविवंशपर्वतः** क्व मे मतिः काल्पतरालपशक्तिका ॥२३॥

व्युत्सृष्टापरसंघसंततिबृहच्छीकाष्ठसंघान्वये
संप्रा[सा]रुणरत्ननामकविना लाभाय बोधे पुनः ।
दृष्टोऽयं रविवंशपुण्यचरितः श्रीपार्वतः सर्वतो
व्याशाशामुखमंडलः स्थिरतरः स्थेयात्पृथिव्यां चिरं ॥३६॥
रस-वृष-यति-चंद्रे ख्यातसंवत्सरे(१७१६)ऽस्मिन्
नियमितसितवारे वैजयंती-दशम्यां ।
अजितजिनचरित्रं बोधपात्रं बुधानां
रचितममलवाग्मि-रक्तरत्नेन तेन ॥४०॥
मुद्गले भूभुजां श्रेष्ठे राज्येऽवरंगसाह्विके ।
जहानाबाद-नगरे पार्श्वनाथजिनालये ॥४१॥

[सरसावा-मन्दिर-प्रति

७३. आदिनाथ-फाग (भ० ज्ञानभूषण)

आदिभाग :—

यो वृन्दारक-वृन्द-वन्दित-पदो जातो युगादौ जयी
हत्वा दुर्जय-मोहनीयमखिलं शेषश्च घातित्रयम् ।
लब्ध्वा केवल-बोधनं जगदिदं संबोध्य मुक्तिं गत-
स्तत्कल्याणक-पञ्चकं सुरकृतं व्यावर्णयामि स्फुटं ॥१॥

अन्तभाग :—

सर्व्वानेव नवोनषट्शतमितान्(५९१)श्लोकान्विबुध्याऽत्र वै
शुद्धं ये सुधियः पठन्ति सततं ते पाठयन्त्वादरात् ।
ये केचिन्निपुणा लिखन्ति लिखने ते शुद्धवर्णैः स्वय-
मन्यार्थं किल लेखयन्तु च पुरोः कल्याण-व्यावर्णनम् ॥
विख्यातो भुवनादिकीर्तिमुनिपः श्रीमूलसंघेऽभवत्
तत्पट्टेऽजनि बोधभूषणमुनिः स्वात्मस्वरूपे रतः ।
जाता प्रीतिरतीव तस्य महता कल्याणकेषु प्रभो-
स्तेनेदं विहितं ततो जिनपतेराद्यस्य तद्वर्णनम् ॥

७४. भक्तामरस्तोत्र-वृत्तिः (ब्र० रायमल्ल)

आदिभाग :—

श्रीवर्धमानं प्रणिपत्य मूर्ध्ना दोषैर्व्यपेतं ह्यविरुद्धवाचं ।
वक्ष्ये फलं तद्वृषभस्तवस्य सूरीश्वरैर्यत्कथितं क्रमेण ॥१॥

अन्तभाग :—

सकलेन्द्रोर्गुरोर्भ्रातुर्जसेति वर्णिनः सतः ।
पादस्नेहेन सिद्धेयं वृत्तिः सारसमुच्चया ॥२॥

(इसके पश्चात् दो श्लोकोंमें काव्योंका फल वर्णन किया है)

श्रीमद्हूंबड़वंशमंडणमणिर्मह्येति नामा वणिक् ।
तद्भार्यागुणमंडिता व्रतयुता चम्पामितीताभिधा(?)॥६॥
तत्पुत्रो जिनपादकंजमधुपो रायादिमल्लो व्रती ।
चक्रे वृत्तिमिमां स्तवस्य नितरां नत्वा श्री(सु?)वादींदुकं ॥७॥
सप्तषष्ट्यंकिते वर्षे षोडशाख्ये हि संवते(१६६७) ।
आषाढश्वेतपक्षस्य पंचम्यां बुधवासरे ॥८॥
ग्रीवापुरे महासिन्धोस्तटभागे समाश्रिते ।
प्रोत्तुंग-दुर्ग-संयुक्ते श्रीचन्द्रप्रभ-सद्मनि ॥९॥
वर्णिनः कर्मसीनाम्नः वचनात् मयकाऽरचि ।
भक्तामरस्य सद्वृत्तिः रायमल्लेन वर्णिना ॥१०॥

इति श्रीब्रह्मरायमल्ल-विरचिता भक्तामरस्तोत्रवृत्तिः समाप्ता ।

[रोहतक-मन्दिर-प्रति

७५. हरिवंशपुराण (ब्रह्म जिनदास)

आदिभाग :—

सिद्धं सम्पूर्ण-भव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमं ।
प्रशस्त-दर्शज्ञान-चारित्र-प्रतिपादनम् ॥१॥

सुरेन्द्र-मुकुटाश्लिष्ट-पादपद्मांशुकेशरं ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितय-मंगलम् ॥२॥*
वन्दे नेमीश्वरं भक्त्या त्रिदशाधिप-वंदितं ।
त्रिजगत्पूज्यपादाब्जं समस्ताऽघविनाशनं ॥३॥

× × ×

श्रीवीरजिननाथोक्तो गौतमं गणनायकं ।
सोऽर्थः प्राप्तः सुधर्मं च श्रीजम्बूस्वामिनं ततः ॥४६॥
विद्युच्चरं ततः कीर्तिमनुत्तरविदं क्रमात् ।
रविषेणाभिधाचार्यं जिनसेनगुरुं ततः ॥४७॥
तद्वाक्यरचनां प्राप्य मयाऽत्र क्रियते स्फुटं ।
ग्रन्थं सुखेन मनुजा यथा जानंति सत्कथां ॥४८॥
भद्रबाहुं प्रणम्याथ यतिसंघनमस्कृतं ।
श्रीकुन्दकुन्दाचार्यादीन् मुनीन् रत्नत्रयांकितान् ॥४९॥
गुरुसकलकीर्तिं च श्रुतांभोधिं महामुनिं ।
भक्त्या भुवनकीर्तिं च चंचत्कीर्तिं तपोनिधिं ॥५०॥
निर्ग्रंथान् शुद्धचारित्रानित्याद्यानपरानपि ।
अनुक्रमात्संगमुक्तान् रागद्वेषातिगान् सदा ॥५१॥
तन्मया जिनदासेन संक्षेपादुच्यतेऽधुना ।
हरिवंशस्य चरितं भव्य-श्रुति-सुखाकरं ॥५२॥

अन्तभाग :—

श्रीमन्नेमिचरित्रमुत्तममिदं नानाकथापूरितं
पापध्वान्त-विनाशनैक-तरणिः कारुण्यवल्लीवनं ।

---

* ये दोनों श्लोक मूलतः श्रीरविषेणाचार्यकृत पद्मचरितके हैं। अन्य पद्योंकी तरह इन्हें भी ग्रन्थमें उद्धृत किया गया है।

भव्यश्रेणिमनःप्रमोदसदनं भक्त्याऽनघं कीर्तनं
नानासत्पुरुषालिचेष्टितयुतं पुण्यं शुभं पावनं ॥३२॥
श्रीवर्द्धमानेन जिनेश्वरेण त्रैलोक्यवंद्येन [यदुक्त]मादौ ।
ततः परं गौतमसंज्ञकेन गणेश्वरेण ग्रथितं जनानां ॥३३॥
ततः क्रमाच्छ्रीजिनसेननाम्नाचार्येण जैनागम-कोविदेन ।
सत्काव्यकेलीसदनेन पृथ्व्यां नीतं प्रसिद्धं चरितं हरेश्च ॥३४॥
श्रीकुन्दकुन्दान्वयभूषणोऽथ बभूव विद्वान् किल पद्मनन्दी ।
मुनीश्वरो वादिगजेन्द्रसिंहः प्रतापवान् भूवलये प्रसिद्धः ॥३५॥
तत्पट्टपंकेजविकाशभास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवरः प्रतापी ।
महाकवित्वादिकलाप्रवीणस्तपोनिधिः श्रीसकलादिकीर्तिः ॥३६॥
पट्टे तदीये गुणवान्मनीषी क्षमानिधानो भुवनादिकीर्तिः ।
जीयाच्चिरं भव्यसमूहवंद्यो नानायतिव्रातनिषेवणीयः ॥३७॥
जगति भुवनकीर्तिः भूतले ख्यातकीर्तिः श्रुतजलनिधिवेत्ताऽनंगमानप्रभेत्ता ।
विमलगुणनिवासश्छिन्नसंसारपाशः स जयति जिनराजः साधुराजीसमाजः॥३८
सद्ब्रह्मचारी गुरुपूर्वकोऽस्य भ्राता गुणज्ञोऽस्ति विशुद्धचित्तः ।
जिनस्य दासो जिनदासनामा कामारिजेता विदितो धरित्र्यां ॥३९॥
श्रीनेमिनाथस्य चारित्रमेतदनेन नीत्वा रविषेण(जिनसेन)सूरेः ।
समुद्धृतं स्वान्यसुखप्रबोधहेतोश्चिरं नंदतु भूमिपीठे ॥४०॥

इति श्रीहरिवंशपुराणे भट्टारक सकलकीर्तिशिष्यब्रह्मजिनदास-विरचिते श्रीनेमिनाथ-निर्वाणवर्णनो नामैकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ।

७६. सिद्धान्तसार (नरेन्द्रसेनाचार्य)

आदिभाग :—

भूर्भुवःस्वस्त्रयीनाथं त्रिगुणात्मत्रयात्मकं ।
त्रिभिः प्राप्तपरंधाम वन्दे विध्वस्तकल्मषं ॥१॥

नित्याद्येकान्त-विध्वंसि मतं मतिमतां मतं ।
यस्य सः श्रीजिनः श्रेयान् श्रेयांसि वितनोतु नः ॥२॥
श्रीमच्छ्रीजिनचन्द्रस्य वर्द्धमानस्य शासनं ।
देवैर्दीप्तगुणैर्दृष्टमिष्टमत्राऽभिनन्दतु ॥३॥
जैनीं द्विसप्ततिं नत्वाऽतीतानागतवर्तिनीं ।
तत्त्वार्थसंग्रहं वक्ष्ये दृष्ट्वागमपरम्परां ॥४॥

अन्तभाग :—

श्रीवर्द्धमानस्य जिनस्य जातो मेदार्यनामा दशमो गणेशः ।
श्रीपूर्णतल्लांकि(छि)त-देह-संस्थो यत्राभवत्स्वर्गसमा धरित्री ॥८३॥
कल्पोद्भी(वी)रुहतुल्याश्च हारकेयूरमण्डिताः ।
जाता ज्ञाय(त)स्ततो ज्ञाता संघोऽसौ स्याद्वागडः ॥८४॥
जातस्तत्र सतां मित्रः पद्मसेनो महामुनिः ।
यच्छिष्यकिरणाः सर्वे संप्रतप्यन्ति दुस्सहाः ॥८५॥
श्रीधर्मसेनोऽजनि तत्र संघे दिगम्बरः श्वेततरैर्गुणैः स्वैः ।
व्याख्या सुदन्तांशुभिरुल्लसद्भिर्वस्त्रावृतो यः प्रतिभासते स्य(स्म)॥८६॥
भंजन्वादीन्द्रमानं पुरि पुरि नितरां प्राप्नुवन्नुद्यमानं
तन्वन् शास्त्रार्थदानं रुचि रुचि रुचिरं सर्वथानिर्निदानं ।
विद्यादर्शोपमानं दिशि दिशि विकिरन् स्वयं(स्वं) यशो योऽसमानं
तस्माच्छ्रीशान्तिषेणः समजनि सुगुरुः पाप-धूली-समीरः ॥८७॥
यत्रास्पदं विदधती परमागमश्रीरात्मन्यमन्यतसतीत्वमिदं तु चित्रं ।
वृद्धा च संततमनेकजनोपभोग्या श्रीगोपसेनगुरवाविरभूत्स तस्मात् ॥८८॥
उत्पत्तिस्तपसां पदं च यशसामन्यो रविस्तेजसा-
मादिः सद्वचसां विधिः सुतरसामासीन्निधिः श्रेयसां ।
आवासो गुणिनां पिता च शमिनां माता च धर्मात्मनां
च ज्ञातः कलिना जगत्सुकलिना श्रीभावसेनस्ततः ॥८९॥

ख्यातस्ततः श्रीजयसेननामा जातस्तपःश्रीक्षतदुःकृतौघः ।
सत्तर्कविद्यार्णव-पारदृश्वा विश्वासगेहं करुणास्पदानाम् ॥६०॥

आचार्यः प्रशमैकपात्रमसमः प्रज्ञादिभिस्वैर्गुणैः
पट्टे श्रीजयसेननामसुगुरोः श्रीब्रह्मसेनो यतिः ।
सज्जल्पाम्बुधिमध्यमग्नवपुषः शश्वद्विकल्पोर्मितः(भिः?)
जल्पाका परवादिनोऽत्र विकलाः के के न जाता हितौ ॥६१॥

तस्मादजायत गणी गुणिनां गरिष्ठो भव्याम्बुजप्रतिविकाशन-पद्मबन्धुः ।
कंदर्पदर्पदलने भुवनैकमल्लो विख्यातकीर्तिरवनौ कविवीरसेनः ॥६२॥

श्रीवीरसेनस्य गुणादिसेनो जातः सुशिष्यो गुणिनां विशेषः ।
शिष्यस्तदीयोऽजनि चारुचित्तः सद्दृष्टिवन्तो(वान)त्र नरेन्द्रसेनः ॥६३॥

गुणसेनोदयसेनौ जयसेनो सम्बभूवुराचार्याः ।
तेषां श्रीगुणसेनः सूरिर्जातः कलाभूरिः ॥६४॥

अतिदुःषमानिकटवर्तिनि कालयोगे नष्टे जिनेन्द्रशिवधर्मनि यो बभूव ।
आचार्यनामनिरतोऽत्र नरेन्द्रसेनस्तेनेदमागमवचो विशदं निबद्धम् ॥६५॥

इति श्रीसिद्धान्तसार(तत्त्वार्थ)संग्रहे आचार्यश्रीनरेन्द्रसेन-विरचिते द्वादशमः परिच्छेदः ॥१२॥

७७. द्रौपदी-प्रबंध (जिनसेन सूरि)

आदिभाग :—

स्रष्ट्रे (सृष्टेः) षोडशतीर्थाय कृतनामेति शान्तये ।
चक्रेशाय जिनेशाय नमः शान्ताय शान्तये ॥१॥
येन समदर्शं तीर्थं प्रावर्त्त पृथुकीर्त्तिना ।
तस्मै कुन्थुजिनेन्द्राय नमः प्राक्चक्रवर्त्तिने ॥२॥
नमोऽष्टादशतीर्थेन प्राणिनामिष्टकारिणे ।
चक्रपाणिजिनाऽराय निरस्तदुरितारये ॥३॥

भास्वते हरिवंशाद्रिश्रीशिखामणये नमः ।
द्वाविंशत्तीर्थसच्चक्रनेमयेऽरिष्टनेमये ॥४॥
त्रिहीननवकोटीनां मुनीनां पादपंकजान् ।
स्मरामि स्मरजेतॄणां तातॄणां भववारिधौ ॥५॥
गौतमः श्रीसुधर्मा च जंबाख्यो मुनिपुङ्गवाः ।
त्रयः केवलिनः पूज्या नित्यं नः सन्तु सिद्धये ॥६॥
सृष्टिः(ष्टेः) समयसारस्य कर्ता सूरिपदेश्वरः ।
श्रीमते(?) कुंदकुंदाख्यस्तनुते मे दुरांमतिः(?) ॥७॥
समन्तभद्रो भद्रार्थो भातु भारतभूषणः ।
देवागमेन येनाऽत्र व्यक्तो देवागमः कृतः ॥८॥*
यथा मूको विवक्षुः सन् याति हास्यं जगत्त्रये ।
तथा शास्त्रं विवक्षुः सन् लोकेऽहं हास्यभाजनम् ॥९॥
यथा जिगमिषुः पंगुः मेरुमूर्द्धानमुन्नतं ।
विहस्यते जनैः शास्त्रं चिकीर्षुश्चाहमंजसा ॥१०॥

अन्तभाग :—

द्वाविंशतिसमुद्रायुः अप्रचीचारसत्सुखं ।
कथिता जिनसेनेन द्रौपदीयप्रन्थधके ॥६४॥
वक्ता श्रोता प्रबन्धो शीलसंयुक्तभाग्यः
जिनकथितसुमार्गः क्रियते(?) भव्यराशिः । (···)
द्रौपद्याल्पचरित्रमेतदमिहं(ह) पिंडीकृतामासनैः(?)
चतुर्विंशति पंचशतानि गदिता सूरिस्य(?)जिनसेनवा(?) ॥६५॥

---

* भ० शुभचन्द्रके पाण्डवपुराण की प्रशस्तिमें भी यही श्लोक पाया जाता है (पृ० ४८)। और इस ग्रन्थके कर्ता जिनसेन कौनसे जिनसेन हैं तथा कब हुए हैं, यह अभी निर्णीत नहीं। आदिपुराण तथा हरिवंशपुराण-के कर्ता जिनसेनकी तो यह कृति मालूम नहीं होती।

७८. यशोधर-चरित (भ० सोमकीर्ति)

आदिभाग :—

प्रणम्य शंकरं देवं सर्वज्ञं जितमन्मथं ।
रागादिसर्वदोषघ्नं मोहनिद्रा-विवर्जितं ॥१॥
अर्हंतः परमाभक्त्या सिद्धान्सूरीश्वरांस्तथा ।
पाठकान् साधव(का)श्चेति नत्वा परमया मुदा ॥२॥
यशोधरनरेन्द्रस्य जनन्या सहितस्य हि ।
पवित्रं चरितं वक्ष्ये समासेन यथागमं ॥३॥
जिनेन्द्रवदनोद्भूतां नमामि शारदां परां ।
श्रीगुरुभ्यः प्रमोदेन श्रेयसे प्रणमाम्यहम् ॥४॥
यत्प्रोक्तं हरिषेणाद्यैः पुष्पदंतपुरस्सरैः ।
श्रीमद्वासवसेनाद्यैः शास्त्रस्यार्णवपारगैः ॥५॥
तच्चरितं मया नूनं बालेन शक्यते कथं ।
बाहुभ्यां सागरं घोरं केनापि तरितुं यथा ॥६॥
तेषां हि क्रमयोर्द्वंद्वं नमस्कृत्यातिभक्तितः ।
समुपार्ज्य महत्पुण्यं कुर्वे दूरेण पातकं ॥७॥

अन्तभाग :—

नंदीतटाख्यगच्छे वंशे श्रीरामसेनदेवस्य ।
जातो गुणार्णवैकश्च(वश्चैकः) श्रीमांश्च(मान्) श्रीभीमसेनेति॥६०॥
निर्मितं तस्य शिष्येण श्रीयशोधरसंज्ञकं ।
श्रीसोमकीर्तिमुनिना विशोध्याऽधीयतां बुधाः ॥६१॥
वर्षे षट्त्रिंशसंख्ये तिथिपरगण नायुक्तसंवत्सरे(१५३६) वै ।
पंचम्यां पौषकृष्णे दिनकरदिवसे चोत्तरास्थे(स्थे) हि चंद्रे ।
गोंढिल्यां मेदपाटे जिनवरभवने शीतलेन्द्रस्य रम्ये
सोमादिकीर्तिनेदं नृपवरचरितं निर्मितं शुद्धभक्त्या ॥६२॥

ग्रन्थाग्रं तु सहस्रैकमष्टादशसमन्वितं(१०१८)।
चरितेदं चिरं जीयात्सवित्रं पापनाशनं ॥६३॥
इति श्रीयशोधरचरिते श्रीसोमकीर्त्याचार्य-विरचिते अभयरुचिभट्टारक-स्वर्गगमनो नाम अष्टमः सर्गः ॥८॥ ग्रन्थाग्रन्थ १०१८ ॥
इति श्रीयशोधरचरितं समाप्तं।

७६. वर्धमानचरित (कवि असग)

आदिभाग :—

श्रियं त्रिलोकीतिलकायमानामात्यन्तकीं ज्ञातसमस्ततत्त्वम्।
उपागतं सन्मतिमुज्ज्वलोक्तिं वंदे जिनेन्द्रं हतमोहतंद्रम् ॥१॥

अन्तभाग :—

(प्रथम प्रशस्ति)

मुनिचरणरजोभिः सर्वदा भू(पू)तधान्यां, प्रणतिसमयलग्नैः पावनीभूतमूर्धा।
उपशमइवमूर्त्तः शुद्धसम्यक्त्वयुक्तः पद्मतिरितिनाम्ना विश्रुतः श्रावकोऽभूत्॥१
तनुमपि तनुतां यः सर्वपर्वोपवासैस्तनुमनुमप(पम?)धीः स प्रापयन्संचिनोति।
सततमपि विभूतिं भूयसीमन्नदान-प्रभृतिभिरुरुपुण्यं कुन्दशुभ्रं यशश्च ॥२॥
भक्तिं परामविरतां समपक्षपातामातन्वती मुनिनिकायचतुष्टयेऽपि।
वेरिक्तिरित्यनुपमा भुवि तस्य भार्या सम्यक्त्वशुद्धिरिव मूर्तिमती सदाऽभूत्॥३
पुत्रस्तयोरसग इत्यवदातकीर्त्योरासीन्मनीषिनिवहप्रमुखस्य शिष्यः।
चन्द्रांशुशुभ्रयशसो भुवि नागनंद्याचार्यस्य शब्दसमयार्णवपारगस्य ॥४॥

सद्वृत्तं दधता स्वभावमृदुना निःश्रेयसप्रार्थिना
साधूनां हृदयोपमेन शुचिना संप्रेरितः प्रेयसा।
एतत्सादरमाऽऽर्यनंदिगुरुणा सिद्धयै व्यधत्ताऽसगः
कीर्त्युत्कीर्तनमात्रचारुचरितं श्रीसन्मतेः सन्मतेः ॥५॥

इति वर्धमानचरित्रं समाप्तम् ॥*

---

* यह प्रशस्ति पिटर्सन साहबकी चौथी रिपोर्टमें प्रकाशित हुई थी

(द्वितीय प्रशस्ति)

कृतं **महावीरचरित्र**मेतन्मया पर-स्व-प्रतिबोधनार्थं ।
सप्ताधिकं त्रिंशभवप्रबंधं **पुरूरवाद्यन्तिमवीरनाथं** ॥१०३॥

वर्द्धमानचरित्रं यः प्रव्याख्याति श्रृणोति च ।
तस्येह परलोकेऽपि सौख्यं संजायते तराम् ॥१०४॥

संवत्सरे दशनवोत्तरवर्षयुक्ते(९१०) **भावादिकीर्तिमुनिनायक**पादमूले ।
मौद्गल्यपर्वतनिवासव्रतस्थसंपत्सच्छ्रावकप्रजनिते सति निर्ममत्वे ॥१०५॥
विद्या मया प्रपठितेत्य**सगाह्व**केन **श्रीनाथ**राज्यमखिलं-जनतोपकारि ।
प्राप्ते च **चौड**विषये **बरलान**गर्यां ग्रन्थाष्टकं च समकारि जिनोपदिष्टं॥१०६॥

इत्यसगकृते वर्द्धमानचरिते महाकाव्ये महापुराणोपनिषदि भगवन्निर्वाणगमनो नामाष्टादशः सर्गः* ॥

नोट—इन दोनों प्रशस्तियोंका विशेष ऊहापोह सम्पादक-द्वारा जैनहितैषी भाग ११ के अन्तर्गत 'पुरानी बातोंकी खोज' शीर्षक लेखमालामें किया गया है (देखो, उक्तलेखमालाका 'असगकृत वर्द्धमानचरित्रकी दो विभिन्न प्रशस्तियाँ' नामका ६ वाँ लेख, पृ० ३३६ से ३४३)।

और उन्होंने इसे संवत् १६७६ आश्विनमासकी लिखी उस प्रतिपरसे लिया था जो किसी समय मूलसंघी हर्षकीर्त्ति मुनिकी थी (देखो, रायल एशियाटिक सोसाइटी बम्बई ब्रांचके जर्नलका ऐक्स्ट्रा नम्बर, सन् १८९४)।

* यह प्रशस्ति आरा जैनसिद्धान्तभवनकी एक ताडपत्रीय प्रतिपरसे ली गई है, जिसका प्रथम-सर्गात्मक आदिभाग खण्डित है। बम्बई के मन्दिरकी प्रतिमें भी यह प्रशस्ति साधारणसे पाठभेद तथा कुछ अशुद्धियों-के साथ पाई जाती है।

८०. शान्तिनाथ-पुराण (कवि असग)

आदिभाग :—

श्रियं समग्रलोकानां पायिनीमनपायिनीं ।
बिभ्रतेऽपि नमस्तुभ्यं वीतरागाय शान्तये ॥१॥
अशेषभव्यसत्वानां संसारार्णवतारणं ।
भक्त्या रत्नत्रयं नौमि विमुक्तिसुखकारणं ॥२॥
लीलोत्तीर्णाखिलामेयविपुलज्ञेयसागरान् ।
इन्द्राभ्यर्च्यान् यतीन् वन्दे शुद्धान् गणधरादिकान् ॥३॥
सुमेधोभिः पुरा गीतं पुराणं यन्महात्मभिः ।
तन्मया शान्तिनाथस्य यथाशक्ति प्रवक्ष्यते ॥४॥

अन्तभाग :—

मुनिचरणरजोभिः सर्वदाभू(पू ?)तवाच्यां प्रणतिसमयलग्नैः पावनीभूतमूर्द्धा
उपशम इव मूर्तः शुद्धसम्यक्त्वयुक्तः पद्मतिरिति नाम्ना विश्रुतः श्रावकोभूत् ।
तनुमपि तनुतां यः सर्वपर्वोपवासैस्तनुमनुपमधीः स प्रापयन् संचिनोति
सततमपि विभूतिं भूयसीमन्नदानप्रभृतिभिरुपुण्यं कुंदशुभ्रं यशश्च ॥२४३॥
भक्तिं परामविरतां समयद्वपातामानन्वती मुनिनिकायचतुष्टयेऽपि ।
चैरेतिरित्यनुपमा भुवि तस्य भार्या सम्यक्त्वशुद्धिरिव मूर्तिमती पराऽभूत्॥२४४
पुत्रस्तयोरसग इत्यवदातकीर्त्तीरासीन्मनीषिनिवहप्रमुखस्य शिष्यः ।
चंद्रांशुशुभ्रयशसो भुवि नागनंद्याचार्यस्य शब्दसमयार्णवपारगस्य ॥२४५॥
तस्याऽभवद्भव्यजनस्य सेव्यः सखा जिनाप्यो जिनधर्मसक्तः ।
ख्यातोऽपि शौर्यात्परलोकभीरुर्द्विजातिनाथोऽपि विपक्षपातः ॥२४६॥
व्याख्यानशीलत्वमवेक्ष्य तस्य श्रद्धां पुराणेषु च पुण्यबुद्धेः ।
औचित्यहीनोऽपि गुरौ निबंधे तस्मिन्नहासीदसगः प्रबन्धम् ॥२४७॥
चरितं विरचय्य सन्मतीयं सदलंकारविचित्रवृत्तबंधं ।
स पुराणमिदं व्यधत्त शान्तेरसगः साधुजनप्रमोद-शान्त्यै ॥२४८॥

इत्यसग-कृतौ शान्तिपुराणे भगवतो निर्वाणगमनो नाम षोडशः सर्गः ॥१६॥ [जयपुर प्रति

८१. जिनेन्द्र-कल्याणाभ्युदय (अप्रयपार्य)

आदिभाग :—

लक्ष्मीं दिशतु वो यस्य ज्ञानादर्शे जगत्त्रयं ।
व्यदीपि स जिनः श्रीमान् नाभेयो नौरिवाम्बुधौ ॥१॥
मांगल्यमुत्तमं जीयाच्छरण्यं यद्वजोहरं ।
नि(नी)रहस्यमरिष्टनेमितत्पंचब्रह्मात्मकं महः ॥२॥
दोषसंतापशमनी वाग्ज्योत्स्ना जिनचन्द्रजा ।
वर्धयन्ती श्रुताम्भोधि स्वान्तध्वान्तं धुनोतु नः ॥३॥
मोक्षलक्ष्म्या कृतं कंठहार-नायक-रत्नतां ।
रत्नत्रयं नुमः सम्यग्दर्शनाचारलक्षणं ॥४॥
स्याद्वादाकाशपूर्णेन्दुर्भव्याम्भोरुहभानुमान् ।
दयागुणसुधाम्भोधिर्धर्मः पायादिहार्हतां ॥५॥
अहिंसा-सूनृत-स्तेय-ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहं ।
सर्वपापप्रशमनं वर्धतां जिनशासनं ॥६॥
पंचकल्याणसम्पूर्णः पंचमज्ञानभासुरः ।
वः पंचगुरवः पान्तु पंचमीगतिसाधकाः ॥७॥
वृषभादीनहं वर्धमानान्तान् जिनपुंगवान् ।
चतुर्विंशतितीर्थेशान् स्तुवे त्रैलोक्यपूजितान् ॥८॥
वन्दे वृषभसेनादीन् गणिनो गौतमान्तिमा(का)न् ।
श्रुतकेवलिनः सूरीन् मूलोत्तरगुणान्वितान् ॥९॥
अनुयोगचतुष्कादिजिनागमविशारदान् ।
जातरूपधरान्स्तोष्ये कविवृन्दारकान् गुरून् ॥१०॥

अर्हदादीनभीष्टार्थसिद्धयै शुद्धित्रयान्वितः ।
स्तुत्यानन्तगुणोपेतान् ध्यात्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ॥११॥
श्रीमत्समंतभद्रादिगुरुपर्वक्रमागतः ।
शास्त्रावतारसम्बन्धः प्रथमं प्रतिपाद्यते ॥१२॥
पुरा वृषभसेनेन गणिना वृषभार्हतः ।
अवधार्याऽभ्यधाय्येतद्भरतेश्वरचक्रिणे ॥१३॥
ततोऽजितजिनेन्द्रादितीर्थकृद्भ्योऽवधार्य गां ।
तत्तद्गणधरा लोके धार्मिकाणामिहाऽब्रुवन् ॥१४॥
ततः श्रीवर्द्धमानार्हद्गिरमाकर्ण्य गौतमः ।
राज्ञे लोकोपकारार्थं श्रेणिकायाऽब्रवीद्गणिः ॥१५॥
तस्माद्गणभृदाचार्यानुक्रमसमागतः ।
नाम्ना जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयोऽयमिहोच्यते ॥१६॥
सेन-वीर-सुवीर्य-भद्र-समाख्यया मुनिपुंगवाः
नन्दि-चंद्र-सुकीर्ति-भूषण-संज्ञया मुनिसत्तमाः ।
सिंह-सागर-कुंभ-आस्रवनामभिर्यतिनायकाः
देव-नाग-सुदत्त-तुंग-समाह्वयैर्मुनयोऽभवन् ॥१७॥
तेभ्यो नमस्कृत्य मया मुनिभ्यः शास्त्रोदधिसूक्तिमणींश्च लब्ध्वा ।
हारं विरच्यार्यजनोपयोग्यं जिनेन्द्रकल्याणविधिर्व्यधायि ॥१८॥

वीराचार्य-सुपूज्यपाद-जिनसेनाचार्य-संभाषितो
यः पूर्वं गुणभद्रसूरि-वसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यर्जितः ।
यश्चाशाधर-हस्तिमल्ल-कथितो यश्चैकसंधिस्ततः ।
तेभ्यः स्वाहृत्सारमध्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः ॥१९॥
तर्क-व्याकरणागमादि-लहरीपूर्ण-श्रुताम्भोनिधेः
स्याद्वादाम्बरभास्करस्य धरसेनाचार्यवर्यस्य च ।
शिष्येणाऽध्यपकोविदेन रचितः कौमारसेनेर्मुनेः
ग्रंथोऽयं जयताज्जगत्त्रयगुरोर्बिम्बप्रतिष्ठाविधिः ॥२०॥

पूर्वस्माद् परमागमात्समुचितान्यादाय पद्यान्यहं
तत्र प्रस्तुतसिद्धयेऽत्र विलिखाम्येतन्न दोषाय तत् ।

कल्याणेषु विभूषणानि धनिकादानीय निष्किंचनः
शोभार्थं स्वतनुं न भूषयति किं साराजते नाऽस्य तैः ॥२१॥

जिनेन्द्र-वाणी-मुनिसंघ-भक्त्या जिनेन्द्रकल्याणनुतिं पठित्वा ।
जिनेन्द्रपूजां रचयन्ति तेऽमी जिनेन्द्रसिद्धिश्रियमाश्रयन्ति ॥२२॥

इति विद्यानुवादांगविश्रुतजिनसंहिताश्रयोपासकाध्ययनेऽर्हत्प्रतिष्ठासार-संग्रहे जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदये शास्त्रावतारसम्बन्धो नाम प्रथमाऽभ्युदयः ॥१॥

अन्तभाग :—

नमस्कृत्य जिनं वीरं नृसुरासुर-पूजितं ।
गुरुणामन्वयं वक्ष्ये प्रशस्तगुणशालिनाम् ॥१॥
श्रीमूलसंघव्योम्नेन्दुर्भारते भावितीर्थकृद् ।
देशे **समन्तभद्रार्यो** जीयात्प्राप्तपदर्द्धिकः ॥२॥
तत्त्वार्थसूत्रव्याख्यान-गंधहस्ति-विधायकः ।
स्वामी समन्तभद्रोऽभूद्देवागमनिदेश(दर्श)कः ॥३॥
अवटुतटमटति झटिति स्फुटपटुवाचाटधूर्जटेर्जिह्वा ।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितिवति का कथाऽन्येषाम् ॥४॥
शिष्यौ तदीयौ शिवकोटिनामा शिवायनः शास्त्रविदां वरेण्यौ ।
कृत्स्नश्रुतं श्रीगुरुपादमूले ह्यधीतवन्तौ भवतः कृतार्थौ ॥५॥
तदन्वयेऽभूद्विदुषांवरिष्ठः स्याद्वादनिष्ठः सकलागमज्ञः ।
श्रीवीरसेनोऽजनि तार्किकश्रीर्विध्वस्तरागादिसमस्तदोषः ॥६॥
यस्य वाचा प्रसादेन ह्यमेयं भुवनत्रयं ।
आसीदष्टांगरूपेण गणितेन प्रमाणितं(नैमित्तज्ञानरूपं विदां वरं) ॥७॥
तच्छिष्यप्रवरो जातो **जिनसेन**मुनीश्वरः ।
यद्वाग्भवं पुरोरासीत्पुराणं प्रथमं भुवि ॥८॥

तदीयप्रियशिष्योऽभूत गुणभद्रः मुनीश्वरः ।
शलाकापुरुषा यस्य सूक्तिभिर्भूषिताः सदा ॥९॥
गुणभद्रगुरोस्तस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते ।
यस्य वाक्सुधया भूमावभिषिक्ता जिनेश्वराः ॥१०॥
तच्छिष्यानुक्रमे याते संख्येये विश्रुतो भुवि ।
गोविन्दभट्ट इत्यासीद्विद्वान्मिथ्यात्ववर्जितः ॥११॥
देवागमनसूत्रस्य भित्त्या सद्दर्शनान्वितः ।
अनेकान्तमतं तत्त्वं बहुमेने विदांवरः ॥१२॥
नन्दनास्तस्य संजाता वर्धितास्विलकोविदः ।
दाक्षिणात्याटयन् तत्र स्वर्णयक्षीप्रसादतः ॥१३॥
श्रीकुमारकवित्तध्यवाक्यो देवरवल्लभः ।
उद्यद्भूषनामा च हस्तिमल्लाभिधानकः ॥१४॥
वर्धमानकविश्चेति षडभूवन् कवीश्वराः ।
सम्यक्त्वं स परीक्षितुं मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे-
श्चास्याः पाण्डयमहीश्वरेण कपटाद्धन्तुं स्वमभ्यागते ।
शैलूषं जिनमुद्रधारिणमपास्यासौ मदध्वंसिना
श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सूरिभिः ॥१५॥

तद्यथाः-तिर्यक् पश्यति पृष्ठतोपसरति स्तब्धे करोति श्रुती
शिक्षां न क्षमते शिरो विधुनते घंटास्वनादिर्घ्यति ।
संदिग्धप्रतिहस्तिनं निजमदस्याघ्राय गंधं स्वयं
क्षामां हन्ति करेण याति न वशः क्रोधोद्धुरः सिन्धुरः ॥१६॥

सोऽयं समस्तजगदूर्जितचारुकीर्तिः स्याद्वादशासनरमाश्रितशुद्धकीर्तिः ।
जीयादशेषकविराजकचक्रवर्ती श्रीहस्तिमल्ल इति विश्रुतपुण्यमूर्तिः ॥१७॥

तस्यान्वये वरगुणो गुणवीरसूरिः ।
सद्वृत्ततपोबल-विनिर्जित-स्मरारिः ॥१८॥

धर्मामृताम्बुभृत्सूक्तनरो विहारी ।
जैनो मुनिर्जयतु भव्यजनोपकारी ॥१९॥
आसीत्तत्प्रियशिष्यः कामक्रोधादिदोषरिपुविजयी ।
श्रीपुष्पसेननामा मुनीश्वरः कोविदैकगुरुः ॥२०॥
श्रीमूलसंघ-भव्याब्ज-भानुमान् विदुषां पतिः ।
पुष्पसेनार्यवर्योऽभूत्परमागमपारगः ॥२१॥
यश्चार्वाकानजैषीत् सुगत-कणभुजोर्वाक्यभंगीरभांजी-
दक्ष्येपीदक्षपादोदितमतमतनीतपारमर्षापकर्षं(?) ।
शोभां प्राभाकरीं तामपहृतविमतां भाट्ट-विद्यां मनीषी
देवोऽसौ पुष्पसेनो जगति विजयते वर्धितार्हन्मतश्रीः ॥२२॥
तच्छिष्योऽन्यमतान्धकारमथनः स्याद्वादतेजोनिधिः
साद्वाद्राधवपाण्डवीयकविताकान्तारमूढात्मनाम् ।
व्याख्यानांशुचयैः प्रकाशितपदन्यासो विनेयात्मनां
स्वान्ताम्भोजविकाशको विजयते श्रीपुष्पसेनार्यमान् ॥२३॥
श्रीमद्धर्मे गुणानां गणमिह दयया सम्यगारोप्य रूढो
बाह्यान्तस्सत्तपोऽश्वं व्रतनियमरथं मार्गणैर्गुणांकैः ।
लक्षीकुर्वन् न लक्ष्यं मनसिजमजयन् मोक्षसंदानचित्त-
स्त्रैलोक्यं शासितारं जयति जिनमुनिः पुष्पसेनः सधर्मा ॥२४॥
पुष्पसेनमुनिर्भाति भीमसेनइवाऽपरः ।
बृहत्त्याग-दया-युक्तो दुःशासनमदापहः ॥२५॥
बाणस्तपो धनुर्धर्मो गुणा नामावलिर्गुणः ।
पुष्पसेनमुनिर्धन्वी शरव्यं पुष्पकेतनः ॥२६॥
तं पुष्पसेनदेवं कलिकालगणेश्वरं सदा वन्दे ।
यस्य पदपद्मसेवा विबुधानां भवति कामदुघा ॥२७॥
तदीयशिष्योऽजनि दाक्षिणात्यः श्रीमान्द्विजन्मा भिषजांवरिष्ठः ।
जिनेन्द्रपादाम्बुरुहैकभक्तः सागारधर्मः करुणाकराख्यः ॥२८॥

तस्यैव पत्नी कुलदेवतेव पतिव्रतालंकृतपुण्यलक्ष्मीः ।
यदकमाम्बा जगति प्रतीता चारित्रमूर्तिर्जिनशासनोत्का ॥२९॥
तयोरासीत्सूनुस्सदमलगुणाढ्यः सविनयो
जिनेन्द्र-श्रीपादाम्बुरुह-युगलाराधनपरः ॥
अधीतिः शास्त्राणामखिलमणिमन्त्रौषधकतां ।
विपश्चिन्निर्णेता नयविनयवानाऽऽर्य इति यः ॥३०॥
श्रीमूलसङ्घकथिताखिलसन्मुनीनां श्रीपादपद्मसरसीरुहराजहंसः ।
स्याद्वयपार्य इति काश्यपगोत्रवर्यो जैनाख्यपाकवरवंशसमुद्रचन्द्रः ॥३१॥
प्रसन्नकविवृतैः प्रवचनांगविद्यामृतैः परमतत्त्वधर्मामृतैः सुधाकर इवाऽपरो-
ऽखिलकराभिरामः सदा चकास्ति सुकृतोदयः कुवलयोत्सवः श्रीयुतः ॥३२॥

कवितानाम काप्यन्या सा विदग्धेषु रज्यते ।
केपि कामयमानास्तां क्लिश्यंते हन्त बालिशाः ॥३३॥
स्वस्त्यस्तु सज्जनेभ्यो येषां हृदयानि दर्पणसमानानि ।
दुर्वचन-भस्म-संगादधिकतरं यान्ति निर्मलताम् ॥३४॥
स्वस्त्यस्तु दुर्जनेभ्यो यदीयभीत्या कविवृजाः सर्वे ।
रचयन्ति सरससूक्तिं कवित्वरचनासु ये कृतिषु ॥३५॥
असतां संगपंकेन यदंगं मलिनीकृतं ।
तदहं धौतुमिच्छामि साधुसंगतिवारिणा ॥३६॥
सुस्वरत्वं सुव्रतत्वं साहित्यं भाग्यसंभवं ।
बलात्कारेण यन्नीतं स्वाधीनं नैव जायते ॥३७॥
शब्दशास्त्रमपि काव्यलक्षणं छंदसः स्थितिमजानता धृ(कृ?)तिः ।
अय्यपार्य-विदुषा विनिर्मिता कृतवरप्रसादतः(?)॥३८॥
शाकाब्दे विधुवाधिनेत्रहिमगो(१२४१)सिद्धार्थसम्वत्सरे
माघे मासि विशुद्धपक्षदशमी-पुष्पर्क्षवारेऽहनि ।
ग्रंथो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभाक्
संपूर्णोऽभवदेकशैलनगरे श्रीपालबन्धू(नन्धू वा बन्धः?)र्जितः ॥३९॥

इति सकलतार्किक-चक्रवर्ति-समन्तभद्र-मुनीश्वर-प्रमुख-कविवृन्दारक-वृन्द-मानस-सरोवर-राजहंसायमानार्हत्प्रतिमाभिषेक-विशेष-विशिष्ट-गंधोदक-पवित्रीकृतोत्तमाङ्गेन अव्यपायेन श्रीपुष्पसेनार्योपदेशक्रमेण सम्यग्विचार्य पूर्वशास्त्रेभ्यः सारमुद्धृत्य विरचितः श्रीमज्जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयापरनामधेयोऽयं त्रिंशदभ्युदयो ग्रंथः समाप्तः ॥ (ग्रन्थ-श्लोकसंख्या ३५६०)

[श्रवणबेल्गोल-दौर्बलिशास्त्रि-प्रति

८२. धन्यकुमार-चरित्र (भ० गुणभद्र)

आदिभाग :—

स्वयंभुवं महावीरं लब्धाऽनंतचतुष्टयं ।
शतेन्द्रप्रणतं वन्दे मोक्षाय शरणं सताम् ॥१॥
प्रणमामि गुरूंश्चैव सर्वसत्वाऽभयंकरान् ।
रत्नत्रयेण संयुक्तान्संसारार्णवतारकान् ॥२॥
दिश्यात्सरस्वती बुद्धिं मम मन्दधियो दृढां ।
भक्त्यानुरंजिता जैनी मातेव पुत्रवत्सला ॥३॥
स्याद्वादवाक्यसंदर्भं प्रणम्य परमागमम् ।
श्रुतार्थभावनां वक्ष्ये कृतपुण्येन भाविताम् ॥४॥
क्षमंतु सज्जनाः सर्वे ये समंजस-बुद्धयः ।
शोधयंतु पदं दुष्टं विशुद्धं स्थापयन्तु ते ॥५॥

× × ×

अन्तभाग :—

इति धन्यकुमारचरिते तत्त्वार्थभावनाफलदर्शके आचार्यश्रीगुणभद्र-कृते भव्य-वल्हण-नामांङ्किते धन्यकुमार-शालिभद्रयति-सर्वार्थसिद्धिगमनो नाम सप्तमः परिच्छेदः ॥७॥

यः संसारमसारमुन्नतमतिर्ज्ञात्वा विरक्तोऽभव-
द्धत्वा मोहमहाभटं शुभमना रागांधकारं तथा ।

आदर्त्येति महाव्रतं भवहरं माणिक्यसेनो मुनि-
र्नैर्ग्रन्थ्यं सुखदं चकार हृदये रत्नत्रयं मण्डनं ॥१॥
शिष्योऽभूत्पदपंकजैकभ्रमरः श्रीनेमिसेनो विभु-
स्तस्य श्रीगुरुपुंगवस्य सुतपाश्चारित्रभूषान्वितः ।
कामक्रोधमदान्ध-गन्धकरिणो ध्वंसे मृगाणांपतिः
सम्यग्दर्शन-बोध-साम्य-निचितो भव्यांऽबुजानां रविः ॥२॥
आचारं समितीर्दधौ दशविधं धर्मं तपः संयमम्
सिद्धान्तस्य गणाधिपस्य गुणिनः शिष्यो हि मान्योऽभवत् ।
सैद्धान्तो गुणभद्रनाममुनिपो मिथ्यात्व-कामान्तकृत्
स्याद्वादामलरत्नभूषणधरो मिथ्यानयध्वंसकः ॥३॥
तस्येयं निरलंकारा ग्रन्थाकृतिरसुन्दरा ।
अलंकारवता दृष्या सालंकाराकृता न हि ॥४॥
शास्त्रमिदं कृतं राज्ये राज्ञो श्रीपरमार्दिनः ।
पुरे विलासपूर्वे च जिनालयैर्विराजिते ॥५॥
यः पाठयति पठत्येव पठन्तमनुमोदयेत् ।
स स्वर्गं लभते भव्यः सर्वान्हसुखदायकं ॥६॥
लम्बकंचुकगोत्रोऽभूच्छुभचन्द्रो महामनाः ।
साधुः सुशीलवान् शान्तः श्रावको धर्मवत्सलः ॥७॥
तस्य पुत्रो बभूवाऽत्र बल्हणो दानवान्वशी ।
परोपकारचेतस्को न्यायेनार्जित-सद्धनः ॥८॥
धर्मानुरागिणा तेन धर्मकथा-निबन्धनं ।
चरितं कारितं पुण्यं शिवायेति शिवार्थिनः ॥९॥

इति धन्यकुमारचरित्रं पूर्णं जातं ॥

[देहली-पंचायती-मन्दिर प्रति

८३. सिद्धिविनिश्चय-टीका (आचार्य अनन्तवीर्य)

आदिभाग :—

अकलङ्कं जिनं भक्त्या गुरुं देवीं सरस्वतीं ।
नत्वा टीकां प्रवक्ष्यामि शुद्धां सिद्धिविनिश्चये ॥१॥
अकलंकं वचःकाले कलौ न कलयाऽपि यत् ।
नृषु लभ्यं क्वचिल्लब्ध्वा तत्रैवाऽस्तु मतिर्मम ॥२॥
देवस्याऽनन्तवीर्योऽपि पदं व्यक्तुं तु सर्वतः ।
न जानीतेऽकलंकस्य चित्रमेतत्परं भुवि ॥३॥
अकलंकवचोऽम्भोधेः सूक्तरत्नानि यद्यपि ।
गृह्यन्ते बहुभिः स्वैरं सद्रत्नाकर एव सः ॥४॥
सर्वधर्म[स्य] नैरात्म्यं कथयन्नपि सर्वथा ।
धर्मकीर्तिः पदं गच्छेदाकलंकं कथं ननु ॥५॥

शास्त्रस्यादौ तदविघ्नप्रसिद्धिप्रथनादिकं फलमभिसमीक्ष्य **सर्वज्ञमित्यादिमंगलमाह** । तस्यायमर्थः ।

(इसके बाद "सर्वज्ञं सर्वतत्त्वार्थ-स्याद्वादन्यायदेशिनं । श्रीवर्द्धमानमभ्यर्च्य वक्ष्ये सिद्धिविनिश्चयम्" मूलके इस मंगलपद्यका अर्थ तथा व्याख्यान है और फिर प्रथम प्रस्तावके अन्यपद्योंकी टीका है) ।

इति श्रीरविभद्रपादोपज्ञोऽनन्तवीर्य-विरचितायां सिद्धिविनिश्चयटीकायां प्रत्यक्षसिद्धिः प्रथमः प्रस्तावः ॥१॥

अन्तभाग :—

"यथेन्द्र इत्यादि निदर्शनमत्रैवेत्थं भूतस्येत्यादिना शास्त्रार्थमुपसंहरन्नाह—तदेवमित्यादि शास्त्रान्ते मंगलमाह—जीयादित्यादि ॥

इति सिद्धिविनिश्चयटीकायामनन्तवीर्यविरचितायां निक्षेपसिद्धिर्द्वादशमः प्रस्तावः समाप्तः ॥

(इसके आगे ग्रन्थदान-प्रशस्ति है । टीकाकारकी कोई प्रशस्ति नहीं) ।

[कच्छदेशस्थ कोडायग्रामकी प्रति परसे पुरातत्त्वमन्दिर अहदाबादमें कराई गई प्रति

८४. प्रायश्चित्तसमुच्चय-सचूलिक-वृत्ति (श्रीनन्दिगुरु)

आदिभाग :—

शुद्धात्मरूपमापन्नं प्रणिपत्य गुरोर्गुरुं ।
निबन्धनं विधास्येऽहं प्रायश्चित्तसमुच्चये ॥१॥
× × × ×
प्रणम्य परमात्मानं केवलं केवलेक्षणं ।
मयाऽभिधास्यते किंचिच्चूलिकाविनिबन्धनम् ॥२॥

अन्तभाग :—

यः श्रीगुरूपदेशेन प्रायश्चित्तस्य संग्रहः ।
दासेन श्रीगुरोर्दग्धो भव्याशय-विशुद्धये ॥१॥
तस्यैषानूदितावृत्तिः श्रीनंदिगुरुणा हि सा ।
विरुद्धं यदभूदत्र तत्क्षाम्यतु सरस्वती ॥२॥
प्रवरगुरुगिरीन्द्र-प्रोद्गता वृत्तिरेषा सकलमलकलंकक्षालनी सज्जनानां ।
सुरसरिदिव शश्वत्सेव्यमाना द्विजेन्द्रैः प्रभवतु जननूना यावदाचन्द्रतारं ॥३॥
समाप्तोऽयंग्रन्थः । (वृत्तिसंख्या प्रायः २००० श्लोकपरिमाण है)

८५. योगसंग्रहसार (श्रीनन्दिगुरु)

आदिभाग :—

भद्रं भूरिभवाम्भोधि-शोषिणे दोषमोषिणे ।
जिनेशशासनायाऽलं कुशासनविशासिने ॥१॥
संयमोद्दाममारामश्रीगुरोः पादपंकजम् ।
वंदे देवेन्द्र-वृन्दोद्यन्मौलिमालाकरार्चितम् ॥२॥
योगीन्द्रो. रुद्रयोगाग्नि-दग्धकर्मेन्धनोऽङ्गिनाम् ।
विश्वज्ञो विश्वदृश्वाऽस्तु मंगलं मंगलार्थिनाम् ॥३॥

सद्वाग्वृत्त-पदन्यास-वर्णालंकारहारिणी।
सन्मार्गाङ्गि सदैवाऽस्तु प्रसन्ना नः सरस्वती ॥४॥
यस्माद्ध्यानं बुधैरिष्टं साक्षान्मोक्षस्य साधनम्।
अतो मोक्षार्थिभव्येभ्यस्तदेवाऽस्माभिरुच्यते ॥५॥

अन्तभाग :—

विपुल-वाङ्मय-वारिधि-तत्वसन्मणि-मयूख-लवांशकलाकृतः।
स्मरणमात्रमिदं गदितं मया किमिह दृष्टमहो न महात्मभिः ॥१७६॥
नानोपदेशकोशोऽयं सरस्वत्या मदर्पितः।
भव्यैराधीयमानोऽपि सर्वदास्त्वक्षयस्थितिः ॥१७७॥
श्रीनन्दनन्दिवत्सः श्रीनन्दीगुरुपदाब्जषट्चरणः।
श्रीगुरुदासो नन्द्यान्मुग्धमतिश्रीसरस्वतीसूनुः ॥१७८॥
इति श्रीनन्दिगुरुकृतः योगसंग्रहसारः समाप्तः।

८६. भावशतक (कवि नागराज)

आदिभाग :—

शुभ्रं क्वचित्क्वचिदतीवसितेतराभं क्वापि प्रफुल्लनवपल्लवसन्निकाशं।
तत्तं क्वचित्क्वचन शीतलमस्तु वस्तु कैवल्यसंस्तुतिपथानुगतं मुदे वः ॥१॥
नागराजशतग्रंथं नागराजेन तन्वता।
अकारि गतवक्त्र(क्त्र)श्रीर्नागराजो गिरांगुरुः ॥२॥
वसंतकाले चकिता नतांगी विशाय चक्रीकृतचापदंडं।
मनोभवं सौरभशोभमानैरपूरयत् पाणियुगं प्रसूनैः ॥३॥

अन्तभाग :—

आसीत्कार्पटिगोत्रसागर-सुधाधामो मुनिः श्रीधनः
श्रीविद्याधरइत्यशेषभुवन-प्रख्यातनामामृतः।

यः केदार-पदारविंद-युगल-प्रत्यग्रपूजाविधिः
प्राप्ताशेषपवित्रभव्यविभवैः सार्थीकृतार्थी(र्थि!)श्रमः ॥९७॥
तत्पुत्रः सर्वमित्रं सुरसकविकुलश्रूयमाणोनुकीर्तिः ।
प्रख्यातोद्यालपादो जगति विजयते शङ्करेशारतंसः ॥
विष्णुर्दैत्येन्द्रयुद्धविततिकरसफलवृत्तकुतरता(?) स्वभार्यां
लक्ष्मीं निक्षिप्य यस्मिन् विरहति दनशः(?)स्वेच्छया स्वस्थचित्तः॥९८॥
तस्माज्जातसुजातो निजगुणमणिभिः प्रीणिताशेषलोकः
केकाहंकारिकारिस्मितमहिषसुखेष्टंकवंशावतंसः ।
भात श्रीनागराजो परनृपतिशिरो दर्शितोद्यत्प्रतापो
राजेतेयं(?)समेते विगलितकलहे वाद्युपघ्नालया(?) च ॥९९॥
भारत्ययदिपूरत्वामामरतरुजाते(?) विवादोस्ति चेत्
सांगत्वं यदिमन्मथे सकलता नित्यं शशांके यदि ।
सिंहे चेन्नरसा जितारियशसो भावच्चूडामणे(?)
स्तस्तद्गुणतोषमानघटनागराजप्रभो(?) ॥१००॥
यस्तीक्ष्णायधीर(?) दुर्द्धरमहाकौन्तेयकाक्षेपणा(?)
क्षुभ्यद्व्यापति वल्लवोदरदरोनिशिन्नगर्भायते(?) ।
सोऽयं दुर्जयदाभुयंगनियत(?)प्रौढप्रता[पा]नल-
ज्वालाज्वालखिलीकृतानागरः(?) श्रीनागराजो जयी ॥१०१॥
इतिश्रीनागराजकृतं भावशतकं सम्पूर्णं ॥

[बम्बई ऐ०प०स० प्रति

नोट—यह प्रति बहुत ही अशुद्ध लिखी हुई है तथा त्रुटियोंसे पूर्ण है।

८७. तत्त्वसार-टीका (भ० कमलकीर्ति)

आदिभाग :—

यद्ज्ञानं विश्व-भावार्थ-दीपकं संशयादि-हृत् ।
तं वन्दे तत्त्वसारज्ञं देवं सर्वविदांवरं ॥१॥

सर्वविद्-हिमवदुत्क-सरो-द्वार-विनिर्गता ।
वाग्गंगा हि भवत्वेषा मे मनोमलहारिणी ॥२॥
गुरूणां पादपद्मं च मुक्तिलक्ष्मीनिकेतनं ।
मे हृत्सरसि सानंदं क्रीडतामन्तरायहृत् ॥३॥
पुनः श्रीगौतमादीनां स्मृत्वा चरणपंकजे ।
वक्ष्ये श्रीतत्वसारस्य वृत्तिं संक्षेपतो मुदा ॥४॥

स्वस्ति । अथ श्रीनेमीश्वरमहातीर्थादियात्राविहारकर्म्मविधाय द्वयाद्यच्च (?) च श्रीय(प?)थपुरमागत्य महामहोत्सवपूर्वकं धर्मोपदेशं कुर्वतः स सतो मे यथा भेदेतररत्नत्रयात्मकमोक्षमार्ग-भावनां भाव्य तथैत्वदाम्न (?) क्षमीकृतपरमार्थतरपलक्षणेन ठ० श्रं(सं)तोषतनयेन सतिमयेन ठ० श्रीलषूनाम-धेयेनेदं वचः प्रोक्तं—भो कृपावारिसागर चतुर्गतिसंसारांबुधियान भट्टारकश्री-कमलकीर्तिदेव चतुर्विधसंघकृतसेव संसारशरीरभोगनिर्म्ममो मदीयो सामोऽयं तत्त्वाऽतत्त्व-हेयोपादेय-परिज्ञानलालसः ठ० श्रीअमरसिंहो वरीवर्तितस्तत्त्वो-पदेशेन बोध्यते चेत्तदा चरमिताकण्यांकुलीभूतमानसे[न]मुहुर्विमृश्याल्पमति-नाऽपि मया चिंतितमिति। सर्व्वविद्योक्ततत्त्वोपदेशे पुण्यं भविष्यति । पुण्येन तत्तत्त्वोसारोपदेशाख्यं शास्त्रं सम्पूर्णं भविष्यतीति मत्वा तत्त्वसारविस्तराऽवतारं भावनाग्रंथं कर्तुं समुद्यतोऽहमभव ॥छ॥ अथासन्नीकृतोपारसंसारतीरेण अन्त-र्भावित-सकलविमलकेवलज्ञानमूर्ति-सर्व्वविन्महावीरेण समाविष्कृतसमय-सार-चारित्रसार-पंचास्तिकायसार-सिद्धान्तसारादिसारेण समूरीकृत-बाह्याभ्यंतरदुर्द्धरद्वादशविधतपोभारेण समभ्यसितसम्यक्त्वाद्यष्टगुणालंकृत-परमात्मस्वभावेन तिरस्कृतासंसारायाताज्ञानोद्भव-लोकमात्रसंकल्पविकल्पा-त्मकविभावेन भस्मीकृतद्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्ममलकलंकानां सिद्धानां द्रव्यभावरूपं स्तुतिं कर्त्तुकामेण भेदोऽभेदरत्नत्रयानुभवोद्भवसम्यग्ज्ञानमहा-धामेन आसंसारप्रधावित-मोहमहाराजशीघ्रगामितं मसंग्निलित(?) पदमायमा-नादिमिथ्यादर्शनाज्ञानाविरतिभावादिविषयकषायठकपेटकदुर्ज्जयनिर्ज्जायसर्वविं-द्वीतरागोपदिष्टागमाध्यात्मसिद्धांतशास्त्राऽवतारितोपयोगेन समीप्सितसाक्षाद्धुपे-

यसंसिद्धिशिष्टाचार-प्रपालन-नास्तिक[ता]परिहार-निर्विघ्नपरिसमत्ती(प्तौ) ति फलचतुष्टयेन स्वगततत्त्वपरगततत्त्वभेदभिन्नं तत्त्वसाराख्यं ग्रन्थमहं प्रवक्ष्यामीति कृतप्रतिज्ञेन परमाराध्यपरमपूज्यभट्टारकश्रीदेवसेनदेवेन सूत्रमिदं संवर्ण्यते ॥

इति श्रीतत्त्वसारविस्तरावतारेऽत्यासन्न-भव्यजनानंदकरे भट्टारकश्रीकमलकीर्तिदेव-विरचिते कायस्थमाथुरान्वयशिरोमणीभूतभव्यकरपुण्डरीकाऽमरसिंहमानसारविन्द-दिनकरे स्वगतपरगततत्त्वलक्षणवर्णनं नाम प्रथमं पर्व।

अन्तभाग :—

अन्येऽस्मिन् भावनारूपे पुनरुक्तस्य दूषणं ।
भ(भा)वविद्भिर्नतद्ग्राह्यं ज्ञानवैराग्य-भूषणं ॥१॥
इति तत्त्वं स्वपरगतं प्रोक्तं संक्षेपमात्रतोऽपि मया
सम्यग्यदि विस्तरतो ब्रूते जिनसन्मतिः सत्यं ॥२॥

इति कतिपयवर्णैर्वर्णिताऽध्यात्मसारा परमसुखसहाया तत्त्वसारस्य टी[का]।
अवगतपरमार्थाः शोध्य चैनां पठंतु सुरमृगपतिकंठे हारभूतां सुरम्यां ॥३॥

यावन्मेरु-मही-स्वर्ग-कुलाद्रि-गगणाऽपगाः ।
तत्त्वसारस्य टीकेयं तावन्नंद[तु]भूतले ॥४॥

इति तत्त्वसारविस्तारावतारेऽत्यासन्नभव्यजनानंदकरे भट्टारकश्रीकमलकीर्तिदेव-विरचिते कायस्थ-माथुरान्वय-शिरोमणीभूत-भव्यवरपुंडरीकाऽमरसिंह-मानसारविन्द-दिनकरे सिद्धस्वरूपवर्णनं षष्ठं पर्व ॥६॥

सिद्धाः सिद्ध(द्धि)प्रदास्ते स्युः प्रसिद्धाष्टगुणैर्युताः ।
भोऽमर्त्यसिंह भो(?)शुद्धाः प्रसिद्धा जगतां त्रयैः(ये) ॥६॥ आशीर्वादः

श्रीमन्माथुरगच्छपुष्करगणे श्रीकाष्ठसंघे मुनिः
संभूतो यतिसंघनायकमणिः श्रीक्षेमकीर्तिमहान् ।
तत्पट्टाम्बरचंद्रमा गुणगणी श्रीहेमकीर्तिर्गुरुः
श्रीमत्संयमकीर्तिपूरितदिशापूरो गरीयानभूत् ॥१॥

अभवदमलकीर्तिस्तत्पदाम्भोजभानुर्मुनिगणनुतकीर्तिर्विश्वविख्यातकीर्तिः।
शम-यम-दम-मूर्तिः खंडितारातिकीर्तिर्जगति कमलकीर्तिः प्रार्थितज्ञानमूर्तिः॥१॥

[देहली-पंचायती-मंदिर प्रति

नोट—यह ग्रन्थ प्रति बहुत कुछ अशुद्ध है। और इस प्रतिके शुरू तथा अन्त आदिमें कितने ही पत्र बादको प्रतिलिपि करके जोड़े गये हैं।

८८. यशोधर-महाकाव्य-पंजिका (पं० श्रीदेव)

आदिभाग :—

यशोधर-महाकाव्ये सोमदेवैर्विनिर्मिते।
श्रीदेवेनोच्यते पंजी नत्वा देवं जिनेश्वरं ॥१॥
छंद-शब्द-निघंटूवलंकृति-कला-सिद्धांत-सामुद्रक-
ज्योतिर्वैद्यक-वेद-वाद-भरताऽनंग-द्विपाऽश्वायुध-।
तर्काख्यानक-मंत्र-नीति-शुकुन-द्रुमारुह-पुराण-स्मृति-
श्रेयोऽध्यात्मजगत्स्थितिप्रवचनी-व्युत्पत्तिरत्रोच्यते ॥२॥
अहं वा काव्यकर्ता वा द्वावेवेश्वराविह।
विधु-ब्रध्नातिरेकेण को नामान्यस्तमोपहः ॥३॥
किंच कवेरपि विदग्धोऽहमेतत्सूक्तिसमर्थने।
यत्सौभाग्यविधौ स्त्रीणां पतिवन्न पिता प्रभुः ॥४॥
प्रयोगास्तमयाच्छब्देष्वप्रसिद्धिमयं तमः।
तत्प्रयोगोदयार्को हि निरस्यत्यसमंजसं ॥५॥
रुष्यत्याकर्षकायाऽन्धः स्वदोषेण यथा स्खलन्।
स्वयमज्ञस्तथा लोकः प्रयोक्तारं विनिंदति ॥६॥
नाऽप्रयुक्तं प्रयुंजीतेत्येतन्मार्गानुसारिभिः।
निघंटु-शब्दशास्त्रेभ्यो नूनं दत्तो जलांजलिः ॥७॥
अहे-पेलवयोन्याद्यान् शब्दांस्तेऽत्र प्रयुंजतां।
नाऽप्रयुक्तं प्रयुंजीत्येष येषां नयो हृदि ॥८॥

नाऽप्रयुक्तं प्रयोक्तव्यं प्रयुक्तं वाऽप्रयुज्यते ।
इत्येकांतस्ततो नास्ति वागर्थौचित्यवेदिनां ॥६॥
साग्रा दशशतीवाचामपूर्व्वा समभूदिह ।
कवेर्वागर्थसर्वज्ञाद्वर्णकत्रिंशती तथा ॥१०॥

सुमुखः समाहितमतिरुदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा कविः सकलैहिकामुत्रिक-व्यवहारव्युत्पत्तिकारणं काव्यमिदं चिकीर्षुः पुण्याचामि-प्रत्यूह-व्यूह-व(व्यु)दासो नास्तिकतापरिहारः शिष्टाचारप्रतिपालनं परंपरया परकृतोपकाराद्य विस्मरणं वेति पंचविधं फलं । आशीर्न्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखमिति वा मनसि निधाय श्रियमित्यादिकान् श्लोकानाह ॥७॥ कुवलयमुत्पलं भूमंडलं च । संदर्शनमवलोकनं सम्यग्दर्शनं च । कंतुः कामः। निकेतनं गृहं ।

इति श्रीसोम(श्री)देवसूरि-विरचितायां यशोधर-पंजिकायां प्रथम आश्वासः ॥१॥ [देहली-पंचायती-मन्दिर प्रति

नोट १—इस ग्रन्थ-प्रतिकी सब संधियोंमें श्रीदेव की जगह मूलग्रन्थकार सोमदेवका ही नाम दे दिया है, जो लिपिकारकृत-अशुद्धिका परिणाम जान पड़ता है।

नोट २—इस ग्रन्थप्रतिके अन्तमें पंजिकाके कर्ताकी कोई प्रशस्ति नहीं है। यह प्रति संवत् १५३६ फाल्गुण सुदि ८ रविवारके दिन लिखाकर मूलसंघी मुनि रत्नकीर्तिके उपदेशसे एक खंडेलवाल कुटुम्बकी ओरसे ब्रह्म होला को दान की गई है।

८६. पुरुषार्थानुशासन (पं० गोविन्द)

आदिभाग :—

श्रियं कुर्यात्स वः कश्चिद्देवो देवेन्द्रवन्दितः ।
दृग्ज्ञानसुखवीर्याणि यस्याऽनंतान्यनन्तवत् ॥१॥
स्वभूर्विष्णुः शिवो भास्वान् शीतगुः सुगतो गुरुः ।

धर्म्मराजश्च देवेन्द्रो जिनेन्द्रः स्वस्तिदोऽस्तु नः ॥२॥
शक्तिव्यक्तिकृताऽनन्तगुणाय परमात्मने ।
भक्त्यात्मनः सतां शक्त्या गुणानां व्यक्तये नमः ॥३॥
तां नमामि गिरं ब्राह्मीं गुरूंश्च ददतेऽङ्गिनां ।
हेयादेयोपदेशेन सेविता ये हितं पदं ॥४॥
अथ मां श्रीपथाद्वामपुरीन्नाकिपुरीमिव ।
स्वां श्रियं मर्त्यलोकेऽस्मिन्नाविःकर्तुमितां स्थितं ॥५॥
श्रीमतो नरसिंहस्याऽमरसिंहस्य सन्नयः ।
तनयो विनयोपेत इतिश्रीलक्ष्मणोऽभणत् ॥६॥ (द्वयं)
द्वे लोकद्वयशुद्धयर्थं यशःश्रेयश्च धीमतां ।
स्वर्जनीयं भवेतां भोः काव्येनैवाऽत्र ते भृशं ॥७॥
काव्यं विधीयतां किंचित्पुरुषार्थोपदेशितं ।
स्वार्थकृत्ये न धीमंतो भवंति यदनुद्यताः ॥८॥
श्रुत्वा तस्येति सुश्लिष्टरचनं वचनं मया ।
इति सोऽभाणि भो युक्तं त्वयोक्तं किंत्वितः शृणु ॥९॥
योगक्षेमौ सुराजाद्धा जायेते ते सुकाव्यतः ।
कुराजादिव तावेव नश्यतस्तु कुकाव्यतः ॥१०॥
काव्यं निराहुराचार्या भावं वा कर्म वा कवेः ।
तन्निष्टाऽशेषदोषं स्यात्सुकाव्यं परथा परं ॥११॥
अज्ञत्वाद्धा प्रमादाद्धा शब्दादौ स्खलनं कवेः ।
दोषः स्यात्ते तु शब्दाद्याः प्रभूताः काव्यहेतवः ॥१२॥
तत्तां स्ते जानंते केचिदप्रमत्ताः सुमेधसः ।
विश्ववाङ्मयवाराशेः पारंयैरुद्यतैर्गतं ॥१३॥
तादृशां मादृशां येषां नाभूद्योगोपि तेपि चेत् ।
सुकाव्यायोद्यमं कुर्य्युर्धृष्टत्वं विमतः परं ॥१४॥

किञ्च— भगवन्समन्तभद्रः श्रीमद्भट्टाकलङ्क इत्याद्याः ।
चक्रुस्तर्कग्रन्थान्कुतर्कविक्षेपदक्षांस्तान् ॥१५॥
श्रीपूज्यपादभगवत्प्रमुखाः विमुखा कुमार्गतो कुर्वन् ।
व्याकरणानि नृणां वाङ्मल[ग्न?]व्याकरणनिपुणानि ॥१६॥
जिनसेनो गुणभद्रो रविषेणश्चैवमादिकविराजाः ।
महतां निहतांहांसि व्यधुः पुराणानि पुरुषाणां ॥१७॥
श्रीभट्ट-वट्टकेरादयो दुरंताघपाशशस्त्राणि ।
सुमधुरगिरो व्यरचयन्नगाराचारशास्त्राणि ॥१८॥
श्रीशिवकोटिमुनीश्वरपुरोगमाः स्वगतागमा नृणां ।
ज्ञानतपश्चारित्रं सदर्शनं दर्शयामासुः ॥१९॥
श्रीकुन्दकुन्दसूरिः श्रीमद्उमास्वातिदेव इत्याद्याः ।
साधु व्यदधुस्तत्त्वग्रन्थानुद्दिष्टपरमार्थान् ॥२०॥
श्रीसोमदेवपूर्व्वा अकुर्वताऽपूर्वशब्दसर्वस्वाः ।
निरवद्यगद्यपद्यश्चम्पूःकृतबुधशिरःकम्पाः ॥२१॥
श्रीवीरनन्दिदेवो धनञ्जयश्चाऽसगो हरिश्चन्द्रः ।
व्यधुरित्याद्याः कवयः काव्यानि सदुक्तियुक्तीनि ॥२२॥
श्रीजयसेनाचार्योऽमितगतियतिरेवमादयः सदयाः ।
ग्रन्थीकृत्य सदर्थानगारिणामूचुराचारान् ॥२३॥
इत्याद्यागमभेदान्विहितमनोवाग्वपुःमलच्छेदान् ।
सर्वानपि जितदुर्णयचक्राः कविचक्रिणश्चक्रुः ॥२४॥
इत्यादिपौरस्त्यमहाकवीनां रुग्मी रवीनामिव यत्र वाग्भिः ।
प्रकाश्यते विश्वपदार्थजातं न तत्र भात्यन्यवचः प्रदीपः ॥२५॥
अन्यच्च—भूवाच्यते कलौ जाताः प्रभूताः सांप्रतं खलाः ।
कुर्व्वंतोऽपकृतीरेव नृणामाराधिताश्च ये ॥२६॥
वंद्यानामपि निन्दन्ति ये गिराविमलाः खलाः ।
मादृशां किल ते गोघ्नाः कृपां कुर्य्युरजासु किं ॥२७॥

तथा च—

द्वित्रा एवात्र ते सन्तो मणयो वा सुजातयः ।
नयंति सुषमाभास्य सुवर्णमपि ये स्वयं ॥२८॥
तावन्त एव ते मन्येऽणवः स्पष्टाः ससर्ज यैः ।
सन्तोऽसतोऽन्यथा मूज्यान्न स नास्ति विधिर्विधीः ॥२९॥

तत्किं काव्याबधानेन यशः श्रेयोऽर्थिभिर्नृभिः ।
कार्यः सदा सदाचारो लभ्येते लघु ते यतः ॥३०॥
सुमनोगतमाख्याय मयीत्युपरते सति ।
सस्मितं स ततोऽवोचल्लब्धमणः सुविचक्षणः ॥३१॥
नृभिर्विपश्चितां वाच्या न पुरः प्रचुरा गिरः ।
कथ्यतेऽदस्ततस्तथ्यं संक्षेपेण मया वचः ॥३२॥
भवन्मानसजं काव्यवारिजं निजकर्णयोः ।
वतंसीकर्तुमिच्छामि विधेयस्तदनुग्रहः ॥३३॥

साहाय्यं स्वांघ्रिभक्तानां शारदा वो विधास्यति ।
काव्यसिद्धौ सतां सैव मातेव हितकारिणी ॥३४॥
तस्येत्यावश्यकं वाक्यं निशम्याऽहं स्वमानसे ।
वाग्देवीं प्रणमंस्तस्याः प्रसादायेत्यचिंतयं ॥३५॥
वाढमर्हति मे भक्तिर्वाग्देवी तन्मुखोद्भवा ।
काव्यं मे कुर्वतः किन्न सा सहायी भविष्यति ॥३६॥
कुर्वे मंदोऽपि तत्काव्यमहं शोचामि किं बहुः ।
सहायं सबलं प्राप्य किं न हीनोपि बलगति ॥३७॥

काव्यसंस्कारकर्तारः संति वा गुरवो मम ।
शाततद्धेतवः संतश्चिन्तया मम किं तया ॥३८॥
निश्चिन्त्येति क्षणं पश्चादिति चिंतामुपागमं ।
विचित्रा रुचयः पुंसामनुशास्मि तदत्र किं ॥३९॥

इच्छत्याक्षेपिणीं श्रोतुं केचिद्विक्षेपिणीं परे ।
संवेगिनीं कथां केचित्परे निर्वेदिनीं जनाः ॥४०॥
केचिद्धर्मार्थिनः केचिदर्थकामार्थिनोऽङ्गिनः ।
मुमुक्षवोऽन्ये तत्सर्वान्के रंजयितुमीशते ॥४१॥
प्रायः सर्व्वप्रियं यद्वा पुरुषार्थानुशासनं ।
कुर्वेऽहं तत्तथा स्वस्मिन् जिते रंजितं जगत् ॥४२॥
इति स्वगतमालोच्य शास्त्रमन्वर्थसंज्ञकं ।
मया प्रसूयते नाम्ना पुरुषार्थानुशासनम् ॥४३॥
पुरुषार्थश्चतुर्वर्गं उपदेशोऽनुशासनं ।
चतुर्वर्गश्च धर्मोऽर्थ-काम-मोक्षः प्रकीर्तितः ॥४४॥
चतुर्वर्गोपि मानुष्यैः कैश्चिदद्भुतचेष्टितैः ।
प्राप्य कालादिसामग्रीं साध्यते कृतसत्क्रियैः ॥४५॥
विना मोक्षं चतुर्वर्गस्त्रिवर्गः सद्भिरुच्यते ।
स एव साध्यते कैश्चिदलब्ध्वाऽखिललब्धिभिः ॥४६॥
जन्मसाफल्यकृत्पुंसां स्यात्त्रिवर्गोपि साधितः ।
परस्पराविरोधेन सुखश्रेयस्करो यतः ॥४७॥
विरोधयेन्न वा धर्म्मं साधयन्शुद्धधीः परौ ।
परौ तु साधयन्धर्म्मं न हि जातु विरोधयेत् ॥४८॥
नृणां विरोधितावर्थकामौ किं किल कुर्व्वतः ।
धर्मस्तु हंति तावत्रामुत्र चेपद्विरोधितः ॥४९॥
धर्मादेव प्रसूयेते अर्थकामौ नृणामिह ।
सम्यक्त्वादिव सुज्ञानचरित्रे सुखसाधने ॥५०॥
एक एव क्षमो धर्मः सर्वकल्याण-योजने ।
एक एव न किं भानुरलं सर्वार्थदर्शने ॥५१॥
उत्कल्लोपि वारांशिर्नृभ्यां जातु तीर्यते ।
न सर्वं धर्ममाहात्म्यं वक्तुं केनापि पार्यते ॥५२॥

त्रिवर्गसाधने तस्माद्धर्ममुख्यतया नृभिः ।
यतितव्यं सदा जन्मसाफल्यं नेतुमात्मनः ॥५३॥
दुरापं प्राप्य मानुष्यं यैस्त्रिवर्गो न साधितः ।
केवलं नेह लोकस्तैः परलोकोऽपि बाधितः ॥५४॥
विना त्रिवर्गसंसिद्ध्या मानुषस्य पशोरपि ।
केवलं खुरशृंगादिकृतो भेदोऽभिवेदितः ॥५५॥
मानुष्येऽपि न यः स्वार्थसाधनायोद्यतोऽधमः ।
तं तिरश्चां गतिं कांचित्प्राप्तं को बोधयिष्यति ॥५६॥
स्वार्थसिद्धिर्भवेद्यत्र तिर्यक्त्वमपि तद्वरं ।
मानुष्यमपि तन्निंद्यं स्वार्थभ्रंशो भवेद्यतः ॥५७॥
यथाऽनर्थकमास्तित्वं विनाऽनन्तचतुष्टयं ।
पुरुषार्थं विना नृणां पुरुषत्वं तथा वृथा ॥५८॥
पुमर्थसाधनोपायमवबुध्य ततः सुधीः ।
साधयेत्तं तथा नृत्वं कृतार्थं जायते यथा ॥५९॥
इति कतिचिदुदीर्याऽनिंद्यपद्यानि लोक-
द्वितयगतसुखार्थी श्रोतृशुश्रूषुतायै ।
जिनपतिमतसूत्रात् कथ्यतेऽथाप्तयुपायः
कृतसकलसमृद्धेः सच्चतुर्वर्गसिद्धेः ॥६०॥

इति पंडितश्रीगोविन्द-विरचिते पुरुषार्थानुशासने कायस्थमाथुर-वंशाऽवतंस-श्रीलक्ष्मणनामांकिते कथामुखाऽभिधानोऽयं प्रथमोऽवसरः परः ॥१॥ अत्राशीर्वादः —

भोगींद्रो भोगिवर्गैः कथमपि विदितः प्रस्फुरद्भोगरत्नै-
श्चन्द्रोऽकेनोडुवृन्दैरपि सुरनिकरैर्दंसहस्रेण चेन्द्रः ।
कीर्त्या यस्य त्रिलोक्यामिव सुरसरिताश्वेतितायां स्वसंगा-
च्छ्रीमान्सोऽमर्त्यसिंहश्चिरमुरुचरितो नन्दतान्नंदनाभ्यां ॥१०॥

(इसी तरह हर एक अगले अध्यायके शुरूमें भी आशीर्वादात्मक-पद्य दिये हैं जिनमें प्रायः 'लक्ष्मण'को आशीर्वाद देते हुए उसके गुणोंका भी कुछ वर्णन किया है ।)

अन्तभागः—

श्रीसद्धाहासः कुमुदाऽखिलाशास्तमोविनाशः सुपथप्रकाशः ।
यत्रोदितेऽत्र प्रभवन्ति लोके नमाम्यहं श्रीजिनभास्करं ते ॥१॥
दोषाऽप्रकाशः कमलाऽवकाशस्तापस्य नाशः प्रसरश्च भासः ।
यत्र प्रसन्नेऽत्र जने भवंति श्रीमज्जिनेन्द्रं तमहं नमामि ॥२॥
कुर्वंतु वांकैरविणीसमृद्धिं विवेकवार्द्धेश्च जनेऽत्र वृद्धिं ।
श्रीमूलसंघाकर-चन्द्रपादा भट्टारकश्रीजिनचन्द्रपादाः ॥३॥

विमलसदमलकाष्ठासंघपद्मोदयाऽद्रावुदितउरुवचोंशुध्वस्तदोषांधकारः ।
बुधजनजलजानामुल्लिलासं ददानो जयति मलयकीर्त्तिर्भानुसाम्यं दधानः॥४॥

काष्ठासंघेऽनघयतिभिर्यः कान्तो भात्याकाशे स्फुरदुडुभिर्वा चन्द्रः ।
सत्प्रज्ञानां भवति न केषां तुल्यः कीर्त्याऽचारः स कमलकीर्त्याचार्यः ॥५॥

परे च परमाचारा जिनसंघमुनीश्वराः ।
प्रसन्नमेतत्कुर्वंतु मयि सर्वेऽपि मानसं ॥६॥

कायस्थानामस्त्यथो माथुराणां वंशो लब्ध्वाऽमर्त्यसंसत्प्रशंसः ।
तत्राप श्रीखेतलो बन्धुलोकैः खे तारौघैरुत्प्रकाशं शशीव ॥७॥

सुरगिरिरिव धीरो वारिधिर्वा गभीरो विधुरिव हृततापः सूर्यवत्सुप्रतापः ।
नरपतिरिव मान्यः कर्णवद्यो वदान्यः समजनि रतिपालस्तत्सुतः सोऽरिकालः॥८

दुःशासनाऽपायपरो नराग्रणीः सदोद्यतो धर्मसुतार्थसाधने ।
ततः सुतोऽभूत्स गदाधरोपि यो न भीमतां क्वापि दधौ सुदर्शनः ॥९॥

स तस्मात्सत्पुत्रो जनितजनितासंयदजनि
क्षितौ ख्यातः श्रीमानमरहरिरित्यस्तकुनयः ।

गुणा यस्मिंस्ते श्री-नय-विनय-तेजःप्रभृतयः
समस्ता ये व्यस्ता अपि न सुलभाः क्वाऽपि परतः ॥१०॥
महम्मदेशेन महामहीभुजा निजाधिकारिष्वखिलेष्वपीह यः ।
सम्मान्य नीतोपि सुधीः प्रधानतां न गर्वमप्यल्पमधत्त सत्तमः ॥११॥
सर्वैरहंपूर्विकया गुणैर्वृतं निरीक्ष्य दोषा निखिला यमत्यजन् ।
स्थाने हि तद्भूरिभिराश्रितेऽरिभिः स्थाने वसंतीह जना न केचन ॥१२॥
श्रुतशताये विनयेन धीमता तया नयस्तेन च येन संपदा ।
तया च धर्मो गुणवन्नियुक्तया सुखंकरं तेन समस्तमीहितं ॥१३॥
सत्योक्तित्वमजातशत्रुरखिलद्मोद्धारसारं नयं
रामः काममुदाररूपममलं शीलं च गांगांगजः ।
कर्णश्चारुवदान्यतां चतुरतां भोजश्च यस्मायिति
स्वं स्वं पूर्वनृपा वितीर्य्य सुगुणं लोकेऽत्र जग्मुः परं ॥१४॥
धनं धनार्थिनो यस्मान्मानं मानार्थिनो जनाः ।
प्राप्यासन् सुखिनः सर्वे तद्द्वयं तद्द्वयार्थिनः ॥१५॥
निशीनोः कौमुदस्येष्टो नाज्ञानामन्यथा रवेः ।
यस्योदयस्तु सर्वेषां सर्वदैवेह वल्लभः ॥१६॥
स्त्रीकुलीनाऽकुलीना श्रीः स्थिरा धीः कीर्तिरस्थिरा ।
यत्र चित्रं विरोधिन्योऽप्यऽमूर्तेनुः सहस्थितिं ॥१७॥
तस्यानेकगुणस्य शस्यधिष्ण्यस्याऽमर्त्यसिंहस्य स ।
ख्यातः सूनुरभूत्प्रतापवसतिः श्रीलद्मणाख्यः क्षितौ ।
यो बोद्धेति वितर्क्यते सुकविभिर्नीत्वा तनुं मानवीं
धर्मोऽयं नु नयोऽथवाऽथ विनयः प्राप्तः प्रजापुण्यतः ॥१८॥
यशो यैर्लक्ष्मणस्यैषलद्मणाऽत्रोपमीयते ।
शंके न तत्र तैः साद्धाब्धिलाद्धैलंद्मलद्धितं ॥१९॥
श्रीमान्सुमित्रोन्नतिहेतुजन्मा सल्लद्मणः सन्नपि लद्मणाख्यः ।
रामातिरिक्तो न कदाचनासीदधाच्च यो रावणसोदरत्वं ॥२०॥

स नयविनयोपेतैर्वाक्यैर्मुहुः कविमानसं
सुकृतसुकृताऽपेक्षो दक्षो विधाय समुद्यतं ।
श्रवणयुगलस्यात्मीयस्यावतंसकृते कृती-
स्तु विशदमिदं शास्त्रांभोजं सुबुद्धिरकारयत् ॥२१॥
अथास्त्यमोतकानां सा पृथ्वी पृथ्वीव संततिः ।
सच्छायाः सफलाः यस्यां जायंते नरभूरुहाः ॥२२॥
गोत्रं गार्ग्यमलंचकार यं इह श्रीचन्द्रमाश्चन्द्रमो
बिम्बास्यस्तनयोऽस्य धीर इति तत्पुत्रश्च हींगाऽभिधः ।
दोहे लब्धनिजोद्भवेन सुधियः पद्माभियस्तस्त्रियो
नव्यं काव्यमिदं व्यधायि कविनाऽर्हत्पादपद्मालिना ॥२३॥
पादादिवर्णसंज्ञेनेति शेषः ॥
शब्दार्थोभयदुष्टं यद्व्यधाय्यत्र मया पदं ।
सद्भिस्तत्तस्तदुत्सार्य्य निधेयं तत्र सुन्दरं ॥२४॥
जीयाच्छ्रीजिनशासनं सुमतयः स्युः क्ष्माभुजोऽहंन्मता-
स्सर्वोऽयस्तु निरामयः सुखमयो लोकः सुभिक्ष्यादिभिः ।
संतः सन्तु चिरायुषोऽमलधियो विज्ञातकाव्यश्रमाः
शास्त्रं चेदममी पठन्तु सततं यावत्त्रिलोकीस्थितिः ॥२५॥
यदेतच्छास्त्रनिर्माणे मयात्यल्पधिया कृतं ।
क्षंतव्यमपरागैर्मे तदागः सर्वसाधुभिः ॥२६॥

इति प्रशस्तिः ॥ समाप्तं चेदं पुरुषार्थानुशासननाम शास्त्रमिति ॥

[बम्बई ऐ० प० स० भ० प्रति

नोट—यह ग्रन्थप्रति अच्छी साफ और शुद्ध लिखी हुई है और किसी किसी स्थानपर टिप्पणको भी लिये हुए है ।

६०. नागकुमार-चरित (मल्लिषेण सूरि)

आदिभाग :—

श्रीनेमिं जिनमानम्य सर्वसत्वहितप्रदम् ।
वक्ष्ये नागकुमारस्य चरितं दुरितापहं ॥१॥
कविभिर्जयदेवाद्यैर्गद्यैर्पद्यैर्विनिर्मितम् ।
यत्तदेवास्ति चेदत्र विषमं मन्दमेधसाम् ॥२॥
प्रसिद्धैः संस्कृतैर्वाक्यैर्विद्वज्जन-मनोहरम् ।
तन्मया पद्यबन्धेन मल्लिषेणेन रच्यते ॥३॥

अन्तभाग :—

श्रुत्वा नागकुमार-चारुचरितं श्रीगौतमेनोदितं ।
भव्यानां सुखदायकं भवहरं पुण्यास्रवोत्पादकं ।
नत्वा तं मगधाधिपो गणधरं भक्त्या पुरं प्रागम-
च्छ्रीमद्राजगृहं पुरंदरपुराकारं विभूत्या समं ॥६१॥

इत्युभयभाषाकविचक्रवर्ति-श्रीमल्लिषेणसूरि-विरचितायां श्रीनागकुमार-पंचमीकथायां नागकुमार-मुनीश्वर-निर्वाणगमनो नाम पंचमः सर्गः ।

* जितकषायरिपुर्गुणवारिधिर्निंयतचारुचरित्रतपोनिधिः ।
जयतु भूपतिरीटविघट्टितक्रमयुगोऽजितसेनमुनीश्वरः ॥१॥
अजनि तस्य मुनेर्वरदीक्षितो विगतमानमदो दुरितांतकः ।
कनकसेनमुनिर्मुनिपुंगवो वरचरित्रमहाव्रतपालकः ॥२॥
गतमदोऽजनि तस्य महामुनेः प्रथितवान् जिनसेनमुनीश्वरः ।
सकलशिष्यवरो हतमन्मथो भवमहोदधितारतरं[ड]कः ॥३॥
तस्याऽनुजश्चारुचरित्रवृत्तिः प्रख्यातकीर्तिर्भुवि पुण्यमूर्तिः ।
नरेन्द्रसेनो जितवादिसेनो विज्ञाततत्त्वो जितकामसूत्रः ॥४॥
तच्छिष्यो विबुधाग्रणीर्गुणनिधिः श्रीमल्लिषेणाह्वयः
संजातः सकलागमेषु निपुणो वाग्देवतालंकृतः ।

तेनैषा कविचक्रिणा विरचिता श्रीपंचमीसत्कथा
भव्यानां दुरितौघनाशनकरी संसारविच्छेदिनी ॥५॥
स्पष्टं श्रीकविचक्रवर्त्तिगणिना भव्याब्जधर्मांशुना
ग्रंथो पंचशती मया विरचिता विद्वज्जनानां प्रिया ।
तां भक्त्या लिलिखंति चारुवचनैर्व्याख्यंत्यादरा-
द्ये शृण्वंति मुदा सदा सहृदयास्ते यांति मुक्तिश्रियं ॥६॥*

इति नागकुमारचरित्रं समाप्तम् ।

९१. ज्वालिनीकल्प (इन्द्रनन्दियोगीन्द्र)

आदिभाग :—

चन्द्रप्रभजिननाथं चन्द्रप्रभमिन्द्रनंदिमहिमानम् ।
ज्वालामालिन्यर्चित-चरणसरोजद्वयं वंदे ॥१॥
कुमुददलधवलगात्रा महिषमहावाहनोज्वलाभरणा ।
मां पातु वन्हिदेवी ज्वालामालाकरालांगी ॥२॥
जयतादेवी ज्वालामालिन्युद्यत्त्रिशूल-पाश-भृष-
कोदण्ड-कारण्ड-फल-वरद-चक्रांचिन्होज्वलाऽष्टभुजा ॥३॥
अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायान् सकलसाधुमुनिमुख्यान् ।
प्रणिपत्य मुहुर्मुहुरपि वक्ष्येऽहं ज्वालिनीकल्पं ॥४॥
दक्षिणदेशे मलये हेमग्रामे मुनिर्महात्मासीत् ।
हेलाचार्यो नाम्ना द्रविडगणाधीश्वरो धीमान् ॥५॥
तच्छिष्या कमलश्रीः श्रुतदेवी वा समस्तशास्त्रज्ञा ।
सा ब्रह्मराक्षसेन गृहिता रौद्रेण कर्मवशात् ॥६॥

— इन चिन्होंके अन्तर्गत यह षट्पद्यात्मक अन्तका भाग 'आरा-जैनसिद्धान्तभवन'की ताड़पत्रीय दो प्रतियों परसे लिया गया है, अन्य कितनी ही प्रतियोंमें यह नहीं पाया जाता—छूटा हुआ है।

रोदिति हाहाकारैः स्फुटाऽट्टहासं करोति सन्ध्यायां ।
जपति पठत्यथ वेदान् हसति पुनः कहकह-ध्वनिना ॥७॥
कोसावास्ते मंत्री यो मोचयति स्वमंत्रशक्त्या मां ।
वक्तीति सावलेपं सविकारं जृम्भणं कुरुते ॥८॥
दृष्ट्वा तामतिदुष्टग्रहेण परिपीडितां मुनीन्द्रोऽसौ ।
व्याकुलितोऽभूत्तत्प्रतिविधानकर्तव्यतामूढः ॥९॥
तद्ग्रहविमोक्षणार्थं तद्ग्रामसमीपनीलगिरिशिखरे ।
विधिनैव वन्हिदेवीं स साधयामास मुनिमुख्यः ॥१०॥
दिनसप्तकेन देव्या प्रत्यक्षीभूतया पुरः स्थितया ।
मुनिरुक्तः किं कार्यं तवार्यं वद मुनिरुवाचेत्थम् ॥११॥
कामार्थाद्यैहिक-फलसिद्ध्यर्थं देवि नोपरुद्धासि ।
किन्तु मया कमलश्री-ग्रह-मोक्षायोपरुद्धासि ॥१२॥
तस्माद् ग्रहमोक्षं कुरु देव्येतावदेव मम कार्यं ।
तद्वचनं श्रुत्वा सा बभाण तदिदं कियन्मात्रम् ॥१३॥
मा मनसि कृथाः खेदं मंत्रेणानेन मोचयेत्युक्त्या ।
मृदुतरमायसपत्रं विलिखितमंत्रं ददौ तस्मै ॥१४॥
तन्मंत्रविधिमजानन् पुनरपि मुनिपो बभाण तां देवीं ।
नास्मिन् वेद्मि किमप्यहमतो विवृत्यै तदभिधेहि ॥१५॥
तस्मै तया ततस्तद्व्याख्यातं सोपदेशमयतत्त्वं ।
पुनरपि तद्भक्ति-वशाददापि तत्सिद्धविद्येत्थम् ॥१६॥
साधनविधिना यस्मै त्वं दास्यसि होमजपविहीनोऽपि ।
भविता स सिद्धविद्यो नो दास्यसि यस्य सोऽत्र पुनः ॥१७॥
उद्यानवने रम्ये जिनभवने निम्नगातटे पुलिने ।
गिरिशिखरेऽन्यस्मिन् वा स्थित्वा निर्जंतुके देशे ॥१८॥
हृदयोपहृदयमंत्रं प्रजाप्य नियुतं तथा युतं हुत्वा ।
प्रकरोतु पूर्वसेवां प्रणिगद्यैवं स्वधाम गता ॥१९॥

तत्र स्थित एव ततस्तमसौ दंदह्यमानमाध्याय ।
दहनाक्षरैरुदन्तं दुष्टं निर्द्राटयामास ॥२०॥
निर्द्राटितो ग्रहश्चेद् ध्यात्वैकं भूतदहनरररबीजं ।
शेषदशनिग्रहाणां किमस्त्यसाध्यो ग्रहः कोऽपि ॥२१॥
देव्यादेशाच्छास्त्रं तेन पुनर्ज्वालिनीमतं रचितम् ।
तच्छिष्यो गांगमुनिर्नीलग्रीवो बीजवाख्यः ॥२२॥
आर्या क्षांतिरसब्बा विरुवट्टः क्षुल्लकस्तथेत्यनया ।
गुरुपरिपाट्याविच्छिन्नसम्प्रदायेन चागच्छत् ॥२३॥
कन्दर्पेण ज्ञातं तेनापि स्वसुतनिर्विशेषाय ।
गुणनंदिश्रीमुनये व्याख्यातं सोपदेशं तत् ॥२४॥
पार्श्वे तयोर्द्वयोरपि तच्छास्त्रं ग्रंथतोऽर्थतश्चापि ।
मुनिनेन्द्रनन्दिनाम्ना सम्यग्गदितं विशेषेण ॥२५॥
क्लिष्टग्रंथं प्राक्तनशास्त्रं तदिति स(स्व)चेतसि निधाय ।
तेनेन्द्रनन्दिमुनिना ललितार्यावृत्तगीताद्यैः ॥२६॥
हेलाचार्योक्तार्थं ग्रंथपरावर्तनेन रचितमिदं ।
सकलजगदेकविस्मयजनने जनहितंकरं शृणुत ॥२७॥
मंत्रि-ग्रह-सन्मुद्रा-मण्डल-कटुतैल-वश्ययंत्र-सुतंत्रं ।
स्नपनविधिर्नीराजनविधिरथ साधनविधिश्चेति ॥२८॥
अधिकाराणामेषां दशभेदानां स्वरूपनिर्देशं ।
वक्ष्येऽहं संक्षेपात् प्रकटं देव्या यथोद्दिष्टम् ॥२९॥
मौनी नियमितचित्तो मेधावी बीजधारणसमर्थः ।
मायामदनमदोनः सिद्ध्यति मंत्री न संदेहः ॥३०॥
सम्यग्दर्शनशुद्धो देव्यर्चनतत्परो व्रतसमेतः ।
मंत्रजपहोमनिरतोऽनालस्यो जायते मंत्री ॥३१॥
देवगुरुसमयभक्तः सविकल्पः सत्यवाग्विदग्धश्च ।
वाक्पटुरपगतशंकः शुचिरार्द्रमना भवेन्मंत्री ॥३२॥

देव्याः पदयुगभक्तो हेलाचार्यक्रमाब्जभक्तियुतः ।
स्वगुरूपदेशमार्गेण वर्तते यः स मंत्री स्यात् ॥३३॥
विद्यागुरुभक्तियुते तुष्टिं पुष्टिं ददाति खलु देवी ।
विद्यागुरुभक्तिवियुक्तचेतसे द्वेष्टि नितरां सा ॥३४॥
सम्यग्दर्शनदूरो वाक्कंठश्छान्दसो भयसमेतः ।
शून्यहृदयः सलज्जः शास्त्रेऽस्मिन् नो भवेन्मंत्री ॥३५॥

इति हेलाचार्यप्रणीतायें श्रीमदिन्द्रनन्दियोगीन्द्र-विरचित-ग्रंथसंदर्भे ज्वालिनीमते मंत्रिलक्षणनिरूपणाधिकारः प्रथमः ॥

अन्तभाग :—

द्रविडगणसमयमुख्यो जिनपतिमार्गोचितक्रियापूर्णः ।
व्रतसमितिगुप्तिगुप्तो हेलाचार्यो मुनिर्जयति ॥१९॥
यावत् क्षितिजलधिशशांकाम्बरतारकाकुलाचलास्तावत् ।
हेलाचार्योक्तार्थः स्येयाच्छीज्वालिनीकल्पः ॥२०॥

इति हेलाचार्यप्रणीतायें श्रीमदिन्द्रनन्दियोगीन्द्रविरचितग्रंथसन्दर्भे ज्वालिनीमते साधनविधिर्दशमः परिच्छेदः ॥

आसीदिन्द्रादिदेवस्तुतपदकमलश्रीन्द्रनंदिर्मुनीन्द्रो
नित्योत्सर्पच्चरित्रो जिनमतजलधिर्धौतपापोपलेपः ।
प्रज्ञानावामलोद्यत्प्रगुणगणभृतोत्कीर्णविस्तीर्णसिद्धा-
न्ताम्भोराशिस्त्रिलोक्याबुजवनविचरत्सद्यशोराजहंसः ॥१॥
यद्वृत्तं दुरितारिसैन्यहनने चण्डासिधारायितम्
चित्तं यस्य शरत्सरसिजवत् स्वच्छं सदा शीतलं ।
कीर्तिः शारदकौमुदी शशिभृतो ज्योत्स्नेव यस्याऽमला
स श्रीवासवनंदिसन्मुनिपतिः शिष्यस्तदीयो भवेत् ॥२॥
शिष्यस्तस्य महात्मा चतुरनियोगेषु चतुरमतिविभवः ।
श्रीबप्पनंदिगुरुरिति बुधमधुपनिषेवितपदाब्जः ॥३॥

लोके यस्य प्रसादादजनि मुनिजनस्तत्पुराणार्थवेदी
यस्याशास्तंभमूर्ध्न्यतिविमलयशः श्रीवितानो निबद्धः ।
कालास्तायेन पौराणिककविवृषभा द्योतितास्तत्पुराण-
व्याख्यानाद्बप्पनंदिप्रथितगुणगणस्तस्य किं वर्ण्यतेऽत्र ॥४॥
शिष्यस्तस्येन्द्रनंदिविमलगुणगणोद्दामधामाभिरामः
प्रज्ञा-तीक्ष्णासधारा-विदलितबहलाऽज्ञानवल्लीवितानः ।
जैने सिद्धान्तवार्धौ विमलितहृदयस्तेन सद्गंधतोयं(ग्रंथतोऽयं)
हेलाचार्योदितार्थो व्यरचि निरूपमो ज्वालिनीमंत्रवादः ॥५॥
अष्टशतस्यैकषष्ठि(८६१)प्रमाणशकवत्सरेष्वतीतेषु ।
श्रीमान्यखेटकटके पर्वण्यक्ष[य]तृतीयायाम ॥६॥
शतदलसहितचतुःशतपरिमाणग्रंथरचनया युक्तं ।
श्रीकृष्णराजराज्ये समाप्तमेतन्मतं देव्याः ॥७॥

(नोट—अन्तका पद्य बम्बई सरस्वतीभवनकी प्रतिमें न होकर कारंजा-की प्रतिमें पाया जाता है।)

६२. स्वर्णाचलमाहात्म्य (दीक्षित देवदत्त)

आदिभाग :—

श्रीमोक्षसिद्धि-समवाप्ति-निदानमेकं शैलान्वयाम्बुजवन-प्रतिबोध-भानुं ।
ध्यानात्समस्तकलुषांबुधिकुंभजातं वंदे सुवर्णमयमुच्चसुवर्णशैलं ॥१॥

अन्तभाग :—

श्रीमच्छ्रीमूलसंघेऽस्मिन् बलात्कारगणे तथा ।
कुन्दकुन्दाभिधाचार्यान्वये विश्वप्रदीपिते ॥४३॥
नन्द्याम्नाये बभूव श्रीभट्टारकपदस्थितः ।
जगद्भूषणदेवोऽभूज्जगद्भूषणमर्थतः ॥४४॥
यस्य वागमला नूनं धर्मशास्त्र-प्रकाशिका ।
गंगेव पठतां नूनं पुनाति मुखपंकजं ॥४५॥

भट्टारकोऽभूत्तत्पट्टे विश्वभूषणनामभृत् ।
सोऽपि विद्यावतां श्रेष्ठो विद्यावद्भिर्निषेवितः ॥४६॥
तत्पट्टदीपकः श्रीमानभूद्देवेन्द्रभूषणः ।
सोऽपि भट्टारको ज्ञेयो भट्टारकगुणैर्युतः ॥४७॥
सुरेन्द्रभूषणस्तद्वत्तत्पट्टे समशोभयत् ।
भट्टारकपदस्थायी सदा धर्मोपदेशकृत् ॥४८॥
एषां(षु) भट्टारको योऽभूद्विश्वभूषणसंज्ञकः ।
तच्छिष्यो ब्रह्मपदवी-स्थितो विनयसागरः ॥४९॥
तद्वदेव समाख्यातस्तच्छिष्यो हर्षसागरः ।
एतस्यैव गुरूभूतः पंडितो हरिकृष्णकः ॥५०॥
जीवनादिपदस्तस्य शिष्यो राम इति श्रुतः ।
तच्छिष्यः पंडितो हेमराजोऽभूद्बुद्धिमान् किल ॥५१॥
एषां मध्ये सूरिपुरे विश्वविख्यातसद्गुणे ।
पुण्यक्षेत्रे दर्शनाच्च वंदनाद्वा सतोऽथवा ॥५२॥
पूर्वोपार्जित-पापौघ-महासंहारकारिणी ।
श्रीनेमिनाथ-जनुषो भूमिभूते शुभावहे ॥५३॥
प्रतीचीमुखकालिंदी-प्रवाहपरिशोभिते ।
द्विजादिवर्ण-वसति-प्रदीप्ते क्षेत्रभूमिपे ॥५४॥
श्रीब्रह्महर्षसिंघोश्च तनूजो धर्मवित्तमः ।
जिनेन्द्रभूषणः श्रीमद्भट्टारकपदे स्थितः ॥५५॥
ज्ञानवान् गुणवांस्तद्वद्दयावानतिपुण्यवान् ।
विराजते सदाभव्यजनैः संपरिवारितः ॥५६॥
कालिंदीकूलबहुधावित्तव्ययबलात्किल ।
निर्माप्य चैत्यभवनं स्थितः सद्धर्मसंमुखः ॥५७॥
तदाज्ञया ह्यटेरस्थ-देवदत्त-कवीशिना ।
कान्यकुब्जकुलोद्भूत-दीक्षितेन सुबुद्धिना ॥५८॥

दयापरेण हिंसादिरहितेन हृदापि वै ।
जैनशासन-प्रामाण्य-करणोन्मुख-भाविना ॥५६॥
श्रीस्वर्णाचल-माहात्म्यं यथावद्रचितं मया ।
पठनीयं भव्यजीवैः श्रोतव्यं भक्तिभावतः ॥६०॥
सद्बुद्धिर्नवसत्पुराणकृतये काव्यंकरेषु स्थितः ।
श्रीमान्सैष जिनेन्द्रभूषणयतिर्भूमौ चिरं जीवतात् ॥६१॥
श्रीमज्जिनेन्द्रदेवोऽत्र जिनेन्द्रपरिवारितः ।
जिनेन्द्रभूषण-मनोवांछितं कुरुतादध्रुवं ॥६२॥

इत्याचारांगे(?) श्रीभगवत्कुन्दकुन्दाचार्यानुक्रमेण श्रीभट्टारकविश्वभूषण-पट्टाभरण-श्रीब्रह्महर्षसागरात्मज-श्रीभट्टारकजिनेन्द्रभूषणोपदेशात् श्रीमद्दीक्षि-देवदत्तकृते श्रीस्वर्णाचलमाहात्म्ये माहात्म्यफलसूचनो नाम षोडशो ऽध्यायः ॥१६॥ इति स्वर्णाचलमाहात्म्यं सम्पूर्णं ।

[देहली-पंचायती-मन्दिर प्रति

६३. धर्मचक्रपूजा (बुध वीर)

आदिभाग :—

प्रणिपत्य **वर्द्धमानं** विदिताखिलतत्त्व-संततेर्मानं ।
श्रीधर्मचक्रनाम्नः पूजायाः पीठिकां वक्ष्ये ॥१॥

अन्तभाग :—

चन्द्रबाणाष्टषष्ठांकैः(१५८६ ?) वर्तमानेषु सर्वतः ।
श्रीविक्रमनृपान्नूनं नयविक्रमशालिनः ॥८॥
पौषमासे सिते पक्षे षष्ठींदु-दिननामकैः(के) ।
रुहितासपुरे रम्ये पार्श्वनाथस्य मन्दिरे ॥९॥
तत्रासीद्विदुषां मान्यो पद्मावतिपुराह्वयः ।
सूरिः श्रीजिनदासाख्यः काष्टसंघाब्धिचन्द्रमाः ॥१०॥
तस्योपदेशतो श्रीमान्प्रोतकसुवंशजः ।

तोतू-साधु-सुतः शान्तः वीरुनामा बुधः स्मृतः ॥११॥
श्रीधर्मचक्रयंत्रस्य पूजां पद्यैर्विरीयवन् (व्यरीरचत्)।
बृह[त]श्रीसिद्धचक्रस्य तथा नंदीश्वरस्य वैः ॥१२॥
ऋषिमंडलयंत्रस्य पूजापाठं च कारवैः(कः)।
श्रीचिन्तामणिपार्श्वार्यश्लोकैर्बंधं व्यधादलं ॥१३॥
अग्रवालान्वयः श्रीमान् लसद्गोयलगोत्रकः।
साधारण-सुतः साधुरणमल्लोऽभिनन्दनः ॥१४॥
तदंगजः समुत्पन्नो जिनशासनवत्सलः।
चिरंजीव्यालोकेस्मिन् मल्लिदासाऽभिधानतः ॥१५॥
धर्मचक्रस्य सत्पूजा बुधवीरेण निर्मिता।
नात्रा(म्ना ?) श्रीरणमल्लस्य संयता नंतदा(दता)द्भुवि ॥१६॥
श्रीहेमचन्द्रशिष्येण यत्कृतं वीरकेन वैः।
पूजाचतुष्कमालोक्य विस्तार्यं तद्विचक्षणैः ॥१७॥
यावन्मेरुगिरिः शश्वद् यावच्चन्द्रार्कतारकाः।
तावत् श्रीधर्मचक्रस्य सपर्याऽत्र प्रवर्तते(तु ?) ॥१८॥
भव्यः शुद्धमतिः सदैव निरतः सद्दानपुष्टार्घनैः(सद्ध्यानपुण्यार्जने ?)
साद्धर्मकथा-विचारचतुरस्तत्त्वार्थवेदी गुणी।
श्रीसाधारणसाधुवंशतिलकः सम्यक्त्वरत्नांकितः
श्रीमान् श्रीरणमल्लसाधुरखिलं सौख्यं समालिंगतु ॥१९॥
सार्द्धं अष्टशती (८५०) संख्या ग्रथाग्रस्य बभूव च।
शुद्धश्लोकप्रमाणेन गणिता गणकोत्तमैः ॥२०॥

इति श्रीधर्मचक्रपूजा [बुध वीर] विरचिता साधुसाधारणांगज—साधुरण-मल्लनामांकिता समाप्ता।

[देहली-पंचायती मन्दिर प्रति

नोट—यह ग्रन्थ प्रति बेहद अशुद्ध है और रघुनाथ शर्मा नामके किसी अनाड़ी लेखककी संवत् १९०० की लिखी हुई है।

६४. शब्दाम्भोजभास्कर=जैनेंद्र-महान्यास (प्रभाचन्द्राचार्य)

आदिभाग :—

श्रीपूज्यपादमकलंकमनंतबोधं
शब्दार्थसंशयहरं निखिलेषु बोधं ।
सच्छब्दलक्षणमशेषमतः प्रसिद्धं
वक्ष्ये परिस्फुटमलं प्रति(खि ?)पत्य सिद्धं ॥१॥

सविस्तरं यद्गुरुभिः प्रकाशितं महामतीनामभिधानलक्षणं ।
मनोहरैः स्वल्पपदैः प्रकाश्यते महद्भिरुपदिष्ट····· ॥२॥

याति सर्वापि मार्गे····· ·····
तदुक्त-कृतशिक्षश्लाघ्यमेतद्धितस्य ।
विमुक्तमखिलज्ञैर्भाष्यमाणो गणेन्द्रैः
विविक्तमाखिलार्थं श्लाघ्येतेऽतो मुनींद्रैः ॥३॥

शब्दानामनुशासनानि निखिलान्याध्यायताहर्निशं
यो यः सारतरो विचारचतुरस्तल्लक्षणांशो गतः ।
तं स्वीकृत्य तिलोत्तमेव विदुषां चेतश्चमत्कारक-
सुव्यक्तैरसमैः प्रसन्नवचनैर्न्यासः समारभ्यते ॥४॥

श्रीपूज्यपादस्वामिविनेयानां शब्दसाधुत्वाऽसाधुत्वविवेक-प्रतिपत्त्यर्थं शब्दलक्षण-प्रणयनं कुर्वाणो निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकफलमभिलषन्निष्टदेवतास्तुतिविषयं नमस्कुर्वन्नाह ॥छ॥ लक्ष्मीरात्यंतकी यस्य इत्यादि ।

अन्तभाग :—

त्रिमयं । चतुर्मयं निर्मेयसंबंधे आभिहित्यनिमानसंबंधे ता इति ॥छ॥

इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचिते शब्दांभोजभास्करे जैनेंद्र-महान्यासे तृतीयाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥

सन्मार्ग-प्रतिबोधको बुधजनैः संस्तूयमानो हठा-
दज्ञानांधतमोपहः क्षितितले श्रीपूज्यपादो महान् ।

सार्वः संतत-सन्निधिनियतः पूर्वापरानुक्रमः
शब्दांभोजदिवाकरोऽस्तु सहसा नः श्रेयसे यं(?)च वै ॥१॥
नमः श्रीवर्द्धमानाय महते देवनन्दिने ।
प्रभाचन्द्राय गुरवे तस्मै चाऽभयनन्दिने ॥२॥

६५. प्राकृतशब्दानुशासन, स्वोपज्ञवृत्तिसहित (कवि त्रिविक्रम)

आदिभाग :—

श्रीवीरं प्राच्याचल-समुदितमखिलप्रकाशकं वन्दे ।
दिव्यध्वनिपटुदीधितिमहमल्पस्वपद्धतिप्राप्त्यै ॥१॥
श्रुतभर्तुरर्हन्नन्दि-त्रैविद्यमुनेः पदाम्बुजभ्रमरः ।
श्रीवाणसकुलकमलद्युमणेरादित्यशर्मणः पौत्रः ॥२॥
श्रीमल्लिनाथ-पुत्रो लक्ष्मीगर्भामृताम्बुविसुधांशुः ।
सोमस्य वृत्त-विद्या-धाम्नो भ्राता त्रिविक्रमस्तु कविः ॥३॥
श्रीवीरसेन-जिनसेनार्यादिवचः पयोधिपूरात्कतिचित् ।
प्राकृतपदरत्नानि प्राकृतकृति-सुकृति-भूषणाय चिनोति ॥४॥
अनल्पार्थ-सुखोच्चारश्शब्दसाहित्यजीवितम् ।
स च प्राकृतमेवेति मतं सूक्तानुवर्तिनाम् ॥५॥
प्राकृतं तत्समं देश्यं तद्भवं चेत्यदस्त्रिधा ।
तत्समं संस्कृतसमं ज्ञेयं संस्कृतलक्षणात् ॥६॥
देश्यमार्षं च रूढत्वात्स्वतंत्रत्वाच्च भूयसा ।
लक्ष्म नापेक्षते तस्य सम्प्रदायो हि बोधकः ॥७॥
प्रकृतेस्संस्कृतात्साध्यमानात्सिद्धाच्च यद्भवेत् ।
प्राकृतस्याऽस्य लक्ष्यानुरोधिलक्ष्म प्रचक्ष्महे ॥८॥
प्राकृतपदार्थसार्थप्राप्त्यै निजसूत्रमार्गमनुजिगमिषताम् ।
वृत्तिर्यथार्थसिद्ध्यै त्रिविक्रमेणागमक्रमेण क्रियते ॥९॥

तत्सम-तद्भव-देश्य-प्राकृतरूपाणि पश्यतां विदुषां ।
दर्पयति येयमवनौ वृत्तिस्त्रैविक्रमी जयति ॥१०॥
प्राकृतरूपाणि यथा प्राच्यैराहेमचन्द्रमाचार्यैः ।
विवृतानि तथा तानि प्रतिबिम्बन्तीह सर्वाणि ॥११॥
सिद्धिर्लोकाच्च ॥१॥ (प्रथमसूत्र)

इति श्रीमदर्हन्नन्दित्रैविद्यदेवश्रुतधर-श्रीपादप्रसादासादितसमस्तविद्याप्रभाव-श्रीमत्त्रिविक्रमदेवविरचितप्राकृतव्याकरणवृत्तौ प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

[नोट—इस ग्रन्थमें चार अध्याय हैं और प्रत्येक अध्यायमें पाणिनीय व्याकरणकी तरह चार पाद हैं। यह ग्रन्थ साङ्ग सिद्धशब्दानुशासनके कर्ता हेमचन्द्राचार्यसे बादका और कालिदासके शाकुन्तलादि नाटकत्रयके व्याख्याता काटयवेमसे पहलेका बना हुआ है; क्योंकि इसमें हेमचन्द्रके उक्त ग्रन्थवाक्योंका उल्लेखपूर्वक खण्डन है और काटयवेमके व्याख्या-ग्रन्थोंमें इस ग्रन्थके सूत्रोंका ही प्राकृतविषयमें प्रमाणस्वरूपसे निर्देश पाया जाता है, ऐसा श्रीवेंकटरंगनाथ शर्माने इस ग्रन्थके प्रथम अध्यायकी भूमिकामें प्रकट किया, जो सन् १८९६ में आर्यप्रेस विजिगापट्टमसे छपकर प्रकाशित हुआ है। ग्रन्थका अन्तभाग पासमें न होनेसे नहीं दिया जा सका।]

९६. जिनसहस्रनाम-टीका (अमरकीर्तिसूरि)

अन्तभाग :—

नत्वा जिनसेनाचार्यं विद्यानं[दं] समंतभद्रमर्हंतं ।
श्रीमत्सहस्रनाम्ना ..... स्मि संसिद्धयै ॥१॥

अथ श्रीमज्जिनसेनाचार्यः चातुर्वर्ण्यसंघसमुद्धरेण धीरः सकललोक-नरोचनाकातः(?) खंडितापखंडिमंडलाहंकारः शुभ्रिवचनधीचीविरचित-चित्तचमत्कारः स्वर्गापवर्गपुरमार्गस्पंदनः चारुचारित्रचमत्कृतसक्रंदनः सकलजगज्जयजातदर्प्पकंदर्पनिष्कंदनः शुभोपदेशवचनशैत्यगुणावगणित-

हरिचन्दनः श्रीमद्वीरवाणीभाषारचितश्रीमहापुराणः जिनयज्ञादिसकलशास्त्र-प्रवीणः श्रीमद्गुणभद्राचार्यवर्यसेवितपदांभोजः प्रज्ञापुंजः इति विरुदावली विराजमानः जिनसहस्रनामस्तवनं संचिकीर्षुः प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्धलक्षण-मित्यादिस्वाभिप्रायसं[सू]चूनपरः श्लोकमित्याह—

× × × ×

इति सूरिश्रीमदमरकीर्तिविरचितायां जिनसहस्रनामटीकायां प्रथमोध्यायः॥१॥

अन्तभाग :—

अथ प्रशस्तिः । स्वस्तिस्यात्कारकोत्तमाय श्रीमदनेकांतशासनाय ।

सद्वृतो ''लोकमहितः.....

.....य ।

रत्नाना.....सुमनाः स्याद्वादचंद्रोदयः

साक्षात्सोऽत्र सनातनो विजयते श्रीमूलसंघोदधिः ॥१॥

आसाद्यद्युसदा(?) सहायमसमं गत्वा विदेहं जवा-

दद्रादीत् किल केवलेक्षणमिनं द्योतत्तमःध्वक्षतः ।

स्वामी साम्यपदादिरूढ़धिषणः श्रीनंदिसंघश्रियो

मान्यः सोऽस्तु शिवाय शांतमनसा श्रीकुन्दकुन्दाऽभिधः ॥२॥

श्रीपद्मनंदिविद्वन् विख्याता त्रिभुवनेऽपि कीर्त्तिस्ते ।

हरति हीरति हंसति हरति हरोत्तंसमनुहरति ॥३॥

श्रीपद्मनंदिपरमात्मपरः पवित्रो देवेन्द्रकीर्तिरय साधुजनाऽभिवंद्यः ।

विद्यादिनंदिवरसूरिरनल्पबोधः श्रीमल्लिभूषण इतोऽस्तु च मंगलं वै ॥४॥

प्रायो व्याकरणं येन धातुपाठेऽवतारितं ।

स जीयात् शब्दमाणिक्यनिवासः श्रुतसागरः ॥५॥

मल्लिभूषणशिष्येण भारत्या नंदनेन च ।

सहस्रनामटीकेयं रचिताऽमरकीर्तिना ॥६॥

इति श्रीसूरिश्रीमदमरकीर्त्तिविरचितायां भट्टारकश्रीविश्वसेनाऽनुमोदितायां संघाधिपति-सुधाचन्द्र-चन्द्रिका जिनसहस्रनामटीका सम्पूर्णा ॥

६७. सरस्वती(भारती)कल्प (मल्लिषेणसूरि)

आदिभाग :—

जगदीशजिनं देवमभिवन्द्याभिनन्दनं(शंकरं)।
वक्ष्ये सरस्वतीकल्पं समासाद(सेना)ल्पमेधसान्(म्) ॥१॥
अभयज्ञानमुद्राक्षमालापुस्तकधारिणी।
त्रिनेत्रा पातु मां वाणी जटाबालेन्दुमण्डिता ॥२॥
लब्धवाणीप्रसादेन मल्लिषेणेन सूरिणा।
रच्यते **भारती**कल्पः स्वल्पजाप्य-फलप्रदः ॥३॥

अन्तभाग :—

वाक्पतेर्वाग्दिवेतालाद्भयेन्दोश्च पद्मलात्।
श्रीमल्लिषेणयोगीन्द्रादेशाद्विद्या समागता ॥६५॥
कृतिना मल्लिषेणेन श्रीषेणस्य च सूनुना।
रचितो **भारती**कल्पः शिष्टलोकमनोहरः ॥६६॥
सूर्याचन्द्रमसौ यावन्मेदिनी भूधरार्णवाः।
तावत्सरस्वतीकल्पः स्थेयाच्चेतसि धीमताम् ॥६७॥

इत्युभयभाषाकविशेखर-श्रीमल्लिषेणसूरिविरचितः श्रीभारतीकल्पः समाप्तः।

६८. कामचाण्डालीकल्प (मल्लिषेणसूरि)

आदिभाग :—

श्रीवीरं जिनमानम्य खण्डित-स्मर-सायकम्।
वक्ष्येहं **कामचाण्डाली**कल्पमिष्टफलप्रदम् ॥१॥
भूषिताभरणैः सर्वैर्मुक्तकेशा निरम्बरा।
पातु मां **कामचाण्डाली** कृष्णवर्णा चतुर्भुजा ॥२॥

फलकांचकलशकरा शाल्मलिदण्डोद्धमुरगोपेता ।
जयतात् त्रिभुवनवन्द्या जगति श्रीकामचाण्डाली ॥३॥
विरचयति मन्त्रवादं संक्षेपात्सकलजनहितार्थमिदम् ।
कलिकालोभयभाषा-कविशेखर-मल्लिषेणगणी ॥४॥
साधकदेव्याराधनमशेषजनवश्ययन्त्रतन्त्राणि ।
ज्वालागर्दभभेदः शास्त्रेऽस्मिन् कथ्यते स्पष्टम् ॥५॥

अन्तभाग :—

निःशेषागममन्त्रवादकुशलं वाग्देवताऽलंकृतं ।
तन्नत्वा कविशेखरं मुनिवरं श्रीमल्लिषेणाह्वयं ॥
दद्यात्स्वर्णसमन्वितोन्नतघटाद् धाराजलं तत्करे ।
साक्षीकृत्य हुताशनानिलव(प)यश्चन्द्रार्कतारागणान् ॥ आज्ञाप्रक्रमः ।
उद्यन्निर्मलकीर्तिपूरितदिशो विज्ञातजैनागमो ।
नाम्ना श्रीजिनसेनसूरिरभवद्भव्याम्बुजानां रविः ॥
तच्छिष्यः कविशेखरोऽजनि मुनिः श्रीमल्लिषेणो गणी ।
तेनैष स्वपरोपकारजनकः श्रीमन्त्रवादः कृतः ॥

इत्युभयभाषाकविशेखरश्रीमल्लिषेणसूरि-विरचिते कामचाण्डालीकल्पे ज्वालागर्दभलक्षणाधिकारः पंचमः ।

भाषाद्वय-कवितायां कवयो दर्पं वहन्ति तावदिह
नालोकयन्ति यावत्कविशेखर-मल्लिषेणमुनिम् ॥१॥
छन्दोलंकारशास्त्रं किमपि न च परं प्राकृतं संस्कृतं वा
काव्यं तच्च प्रबन्धं सुकविजनमनोरंजनं यत्करोति ।
कुर्वन्नुर्वी-शिलादौ न लिखति किल तत्या(द्या)ति यावत्समाप्तिं
स श्रीमान् मल्लिषेणो जयतु कविपतिर्वाग्वधूमण्डितास्यः ॥२॥

इति कामचाण्डालीकल्पः समाप्तः ।

९९. ज्वालिनीकल्प (मल्लिषेणसूरि)

आदिभाग :—

चन्द्रप्रभं जिनं नत्वा शरच्चन्द्रसमप्रभम् ।
वक्ष्येहं ज्वालिनीकल्पं संकल्पितसमप्रभम् ॥१॥

अन्तभाग :—

श्रीमतोऽजितसेनस्य सूरेः कर्मातिधूरिणः ।
शिष्यः कनकसेनोभूद्वणि(र्णि ?)कमुनिजनस्तुतः ॥२॥
तदीयशिष्यो जिनसेनसूरिः तस्याग्रशिष्योऽजनि मल्लिषेणः ।
वाग्देवतालङ्कितचारुवक्त्रस्तेनारचि [श्री] शिखिदेविकल्पः ॥३॥
कुमतिमतविभेदी जैनतत्त्वार्थवेदी हृतदुरितसमूहः क्षीणसंसारमोहः ।
भवजलधितरणडो वाग्व[रो]वाकरणडो विबुधकुमुदचन्द्रो मल्लिषेणो गणीन्द्रः४
इति ज्वालिनीकल्पं समाप्तम् ।

१००. भैरवपद्मावतीकल्प सटीक (मलिषेणसूरि)

आदिभाग :—

टी० मं०—श्रीमच्चातुर्णिकायामरखचरवधूनृत्यसंगीतकीर्ति-
व्यासाशामंडलं मंडितसुरपटहाद्यष्टसत्प्रातिहार्यं ।
नत्वा श्रीपार्श्वनाथं जितकमठकृतोद्दंडघोरोपसर्गं
पद्मावत्या हि कल्पप्रवरविवरणं वक्ष्यते मल्लिषेणैः* ॥१॥

---

* साराभाई नवाब द्वारा मुद्रित प्रतिमें 'बन्धुषेणैः' पाठ दिया है और उसके द्वारा टीकाको बन्धुषेणकृत सूचित किया है, परन्तु ऐ० प० सरस्वती भवन बम्बईकी प्रतिमें और ला० मनोहरलालजी जौहरी देहलीकी दो प्रतियों में भी 'मल्लिषेणैः' पाठ पाया जाता है और उससे टीकाका स्वोपज्ञ होना जाना जाता है, ग्रन्थकी सन्धियोंमें भी मल्लिषेणका ही नाम है। बन्धुषेणके टीकाकार होनेका उनसे कोई समर्थन नहीं होता। और न अन्तमें ही बन्धुषेणका टीकाकार-रूपसे कोई नामोल्लेख तथा परिचय उपलब्ध होता है।

मूल मं०—कमठोपसर्गदलनं त्रिभुवननाथं प्रणम्य पार्श्वजिनम् ।
वक्ष्येऽभीष्टफलप्रद-भैरवपद्मावतीकल्पम् ॥१॥
पाशफलवरदगजवशकरणकरा पद्मविष्टरा पद्मा ।
सा मां रक्षतु देवी त्रिलोचना रक्तपुष्पाभा ॥२॥
त्रोतला त्वरिता नित्या त्रिपुरा कामसाधनी ।
देव्या नामानि पद्मायास्तथा त्रिपुरभैरवी ॥३॥
पाशवज्रफलांभोजभृत्करा त्रोतलाह्वया ।
शंखपद्माभया वरदा त्वरिताख्याऽरुणप्रभा ॥४॥
पाशांकुशपयोजातसाक्षमूल(माल)करा वरा ।
हंसवाहाऽरुणा नित्या जटा बालेन्दुमण्डिता ॥५॥
शूल-चक्र-कशांभोज-चाप-बाण-फलांकुशैः ।
राजिताऽष्टभुजा देवी त्रिपुरा कुंकुमप्रभा ॥६॥
शंख-पद्म-फलांभोजभृत्करा कामसाधनी ।
बन्धूकपुष्पसंकाशा कुक्कुटोरगवाहना ॥७॥
पाशचक्रधनुर्बाणखेटखड्गफलाम्बुजैः ।
लसद्भुजेन्द्रगोपाभा ख्याता त्रिपुरभैरवी ॥८॥
आदौ साधकलक्षणं सुसकलां देव्यर्चनायाः क्रमं
पश्चाद्द्वादशयंत्रभेदकथनं स्तंभोऽङ्गनाकर्षणं ।
यंत्रं वश्यकरं निमित्तमपरं वश्यौषधं गारुडं
वक्ष्येऽहं क्रमशो यथा निगदिताः कल्पेऽधिकारास्तथा ॥९॥
इति दशविद्याधिकारैर्ललितार्थश्लोकगीतिसद्वृत्तैः ।
विरचयति मल्लिषेणः कल्पं पद्मावतीदेव्याः ॥१०॥
निर्जितमदनाटोपः प्रशमितकोपो विमुक्तविकथालापः ।
देव्यर्चनानुरक्तो जिनपदभक्तो भवेन्मंत्री ॥११॥
मंत्राराधनशूरः पार्श्वविदूरो गुणेन गम्भीरः ।
मौनी महाभिमानी मंत्री स्यादीदृशः पुरुषः ॥१२॥

गुरुजनकृतोपदेशो गततंद्रो निद्रया परित्यक्तः ।
परिमितभोजनशीलः स भवेदाराधको देव्याः ॥१३॥

निर्जितविषयकषायो धर्मामृतजनितहर्षगतकायः ।
गुरुतरगुणसंपूर्णः स भवेदाराधको देव्याः ॥१४॥

शुचिः प्रसन्नो गुरुदेवभक्तो दृढव्रतः सत्यदयासमेतः ।
दक्षः पटुर्मंत्रपदावधारी मंत्री भवेदीदृश एव लोके ॥१५॥

एते गुणा यस्य न संति पुंसः क्वचित्कदाचिन्न भवेत्स मंत्री ।
करोति चेदंघ्रिवशात्स जाप्यं प्राप्नोत्यनर्थं फणिशेखरायाः ॥१६॥

इत्युभयभाषाकविशेखर-श्रीमल्लिषेणसूरिविरचिते भैरवपद्मावतीकल्पे मंत्रिलक्षणनिरूपकः प्रथमोऽधिकारः ॥

अन्तभाग :—

सकलनृपमुकुटघटितचरणयुगः श्रीमदजितसेनगणी ।
जयतु दुरितापहारी भव्यौघभवार्णवोत्तारी ॥५७॥

जिनसमयागमवेदी गुरुतरसंसारकाननच्छेदी ।
कर्मेन्धन-दहनपटुस्तच्छिष्यः कनकसेनगणी ॥५८॥

चारित्रभूषितांगो निःसंगो मथितदुर्जयाऽनंगः ।
तच्छिष्यो जिनसेनो बभूव भव्याब्जधर्मांशुः ॥५९॥

तदीयशिष्योऽजनि मल्लिषेणः सरस्वती-लब्धवरप्रसादः ।
तेनोदितो भैरवदेवतायाः कल्पः समासेन चतुःशतेन(४००) ॥६०॥

यावद्वार्धि-महीधर-तारागण-गगन-चन्द्र-दिनपतयः ।
तिष्ठति तावदास्तां भैरवपद्मावतीकल्पः ॥६१॥

इत्युभयभाषा-कविशेखरश्रीमल्लिषेणसूरिविरचिते भैरवपद्मावतीकल्पे गारुडाधिकारो दशमः ॥

१०१. महापुराण (मल्लिषेणसूरि)

आदिभाग :—

.....।

..... ॥१॥

अन्तभाग :—

तीर्थे श्रीमुलगुन्दनाम्नि नगरे श्रीजैनधर्मालये
स्थित्वा श्रीकविचक्रवर्तियतिपः श्रीमल्लिषेणाह्वयः ।
संक्षेपात्प्रथमानुयोगकथनव्याख्यान्वितं शृण्वतां
भव्यानां दुरितापहं रचितवान्निःशेषविद्याम्बुधिः ॥१॥
वर्षैकत्रिंशताहीने सहस्रे(९६९) शकभूभुजः ।
सर्वजिद्वत्सरे ज्येष्ठे सशुक्ले पंचमीदिने ॥२॥
अनादि तत्समाप्तं तु पुराणं दुरितापहम् ।
जीयादाचन्द्रतारार्कं विदग्धजनचेतसि ॥३॥
श्रीजिनसेनसूरितनुजेन कुदृष्टिमतप्रभेदिना
गाढमंत्रवादसकलागमलक्षणतर्कवेदिना ।
तेन महापुराणमुदितं भुवनत्रयवर्तिकीर्तिना
प्राकृतसंस्कृतोभयकवित्वधृता कविचक्रवर्तिना ॥

[सिद्धरत्नमाला, कोल्हापुर ल० भ० मठ प्रति

१०२. कर्मकाण्ड-टीका (भ० ज्ञानभूषण व सुमतिकीर्ति)

आदिभाग :—

महावीरं प्रणम्यादौ विश्वतत्त्व-प्रकाशकं ।
भाष्यं हि कर्मकाण्डस्य वक्ष्ये भव्यहितंकरं ॥१॥
विद्यानंदि-सुमल्ल्यादिभूष-लक्ष्मीन्दु-सद्गुरून् ।
वीरेन्द्रं-ज्ञानभूषं हि वंदे सुमतिकीर्तियुक् ॥२॥

सिद्धांतपरिज्ञानी चक्रवर्तिश्रीनेमिचन्द्रकविः ग्रंथप्रारंभपूर्वं ग्रन्थनिर्विघ्न-परिसमाप्त्यादिफलमभिलषन् श्रीइष्टदेवनेमिनाथं नमस्कुर्वन्नाह—

अन्तभाग :—

मूलसंघे महासाधुर्लक्ष्मीचन्द्रो यतीश्वरः ।
तस्य पट्टे च वीरेन्दुर्विबुधो विश्ववंदितः ॥१॥
तदन्वये दयाम्भोधिर्ज्ञानभूषो गुणाकरः ।
टीकां हि कर्मकाण्डस्य चक्रे सुमतिकीर्तियुक् ॥२॥
टीकां गोम्मटसारस्य विलोक्य विहितभ्रुवं ।
पठंतु सज्जनाः सर्वे भाष्यमेतन्मनोहरं ॥३॥
प्रमादाद्भ्रमतो वापि यद्यशुद्धं कदाचन ।
टीकायामत्र संशोध्यं विबुधैर्दूषवर्जितैः ॥४॥

इति श्रीभट्टारकश्रीज्ञानभूषण-विरचिता * कर्मकाण्डग्रंथटीका समाप्ता ॥

[वीरसेवामन्दिर-प्रति

१०३. पुण्यास्रव-कथाकोष (रामचन्द्र मुमुक्षु)

आदिभाग :—

श्रीवीरं जिनमानम्य वस्तुतत्त्व-प्रकाशकं ।
वक्ष्ये कथामयं ग्रन्थं पुण्यास्रवाभिधानकं ॥१॥

अन्तभाग :—

इति पुण्यास्रवाभिधाने ग्रन्थे केशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्य-रामचन्द्रमुमुक्षु विरचिते दानफलव्यावर्णनो नाम षोडशवृत्ताः (अधिकाराः) समाप्ताः ॥१६॥

---

* जयपुर और देहलीकी कितनी ही प्रतियोंमें 'ज्ञानभूषणनामांकिता सूरिसुमतिकीर्ति-विरचिता' ऐसा पाठ पाया जाता है, जो ग्रन्थकी दोनों भट्टारकों द्वारा संयुक्त रचना होनेका परिणाम जान पड़ता है। और जिस ग्रन्थको 'कर्मकाण्ड' नाम दिया गया है वह १६० गाथात्मक 'कम्मपयडि' (कर्मप्रकृति) नामका गोम्मटसारी प्रकरण है।

यो भव्याब्ज-दिवाकरो यमकरो मारेभपञ्चाननो
नानादुःखविधायि कर्म्मकुभृतो वज्रायते दिव्यधीः।
यो योगीन्द्र-नरेन्द्र-वन्दितपदो विद्यार्णवोत्तीर्णवान्
ख्यातः केशवनन्दिदेव-यतिपः श्रीकुन्दकुन्दान्वयः ॥१॥

शिष्योऽभूत्तस्य भव्यः सकलजनहितो रामचन्द्रो मुमुक्षु-
र्जित्वा शब्दापशब्दान् सुविशदयशसः पद्मनन्द्याभिधानात्(द्यादै)।
वन्द्याद्धादीभसिंहात्परमयतिपतेः सो व्यधाद्भव्यहेतो-
र्ग्रन्थं पुण्यास्रवाख्यं गिरिसमितिमितैर्दिव्यपद्यैः कथार्थैः ॥२॥

सार्द्धैश्चतुःसहस्रैर्यो(४५००)मितः पुण्यास्रवाह्वयः।
ग्रन्थः स्थेयात् सतां चित्ते चन्द्रादित्यत्सदाम्बरे ॥३॥ *

कुन्दकुन्दान्वये ख्याते ख्यातो देशिगणाग्रणीः।
अभूत संघाधिपः श्रीमान्पद्मनन्दी त्रिरात्रिकः ॥४॥

वृषाधिरूढो गणपो गुणोद्यतो विनायकानन्दितचित्तवृत्तिकः।
उमासमालिङ्गितईश्वरोपमस्ततोऽभवन्माधवनन्दिपण्डितः ॥५॥

सिद्धांतशास्त्रार्णवपारदृश्वा मासोपवासी गुणरत्नभूषितः।
शब्दादिवार्थी(!) विबुधप्रधानो जातस्ततः श्रीवसुनन्दिसूरिः ॥६॥

दिनपतिरिव नित्यं भव्यपद्माब्धिबोधी
सुरगिरिरिव देवैः सर्वदा सेव्यपादः।
जलनिधिरिव शश्वत् सर्व्वसत्वानुकम्पी
गणभृदजनि शिष्यो मौलिनामा तदीयः ॥७॥

---

* पंचायती मन्दिर देहलीमें इस ग्रन्थकी दो प्रतियाँ हैं—एक सं० १५८४ की लिखी हुई, जिसमें प्रशस्तिके इस * चिन्ह तक कुल तीन ही पद्य हैं, दूसरी सं० १७६६ की लिखी हुई है जिसमें ६ पद्य हैं; परन्तु आदिके उक्त तीन पद्योंको छोड़कर शेष ६ पद्योंमें जो प्रशस्ति है वह एक जुदी तथा अधूरी जान पड़ती है—ग्रन्थकर्ताके साथ उसका सम्बन्ध व्यक्त नहीं होता।

कलाविलासः परिपूर्णवृत्तो दिगम्बरालंकृतिहेतुभूतः ।
श्रीनन्दिसूरिर्मुनिवृन्दवन्द्यस्तस्मादभूच्चन्द्रसमानकीर्तिः ॥८॥

चार्वाक-बौद्ध-जिन-साङ्ख्य-शिवद्विजानां,
वाग्मित्व-वादि-गमकत्व-कवित्व-वित्तः ।
साहित्य-तर्क-परमागम-भेदभिन्नः,
श्रीनन्दिसूरिगगनाङ्गणपूर्णचन्द्रः ॥९॥

इति समाप्तोऽयं पुण्याश्रवाभिधो ग्रंथः ।

[देहली पंचायती मन्दिर प्रति

१०४. प्रा० पंचसंग्रह-टीका (भ० सुमतिकीर्ति)

आदिभाग :—

'.....।
'.....॥१॥

अन्तभाग :—

श्रीमूलसंघेऽजनि नन्दिसंघो वरो बलात्कारगणप्रसिद्धः ।
श्रीकुंदकुंदो वरसूरिवर्यो बभौ बुधो भारतिगच्छसारे ॥१॥
तदन्वये देवमुनीन्द्रवंद्यः श्रीपद्मनन्दी जिनधर्मनंदी ।
ततो हि जातो दिविजेन्द्रकीर्तिर्विद्या[दि]नंदी वरधर्ममूर्तिः ॥२॥
तदीयपट्टे नृपमानमीयो मल्ल्यादिभूषो मुनिवंदनीयः ।
ततो हि जातो वरधर्मधर्त्ता लक्ष्म्यादिचन्द्रो बहुशिष्यकर्ता ॥३॥

पंचाचाररतो नित्यं सूरिसद्गुणधारकः ।
लक्ष्मीचंद्रगुरुस्वामी भट्टारकशिरोमणिः ॥४॥

दुर्वारदुर्वादिकपर्वतानां वज्रायमानो वरवीरचन्द्रः ।
तदन्वये सूरिवरप्रधानो ज्ञानादिभूषो गणिगच्छराजः ॥५॥

त्रैविद्यविद्याधरचक्रवर्ती भट्टारको भूतलयातकीर्तिः ।
ज्ञानादिभूषो वरधर्ममूर्तिस्तदीयवाक्यात् कृतसारवृत्तिः ॥६॥

भट्टारको भुवि ख्यातो जीयाच्छ्रीज्ञानभूषणः ।
तस्य पट्टोदये भानुः प्रभाचन्द्रो वचोनिधिः ॥७॥

विशदगुणगरिष्ठो ज्ञानभूषो गणीन्द्र-
स्तदनुपदविधाता धर्मधर्ता सुभर्त्ता ।
कुवलयसुखकर्त्ता मोहमिथ्यांधहर्ता
स जयतु यतिनाथः श्रीप्रभाचन्द्रचन्द्रः ॥८॥

दीक्षा-शिक्षा-पदं दत्तं लदमीवीरेन्द्र(न्दु ?)सूरिणा ।
येन मे ज्ञानभूषेण तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥९॥
आगमेन विरुद्धं यद् व्याकरणेन दूषितं ।
शुद्धीकृतं च तत्सर्वं गुरुभिर्ज्ञानभूषणैः ॥१०॥

तथापि—

अत्र हीनादिकं किंचिद्रचितं मतिविभ्रमात् ।
शोधयन्तु महाभव्याः कृपां कृत्वा ममोपरि ॥११॥
हूंसाख्यवर्णिनः येन ग्रन्थोऽयमुपदेशितः ।
तस्य प्रसादतो वृत्तिः कृत्वा सुमतिकीर्तिना ॥१२॥

श्रीमद्विक्रमभूपतेः परिमिते वर्षे शते षोडशे ।
विंशत्यग्रगते (१६२०) सिते शुभतरे भाद्रे दशम्यां तिथौ ।
ईलाबे वृषभालये वृषकरे सुश्रावके धार्मिके
सूरिश्रीसुमतीशकीर्ति-विहिता टीका सदा नंदतु ॥१३॥

इति श्रीपंचसंग्रहाऽपरनामलघुगोम्मट्टसारसिद्धांतग्रन्थ - टीकायां कर्म्मकांडे सप्ततिनाम सप्तमोऽधिकारः ॥ इति श्रीलघुगोम्मट्टसारटीका समाप्ता ॥

[देहली पंचायती मन्दिर प्रति

१०५. रात्रिभोजनत्याग-कथा (ब्रह्म नेमिदत्त)

आदिभाग :—

श्रीमज्जिनं जगत्पूज्यं भारतीं भुवनोत्तमाम् ।
नत्वा गुरून्प्रवक्ष्येऽहं रात्रिभोजनवर्जनम् ॥१॥

अन्तभाग :—

जिनपतिमुखपद्मात् निर्गता दिव्यभाषा
मुनिपतिशतसेव्या सारतत्त्वप्रकाशा ।
कुमतितिमिरनाशा भानुभेव प्रशस्या
दिशतु मम सुखानि सर्वलोकैकभूषा ॥१॥
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः सूरिश्रुताब्धिः सुधी-
राचार्यो वरसिंहनन्दी सुगुरुः कुर्यात्सतां मंगलम् ॥२॥

इति भट्टारकश्रीमल्लिभूषण-शिष्याचार्यश्रीसिंहनन्दिगुरूपदेशेन ब्रह्म-नेमिदत्तविरचिता रात्रिभोजन-परित्यागफलदृष्टान्त-श्रीनाग-श्रीकथा समाप्ता ।

१०६. नेमिनाथ-पुराण (ब्रह्म नेमिदत्त)

आदिभाग :—

श्रीमन्नेमिं जिनं नत्वा लोकालोकप्रकाशकम् ।
तत्पुराणमहं वक्ष्ये भव्यानां सौख्यदायकम् ॥१॥

अन्तभाग :—

गच्छे श्रीमति मूलसंघतिलके सारस्वतीये शुभे
विद्यानन्दगुरुप्रपट्टकमलोल्लासप्रदो भास्करः ।
ज्ञानध्यानरतः प्रसिद्धमहिमा चारित्रचूडामणिः
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः जीयात्सतां भूतले ॥१॥
प्रोद्यत्सम्यक्त्वरत्नो जिनकथितमहासप्तभंगी-तरंगैः
कान्तं मिथ्यामलनिकरः(?) क्रोधनक्रादिदूरः ।

श्रीमज्जैनेन्द्रवाक्यामृतविशदरसः श्रीजिनेंद्रप्रबुद्धिः
जीयान्मे सूरिवर्यो व्रतनिचयलसत्पुण्यपण्यश्रुताब्धिः ॥२॥
मिथ्यावादान्धकारक्षयकिरणरविः श्रीजिनेंद्रांघ्रिपद्म-
द्वंद्वे निर्द्वंद्वभक्तिर्जिनगदितमहाज्ञानविज्ञानसिन्धुः ।
चारित्रोत्कृष्टभारो भवभयहरणो भव्यलोकैकबन्धु-
र्जीयादाचार्यवर्यो विशदगुणनिधिः सिंहनन्दी मुनीन्द्रः ॥३॥

यस्योपदेशवसिता(शतो) जिनपुंगवस्य नेमेः पुराणमतुलं शिवसौख्यकारी ।
चक्रे मयापि तुच्छतमा(?)ऽत्र भक्त्या कुर्वादिमं श्रुततमं मम मंगलानि ॥४॥

(अगले एक पद्यमें नेमिपुराणात्मक आशीर्वाद है।)

इति श्रीत्रिभुवनैकचूडामणिश्रीनेमिजिनपुराणे भट्टारकश्रीमल्लिभूषण-शिष्याचार्यसिंहनंदिनामांकिते ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीनेमितीर्थंकर-परमदेव-पंचकल्याणकव्यावर्णनो नाम षोडशोऽधिकारः ॥

१०७. समवसरणपाठ (पं० रूपचन्द)

आदिभाग :—

नमस्कृत्यार्हतः सिद्धान् सूरीन् सत्पाठकान्मुनीन् ।
विदधे केवलज्ञानकल्याणार्चां शुभाप्तये ॥१॥

अन्तभाग :—

नाभेयभुक्तिधन्निरे कुहनाग्निदेशे शुद्धे सलेमपुरवाक्पहिरूपसिद्धे ।
अग्रोतकान्वयविभूषणगर्गगोत्रः श्रीमामटस्य तनयो भगवानदासः ॥१॥
तत्पूर्वपत्न्यां प्रभवः प्रतापी श्रीब्रह्मदासेति समासवृत्तः ।
द्वितीयचाचो इति संज्ञिकायां पत्न्यां भवाः पंचसुताः प्रसिद्धाः ॥२॥
हरिरिव हरिराजो भूपतिर्भूमिवोंच्य(?)भवदभयराजः कीर्तिचन्द्रः सुकीर्त्तिः ।
तदनुजकविरूपो रूपचन्द्रो वितंद्रो विमलसुमतिचक्षुर्जैनसिद्धांतदक्षः ॥३॥

स रूपचन्द्रोऽथ समाव्रजत्पुरीं वानारसीं बोधविधानलब्धये ।
आस्वाद्य शब्दार्थसुधारसं ततः संप्राप्तवांस्तद्दरियापुरं परं ॥४॥
विराजिते यत्र महोदये कुलं न राजते किं न महोदयाकुलं ।
न यत्र केन क्रियतेऽप्यसत्क्रिया न(ना ?)क्रियते केन य एव सत्क्रियाः ॥५॥

× × × ×

श्रीमत्साहिजलालदीनविलसद्वंशाद्रिभास्वान्महा-
नुद्यद्विश्वमहोमहोदयजहांगीरात्मजः सज्जयः ।
स श्रीसाहिजहांनरेन्द्रमहितो मद्यां(ह्यां)चकस्तान्वयः
श्रीन्द्रप्रस्थपुरप्रतापविदितो यत्पालने प्रोद्गतः ॥१०॥

श्रीमन्मूलमहोदयैकतिलकश्रीनंदिसंघप्रभुः
प्रायः प्रोल्लसदुत्तरस्यांग(?) बलात्कारे गणे गौरवः ।
गच्छे स्वच्छसरस्वतीप्रविदिते श्रीकुन्दकुन्दाम्बये
वादीभेदमदप्रभेदनविधौ श्रीसिंहकीर्तिर्महान् ॥११॥

तत्पट्टाद्रिविभास्करो धृतिभरः श्रीधर्मकीर्तिःकृती
तस्मात्शीलविभूषणो गुणनिधिर्गण्यो गणीन्द्रोऽजनि ।
सिद्धांताम्बुधिपारसारसुहितः प्रायः प्रतापस्ततः
प्रोद्यत्पुण्यपरः प्रसिद्धमुनिराट् श्रीज्ञानभूषोऽभवत् ॥१२॥

तत्पट्टे प्रमदप्रकाशविलसत् श्रीभारतीभूषणः
चारित्राचरणाद्यमस्कृतदृशः किं वा तपोभूषणः ।
श्रीमद्भारकवंदिताहियुगलो गण्योऽपनुद्दूषणः
शश्वत् किन्नमस्यते बुधगणैः श्रीमज्जगद्भूषणः ॥१३॥

श्रीमद्वोलापूर्वान्वयगिरिशिरसि प्रोद्गतो विश्वविद्या-
लीलाविध्वस्तमिथ्यात्वविभवतिमिरस्तोमलब्धप्रतापः ।
भास्वानाघोगोत्रप्रविदितविभवः श्रीजगद्भूषणाना-
माम्नाये सन्निधानोऽभवदखिलगुणो दिव्यनेत्राविधानः ॥१४॥

तत्पत्नीकृतवर्गपोषविधितः स्वर्गौकसंपत्करः
धर्माश्लिष्टविशिष्टमाणसुगुणादुर्गाख्यया सगंतः ।
आसीत् शक्रसमः सुपूर्वतनयः श्रीचक्रसेनस्तयोः
प्रोद्यच्चित्रविचित्रतागुणमयः श्रीमित्रसेनोऽपरः ॥१५॥
यद्विद्याप्रभवत्प्रतापभयभाग् विद्वद्घटाभूयसा ।
व्याजप्राप्तवनांतरापि भयतां श्रीचक्रपाणिश्रुते ॥१६॥
वब्रे विस्तरता किमत्र तदिह प्रायष्युनर्चर्यते(?) ।
प्राज्ञैस्तद्गुणगौरवस्य जयतु श्रीचक्रसेनो महान् ॥१७॥
तस्य प्रिया शीलनिधिशलीलं(?) कृष्णावती तत्प्रभवोऽतिविद्यः ।
यो गाजितो भोगसमांक्षितात्मा सुयोगभाग्योपि विभाति भूत्या ॥१८॥
इजा इवाख्यात्र तदंगनास्तयोर्बभूवतुः केवल-धर्मसेनकौ ।
सुतौ सुशीलौ विलसत् प्रभापरौ जगत्त्रये पुष्पवतां सुसंपदः ॥१९॥
श्रीमद्दिग्दृशो द्वितीयतनयः पूर्णप्रतापप्रभा-
भासच्चारुललाटहर्षितजनस्तौमैकचेतोऽम्बुजः ।
स श्रीचित्रपवित्रतात्मविभवः श्रीमित्रसेनो महान्
सद्दानैकनिधानतां प्रविदधत् संग्रासमानो बभौ ॥२०॥
सुशीलया तत् प्रियया प्रभूतौ यशोदया गीतगुणो यशोभिः ।
संघाधिपः श्रीभगवानदासो विराजतेऽसौ परमप्रतापी ॥२१॥
तद्दामिनी केशरिदे शुभानना नयोः प्रजातास्तु सुता अमी त्रयः ।
महादिसेनो जिनदाससंज्ञिकस्ततो मुनिःसुव्रतवाक् सुखप्रदाः ॥२२॥
श्रीमित्रसेन-तनयो हरिवंशो द्वितीयकः ।
विशिष्टगुणसंपन्नो विभाति वृषवत्सलः ॥२३॥
श्रीमान् श्रीभगवानदास इति वाक्पूर्णप्रतापो महान्
भक्त्या श्रीजिनराजपादयुगलप्रायः प्रतिष्ठापनं ।
कृत्वा यो भुवि संघराजपदवीं चिक्राय(?)सद्विक्रमी
भूयो दानविधानमानकरणैर्जी ..... श्चिरं ॥२४॥

श्रीमान्किं भरतेश्वरः किमथवा श्रेयान्नृपः श्रेयसा
शक्रः किं किमु देयसूरिरनघः किं राजराजो महान् ।
यस्यालोकविधौ प्रसिद्धविबुधाः संदिग्धभाजोऽभवन्
सोऽयं श्रीभगवानसंघपतिराट् प्रायश्चिरं जिव्य(जीय)ताम् ॥१५॥

× × × ×

तेन श्रीवरसंघराजभगवद्दासेन संपोषिता
वाग्देवी बुधरूपचंद्रमभितः संप्रेयमाणाऽभवत् ।
श्रीसर्वज्ञपदांबुजार्चनकृतौ कैवल्यकेलीमयं
चक्रे चारुपदावलीललितमाचार्यसर्ज्या(?)विधिं ॥२१॥
स्मृत्वा श्रीमुनिपाणिनीयमतुलालंकारसारं दधत्
षट्तर्कीविधितां(?) प्रपद्य श्रु(?)बृहत्तारादिकानागमान् ।
सिद्धान्तान् परिचित्य वाग्भटकृतामा(ना)शाधरीश्र(म)द्भुतां
बुध्वा वृत्तिमचीकरं किमपरं कैवल्यसंपूजनम् ॥२२॥

श्रीमत्संवत्सरेऽस्मिन्नरपतिनुतयद्विक्रमादित्यराज्ये-
ऽतीते ह्यगनंदभद्रांस(शु)कृतपरिमिते(१६९२ ?) कृष्णपक्षे ष(?)मासे ।
देवाचार्यप्रचारे शुभनवमतिथौ सिद्धयोगे प्रसिद्धे
पौनर्वस्वित्पुडस्थे(?) समवसृतिमहं प्रातमासासमाप्तिं ॥२४॥

अनेकतर्कसंकर्ष-प्रहर्षित-बुधोत्तमः
स्वर्धुनीव यशस्फूर्त्तिर्जीयात् श्रीप्रीतिवर्द्धनः ॥२५॥

जीयात् श्रीरूपचन्द्रश्चिरमिह महितः शब्दशास्त्रार्थधीरैः
वीरः प्रज्ञाचसां यो बुधगणकलिता-मीयमानो यशोभिः ।
सद्वादे सर्वविद्यावरद इतिपदं विश्वलोके प्रसिद्धं
विद्वद्वाधिदेवः प्रवरजिनमते लब्धराभ्यर्च्यमानः ॥२६॥
जीयात् श्रीनेत्रसिंहोऽयं शाश्वतशिष्याग्रणीर्महान् ।
नित्यं नेत्रमिवाभाति विद्वज्जनवचो(मनो)हरः ॥२७॥

शब्दार्थरीतिरूपाढ्या गुणालंकारधारिणी ।
जिनार्चा भामिनी भूयात् प्रसिद्धेयं महीतले ॥३८॥
श्रीमता रूपचन्द्रेण कृतेयं श्रीजिनार्हणा ।
कारिता भगवद्दास-संघराजेन भक्तितः ॥३९॥
आचार्यकश्रीजिनेशेन(जिनसेन)भाषितमहापुराणोक्तविधेरनुक्रमात् ॥
कृतेयमर्चा जिनकेवलोदया भव्यात्मानां संविदधातु मंगल ॥४०॥

× × × ×

जिन-सिद्ध-महाचार्योपाध्यायसाधवः सदा ।
कुर्वन्तु संस्तुताः श्रीमद्रूपचन्द्राय मंगलं ॥४८॥

इति श्रीमत्पंडितरूपचन्द्र-कृतं श्रीसंघाधिपति-भगवानदास-कारितं भगवत्समवसरणार्चनविधानं समाप्तं ॥

१०८. सुखनिधान (कवि जगन्नाथ)

आदिभाग :—

नाभेयं करुणासिंधु भव्यपंकज-भास्करं ।
शास्वतं सौख्यसदनं नमामि भवशान्तये ॥१॥

× × × ×

श्रीश्रीपालचरित्रस्य रचने महती मम ।
वांछा प्रजायतेऽत्यंतं विदेहस्थस्य चक्रिणः ॥४७॥
मंदबुद्धिः कलामूढो विद्याभ्यासपरिच्युतः ।
यदहं शास्त्रकर्तेति गमिष्यामि हसं बुधा(धान्?) ॥४८॥
तथा च—कवयः सिद्धसेनाद्या [वयं तु] कवयो मताः ।
मणयः पद्मरागाद्या ननु काचोपि मेचकः ॥४९॥
परं किमत्र पांडित्यं सरलैर्निजदैर्विवं(रहं?) ।
चरित्रं रचयाम्येष नाम्ना सुखनिधानकं ॥५०॥

अन्तभाग :—

धीरा विशुद्धमतयो मम सच्चरित्रं कुर्वन्तु शुद्धमिह यत्र विपर्ययोक्तं ।
दोषो भवेत्किल करे न तु यस्य पुंसो दोषो न चास्ति पतने खलु तस्य लोके ॥

आचार्यपूर्णेन्दु-समस्तकीर्ति-सरोजकीर्त्यादिनिदेशतो मे ।
कृतं चरित्रं सुपुरांतमाले श्रीपालराजः शंधामनाम्ना ॥२०६॥

दिवाकरो निशाकरो नदीश्वरोथ भूतलं नभोपि भानि भांति वै घनाथ तारकाः(?)
उमापती रमापतिः शचीपतिर्जगत्पतिर्भवेत्स यावदेष कोपि तावदेवराजतां॥२१०

खखर्षिभूमीन्दुयुते(१७००)सुवत्से शुच्यां दशम्यां च शुभाऽश्विनस्य ।
पुरांतमाले सुपुरे महेन ग्रन्थं जगन्नाथसुधीरकार्षीत् ॥२११॥

मंगलश्रीमहाभागत् महाराजमहानग
मतिमन्नाम भो नाथ म(य)तीनां धीमतां वरः ॥२१२॥

नामगर्भित-कमलबन्धमिदं ।

इति विमलसकलागमावलीमंडित-खंडितानेककुवादि-परिरंजितालिल-लोक-सच्चातुरीकातरीकृतमिथ्यात्वनिवहस्य राजेन्द्रकीर्त्ति* मुख्यांतेवासिना गद्यपद्यविद्याविनोदाम्बुधिना कविचक्रवर्तिना जगन्नाथनाम्ना कृते सुखनिधानाभिधे ग्रंथे विदेहक्षेत्रस्थश्रीपाल-मुक्तिगमननामः पंचमः परिच्छेदः ॥५॥

१०६. पद्मचरित-टिप्पण (श्रीचन्द्रमुनि)

आदिभाग :—

शंकरं वरदातारं जिनं नत्वा स्तुतं सुरैः ।
कुर्वे पद्मचरितस्य टिप्पित(प्पण) गुरुदेशनात् ॥१॥

अन्तभाग :—

'लाडवागडि - श्रीप्रवचनसेन-पंडितात्पद्मचरितस्त्रकर्णो(माकर्ण्य)

---

* पूर्वकी सब संधियोंमें 'नरेन्द्रकीर्ति' नाम है, यहाँ यह 'राजेन्द्रकीर्ति' उसीका पर्यायनाम जान पड़ता है ।

बलात्कारगणश्रीश्रीनंद्याचार्यसत्कशिष्येण श्रीचंद्रमुनिना श्रीमद्धिक्रमादित्यसंवत्सरे समाशीत्यधिकवर्षसहस्रे (१०८७) श्रीमद्धारायां श्रीमतो भोजदेवस्य राज्ये पद्मचरित [टिप्पणं कृतं]। एवमिदं पद्मचरितटिप्पितं श्रीचन्द्रमुनिकृतं समाप्तमिति ।

११०. श्रीदेवताकल्प (भ० अरिष्टनेमि)

आदिभाग :—

प्रणम्य जिनमुत्तुंग-स्याद्वादनयभासुरं ।
क्रियते श्रीदेवताकल्पं कल्पामरसुसेवितं ॥१॥
नानावृत्त-पदन्यास-वर्णालंकाहारिणी ।
सन्मार्गोगी सिता जैनी प्रसन्ना नः सरस्वती ॥२॥
विद्यानुवादनिलयं श्रुतसारसिद्धिभव्योपकार इति चिंत्य महर्षिभिस्तं ।
सृष्टीकृतं पुनरहं विदधेऽल्पबंधं नात्यन्तविस्तरकृतं न विदत्यशेषं ॥३॥
मंत्री मंत्रविधिर्होमो देवताराधनक्रिया ।
यंत्र-मंत्र-प्रयोगाश्च दृश्यन्तेऽत्र विशेषतः ॥४॥

अन्तभाग :—

श्रीयुवतिसदनपद्मं राजेन्द्रशिरस्सुशेखरीकृतपद्मं ।
भव्यानिहितपद्मं (?) श्रीवीरसेनपदयुगपद्मं ॥२०९॥
शिष्यः श्रीवीरसेनस्य विद्वद्विनयनायकः ।
गुणसेनो महाख्यातो मदवादीभकेशरी ॥२१०॥
तस्य शिष्यो भवेत्ख्यातो विद्वद्भोजभास्करः ।
विशिष्टोऽरिष्टनेमीशो दुष्टवादिमदापहः ॥२११॥
रचितं नेमिनाथेन त्रैविद्येन यतीशिना ।
स्थेयाच्छ्रीदेवताकल्पं यावच्चन्द्र-दिवाकरौ ॥२१२॥
इत्यरिष्टनेमि-भट्टारकविरचिते श्रीदेवताकल्पे तंत्राधिकारः समाप्तः ।

[जौहरी मनोहरलाल देहली प्रति

१११. क्षपणासार (माधवचन्द त्रैविद्यदेव)

आद्यभाग :—

श्रीसद्धर्मसमुद्रनंदनवरः संवृद्धरत्नाकरः
सत्सेव्यो विमलोऽतुलः सुखकरो लोकप्रकाशप्रदः ।
उद्यद्दीबलभद्रमाधवनुतश्रीपादपद्मद्वयो
यो यूयं नमतादराकृतधियस्तं नेमिचन्द्रं सदा ॥१॥

क्षपणासारशास्त्रस्य नांदीसूत्रव्याख्यानमिदं—

श्रीसद्धर्मसमुद्रनंदनवरः समग्रराज्यलक्ष्म्या विशिष्टक्षात्रधर्मेण च युतः समुद्रविजयप्रियपुत्रः, संवृद्धरत्नाकरः × × × × × एवं विधं हरिकुलतिलकभूतनेमिनाथस्वामिनं शास्त्रकारः स्वयं निर्भरभक्त्या नमन् यूयमपि नमस्कृत्य कृतार्था भवतेति भव्यजनान् प्रेरितवानित्यर्थः । शास्त्रकारस्य गुरु नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्तिवंदनारूपेणाथवा मंगलसूत्रं व्याख्यानं कर्तव्यं । तद्यथा—यः श्रीसद्धर्मसमुद्रनंदनवरः स्याद्वादलक्षणलक्ष्मीजन्मावासभूतः विशिष्टसागाराऽनागार-धर्म-समुद्र-वर्द्धनमुख्यः, संवृद्धरत्नाकरः पंचविंशतिमलरहितविशिष्टसम्यक्त्वनिरतिचारचारुचारित्रसकलशास्त्रार्थपरिच्छेदनपटियदुष्ट(?)विमलज्ञानरूप-रत्नानामुदयस्याकरभूतः, सत्सेव्यः विद्वज्जनपूज्यः, विमलः अनवरतपरमागमभावनासुधासागरावगाहप्रक्षालितात्मीय-कलिकलुषमलपंकसंदोहः, अतुलः कवि-गमक-वादि-वाग्मितागुणैरद्वितीयः, सुखकरः मिथ्यात्वाद्यपाय-निराकरणेन सम्यक्त्वाद्युपायप्रदर्शनेन समस्तजनस्य हितकरः, लोकप्रकाशप्रदः श्रुतज्ञानप्रबलप्रभाकर-प्रभूत-प्रभा-प्रभावेन जनस्य सर्वपदार्थानां करतलामलकवद्दर्शकः, उद्यद्दीबलभद्रमाधवेनः सूइवंडात्मकसिद्धांतार्थ-धारण-प्रतिपादन-समर्थमतिबलविशिष्टगुणैरुत्कृष्टमाधवचन्द्रमुनिना पंचांगमंत्रबृहस्पतिसमानबुद्धियुत-भोजराजप्राज्यसाम्राज्यसमुद्धरणसमर्थ-बाहुबलयुक्त-दानादिगुणोत्कृष्टमहामात्य-पदवी-लक्ष्मी-वल्लभ-बाहुबलिमहाप्रधानेन वा, नुत श्रीपाद-

षट्खंडः वंदितश्रीपादपद्मयुगलः तं नेमिचंद्रं एवं विधं नेमिचन्द्राचार्यं कृतक्रियः एतच्छास्त्रश्रवणे दत्तचित्ताः श्रोतृजनाः यूयमादरात् निर्भरभक्त्या सदा सर्वकालं नमत वंदनां कुरुत। चंद्रेण सह श्लेषो तत्रच्छेऽपि अयं सूत्रार्थः संबंधनीयः × × × × ×।

अन्तभाग :—

यः कृष्टि स्पर्द्धकानां व्यतनुत विधिवल्लक्षणं तद्विकल्पं
साकल्येन प्रमाणं नशनविधिमतो मोक्षसंप्राप्त्युपायं।
भक्त्या भव्या भजध्वं कृतियतिवृषभं तं सदालोकदृष्टिं
षट्खंडं श्रीधवाद्यद्विजविभुवलबद्धाद्भुबल्यर्च्यपादं ॥१०॥

ये कृत्वा धवलां जयादिधवलां सिद्धांतटीकां सतीं
चंद्रार्कद्युतवत्समस्तभुवनं प्राकाशयन् संततं।
उत्कृष्टं च महापुराणमनिशं तान्संघनिस्तारकान्
वंदध्वं वर वीरसेन-जिनसेनाचार्यवर्यान् बुधाः ॥११॥

कीर्तिश्छत्रयुतस्तपोबलधृतश्चारित्रसिंहासनः
शीलास्त्रः शमचामरः पृथुदयादुर्गः सुदक्कोशवान्।
प्रज्ञाचक्रधरः सुयोगसचिवः सिद्धांतषट्खंडकं
यो रक्षन् मुनिचन्द्रसूरि-सुपतिं तं नौमि मूर्ध्नादरात् ॥१२॥

दुःखौघं जननादिवीचिनिचयं मिथ्यात्वनक्राकुलं
मोहांबुनरकादिगर्तममितं घोरं भवांभोनिधिं।
यः सत्पात्रयतत्त्वदेशनमहा नावाहमुत्तीर्णवान्
सैद्धांताधिपनेमिचन्द्रगणिनं तं नंनमीमि त्रिधा ॥१३॥

विनेयसुखकारकं सकलसंघनिस्तारकं
स्मरेभमददारकं नियमसंयमाराधकं।
त्रिगौरवनिवारकं श्रुतसमुद्रसंपूरकं
नमामि गणधारकं सकलचन्द्रभट्टारकं ॥१४॥

तपोनिधिमहायशः सकलचन्द्रभट्टारकः
प्रसाधिततपोबलादिविपुलबोधसच्चक्रतः ।
भुतांबुनिधिनेमिचन्द्रमुनिपप्रसादा-
गतात्प्रसाधितमविघ्नतः सपदि येन षट्खंडकं ॥१५॥
अमुना माधवचन्द्रदिव्यगणिना त्रैविद्यचक्रेशिना
क्षपणासारमकारि बाहुबलिसन्मंत्रीशसंशप्तये ।
शककाले शरसूर्यचंद्रगणिते(११२५) जाते पुरे दुल्लके
शुभदे दुंदुभिवत्सरे विजयतामाचंद्रतारं भुवि ॥१६॥

इति क्षपणासारः समाप्तः । संवत् १८१६ मिति वैशाखवदि ११ दिने५

[जयपुर तेरहपंथी मन्दिर प्रति

११२. षड्दर्शनप्रमाणप्रमेयसंग्रह (शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

साद्यनंतं समाख्यातं व्यक्तानेतचतुष्टयं ।
त्रैलोक्ये यस्य साम्राज्यं तस्मै तीर्थकृते नमः ॥

सकलतीर्थकृदाभिमतप्रमाणप्रमेयानुप्रवेशार्थमिदं । तत्र तावदर्हतोऽप्रतिहतशासनस्य—तत्त्वज्ञानं प्रमाणं । तद्द्विविधं प्रत्यक्षं परोक्षं च । स्पष्टमाद्यमस्पष्टमन्यत् । त्रिधा च सकलेतरप्रत्यक्ष-परोक्षभेदात् । करण-क्रमव्यवधानापोढं सकलप्रत्यक्षं । क्रमान्वितं करणव्यवधानापोढं विकल-प्रत्यक्षं । इंद्रियमनोव्यापाराभिमुखेतरार्थापेक्षं परोक्षं । अथवा मतिश्रुता-वधिमनःपर्ययकेवलभेदात्पंचतयं ॥

अन्तभाग :—

इति नैय्यायिकमतानुप्रवेशः ॥

मतसमासः । अमीभिः पुनर्वत्स विवेकमहापर्वतारूढैरप्रमत्तशिखर-स्थितैर्जिनपुरनिवासिभिः जैनलोकैरयं दृष्टो निर्वृतिनगरीगमनमार्गः । यदुत-

जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं । तत्र सुखदुःखज्ञानादिपरिणामलक्षणो जीवः । तद्विपरीतस्त्वजीवः । मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः । कायवाङ्मनः कर्म योगः । स आस्रवः । आस्रवकार्यं बन्धः । आस्रवनिरोधः संवरः । संवरफलं निर्जरा । निर्जराफलं मोक्षः । इत्येते सप्तपदार्थाः । तथा विधिप्रतिषेधानुष्ठानपदार्थाविरोधश्चात्र जैनेन्द्रदर्शने । स्वर्ग-केवलार्थिना तपोध्यानादि कर्तव्यं । सर्वजीवा न हंतव्याः । इति वचनात् । 'समितिगुप्तिश्रद्धाक्रियासपत्नो(?)योग' इति वचनात् । उत्पादविगमद्र(ध्रौ)व्ययुक्तं सत् । एकं द्रव्यमनंतपर्याममर्थं इति । प्रत्यक्षपरोक्षे द्वे एव प्रमाणे । इति जैनमतस्य निदर्शनमात्रं ॥

जयति शुभचन्द्रदेवः कंदुर्गणपुंडरीकवर(न)मार्तंडः ।
चंडत्रिदंडदूरो सिद्धान्तपयोधिपारगो बुधविनुतः ॥

११३. तत्त्वार्थवृत्तिपद (प्रभाचन्द्राचार्य)

आदिभाग :—

सिद्धं जिनेन्द्रमलमप्रतिमबोधं त्रैलोक्यवंद्यमभिवंद्य गतप्रबंधं ।
दुर्वारदुर्जयतमः प्रविभेदनार्कं तत्त्वार्थवृत्तिपदमप्रकटं प्रवक्ष्ये ॥

कश्चिद्भव्यः प्रसिध्येक(?)नामा प्रत्यासन्ननिष्ठः निष्ठाशब्देन निर्वाणं चारित्रं चोच्यते प्रत्यासन्ना निष्ठा यस्यासौ प्रत्यासन्ननिष्ठः । अत्राभिसर्ग·····।

अन्तभाग :—

इति दशमोध्यायः समाप्तः

ज्ञानस्वच्छजलस्फुरत्तनितरा(त्त्र)यारित्रवीचीचयः
सिद्धान्तादिसमस्तशास्त्रजलधिः श्रीपद्मनन्दिप्रभुः ।
तच्छिष्यान्निखिलप्रबोधजननं तत्त्वार्थवृत्तेः पदं
सुव्यक्तं परमागमार्थविषयं जातं प्रभाचन्द्रतः ॥
श्रीपद्मनन्दिसैद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालयः ।
प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयात् पादपूज्यपदे रतः ॥

मुनीन्दुनंदतादिदंजिजमानंदमंदिरं ।
सुधाधारोद्गिरन्मूर्तिः काममामोदयजनं ॥
इतिस्वार्थवृत्तिधदं समाप्तम् ।

११४. करकण्डु-चरित्र (भ० शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

श्रीमते श्रुतिसिद्धाय प्रबुद्धाय परात्मने ।
नमो वृषभनाथाय नरनाथनताँह्रये ॥१॥

अन्तभाग :—

('श्रीमूलसंघेऽजनि पद्मनन्दी' इत्यादि पद्य नं० ३४ से लेकर ४७ तक १४ पद्य प्रायः वे ही हैं जो पाण्डवपुराणकी प्रशस्तिमें पृष्ठ ४६-५० पर नं० १६७ से १८० तक मुद्रित हो चुके हैं।)

करकंडुनरेन्द्रस्य चरितं तेन निर्म्मितं ।
जिनेशपूजनप्रीत्येदं समुद्धृत्य शास्त्रतः ॥४८॥
शिष्यस्तस्य समृद्धिबुद्धिविशदो यस्तर्ककवेदी वरो
वैराग्यादिविशुद्धिवृद्धिजनकः सर्व्वार्थसुज्ञो महान् ।
संप्रीत्या सकलादिभूषणमुनिः संशोध्य चेदं शुभं
तेनालेखि सुपुस्तकं नरपतेरात्तं सुचंपेशिनः ॥४९॥
सकलभूषणआद्यसुभूषणो मुनिरभूदिह शास्त्रसुसंग्रहे ।
अकृतयोधिकृतः सुसहायतां पठन-पाठन-लेखन-सद्विधौ ॥५०॥

× × × ×

श्रीमूलसंघे कृत(ति)नंदिसंघे गच्छे(गणे?)बलात्कार इदं चरित्रं ।
पूजाफलेद्धं करकंडुराजो भट्टारकश्रीशुभचन्द्रसूरिः ॥५४॥

द्वाष्टे विक्रमतः शते समइते चैकादशाब्दाधिके (१६११)
भाद्रे मासि समुज्वले युगतिथौ खङ्गेजवाछे पुरे ।

श्रीमच्छ्रीवृषभेश्वरस्य सदने चक्रे चरित्रं त्विदं
राज्ञः श्रीशुभचन्द्रसूरियतिपश्चंपाधिपस्याद्भुतं ॥५५॥
श्रीमत्सकलभूषेण पुराणे पांडवे कृतं ।
साहाय्यं येन तेनाऽत्र तदकारि सुसिद्धये ॥५६॥

इति भट्टारक-श्रीशुभचन्द्रविरचिते मुनिश्रीसकलभूषणसाहाय्यसापेक्षे भव्यजन-जे(सं)गीयमान-यशोराशिश्रीकरकंडुमहाराजचरिते करकंडुदीक्षा-ग्रहण-सर्व्वार्थसिद्धिगमनवर्णनो नाम पंचदशः सर्गः ॥१५॥

[देहली सेठ कूँचा मन्दिर प्रति

११५. शांतिकविधि (पं० धर्मदेव)

आदिभाग :—

प्रणिपत्य जिनान् सिद्धानाचार्यान्पाठकान् यतीन् ।
सर्वशांत्यर्थमाम्नायपूर्वकं शांतिकं ब्रुवे ॥ १ ॥

अन्तभाग :

पोरपाटान्वये श्रीमान् त्राग्भटः श्रावकोत्तमः ।
तत्पुत्रो वरदेवोऽभूत्प्रतिष्ठाचारकोविदः ॥१॥
श्रीदत्ताख्यस्तदनुजः सर्व्वशास्त्रविशारदः ।
तत्पत्नी मानिनी ख्याता पातिव्रत्यविराजिता ॥२॥
तयोस्तु धर्म्मदेवाख्यः पुत्रोऽभवदनूद्भवः ।(***?)
श्रीगोगाख्यस्य विशस्य(?) दूरीकृतकलागुणः ।(***?) ॥३॥
तेनाकारि शुभायेदं शांतिकस्नानमुत्तमं ।
पठन्तु श्रावकाः सर्व्वे शोधनीयं महात्मभिः ॥४॥
यावन्मेरुर्मही यावद्यावच्चन्द्रार्कतारकाः ।
तावद्भद्राणि पश्यन्तु शांतिकस्नानपाटकाः ॥५॥

इति श्रीपंडितधर्म्मदेवविरचितं श्रीशांतिकपूजाविधानं समाप्तम् ।

[चौहरी मनोहरलाल देहली प्रति

११६. अम्बिका-कल्प (भ० शुभचन्द्र)

आदिभाग :—

वन्देऽहं वीरसन्नाथं शुभचन्द्रो जगत्पति ।
येनाप्येत महानुक्ति-वधूस्त्री-हस्तपालनम् ॥१॥
ज्ञानभूषं तपोभूषं धर्मभूषं सुभूषणम् ।
प्रणम्य वक्ष्येऽहं कल्पं तीव्रज्ञानप्रवर्द्धकम् ॥२॥
ऊर्जयंत-निवासिन्याः यक्षिमुख्यायाश्चाम्बिकायाः(?) ।
तत्पादौ प्रणम्य च त्रिजगतीक्षेमकरौ(?) ॥३॥ युग्मं
जीवकोद्भव-सञ्चन्द्र-पांडवोद्भव-दत्तक-
प्रमुखानां चरित्राण्यवदत् सोऽहं वदाम्यहम्(?) ॥४॥
कुन्दपट्टे यथाग्रंथं जिनसेनोऽपि नामतः ।
सोर्थो हरीरचन्मंगलं श्रीमंत्रप्रसंगहं(?) ॥५॥
गुणभद्रस्तदन्तेयः सोपि सार्थो हि टिप्पणं ।
ग्रंथं चक्रे महाकोचसुकोचफलपूरितं ॥६॥
तदन्वये मन्दबुद्धिर्भातोऽहं श्रीडपूरितः ।
तथाप्याम्नायं मुमोच न हि जैनपरम्परां ॥७॥
अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसुसर्वसाधूनां ।
प्रथमाक्षरेण मिलितः प्रणवः सिद्धिमागमत् ॥८॥

अन्तभाग :—

शुभचन्द्रो मुनिरहं जिनदत्तस्य चाग्रहात् ।
ब्रह्मशीलस्य तस्यैवं पठनार्थं दिने कृतं ॥१२॥
गुरुणा मत्रदेशो(?) न कथितो मारदूषणात् ।
तथापि नाहं चक्रेशौ(?) वादात् श्रीधर्मणः कृतात् ॥१३॥
सौबौद्धस्त्वं शतासि त्वन्मते शक्तिरर्हतः ।
पाखंडिमतविख्यातस्तथेति कथितस्तदा ॥१४॥

जिनदत्तस्य ज्ञानार्थं दिने चैके कृतं मया ।
ज्ञानिना अर्चितोसौ च मा भूः सिद्धोस्यदूषणं(?) ॥१५॥

× × × ×

इत्यंबिकाकल्पे चार्ये शुभचन्द्रप्रणीते सप्तमोऽधिकारः समाप्तः ॥७॥
नाम्नाधिकारः प्रथितोयं मंत्रसाधनकर्मणः ।
समाप्त एषमंत्रोऽयं पूर्णं कुर्यात् शुभंवनः(?) ॥१॥
इत्यम्बिकाकल्पः । [जौहरी मनोहरलाल देहली प्रति

११७. तत्त्वार्थ-टिप्पण (भ० प्रभाचन्द्र)

आदिभाग :—

सो णवमि वीरणाहं वीरो वरवीरमाइसंजुत्तो ।
णामाइ पंच सहिओ कम्मचुओ मोक्खसंपत्तो ॥१॥
इहैव भारते क्षेत्रे आर्यवे(?)सुरसप्रिये ।
हिरण्याख्ये (हरनाख्ये) अनपदे जिनतीर्थसमन्वितं ॥२॥
सुनामाख्यं पुरं तत्र बिबुधैर्म्मंडितं वरं ।
जिनवेश्मनि संसीनो नयसेनार्य-संततौ ॥३॥
लतातरुयूथेन्द्र(?) हरिः क्रोधानलाष्टकः ।
श्रीमद्भट्टारको हेमकीर्तिस्तत् शिष्यकः सुधीः ॥४॥
धर्मचन्द्रो यतिपतिः जैना(काष्ठा)म्नायाभ्रभास्करः ।
तत्पट्टे श्रीप्रभाचंद्रः सर्वसंघसमन्वितः ॥५॥
धर्म्माख्यानं च कुर्वन् सन् यावदास्ते दिगंबरः ।
तावदुवाच कालहूतुक(सुत ?) हावासाधुः प्रणम्य च ॥६॥
अध्यात्मरससंसिक्तं मानसे यस्य निर्मलं ।
भो मुने सद्गुणावास तत्त्वार्थं कथय प्रभो ॥७॥
एतद्वचः समाकर्ण्य प्रोवाचेति कथं मया ।
श्रीविघ्न कथयतत्त्वार्थं बहुभेदेन संयुतं ॥८॥

तथापि कथ्यते साधो शृणुदत्तावधानतः ।
बुद्धया विनापि पूर्वार्यैः भाषितं यज्जिनागमे ॥९॥
धर्माख्यानं न कुरुते तावत्कतिपयैर्दिनैः ।
चलचित्तो मुनिर्यातो देशान्तरगमोद्यतः ॥१०॥
प्रातः पुरे सकौटाख्ये समानीतो जिनालये ।
लंबकंचुकआम्नाये सकरू(तू) साधुनंदनः ॥११॥
पंडितो सोनिको विद्वान् जिनपादाब्जषट्पदः ।
सम्यग्दृष्टी गुणावासो बुध-शीर्षशिरोमणिः ॥१२॥
प्रणम्य वचनं प्रोक्तं भो यते कामकेसरे ।
सरलं समतत्त्वार्थं ममाग्रे कथय प्रभो ॥१३॥
तद्वचनाद्यतिपतिः प्रोवाच शृणु पंडित ।
कथयामि तवाग्रेऽहं तत्त्वार्थं यज्जिनोदितं ॥१४॥
पंचगुरुनमस्कारं कृत्वा तत्त्वार्थसूत्रसुगमार्थं ।
टि(सट्टि ?)प्पणं करोमि भव्यजन-प्रबोधनार्थाय ॥१५॥

(आगे 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' इत्यादि मंगलपद्यसे टिप्पणका आरंभ है ।)

अन्तभाग :—

द्वीपेऽथ जंबूपपदे जंबूवृक्षलक्षिते ।
भारतं तत्र विख्यातं क्षेत्रं षट्खंड[रा]जितं ॥४॥
तत्रार्यखंडविदितो जिनतीर्थैरलंकृतः ।
पंचालस्तत्र विषयो जनसौख्यप्रदायकः ॥५॥
श्रीमत्काष्ठान्वये ख्यातः कामकुञ्जरकेशरी ।
भट्टारकः सुरेन्द्राद्या हेमकीर्तिर्मुनीश्वरः ॥६॥
तत्पट्टे निर्मदः शान्तः मायावल्ली-धनंजयः ।
सर्वग्रन्थार्थविद्वो(?)वर्म्मचन्द्रो गुणाग्रणीः ॥७॥
तच्छिष्योऽखिलसद्गुणौघजलधिर्मिथ्यातमार्कों मुनि-
स्त्यक्ताशेषपरिग्रहो हरिशतैः पूज्यांघ्रि''''लालजः ।

तर्कव्याकरणादिशास्त्रसकलाम्भोराशिपारं गतो
भव्याम्भोरुहपूर्णतिग्मकिरणः श्रीमान् प्रभाचन्द्रकः ॥८॥
सर्वसंघसमोपेतः विहरन्नेकदा स वै ।
समायातः सकीदाख्ये नगरे वैरिदुर्जये ॥९॥
यस्मिन्नुपासका बहवः जिनधर्मपरायणाः ।
सत्पात्रदानवन्तश्च गुरुपादाब्जपट्पदाः ॥१०॥
.....गृहे तत्र ध्वजापट्टादिशोभितं ।
नाभेयप्रतिबिम्बं यत्राभात्सुरनरार्हितं ॥११॥
तस्मिन् का ... यन् ... भिः प्रभाचन्द्रमुनीश्वरैः ।
स्वहृदि चिंतितं किंचित् क्रियते काव्यमुत्तमं ॥१२॥
एतत्सुगममस्माभिस्तत्त्वार्थसारटिप्पणं ।
शोधयंतु बुधाः किंचिद्यदि शासन-दूषितं ॥१३॥
अस्मिन्संवत्सरे विक्रमादित्यनृपतेः गते ।
चतुर्दशशतेऽतीते नवाशीत्यद(शीत्यब्द)संयुते(१४८९) ॥१४॥
भाद्रपदे शुक्लपक्षे पंचमीवासरे शुभे ।
बारेऽर्के वैधृतियोगे विशाखाभृद्गके वरे ॥१५॥
तत्त्वार्थटिप्पणं भद्र प्रभाचन्द्रतपस्विना ।
कृतमिदं प्रबोधाय जैनाख्यब्रह्मचारिणे ॥१६॥
यावद्धरिद्धरी व्योम्नि यावद्धरिः मुरालये ।
तावद्धर्मरतः श्रीमज्जैनसंघोऽभिनंदतात् ॥१७॥

इति श्रीमद्भट्टारकधर्मचंद्रशिष्यगणिप्रभाचन्द्रविरचिते तत्वार्थ-टिप्पणिके ब्रह्मचारिजैता-साधुहावादेवनामांकिते दशमोऽध्यायः समाप्तः ।

यस्तुयंदानपरिपोषित .....।
श्रीमत्प्रभाशशिष्यतीश्वर-पादलीनः पुत्रान्वितो भुवि स नंदतु हावसाधुः ॥

इति [तत्त्वार्थ-] सूत्रटिप्पणं समाप्तं ।

११८. गणितसार-संग्रह (महावीराचार्य)

आदिभाग :—

अलंघ्यं त्रिजगत्सारं यस्याऽनंतचतुष्टयं ।
नमस्तस्मै जिनेन्द्राय महावीराय तायिने ॥१॥
संख्याज्ञानप्रदीपेन जैनेन्द्रेण महत्विषा ।
प्रकाशितं जगत्सर्व्वं येन तं प्रणमाम्यहं ॥२॥
प्रीणितः प्राणिसस्यौघो निरीतिर्निरवग्रहः ।
श्रीमताऽमोघवर्षेण येन स्वेष्टहितैषिणा ॥३॥
पापरूपाः परा यस्य चित्तवृत्तिहविर्भुजि ।
भस्मसाद्भावमीयुस्तेऽबंध्यकोपो भवेत्ततः ॥४॥
वशीकुर्वन् जगत्सर्व्वं योऽयं नानुवशः परैः ।
नाऽभिभूतः प्रभुस्तस्मादपूर्व्वमकरध्वजः ॥५॥
यो विक्रमक्रमाक्रांतचक्रिचक्रकृतक्रियः ।
चक्रिकाभंजनो नाम्ना चक्रिकाभंजनोऽञ्जसा ॥६॥
यो विद्यानद्यधिष्ठानो मर्यादावज्रवेदिकः ।
रत्नगर्भो यथाख्यातचारित्रजलधिर्महान् ॥७॥
विध्वस्तैकांतपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिनः ।
देवस्य नृपतुंगस्य वर्द्धतां तस्य शासनं ॥८॥
लौकिके वैदिके चऽपि तथा सामायिके च यः ।
व्यापारस्तत्रसर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते ॥९॥
कामतंत्रेऽर्थशास्त्रे च गांधर्वे नाटकेऽपि वा ।
सूपशास्त्रे तथा वैद्ये वास्तुविद्यादिवस्तुषु ॥१०॥
छंदोऽलंकारकाव्येषु तर्कव्याकरणादिषु ।
कलागुणेषु सर्व्वेषु प्रस्तुतं गणितं पुरा ॥११॥
सूर्यादिग्रहचारेषु ग्रहणे ग्रहसंयुतौ ।

त्रिप्रश्ने चन्द्रवृत्तौ च सर्व्वत्राऽङ्गीकृतं हि तत् ॥१२॥
द्वीपसागरशैलानां संख्या-व्यासपरिक्षिपः ।
भवनव्यंतरज्योतिर्लोककल्पाऽधिवासिनां ॥१३॥
नारकाणां च सर्व्वेषां श्रेणीबद्धेन्द्रकोत्करा ।
प्रकीर्णकप्रमाणाद्या बुध्यते गणितेन ते ॥१४॥
प्राणिनां तत्र संस्थानमायुरष्टगुणादयः ।
यात्राद्यास्संहिताद्याश्च सर्वे ते गणिताश्रयाः ॥१५॥
बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरं ।
यत्किंचिद्वस्तु तत्सर्वं गणितेन विना न हि ॥१६॥
तीर्थकृद्भ्यः कृतार्थेभ्यः पूज्येभ्यो जगदीश्वरैः ।
तेषां शिष्यप्रशिष्येभ्यः प्रसिद्धाद्गुरुपर्वतः ॥१७॥
जलधेरिव रत्नानि पाषाणादिव कांचनं ।
शुक्तेर्मुक्ताफलानीव संख्याज्ञानमहोदधेः ॥१८॥
किंचिदुद्धृत्य तत्सारं वक्ष्येऽहं मतिशक्तितः ।
अल्पग्रंथमनल्पार्थं गणितं सारसंग्रहं ॥१९॥

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यकृतौ संज्ञाधिकारः समाप्तः ॥

अन्तभाग :—

कथमितिचेत् पको(एका)द्येकोत्तरंस्थगच्छेनागतधनमुत्तरेण गुणयित्वा गतः लब्धं त्रिभिर्भक्त्वा तस्मिनगच्छे एकमपनीय गुणयित्वा तस्मिन् लब्धे मेलयित्वागतलब्धे एकाद्येकोत्तरं गच्छधनं ॥छ॥ [बम्बई ऐ० प० स० भ० प्रति

[नोट—बम्बई सरस्वती भवनकी यह प्रति सं० १५७५ वैशाख सुदि नवमी शुक्रवारको लिखी हुई है और इसे मूलसंघी भलात्कारगणके आचार्य ज्ञानकीर्तिके प्रशिष्य तथा रत्नकीर्तिके शिष्य यशःकीर्तिने स्वयं अपने हाथसे लिखा है। प्रति प्रायः शुद्ध और सुन्दर है परन्तु जीर्ण है और अधूरी जान पड़ती है। अन्तमें समाप्तिसूचक संधि तथा मूलग्रन्थ-प्रशस्तिका कोई भाग नहीं है। ऊपरके अन्तिम भागके अनन्तर ही लेखकप्रशस्ति लगी हुई है।]

११९. पुराणसार (श्रीचन्द्र मुनि)

आदिभाग :—

नत्वादितः सकल[तीर्थ]कृतः कृतार्थान् सर्वोपकारनिरतांस्त्रिविधेन नित्यम् ।
वक्ष्ये तदीयगुणगर्भमहापुराणं संक्षेपतोऽर्थनिकरं शृणुत प्रयत्नात् ॥१॥

अन्तभाग :—

धारायां पुरि भोजदेवनृपते राज्ये जयात्युच्चकैः(?)
श्रीमत्सागरसेनतो यतिपतेर्ज्ञात्वा पुराणं महत् ।
मुक्त्यर्थं भवभीतिभीतजगता श्रीनन्दिशिष्यो बुधः
कुर्वे चारुपुराणसारममलं श्रीचन्द्रनामा मुनिः ॥१॥
श्रीविक्रमादित्यसंवत्सरे यशपूत्य(पंचाशीत्य ?)धिकवर्षसहस्रे (१०८५ ?)
पुराणसाराभिधानं समाप्तं ।

१२०. शान्तिनाथ-पुराण (भ० श्रीभूषण)

आदिभाग :—

सिद्धं सिद्धार्थसंसिद्धिदायकं भुवनेश्वरं ।
वन्दे सर्वगुणोपेतं प्रारब्धार्थप्रसिद्धये ॥१॥
× × × ×
रामसेनादयो नम्याः स्तुवेऽहं ज्ञानकोविदाः ।
पंचमे ज्ञानना(निने)ऽतुल्याः दुर्मतध्वान्तनाशकाः ॥२४॥
नेमिसेनमुनीन्द्राय नमो नित्यं गुणात्मने ।
धर्माधर्मप्रदेशाय वादिने निष्कलात्मने ॥२५॥
अकलंककलाकल्पं न्यायमार्गविशारदं ।
वन्देऽहं दुर्मतध्वान्तनाशकं सूर्यसन्निभं ॥२६॥
वाक्यं समन्तभद्रस्य दधेऽहं चित्तकैरवे ।
येन सूर्यायते नित्यं हृदयाम्बुजकोषके ॥२७॥

स्तुवे माधवभट्टस्य वाक्यं सन्देहमर्दकं ।
येन जैनेन्द्रसिद्धान्तं दर्शितं भरतावनौ ॥२८॥
जीयाच्छ्रीजिनसेनश्च कविकोटिशिरोमणिः ।
अरीरचन्महाशास्त्रं पुराणं हरिवंशकं ॥२९॥
जिनसेनो लघुर्जीयात् पुराणरचने क्षमः ।
येन महापुराणाख्यमकरोद्विबुधाग्रणीः ॥३०॥
येन श्रीधर्मसेनेनाजीजयन्मकरध्वजः ।
विमलादिसेनको तावद्भूव क्षितिविश्रुतः ॥३१॥
सार्थकोऽभूद्विशालश्चकीर्तिरुत्त[म]चारकः ।
तथा श्रीविश्वसेनश्च विश्वसेनो यथार्थवाक् ॥३२॥
विश्वसेनपदांभोजबोधनैकदिवाकरः ।
विद्याभूषणसूरीन्द्र(द्रो) जीयताज्जगतीतले ॥३३॥
श्रीवीरवदनोत्पन्नां नमामि शारदां वरां ।
अंगपूर्वादिसंभूतां गणेन्द्रशतधारिताम् ॥३४॥
चरित्रं शांतिनाथस्य वक्ष्येऽहं भक्तितो वरं ।
चक्रिणः स्वात्मरूपस्य रम्यं स्वस्याऽघहानये ॥३५॥

अन्तभाग :—

काष्ठासंघावगच्छे विमलतरगुणे सारनंदीतटाके ।
ख्याते विद्यागणे वै सकलबुधजनैः सेवनीये वरेण्ये ।
श्रीमच्छ्रीरामसेनान्वयतिलकसमा नेमिसेनाः सुरेन्द्राः ।
भूयासुस्ते मुनीन्द्रा व्रतनिकरयुता भूमिपैः पूज्यपादाः ॥४५६॥
श्रीधर्मसेनो यतिवृन्दसेव्यः विराजते भूवलये नितान्तं ।
वैमल्यसेनोऽपि यथार्थनामा चारित्ररत्नाकर एव नित्यं ॥४५७॥
विशालकीर्तिश्च विशालकीर्तिर्जम्बूद्रुमाङ्के विमले सदैव ।
विभाति विद्यार्णव एव नित्यं वैराग्यपाथोनिधिशुद्धचेताः ॥४५८॥

ओं विश्वसेनो यतिवृन्दमुख्यः विराजते वीतभयः सलीलः ।
स्वतर्कनिर्नाशितसर्वदिग्भो विख्यातकीर्तिर्जितमारमूर्तिः ॥४५६॥
तत्पट्टविद्यार्णवपारगंता जीयात्पृथिव्यां पृथुवृत्तवृत्तः ।
विद्याविभूषोऽपि यथार्थनामा विद्याविनोदेन च लब्धकीर्तिः ॥४६०
विद्याभूषणपट्टकंजतरणिः श्रीभूषणो भूषणो
जीयाज्जीवदयापरो गुणनिधिः संसेवितो सज्जनैः ।
काष्ठासंघसरित्पतिशशधरो वादी विशालोपमः
सद्वृत्तोऽकंधरो(?)ऽतिसुन्दरतरो श्रीजैनमार्गानुगः ॥४६१॥
संवत्सरे षोडशनामधेये एकोनसप्तषष्टियुते (१६५६) वरेण्ये ।
श्रीमार्गशीर्षे रचितं मया हि शास्त्रं च वर्षे विमलं विशुद्धं ॥४६२॥
त्रयोदशी सद्दिवसे विशुद्धं वारे गुरौ शान्तिजिनस्य रम्यं ।
पुराणमेतद्विमलं विशालं जीयाच्चिरं पुण्यकरं नराणाम् ॥४६३॥युग्मं ।
श्रीगूर्जरेऽस्ति पुरं प्रसिद्धं सौजीत्रनामाभिधमेव सारं ।
श्रीनेमिनाथस्य समीपमाशु चकार शास्त्रं जिनभूतिराम्यं(?)॥४६४॥
अस्य शास्त्रस्य विज्ञेयाः श्लोकाः चतुःसहस्रकाः ।
पंचविंशतिसंयुक्ता(४०२५) विज्ञेया लेखकैः सदा ॥४६७॥

इति श्रीशान्तिनाथ-पुराणे भट्टारकश्रीश्रीभूषणविरचिते शान्तिनाथ-समवसरणधर्मोपदेशमोक्षगमनवर्णनो नाम षोडशः सर्गः समाप्तः ॥१६॥

[बम्बई ऐ० प० स० भ० प्रति

१२१. वृषभदेवपुराण (भ० चन्द्रकीर्ति)

आदिभाग :—

.....।
.....॥

अन्तभाग :—

श्रीकाष्ठसंघेऽजनि रामसेनो नांदीतटांके नरदेवपूज्यः ।
तदन्वये संयमभारधारि-श्रीविश्वसेनो मुनिपो बभूव ॥६०॥

तत्पट्टे किल शास्त्रज्ञो विद्याभूषणसूरिराट् ।
योऽभवत्परमार्थेन प्रसिद्धोऽवनिमंडले ॥६१॥
तत्पट्टाचलभास्करो गुणनिधिः शास्त्राब्धिपारंगतः
श्रीश्रीभूषण एव गौतमनिभो गच्छाधिराजः कवि-
स्तत्पट्टे किल चंद्रकीर्तिमुनिपो भट्टारकाधीश्वर-
स्तेनेदं रचितं पुराणममतुलं नाभेयदेवस्य वै ॥६२॥
पुराणं वृषभेशस्य पवित्रं पापनाशनं ।
सज्जनान् प्रतिबोधाय निर्मितं चंद्रकीर्तिना ॥६३॥

इति श्रीत्रिभुवनैकचूडामणिश्रीमद्वृषभदेवपुराणे भट्टारकश्रीश्रीभूषण-पादपद्म-मधुकरायमान-भट्टारकश्रीचंद्रकीर्तिप्रणीते वृषभदेव-निर्वाणगमनो नाम पंचविंशतिपर्व ॥ समाप्तमिदं ॥

[बम्बई ऐ० प० स० भ० प्रति

१२२. सुभग-सुलोचना-चरित (भ० वादिचन्द्र)

आदिभाग :—

प्रणम्य शिरसाऽर्हन्तं स्फुर्जंतं ज्ञानतेजसम् ।
संचिताखिल-पापौघ-ध्वान्तध्वंसैककारणम् ॥१॥

अन्तभाग :—

विहाय पदकाठिन्यं सुगमैर्वचनोत्करैः ।
चकार चरितं साध्व्या वादिचन्द्रोऽल्पमेधसा ॥२॥
स्वस्ति [श्री]मूलसंघेऽस्मिन् पद्मनन्दीनमाश्रिताः ।
ते प्रपश्यन्ति सर्वान् [वै] किमत्राश्चर्यमद्भुतम् ॥३॥
देवेन्द्रस्त्ववशः पेतुः करैः कृत्वास्ववकीम् (?) ।
देवेन्द्रकीर्तिं ते वन्दे [द]मितानंगसद्बलम् ॥४॥
विद्यानंदो हि शिष्याणां यत्पुरः पठतापुर(?) ।
नंनमीमि त्रिशुध्या तं ध्यानं दिनश्वमाश्वरम् (?) ॥५॥

अपाकुर्वन्ति मतुलम्(?)मतामि[तो] मिथ्यादृशामिह ।
मानये मल्लिभूषाता ·····विनिमण्डपम् (?) ॥६॥
लक्ष्मीलाभो हि यद्दाएया प्रत्य[हं] जायते नृणाम् ।
लक्ष्मीचन्द्रं च तं वाये लीलालभितपातकम् ॥७॥
वीरचन्द्रं समाश्रित्य के मूर्खा न विदो मथत् (?) ।
तं [श्रये] त्यक्तसर्वान्नं दीप्त्या निर्जितकांचनम् ॥८॥

इति भट्टारकश्रीवादिचन्द्रविरचिते सुभगसुलोचनाचरिते नवमः परिच्छेदः ।

१२३. षट्खण्डागम-टीका = धवला (वीरसेनाचार्य)

आदिभाग :—

सिद्धमणंतमणिंदियमणुवममणुत्थ-सोक्खमणवज्जं ।
केवल-पहोह-णिज्जिय-दुण्णय-तिमिरं जिणं णमह ॥१॥
बारह-अंगग्गिज्झा चियलिय-मल-मूढ-दंसणुत्तिलया ।
विविह-वर-चरण-भूसा पसियउ सुय-देवया सुइरं ॥२॥
सयल-गण-पउम-रविणो विविहद्धि-विराइया विणिस्संगा ।
णीराया वि कुराया गणहर-देवा पसीयंतु ॥३॥
पसियउ महु वरसेणो पर-वाइ-गयोह-दाण-वरसीहो ।
सिद्धंतामिय-सायर-तरंग-संघाय-धोय-मणो ॥४॥
पणमामि पुप्फदंतं दुकयंतं दुण्णयंधयार-रविं ।
भग्ग-सिव-मग्ग-कंटयमिसि-समिइ-वइं सया दंतं ॥५॥
पणमह कय-भूय-बलिं भूयबलिं केस-वास-परिभूय-बलिं ।
विणिहयबम्मह-पसरं वड्ढावियं-चिमलणाण-बम्मह-पसरं ॥६॥

अन्तभाग :—

जस्स से(प)साएण मए सिद्धंतमिदं हि अहिलहुंदी(हुदं)
महु सो एलाइरिओ पसियउ वरवीरसेणस्स ॥१॥

वंदामि उसहसेणं तिहुवण-जिय-बंधवं सिवं संतं।
णाण-किरणावहासिय-सयल-इयर-तम-पणासियं दिट्ठं ॥२॥
अरहंतपदो (अरहंतो) भगवंतो सिद्धा सिद्धा पसिद्ध आइरिया।
साहू साहू य महं पसियंतु भडारया सव्वे ॥३॥
अज्जजजणंदिसिस्सेणुज्जुव-कम्मस्स चंदसेणस्स।
तह णत्तुवेण पंचत्थूहण्णयभाणुणा मुणिणा ॥४॥
सिद्धंत-छंद-जोइस-वायरण-पमाण-सत्थ-णिवुणेण।
भट्टारएण टीका लिहिएसा वीरसेणेण ॥५॥
अट्ठ(ठ)तीसम्हि सासिय(सत्तसए) विक्कमणामंकिए सु-संवच्छरे।
वासेसु तेरसीए भाव(णु)विलग्गे धवल-पक्खे ॥६॥
जगतुंगदेव-रज्जे रियम्हि कुंभम्हि राहुणा कोणे।
सूरे तुलाए संते गुरुम्हि कुलविल्लए होंते ॥७॥
चावम्हि व(त)रणि-वुत्ते सिंघे सुक्कम्मि मीणे चंदम्मि*।
कत्तिय-मासे एसा टीका हु समाणिआ धवला ॥८॥
बोद्दणरायणरिंदे णरिंदचूडामणिम्हि भुंजंते।
सिद्धंतगंथमत्थिय गुरुप्पसाएण विगता सा ॥९॥
शब्दब्रह्मेति शाब्दैर्गणधरमुनिरित्येव राद्धान्तविद्भिः।
साक्षात्सर्वज्ञ एवेत्यवहितमतिभिस्सूक्ष्मवस्तुप्रणीतेः(वीणैः)
यो दृष्टो विश्वविद्यानिधिरिति जगति प्राप्तभट्टारकाख्यः।
स श्रीमान्वीरसेनो जयति परमतध्वान्तविध्वंसकारः ॥१०॥

(इसके आगे ग्रन्थमें कनड़ी प्रशस्ति है।)

इति श्रीधवलप्रशस्तिः।

---

* आगे पृष्ठ १८७ के नोटमें उल्लेखित आराकी उस प्रशस्ति-प्रतिमें 'मीणे चंदम्मि' ही पाठ है 'नेमिचंदम्मि'जैसा अशुद्ध पाठ नहीं।

१२४. कषायप्राभृत-टीका = जयधवला

(आचार्य वीरसेन, जिनसेन)

आदिभाग :—

जयइ धवलंगतेएणाऊरिय-सयलभुवणभवणगब्भो ।
केवलणाणसरीरो अणंजणो णामओ चंदो ॥१॥
तित्थयरा चउवीस वि केवलणाणेण दिट्ठसव्वट्ठा ।
पसियंतु सिवसरूवा तिहुवणसिरसेहरा मज्झं ॥२॥
सो जयइ जस्स केवलणाणुज्जलदप्पणम्मि लोयालोयं ।
पुढ पदिबिंबं दीसइ वियसिय-सयवत्त-गब्भगउरो वीरो ॥३॥
अंगंगवज्झणिग्गी अणाइमज्झंतणिम्मलंगाए ।
सुयदेवय-अंबाए णमो सया चक्खुमइयाए ॥४॥
णमह गुणरयणभरियं सुअणाणामिय-जलोह-गहिरमपारं ।
गणहरदेवमहोवहिमणेय-णय-भंग-भंगि-तुंग-तरंगं ॥५॥
जेणिह कसायपाहुडमणेयणयमुज्जलं अणंतत्थं ।
गाहाहि विवरियं तं गुणहरभट्टारयं वंदे ॥६॥
गुणहर-वयण-विणिग्गय-गाहाणत्थोवहारिओ सव्वो ।
जेणज्जमंखुणा सो णागहत्थी वरं देउ ॥७॥
जो अज्जमंखुसीसो अंतेवासी वि णागहत्थिस्स ।
सो वित्तिसुत्तकत्ता जइवसहो मे वरं देउ ॥८॥

अन्तभाग :—

एत्थ सव्वत्थ धवलिय तिहुवणभवणुप्पसिद्धमाहप्पा ।
पाहुडसुत्ताणमिमा जयधवला-सण्णिया टीका ॥१॥
सुअदेवयाए भत्ती सुदोवजोगो य भाविओ सम्मं ।
अहवइ णाणसिद्धिं णाण-फलं चावि णिव्वाणं ॥२॥

णाणेण झाणसिद्धी भावादो सव्व-कम्म-णिज्जरणं ।
णिज्जर-फलं च मोक्खो णाणब्भासं तदो कुज्जा ॥३॥
इय भावियूण सम्मं सुदणाणाराहणा मये एसा ।
चिरभाविदा भयवदी पसियउ सा मज्झमचिरेण ॥४॥
उज्जोइदा य सम्मं उज्जमिदा साहिदा य णित्थिएणा ।
णिव्वूदा य भयवदी पसियउ सुअदेवया मज्झं ॥५॥
इति श्रीवीरसेनीया टीकासूत्रार्थ-दर्शिनी ।
वाटग्रामपुरे श्रीमद्गूर्जरार्यानुपालिते ॥१॥
फाल्गुणे मासि पूर्वान्हे दशम्यां शुक्लपक्षके ।
प्रवर्धमान-पूजोरु-नन्दीश्वर-महोत्सवे ॥२॥
अमोघवर्षनराजेन्द्र-राज्यराज्यगुणोदया ।
निष्ठिता प्रचयं यायादाकल्पान्तमनल्पिका ॥३॥
षष्टिरेव सहस्राणि(६००००)ग्रन्थानां परिमाणतः ।
श्लोकानुष्टुभेनात्र निर्दिष्टान्यनुपूर्वशः ॥४॥
विभक्तिः प्रथमस्कंधो द्वितीयः संक्रमोदयौ ।
उपयोगश्च शेषास्तु तृतीयस्कंध इष्यते ॥५॥
एकान्नषष्टिसमधिक-समशताब्देषु(७५९) शकनरेन्द्रस्य ।
समतीतेषु समाप्ता जयधवला प्राभृत-व्याख्या ॥६॥
गुर्जरनरेन्द्रकीर्तेरन्तःपतिता शशांकशुभ्रायाः ।
गुप्तेव गुप्तनृपतेः शकस्य मशकायते कीर्तिः ॥७॥
गुर्जरयशः पयोऽब्धौ निमज्जतीन्दौ विलक्षणं लक्ष्म ।
कृतमलि-मलिनं मन्ये धात्रा हरिणापदेशेन ॥८॥
भरत-सगरादि-नरपति-यशांसि तारानिभेन संहृत्य ।
गुर्जरयशसो महतः कृतोऽवकाशो जगत्सृजा नूनं ॥९॥
इत्यादिसकलनृपतीनतिशय्यपयःपयोधि-फेनेत्था ।
गुर्जरनरेन्द्रकीर्तिः स्थेयादाचन्द्रतारमिह भुवने ॥१०॥

जयत्यजय्यमाहात्म्यं विशासित-कुशासनं ।
शासनं जैनमुद्भासि मुक्तिलक्ष्म्यैक-शासनं ॥११॥
भूयादावीरसेनस्य वीरसेनस्य शासनं ।
शासनं वीरसेनस्य वीरसेनकुशेशयं ॥१२॥
आसीदासीददासन्न-भव्यसत्त्व-कुमुद्वतीम ।
मुद्वतीं कर्तुमीशो यः शशाङ्क इव पुष्कलः ॥१३॥
श्रीवीरसेन इत्यात्त-भट्टारक-पृथुप्रथः ।
पारदृश्वाधिविद्यानां साक्षादिव स केवली ॥१४॥
प्रीणित-प्राणि-संपत्तिराक्रान्ताऽशेषगोचरा ।
भारती भारतीवाशा षट्खण्डे यस्य नाऽस्खलत् ॥१५॥
यस्य नैसर्गिकीं प्रज्ञां दृष्ट्वा सर्वार्थगामिनीम् ।
जाताः सर्वज्ञसद्भावे निरारेका मनीषिणः ॥१६॥
यं प्राहुः प्रस्फुरद्बोध-दीधिति-प्रसरोदयम् ।
श्रुतकेवलिनं प्राज्ञाः प्रज्ञाश्रमणसत्तमम् ॥१७॥
प्रसिद्ध-सिद्ध-सिद्धान्त-वार्धिवार्धौत-शुद्धधीः ।
सार्द्धं प्रत्येकबुद्धैर्यः स्पर्धते धीद्धबुद्धिभिः ॥१८॥
पुस्तकानां चिरन्तानां गुरुत्वमिह कुर्वता ।
येनातिशयिताः पूर्वे सर्वे पुस्तक-शिष्यकाः ॥१९॥
यस्तपोदीप्तकिरणैर्भव्याम्भोजानि बोधयन् ।
व्यद्योतिष्ट मुनीनेनः पञ्चस्तूपान्वयाम्बरे ॥२०॥
प्रशिष्यश्चन्द्रसेनस्य यः शिष्योऽप्यार्यनन्दिनाम् ।
कुलं गणं च सन्तानं स्वगुणैरदिजज्वलत् ॥२१॥
तस्य शिष्योऽभवच्छ्रीमान् जिनसेनः समिद्धधीः ।
अविद्धावपि यत्कर्णौ विद्धौ ज्ञान-शलाकया ॥२२॥
यस्मिन्नासन्नभव्यत्वान्मुक्तिलक्ष्मीः समुत्सुका ।
स्वयंवरीतुकामेव श्रौतिं मालामयूयुजत् ॥२३॥

येनानुचरिता(तं) बाल्याद् ब्रह्मव्रतमखण्डितम् ।
स्वयम्वरविधानेन चित्रमूढा सरस्वती ॥२४॥
यो नातिसुन्दराकारो न चातिचतुरो मुनिः ।
तथाप्यनन्यशरणा यं सरस्वत्युपाचरत् ॥२५॥
धीः शमो विनयश्चेति यस्य नैसर्गिकाः गुणाः ।
सूरीनाराधयंति स्म गुणैराराध्यते न कः ॥२६॥
यः कृशोऽपि शरीरेण न कृशोऽभूत्तपोगुणैः ।
न कृशत्वं हि शरीरं गुणैरेव कृशः कृशः ॥२७॥
ये (यो) नाग्रहीत्कापलिकान्नाऽप्यचिंतयदंजसा ।
नथाऽप्यध्यात्मविद्याब्धेः परं पारमशिश्रियत् ॥२८॥
ज्ञानाराधनया यस्य गतः कालो निरन्तरम् ।
ततो ज्ञानमयं पिण्डं यमाहुस्तत्त्वदर्शिनः ॥२९॥
तेनेदमनतिप्रौढ-मतिना गुरुशासनात् ।
लिखितं विशदैरेभिरक्षरैः पुण्यशासनम् ॥३०॥
गुरुणार्धं ऽग्रिमे भूरिवक्तव्ये संप्रकाशिते ।
तन्निरीक्ष्याल्प-वक्तव्यः पश्चार्धस्तेन पूरितः ॥३१॥
प्रायः प्राक्तनभारत्या क्वचित्संस्कृतमिश्रया ।
मणि-प्रवाल-न्यायेन प्रोक्तोऽयं ग्रन्थविस्तरः ॥३२॥
ग्रन्थच्छायेति यत्किंचिदत्युक्तमिह पद्धतौ ।
क्षन्तुमर्हंत तत्पूज्या दोषं ह्यर्थो न पश्यति ॥३३॥
गाथासूत्राणि सूत्राणि चूर्णिसूत्रं तु वार्तिकम् ।
टीका श्रीवीरसेनीया शेषाः पद्धतिपंजिकाः ॥३४॥
ते सूत्रसूत्र-तद्वृत्ति-विवृती वृत्ति-पद्धती ।
कृत्स्नाकृत्स्नश्रुतव्याख्ये ते टीकापंजिके स्मृते ॥३५॥
अत्युक्तं किमिहास्त्यनुक्तमथवा किं वा दुरुक्तादिकं
सर्वज्ञोदित-सूनृत-प्रवचने प्रक्षेष्टमृष्टाक्षरे ।

तत्सूत्रार्थ-विवेचने कतिपयैरेवाक्षरैर्मादृशा-
मुक्तानुक्तदुरुक्तचिन्तनपरा टीकेति कः संभवः ॥३६॥
तत्पूर्वापरशोधनेन शनकैर्यन्मादृशां टीकनं
सा टीकेत्यनुगृह्यतां बुधजनैरेषा हि नः पद्धतिः ।
यत्किंचिच्च दुरुक्तमत्ररचितं छाद्मस्थ्य-दोषोदयात्
तत्सर्वं परिशोध्यमागमधनैर्ग्राह्यं च यन्निस्तुषं ॥३७॥
श्रीवीरप्रभु-भाषितार्थघटना निर्लोडितान्यागम-
न्यायाच्छ्रीजिनसेन-सन्मुनिवरैरादर्शितार्थस्थितिः ।
टीका श्रीजयचिह्नितोरुधवला सूत्रार्थसंद्योतिनी
स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलतपःश्रीपालसंपादिता ॥३८॥
सर्वज्ञप्रतिपादितार्थगणभृत्सूत्रानुटीकामिमां
येऽभ्यस्यंति बहुश्रुताः श्रुतगुरुं संपूज्य वीरप्रभुं ।
ते नित्योज्वलपद्मसेनपरमाः श्रीदेवसेनार्चिताः
भासन्ते रविचन्द्रभासिसुतपाः श्रीपालसत्कीर्तयः ॥३९॥

इति श्रीजयधवलप्रशस्तिः

[नोट—धवला और जयधवला टीकाओंकी ये दोनों प्रशस्तियां तात्या-नेमिनाथजी पांगल वासीने मूडबिद्रीमें गुरुवस्ति-स्थित श्रीसिद्धान्तशास्त्रों-परसे ता० ३० अगस्त सन् १९१२ को दिनके १०॥ बजेसे १२॥ बजे तकके समयके भीतर उतारकर जैनसिद्धान्तभवन आराको भेजी थीं। उसी प्रशस्ति-प्रतिपरसे अक्तूबर सन् १९२० में, इन्हें उद्धृत किया गया था। बादको सिद्धान्त शास्त्रोंके इधर आजानेपर सहारनपुर तथा आराकी ग्रन्थ-प्रतियों और मुद्रित प्रतिकी प्रस्तावना परसे इनका संशोधन किया गया है।]

१२५. आराधना-पताका (वीरभद्राचार्य)

आदिभाग :—

णिय-सुचरियगुण-माहप्पदिप्प-सुरराय-रिद्धि-वित्थारो ।
जयइ सुरराय-पूइय-गुण-माहप्पो महावीरो ॥१॥

अन्तभाग :—

इय सुंदराइं वीरभद्दभणियाइं पवयणाहिंतो ।
चिरमुच्चिणि सुए एसा रइया आराहणापडिया ॥८५॥
वण्णाणमाणुपुव्वी गाहद्धपयाण पाययाणं च ।
कत्थइ कहिंचि रइया पुव्वपसिद्धाण समईए ॥८६॥
आराहणापसत्थंमि एत्थ सत्थंमि गंथ(थ)परिमाणं ।
नउयाइं नवसयाइं (९९०)अत्था गाहंमि गाहाणं ॥८७॥
विक्कमनिवकालाओ अट्ठुत्तरिमे समासहस्संमि (१००८) ।
एसा सव्वं गिहिआ गहिया गाहाहिं सरलाहिं ॥८८॥
मोहेण मंदमइणा इमंमि जमणागमं मए लिहियं ।
तं महरिणो मरिसिंतु अहवा सोहिंतु करणाए ॥८९॥
मत्तगहणभमणरीणा लहंति निव्वुइसुहं जमल्लीणा ।
तं कप्पद्दुमसुहयं नंदउ जिणसासणं सुइरं ॥९०॥
[इति] आराधनापताका कृतिरियं श्रीवीरभद्राचार्यस्य ॥छ॥

१२६. रिष्ट-समुच्चय-शास्त्र (दुर्गदेव)

आदिभाग :—

पणमंत-सुराऽसुर-मउलि-रयण-वर-किरण-कंति-वित्थुरिअं ।
वीर-जिण-पाय-जुअलं णमिऊण भणेमि रिट्ठाइं ॥१॥

अन्तभाग :—

जयउ ··· जियमाणो संजमदेवो मुणीसरो इत्थ ।
तह विहु संजमसेणो माहवचंदो गुरू तह य ॥२५४॥
रइयं बहु सत्थत्थं उवजीवित्ता हु दुग्गदेवेण ।
रिट्ठसमुच्चयसत्थं वयणेण [संजमाइ]देवस्स ॥२५५॥
जं इह किंपि वि रि(दि)ट्ठं अयाणमाणेण अहव गव्वेण ।
तं रिट्ठ-सत्थ-णिउणा सोहेवि महीइ पयडंतु ॥२५६॥

जो छद्दंसण-तक्क-तक्किय इमं पंचंग-सद्दागमे
जोगी सेसमहीसनीतिकुसलो वाइब्भकंठीरवो ।
जो सिद्धंतमपारती(णी)रसुणिही तीरे वि पारंगओ
सो देवो सिरिसंजमाइमुणिवो आसी इह भूतले ॥२५७॥
संजाओ इह तस्स चारुचरिओ णाणंबुधोयं मई
सीसो देसजई संबोहणपरो णीसेस-बुद्धागमो ।
णामेणं सिरिदुग्गदेव-विइओ वागीसरा यत्तओ
तेणेदं रइयं विसुद्धमइणा सत्थं महत्थं फुडं ॥२५८॥
जा धम्मो जिणदिट्ठणिच्चयपवे(हे) वट्टंति चावज्जई
जा मेरू सुरपायवेहिं सरिसो जावं महीसा मही ।
जा णायं च सुरा णभोत्ति पहुगा चंदक्कतारागणं
तावेत्थो महीफलंमि विदिट्ठं (?)दुग्गस्स सत्थं जसो ॥२५९॥
संवच्छरइगसहसे बोलीणे णवयसीइ-संजुत्ते (१०८९) ।
सावण-सुक्के यारसि दियहम्मि मूलरिक्खम्मि ॥२६०॥
सिरिकुंभणयरणए(?) लच्छिणिवास-णिवइ-रज्जम्मि ।
सिरिसंतिणाहभवणे मुणिभवियस्स उभे रम्मे(?) ॥२६१॥

इति रिट्ठसमुच्चयसत्थं समत्तं ।

१२७. अर्घकाण्ड (दुर्गदेव)

आदिभाग :—

णमिऊण वड्ढमाणं संजमदेवं णरिंद-थुय-चलणं ।
वोच्छामि अग्घकंडं भवियाण हियं पयत्तेणं ॥१॥
वर-गुरु-परंपराए कमागयं एत्थ सयल-सत्थत्थं ।
दट्ठूण मणुयलोए णिद्दिट्ठं दुग्गदेवेण ॥२॥

अन्तभाग :—

आसी एत्थ महीयले सुविदिदो सत्थत्थ-पारं-गओ ।
णामेणं सिरि-संजमाइ-विबुहो वाइब्भगंभीयरो ॥१४३॥

सोसो तस्स धराधराणभिउ(भिणओ ?) सत्थत्थ-णिद्दिस्सणो
णामेणं सिरिदुग्गदेवसुकई चारित्तचूडामणी ।
कित्ती जस्स तिलोयमंडवणलं सड्ढाइज(जा)णं(?)ट्ठिया
सव्वाणं सुहि-सत्थदं सुविदिदं तेणग्घकंडं कयं ॥
इदि सिरिदुग्गदेव-विरइयं अग्घकंडं समत्तं ।

१२८. परमागमसार (श्रुतमुनि)

आदिभाग :—

चाइ-चउक्क-विरहिया अणंत-णाणाइ-गुण-गण-समिद्धा।
चंदक्क-कोडि-भासिद-दिव्वंगजिणा जयंतु जये ॥१॥
दस सहजादादिसया घायिक्खयदो दु संभवा दस हि ।
देवेहिं कयमाणा चोद्दस सोहंति वीरणिणे ॥२॥
दिव्वज्झुणी सु-दुंदहि छत्तत्तय सिंहविट्टरं चमरं ।
राजंति जिणे वीरे भावलयमसोग कुसुमविट्टी य ॥३॥
(आगे सिद्धादि पंचपरमेष्ठियोंकी स्तुति की गई है ।)
एवं पंचगुरूणं वंदित्ता भविय-णिवह-बोहत्थं ।
परमागमस्स सारं वोच्छे हं तच्च-सिद्धियरं ॥८॥
पंचत्थिकाय दव्वं छक्कं तच्चाणि सत्त य पदत्था ।
णव बंधो तक्कारण मोक्खो तक्कारणं चेदि ॥९॥
अदियारो अट्ठविहो जिणवयण-णिरूविदो सत्थिरदो ।
वोच्छामि समासेण य सुणुय जणा दत्तचित्ता हु ॥१०॥

अन्तभाग :—

जो **परमागमसारं** परिभावइ चत्त-रागदोसो हु ।
सो चिरहिय-परभावो णिव्वाणमणुत्तरं लहइ ॥२२१॥
इदि **परमागमसारं** सुयमुणिणा कहियमप्प-बोहेण ।
मुदणि जणा मुणिवसहा दोसचुदा सोहयंतु फुडं ॥२२३॥

सगगा(का)ले हु सहस्से विसय-तिसट्ठीगदे(१२६३) दु विसवरिसे ।
मग्गसिर-सुद्धसत्तमि गुरुवारे गंथ संपुण्णो ॥२२४॥
अणुवद-गुरु-बालेंदू महव्वदे अभयचंदसिद्धंति ।
सत्येऽभयसूरि-पभा(हा)चंदा खलु सुयमुणिस्स गुरू ॥२२५॥
सिरिमूलसंघ-देसियगण-पुत्थयगच्छ-कोंडकुंदाणं ।
परमण्ण-इंगलेसर-बलिगिमि जादस्स मुणिपहाणस्स ॥२२६॥
सिद्धंताहयचंदस्स य सिस्सो बालचंदमुणिपवरो ।
सो भविय-कुवलयाणं आणंदकरो सया जयउ ॥२२७॥
सद्दागम-परमागम-तक्कागम-णिरवसेसवेदी हु ।
विजिद-सयलण्णवादी जयउ चिरं अभयसूरिसिद्धंति ॥२२८॥
णय-णिक्खेव-पमाणं जाणित्ता विजिय-सयल-परसमओ ।
वरणी(णि)वइ-णिवह-वंदिय-पय-पम्मो चारुकित्तिमुणी ॥२२९॥
वरसारत्तयणी(णि उ)णो सुद्धप्परओ विरहिय-परभावो ।
भवियाणं पडिबोहण-परो पहाचंदणाममुणी ॥२३०॥
[इति] श्रीमत्श्रुतमुनि-विरचित-परमागमसारः समाप्तः ।

[बम्बई ऐ० प० स० भ० प्रति

१२६. भावसंग्रह (श्रुतमुनि)

आदिभाग :—

खविदघणघाइकम्मे अरहंते सुविदिदत्थ-णिवहे य ।
सिद्धट्ठगुणे सिद्धे रयणत्तयसाहगे थुवे साहू ॥१॥
इदि वंदिय-पंचगुरू सव्वसिद्धत्थ भवियबोहत्थं ।
सुत्तुत्तं मूलुत्तर-भावसरूवं पवक्खामि ॥२॥

अन्तभाग :—

इदि गुणमग्गणठाणे भावा कहिया पबोह-सुयमुणिणा ।
सोहंतु ते मुणिंदा सुयपरिपुण्णा दु गुणपुण्णा ॥११६॥

(इसके बाद 'अणुवदगुरुबालेंदू' से लेकर 'णाय-णिक्खेव-पमाणं' तक ५ गाथाएं वे ही हैं जो परमागमसारकी प्रशस्तिमें पृ० १६१ पर दर्ज हैं।)

णाद-णिखिलत्थ-सत्थो सयल-णरिंदेहिं पूजिओ विमलो ।
जिण-मग्ग-गमण-सूरो जयउ चिरं चारुकित्तिमुणी ॥१२२॥
वर-सारत्तय-णिउणो सुद्धं परओ विरहिय-परभाओ(वो) ।
भवियाणं पडिबोहणपरो पहाचंदणाममुणी ॥१२३॥

[नोट—आराके जैनसिद्धान्त-भवनकी ताड्पत्रीय प्रतिमें ११६ वीं गाथाके बाद 'इतिभावसंग्रहः समाप्तः' लिखकर अन्तकी ये ७ गाथाएं प्रशस्तिरूपसे दी हैं, जब कि मा० ग्र० मा० के 'भावसंग्रहादि' ग्रन्थमें 'भावत्रिभंगी'के नामसे संग्रहीत इस ग्रन्थमें वे नहीं पाई जातीं ।]

१३०. आयज्ञानतिलकसटीक (भट्ट वोसरि)

आदिभाग :—

नाभिऊण नमियनमियं दुत्तरसंसारसायरुत्तिन्नं ।
सव्वन्नं वीरजिणं पुलिंदिणिं सिद्धसंघं च ॥१॥
जं दामनन्दिगुरुणो मणयं आयाण जाणि [यं] गुज्झं ।
तं आयनाणतिलए वोसरिणा भन्नए पयडं ॥२॥ (मूल)

सिद्धान्ध्वजादिचिरसूत्रितनामधेयान् सर्वाङ्गसौहृदशुभस्थितिसौम्यपातान् ।
स्वस्वामिसद्ग्रहयुतेक्षित-फुल्लपूर्णानायान्प्रणम्य बलिनः शुभकार्यसिद्धये ॥१
शर्वाय शास्त्रसारेण यत्कृतं जनमंडनं ।
तदायज्ञानतिलकं स्वयं विव्रियते मया ॥२॥ (स्वो० टीका)

अन्तभाग :—

विमलविहूसियदेहो जो नग्गाइ(?)माणुसो थुइ पढइ ।
स पुलिंदिणि धाणइ सया आयाणं तस्स तन्नाणं ॥५॥ × × ×

इति श्रीदिगम्बराचार्य-पंडितश्रीदामनंदि-शिष्य-भट्टवोसरि-विरचिते सायश्रीटीकायज्ञानतिलके चक्रपूजाप्रकरणं समाप्तं ॥२५॥

१३१. अध्यात्मतरङ्गिणी-टीका (गणधरकीर्ति)

आदिभागः—

शुद्धध्यानकृशानुधूमनिवहः स्वासैभृंशं कुंचितो
मौलौ नीलविलोलमूर्ध्वजजटाव्याजेन येषां बभौ ।
ज्ञानानन्दहगात्मकामरकतस्त्रग्णेंदुसद्विद्रुमा—
नीलांभोदनिभा भवन्तु सुजिनास्ते स्वात्मलम्भाय नः ॥१॥

विचित्रोरुदेहद्युतिद्योतिताशा नरेन्द्रोद्धकोटीररत्नप्रभाभा—
रभूयिष्ट पाथः प्रधौतांङ्घ्रियुग्मा जिनाः संददन्तां फलं वांछित नः ॥२॥

अरूपारसासीमविज्ञानदेहाऽशरीराः परानन्तवीर्यावगाहा—
तिसूक्ष्मामलानन्तसौख्या त्रिबाधाः प्रसिद्धाः सुसिद्धाः प्रयच्छन्तु शं नः ॥३॥

मनोज्ञार्थचिन्तामणिश्रीनिवासं पवित्रं चरित्रं समं ये दृगाद्यम् ।
स्वयं सञ्चरन्तेऽन्यमाचारयन्ते भवन्त्विष्टिदाः सूरयः सर्वदा नः ॥४॥

अनेकान्ततत्त्वांबुजोद्भासिसूर्याः सदैकान्तमिथ्यातमोध्वंसवर्याः ।
पराध्यापकाः पाठकान् पाठयन्तः प्रबोधं दधन्तां शुभं शाश्वतं नः ॥५॥

त्रिदण्डप्रमुक्ताः सुयोगोपयुक्ताः प्रमादोज्झिताः सिद्धशुद्धोपयोगाः ।
सुश्रृङ्गारयोनीनस्वर्भानुभावाः सदा साधवः संतु ते सिद्धिदा नः ॥६॥

अघौघ-संघट्टितविघ्न-संघ-विघातका मारमहेभसिंहाः ।
भवन्तु पञ्चापि जिनेश्वराद्याः सुशाश्वतं वैबुधसम्प्रधार्याः ॥७॥

सल्लक्षणोज्ज्वलतनुर्वरतर्कबाहुः स्याद्वादपीवरपयोधरभारभुग्ना ।
मुक्तात्मवृत्तसदलंकृतिहारभूषा वाग्देवता मम तनोतु मनीषितानि ॥८॥

गुणिगणधरकीर्तिः सोमसेनोपरोधा—
दकृत निकृतिदोषांध्वान्तविध्वंसकर्त्रीम् ।
दिनमणिरुचिभावां भासितार्थां सुटीकां,
श्रुतमम्रृततरङ्गिण्याख्ययाध्यात्मपूर्वाम् ॥९॥

कुन्देन्दुकांतिहरहासविलासशुभ्रं, कांतं यशः प्रतिविधातुमनल्पकल्पम् ।
कर्त्रैः स्वरैरवितथार्थविचारसारा, साक्षान्मया विरचिता शिवसौख्यदेयम् ॥१०।
मात्सर्यमुत्सृज्य विचार्य चार्य्या सत्तत्त्वसंदेशनजं गुणौघम् ।
ग्राह्यागुणज्ञैर्गुणकत्वदर्थैः सन्मोक्षमार्गाधिगमाय टीका ॥११
जिनं प्रणम्य प्रणतं सुरेशैः कृते कृतार्थैर्मुनिसोमदेवैः ।
मया स्वभक्त्या क्रियते विचित्रं निबंधनं ध्यानविधौ सुबोधम् ॥१२॥

निखिलसुरासुरसेवावसरमायातसुरसम्बोधनावधारितधर्मावसरण (णं) अमरोरगनरेन्द्रश्रीकल्पानोकहारामोल्लासामृताम्भोधरायमाण (णं) महा-परमपञ्चकल्याणकोकनदकाननोत्पत्तिसार (रं) भवाम्भोधिसमुत्तरणैकसेतुबन्धं सम्यक्त्वरत्नं गीर्व्वाणगणा [न] नुग्राहयता, अष्टादशसागरोपमकोटीकोटीं वा यावच्चष्टत्वाद्दयादमत्यागादिस्वभावस्य धर्मस्य भरते धर्मकर्माणि प्रवर्तयन् [तु]भगवानिति जाताकूतपरिपाकेन समाधि(धि) र्भविष्यदासन्नमृत्युं वैराग्य-योग्या(गा)य नीलंयसां प्रहितां गीर्व्वाणेश्वरेण, तां च शृङ्गारादिरसाभिनयदक्षां हाव-भाव-विभ्रमविलासवतीं शान्तरसानन्तरमेव नश्वरस्वभावां विभाव्या-स्यनोऽनश्वरस्वभावतां चिकीर्षुरादिदेव इत्थं योगमुद्रा मुन्मुद्रितवानित्याह—

अन्तभाग :—

श्रीसोमदेवमुनिनोदितयोगमार्गो व्याख्यात एव हि मया स्वमतेर्बलेन ।
संशोध्य शुद्धधिषणैर्हृदये निधेयो योगीश्वरोत्वमचिराय समाप्तुकामैः ॥१॥

[श्री] सोमसेनप्रतिबोधनार्थं धर्माभिधानोच्चयशःस्थिरार्थाः ।
गूढार्थसंदेहहरा प्रशस्ता टीका कृताऽध्यात्मतरङ्गिणीयम् ॥२॥
जिनेशसिद्धाः शिवभावभावा सुसूरयो देशकसाधुनाथाः ।
अनाथनाथा मथितोरुदोषा भवंतु ते शाश्वतशर्म्मदा नः ॥३॥

चंचत्चंद्रमरीचिवीचिरुचिरे यच्चारुरोचिश्चये,
नम्राङ्गैः सुरनायकैः सुररुचे देवाब्धिमध्यैरिव ।
शुक्लध्यानसितासिशासितमहाकर्मारिकक्षोदयो—
देयात्ते ऽभव संभवां शुभतमां चंद्रप्रभः संपदम् ॥४॥

त्रिदशवसतितुल्यो गुर्जरात्राभिधानो धनकनकसमृद्धो देशनाथोऽस्ति देशः।
असुरनरसुरामाशोभिभोगाभिरामो परदिगवनिनारीवक्त्रभाले ललामः ॥५॥

शश्वच्छ्रीशुभतुङ्गदेववसतिः संपूर्णपण्यापणा—
शौण्डीयोद्भटवीरधीरवितता श्रीमान्यखेटोपमा।
चंचत्कांचनकुम्भकर्णविसरैर्जैनालयैर्भ्राजिता,
लंका वास्ति विलासशालनिलयामंदोदरीशोभिता ॥६॥

वरवटवटपल्ली तत्र विख्यातनामा वरविबुधसुधामा देववासोरुधामा।
शुभसुरभिसुरम्भादेवरम्भाभिरामा सुरवसतिरिवोच्चैरप्सरोभासमाना ॥७॥

स्फूर्जद्बोधगणेभवद्यतिपतिर्वाचंयमः संयमी,
जज्ञे जन्मवतां सुपोतममलं यो जन्मयादोविभोः।
जन्यो यो विजयी मनोजनृपते र्जिष्णोर्जगज्जन्मिनाम्,
श्रीमत्सागरनंदिनामविदितः सिद्धांतवार्धेर्विधुः ॥८॥

स्याद्वादसात्मकतपोवनितालतालामो भव्यातिसस्यपरिवर्द्धननीरदाभः।
कामोरुभूरुहविकर्तनसंकुठारस्तस्माद्विलोभहननोऽजनि स्वर्णनन्दी ॥९॥

तस्माद्गौतममार्गगो गुणगुरुर्गम्यो गुणिग्रामणी—
र्गीतार्थो गुरुसंगनागगरुडो गीर्वाणगीर्गोचरः।
गुप्तिग्रामसमग्रतापरिगतः प्रोग्रग्रहोद्गारको,
ग्रन्थग्रंथिविभेदको गुरुगमः श्रीपद्मनन्दी मुनिः ॥१०॥

आचार्योचितचातुरीचयचितश्चारित्र चञ्चुःशुचि—
श्चार्वीसंचयचित्रचित्ररचनासंचेतनेनोच्चकैः।
चित्तानन्दचमत्कृतिप्रविचरन्प्राज्ञप्रचेतोमतां,
प्राभूच्चारुविचारणैकनिपुणः श्रीपुष्पदन्तस्ततः ॥११॥

समभवदिहचातश्चन्द्रवत्कायकान्तिस्तदनुविहितबोधो भव्यसत्कैरवाणाम्।
मुनिकुवलयचन्द्रः कौशिकानन्दकारी,निहिततिमिरराशिश्चारुचारित्ररोचिः॥१२

तस्मात्तीव्रमहातपस्तपनकृत्तेजः प्रतप्तान्तरम्।
कर्म्मोत्सृक्तताडगतारलहरीतोयं तरां शोषितम्।

रत्यामाचरणे शुचौ रतिपतिर्येनोत्पतंगी कृतः ।
कीर्त्या शारदनीरदेन्दुसितया श्वेतीकृताशामुखः ॥१३॥
भवभयपरिभावी भव्यराजीवबन्धु—
र्मतमितहितवादी बुद्धिवादावनन्दी ।
गुणिगणधरकीर्तिः कोविदानन्दहेतुः ।
समजनि जनपूज्यो वन्दिवृन्दाभिवंद्यः ॥१४॥
आसन्नभव्यशुभसस्यविभूतिकर्त्रीं सारार्थदेशनपरां चिरमेघमालाम् ।
सार्द्रान्तरः सुसमयो निखिलाशपूरस्तस्तार यद्वदिह तद्वदिमां सुटीकाम् ॥१५॥
तथ्यात्माद्यर्थसम्वादाध्यात्मामृततरङ्गिणीम् ।
सोमदेवध्यानविधौ गणधरकीर्तिर्व्यधात् ॥१६॥
एकादशशताकीर्णे नवासीत्युत्तरे परे ।
सम्वत्सरे शुभे योगे पुष्यनक्षत्रसंज्ञके ॥१७॥
चैत्रमासे सिते पक्षेऽथ पञ्चम्यां रवौ दिने ।
सिद्धा सिद्धिप्रदा टीका गणभृत्कीर्तिविपश्चितः ॥१८॥
निष्क्रिश्रातर्जितारातिविजयश्रीविराजनि ।
जयसिंहदेवसौराज्ये सज्जनानन्ददायिनि ॥१९॥
यावज्जैनं शासनं शासनानां, जीवादीनां स्यादनेकात्मकानाम् ।
यावद्योगीगोपतिर्यावदाशाः स्येयाटीका तावदेषा जगत्याम् ॥२०॥

१३२. चन्द्रप्रभपुराण (पं० शिवाभिराम)

आदिभाग :—

श्रीमते परमज्ञान-साम्राज्य-पदभागिने ।
नमोऽर्हते महाभर्त्रेऽनंतसंसृतिभीमुषे ॥१॥
अनादिनिधनानन्तज्ञानानंदैकमूर्तये ।
जगतां स्वामिने कर्त्रे नमो तं कुलकृत्तुजे ॥२॥
तमीशं स्वामिनं वन्दे सुरतारागणावृतं ।
स्ववाक्किरणसन्दोह-सुनन्दित-जगत्त्रयम् ॥३॥

अनेकान्तमतिः कुर्यादनन्यगुणगौरवः (वं)।
सिद्धयर्थंदायिनी शांतिरसावतुलविक्रमी ॥४॥
सोऽस्तु श्रीमन्महावीरः सतां सिद्धौ जगत्त्रये।
यन्नामश्रुतिमात्रेण भजन्ति भविनः सुखम् ॥५॥
त्रिश्रीसमन्वितान् शेषान् पुराणार्थ-प्रकाशकान्।
जिनाधिपानहं नौमि तत्सुखाप्त्यै सुखाकरान् ॥६॥
जिनेन्द्रवक्त्रजां वन्दे सप्तभंगांगवादिनीम्।
केवलज्ञान-जननीं तु स्तुत्यां सम्यक्सरस्वतीम् ॥७॥
योग्यतां यांति यास्यन्ति सत्पदं पुरुषोत्तमाः।
यामाराध्य समाराध्यामाराध्यैस्तां स्तुवेऽनघाम् ॥८॥
रत्नत्रयधरान्वन्दे बाह्याभ्यन्तरभेदतः।
सर्वसंगविनिर्मुक्तान् गुरून्सद्गुणगौरवान् ॥९॥
विष्वादिभद्रबाह्वंतानां पादस्मरणं सदा।
करोमि सिद्धये कृत्स्नश्रुतकेवलिनामहं ॥१०॥
श्रीमत्समन्तभद्रस्य जयन्ति वचनान्यलं।
यत्समुद्योतिते मार्गे न स्खलन्ति महाधियः ॥११॥
अकलंकगुरुः केन भुवने न प्रणम्यते।
यद्वाक्शरैश्च बौद्धानां बुद्धिर्वैधव्यतां गता ॥१२॥
पुराणसंततिर्यस्य स्वगते प्रस्फुटं गता।
स्मरामि जिनसेनस्यांघ्री यौ सन्धिः प्रवंदितौ ॥१३॥
पद्मनन्द्यादयः सर्वे पूज्ये ज्याः सत्सूरयः सुरैः।
संस्तुतास्ते दिशंत्वत्र मतिंसर्वार्थभासिनीम् ॥१४॥
स्वसिद्धयर्थं नमस्कृत्य देव-श्रुत-मुनीश्वरान्।
वच्मि चन्द्रप्रभस्येदं पुराणं च पुलाकतः ॥१५॥
गुणभद्रादिभिर्पूज्यैर्भदन्तैर्यन्निरूपितम्।
तत्करोमि विशङ्कोऽहं तत्पादाम्बुजसेवनात् ॥१६॥

अन्तभाग :—

श्रीमत्कुम्भमहाविशुद्धनगरे जैनास्पदैर्वासिते,
शुद्धश्रीद्धमहाजनप्रभृतिभिर्न्नित्यं च सद्भावतः ।
तारासिंह इतिह्यभून्नृपशिरोरत्नप्रभाचुम्बित-
पादाम्भोज-मनोहर-द्युतिवरः शत्रूत्तमांगैर्न्नतः ॥५१॥

श्रीमदबृहद्गौर्जरवंशभूषणः प्रतापसंतापित-शत्रुशासनः ।
ताराहरिः क्षत्रियवृत्तिचन्द्रमा विशुद्धमार्गाधिपतिर्ज्जयत्यसौ ॥५२॥
तत्सत्पदाम्बुजविभूषणमित्रमूर्तिर्विद्वेषमेकपरिशोषणमित्रमूर्तिः ।
अन्यायमार्गकुमुद्युति-मित्रमूर्तिः पुत्रो बभूव बलवान् रणमल्ल एषः ॥५०॥
दिल्ली-नृपेशाधिपति-प्रमान्यः शौर्य्यादिभिः ख्यातगुणैर्गरीयान् ।
पट्टे तदीये जिनशुद्धमार्गी सामन्तसिंहो नृपराजराजः ॥५४॥
दिगम्बराचार्यगुरोः प्रसादान्मलक्षयात्प्राप्तजिनेन्द्रधर्मः ।
अपारभट्टावलि-वंदितः सत्सामन्तसिंहः नृपतिः सुजीयात् ॥५५॥
तत्पट्ट-पौरुष-महोदय-पद्मसिंहो विद्वेषपद्मनिकरोदयपद्मसिंहः ।
तत्सूनूरद्भुत महोदयपद्मसिंहो जातः समुन्नतमतिर्द्युतिपद्मसिंहः ॥५६॥
शिवानतानन्दमनोहरांगः शिवाभिरामैरनुशासितात्मा ।
शिक्षाभिरामद्युतिवारिवाहः शिवाभिरामो द्वितियाभिधानः ॥५७॥

अभुक्तभोगद्युतिराजराजो गृहस्थितब्रह्मपदाधिराजः ।
विद्याविनो [दो] ऽमराजिराजः कालं स निन्ये जिनराजभक्त्या ॥५८॥
वीणेति शीलादिगुणोज्वलांगा निर्वाणवंशोदधि-पद्मजाभूत् ।
अर्हत्पदद्वन्द्वगताशया या सा वामला पद्महरेः पतीन्द्रा ॥५९॥

तस्योपदेशाम्रहतो मयेदं चरित्रमुक्तं जिनचन्द्रराज्ञः ।
शिवाभिरामेण विशुद्धसिद्धयै नवाभिमानेन कविस्वयुक्तेः ॥६०॥
यावच्च[सच्च,]न्द्रः-दिवाकरौ द्वौ यावत्सुराद्रिश्च जिनवृष(व्रत)श्च,
भ(या)वत्सतां वृत्तिरतिप्रशस्ता तावत्समानन्दतु एष ग्रन्थः ॥६१॥

क्षुत्तृड्रोगमलादिदोषविमुखाः श्रीमज्जिनेन्द्राधिपाः,
सम्यक्त्वादि-गुणाष्टकैरनुपमाः सिद्धा विशुद्धाः सदा ।
पंचाचार-परायणादि-सुगुणख्याताश्च सत्साधवो,
हिंसाभाव-विकार-वर्जित-नृपाः कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥६२॥
श्रीवर्मा नृपराजपूजितपदोदेवस्ततः श्रीधरः,
षट्खंडाधिपतिर्महासुरपतिः श्रीपद्मनाभो नृपः ।
सत्सामर्थ्यमहोदयाद्भुतसुखी सर्वार्थसिद्धीश्वर—
श्चन्द्रे शः कुरुताच्छिवं शिववधूयुक्तः सदा वश्चनः ॥६३॥
भूपा भवन्तु बलिनः प्रबलेन यौधे शांताः प्रजाश्चकलिकालकला-विनष्टाः ।
विद्या-विनोद-विशदात्मगुणाः स्वयं वा व्याख्यानवर्तिनि तमीशपतेः पुराणे ॥६४
पठकः पाठकश्चास्य वक्ता श्रोता च भाविकः ।
विस्तारकः शिवं लेभे भुक्त्वेंद्रादि-सुखं महत् ॥६५

इत्यष्टमर्जिन-पुराण-संग्रहे श्रीमत्पद्महरि-शिवाभिराम (मा) वनिपसूनूकृतौ भगवन्निर्वाणगमनांतमंगलाचरण-कविसमुत्पत्ति-निरूपणाख्याभिधानः-सप्तविंशतिमः सर्गः ॥२७॥

१३३—शब्दार्णवचन्द्रिका-वृत्ति (सोमदेव)

आदिभागः—
श्रीपूज्यपादममलं गुणनन्दिदेवं, सोमामरव्रतिप-पूजित-पादयुग्मम् ।
सिद्धं समुन्नतपदं वृषभं जिनेन्द्रं, सच्छब्दलक्षणमहं विनमामि वीरम् ॥१॥
श्री मूलसंघजलजप्रतिबोधभानो, र्मेघेन्दुदीक्षित-भुजगसुधाकरस्य ।
राद्धान्ततोयनिधिवृद्धिकरस्य वृत्तिं, रेभे हरींदु-यतये वरदीक्षिताय ॥२॥

अन्तभागः—
श्रीसोमदेवयति-निर्मितमादधाति, यानौःप्रतीत-गुणनन्दित-शब्दवार्धौ ।
सेयं सतामममलचेतसि विस्फुरन्ती, वृत्तिः सदा नुतपदा परिवर्तिषीष्ट ॥१॥

स्वस्ति श्रीकोल्लापुरदेशान्तर्वर्त्यार्जुरिकामहास्थान युधिष्ठिरावतार-महामण्डलेश्वर गंडरादित्यदेवनिर्मापितत्रिभुवनतिलकजिनालये

श्रीमत्परमपरमेष्ठिश्रीनेमिनाथश्रीपादपद्माराधनबलेन वादीभवज्रांकुश-श्रीविशालकीर्तिपंडितदेव वैयावृत्यतः श्रीमच्चिल्लाहारकुलकमलमार्तण्डतेजः पुञ्जराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकपश्चिमचक्रवर्ति श्रीवीरभोजदेव विजय-राज्ये शकवर्षैकसहस्रैकशतसप्तविंशति ११२७ तमक्रोधनसम्यत्सरे स्वस्ति-समस्तानवद्यविद्याचक्रवर्ति श्रीपूज्यपादानुरक्तचेतसा श्रीमत्सोमदेवमुनीश्वरेण विरचितेयं शब्दार्णवचन्द्रिकानाम वृत्तिरिति । इतिश्रीपूज्यपादकृत जैनेन्द्रमहाव्याकरणं सम्पूर्णम् ॥

(श्रीजैनमन्दिर पंसारीटोला, इटावा प्रति)

१३४. द्रव्यसंग्रहवृत्ति (पं० प्रभाचन्द्र)

आदिभागः—

नत्वा जिनार्कमपहस्ततसर्वदोषं, लोकत्रयाधिपतिसंस्तुतपादपद्मम् ।
ज्ञान-प्रभा-प्रकटिताखिलवस्तुसार्थं, षड्द्रव्यनिर्णयमहं प्रकटं प्रवक्ष्ये ॥१॥

अहं प्रवक्ष्ये कथयिष्ये कं ? षड्द्रव्यनिर्णयं षण्णां द्रव्याणां जीवादीनां निर्णयं निश्चयं कथं प्रवक्ष्ये प्रकटं यथा भवति किं कृत्वा ? पूर्वं नत्वा नमस्कृत्य कं ? जिनार्कं जिनादित्य कथंभूतं ? अपहस्ततसर्वदोषं अपहस्तिता निराकृताः सर्वदोषाःमृषादयो येन स अपहस्ततसर्वदोषस्तं आदित्येत्यादि अपहस्तिता निराकृता सर्वदोषा रात्रिः । पुनः कथंभूतं ? लोकत्रयाधिपतिसंस्तुतपादपद्मं लोकत्रयस्याधिपतयः स्वामिनो धरणेन्द्रनरेन्द्रसुरेन्द्रास्तैर्वंदितौ पादावेव पद्मौ यस्य स लोकत्रयाधिपतिभिः ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैरभिः संस्तुत पादपद्म इति परसमयवचनं । पुनः कथंभूतं ? ज्ञानप्रभाप्रकटिताखिलवस्तु-सार्थं ज्ञानं केवलज्ञानं तदेव प्रभा तया प्रकटिताः प्रकाशितास्तिलवस्तूनां निखिलपदार्थानां सार्थः समूहो येन स ज्ञानप्रभाप्रकटितास्तिलवस्तुसार्थस्तं आदित्येनापि प्रभालोचनगोचराः सर्वेपदार्थाः प्रकटिता इति क्रियाकारक-सम्बन्धः । अथेष्टदेवताविशेषं नमस्कृत्य महामुनिसैद्धान्तिक—श्रीनेमिचन्द्र प्रतिपादितानां षट्द्रव्याणां स्वल्पबोधप्रबोधार्थं संक्षेपार्थतया विवरणं करिष्ये ।

अन्तभागः—

इति श्रीपरमागमिकभट्टारक-श्रीनेमिचन्द्रविरचित-षड्द्रव्यसंग्रहे श्रीप्रभाचन्द्रदेवकृतसंक्षेपटिप्पणकं समाप्तम् ॥

१३५. पंचास्तिकाय-प्रदीप (प्रभाचन्द्राचार्य)

आदिभागः—

प्रणम्य पादाम्बुरुहाणि भक्त्या, मनोवचःकायकृदार्हदीशां ।
प्रवच्म्यथास्त्यांगविचारसूत्री, स्फुटीकृते टिप्पणकं विशिष्टम् ॥१॥

अथ श्रीकुमारनन्दिशिष्यः श्रीशिवकुमारमहाराजाद्यन्तेवासिनां सम्बोधनपराः विलोकितपूर्वविदेहश्रीसीमंधरस्वामितीर्थंकरपरमदेवाः पञ्चास्तिकाय-षट्द्रव्य-सप्ततत्त्व-नवपदार्थप्रतिपादनपराः नास्तिकत्वनिराशाय शिष्टाचार-प्रतिपालनाय पुण्यप्राप्ति-निर्विघ्न [ग्रन्थसमाप्त्यर्थं] चाभिमतदेवतानमस्कार-सूत्रं श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्या प्राहुः—

अन्तभागः—

इति पण्डित श्रीप्रभाचन्द्रविरचिते पंचास्तिकायप्रदीपे मोक्षमार्ग-नवपदार्थ चूलिकाधिकारः समाप्तः ।

सन्मार्गतत्त्वविविधार्थमणिप्रकाशः ।
श्रीमत्प्रभेन्दुरचितोत्तविदन्तरर्घ्यः (?) ॥१॥
ज्योतिप्रभाप्रहृतमोहमहान्धकारः
पंचास्तिकाय-भुवने ज्वलति प्रदीपः ॥२॥

१३६. आत्मानुशासनतिलक (प्रभाचन्द्राचार्य)

आदिभाग :—

वीरं प्रणम्य भव-वारिनिधिप्रपोतमुद्योतिताऽखिलपदार्थमनल्पपुण्यम् ।
निर्वाणमार्गमनवद्यगुणप्रबन्धमात्मानुशासनमहं प्रवरं प्रवक्ष्ये ॥१॥

बृहद्धर्मभ्रातुल्लोकसेनस्य विषयव्यामुग्धबुद्धेः संबोधनव्याजेन सर्वोपकारकं सन्मार्गमुपदर्शयितुकामो गुणभद्रदेवो निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं फलमभिलषन्नभिष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वाणो लक्ष्मीत्याद्याह—

अन्तभाग :—

मोक्षोपायमनन्यपुण्यममलज्ञानोदयं निर्मलम् ,
भव्यार्थं परमं प्रभेन्दुकृतिना व्यक्तैः प्रसन्नैः पदैः ।
व्याख्यानं वरमात्मशासनमिदं व्यामोहविच्छेदतः,
सूक्तार्थेषु कृतादरैरहरहश्चेतस्यलं चिंत्यताम् ॥१॥
इति श्रीआत्मानुशासनतिलकं प्रभाचन्द्राचार्यविरचितं सम्पूर्णम् ।

१३७. आराधनाकथाप्रबन्धः (प्रभाचन्द्राचार्य)

आदिभाग:—

प्रणम्य मोक्षप्रदमस्तदोषं, प्रकृष्टपुण्यप्रभवं जिनेन्द्रम् ।
वक्ष्येऽत्रभव्यप्रतिबोधनार्थमाराधनासत्सुकथाप्रबन्धम् ॥१॥

अन्तभाग:—

यैराराध्य चतुर्विधामनुपमामाराधनां निर्मलाम् ।
प्राप्तं सर्वसुखास्पदं निरुपमं स्वर्गापवर्गप्रदा ।
तेषां धर्मकथा-प्रपञ्चरचना स्वाराधना संस्थिता ।
स्थेयात् कर्मविशुद्धिहेतुरमला चन्द्रार्कतारावधि ॥१॥
सुकौमलैः सर्वसुखावबोधैः पदैः प्रभाचन्द्रकृतः प्रबन्धः ।
कल्याणकालेऽथ जिनेश्वराणां, सुरेन्द्रदन्तीव विराजतेऽसौ ॥२॥
श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपञ्चपरमेष्ठिप्रणामोपार्जिताऽमलपुण्यनिराकुलनिखिलमलकलंकेनश्रीमत्प्रभाचंद्रपण्डितेनआराधनासत्कथाप्रबन्धः कृतः ।

१३८. प्रवचनसरोजभास्कर (प्रभाचन्द्राचार्य)

आदिभाग:—

वीरं प्रवचनसारं निखिलार्थं निर्मलजनानन्दम् ।
वक्ष्ये सुखावबोधं निर्वाणपदं प्रणम्याप्तम् ॥१॥
श्रीकुन्दकुन्दाचार्यः सकललोकोपकारकं मोक्षमार्गमध्ययनरुचिविनेया-

शयवशेनोपदर्शयितुकामो निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं फलमभिलषन्निष्ट-देवताविशेषं शास्त्रस्यादौ नमस्कुर्वन्नाह—

अन्तभागः—

इति श्रीप्रभाचन्द्रदेवविरचिते प्रवचनसारसरोजभास्करे शुभोपयोगाधि-कारः समाप्तः ॥

१२६. त्रैलोक्यदीपक (वामदेव)

आदिभागः—

वन्दे देवेन्द्रवृन्दार्च्यं नाभेयं जिनभास्करं ।
येन ज्ञानांशुभिर्नित्यं लोकालोकौ प्रकाशितौ ॥१॥
संस्तवीमि क्रमद्वन्द्वं शेषानां तु जिनेशिनाम् ।
यद्ज्ञानाम्भोधिमध्यस्थं त्रैलोक्यं पद्मसंनिभम् ॥२॥
विदधातु मम प्रज्ञां जैनशास्त्रावबोधिनीम् ।
श्रीमज्जिनमुखाम्भोज-निर्गता श्रुतदेवता ॥३॥
सिद्धान्तवारिधेश्चन्द्रं नेमिचन्द्रं नमाम्यहं ।
यस्य प्रसादतो विश्वं हस्तस्थामलकोपमम् ॥४॥
विभाति विशदाकीर्तिर्यस्य त्रैलोक्यवर्तिनी ।
नमस्तस्मै मुनीन्द्राय श्रीमत्त्रैलोक्यकीर्तये ॥५॥
आकरः सर्वविद्यानां धर्म्ममार्ग-दिवाकरः ।
धर्म्माकर इति ख्यातः स मुनिः श्रूयते मया ॥६॥
वीर-दष्क्यादिसेनस्य मिथ्यात्वाद्यरि संह (ह ?) तौ ।
अतोऽसौ वीरसेनाख्यो जीयादागम-पारगः ॥७॥
पुरपाटवंश-भूषण-जोमन तनयस्य नेमिसेनस्य ।
अभ्यर्थनयाऽऽरब्धो ग्रंथोऽयं भव्यबोधाय ॥८॥
अथ पञ्चगुरूनत्वा वक्ष्ये संस्कृतभाषया ।
त्रैलोक्यसारमालोक्य ग्रन्थं त्रैलोक्यदीपकम् ॥९॥

× × × ×

इतीन्द्रवामदेवविरचिते पुरवाटवंशविशेषकश्रीनेमिदेवस्य यशःप्रकाशके त्रलोक्यदीपिके अधोलोकव्यावर्णनो नाम प्रथमोधिकारः ॥१॥

अन्तभागः—

जयति जित-मकरकेतुः केतुर्दुष्कर्मराशिदलनाय ।
श्रीमत्त्रिभुवनकीर्तिः कीर्तिलताक्रांतभुवनान्तः ॥६१॥
किं चन्द्रः किमु भास्करः किमथवा मेरुः किमंभोनिधिः ।
किं धात्री सुर वर्म्म किं किमथवा कल्पद्रुमः विश्रुतः ।
एकैकेन गुणेन विश्रुतपृथुप्रस्थायिनस्ते स्वयं ।
नैते शेषगुणाकराब्धिभुवने त्रैलोक्यकीर्तिः स्वयं ॥६२॥
अस्त्यत्र वंशः पुरवाडसंज्ञः समस्तपृथ्वीपतिमाननीयः ।
त्यक्त्वा स्वकीयां सुरलोकलक्ष्मीं देवा अपीच्छन्ति हि यत्र जन्म ।६३
तत्र प्रसिद्धोऽजनि कामदेवः पत्नी च तस्याजनि नामदेवी ।
पुत्रौ तयोर्जोमनलक्ष्मणाख्यौ बभूवतुः राघवलक्ष्मणाविव ॥६४॥
रत्नं रत्नखनेःशशी जलनिधे रात्मोद्भवः श्रीपते—
स्तद्वज्जोमनतो बभूव तनुजः श्री नेमिदेवाह्वयः ।
यो बाल्येऽपि महानुभावचरितः सज्जैनमार्गेरतः,
शांतः श्रीगुणभूषणक्रमनुतः सम्यक्त्वचूलांकितः ॥६५॥
यस्थागेन जिगाय कर्णनृपतिं न्यायेन वाचस्पतिं,
नैर्मल्येन निशापतिं नगपतिं सत्स्थैर्यभावेन च ।
गांभीर्येण सरित्पतिं मलतर्ति सद्धर्मसद्भावनात् ;
स श्रीसद्गुणभूषणोन्नतिनतो नेमिश्चिरं नन्दतु ॥६६॥
तत्सत्कार पुरस्कृतेन सततं तज्जैनतादर्शनात्,
सन्तुष्टेन तदार्यवादिसुगुणै हृष्टेन पुष्टेन च ।
तस्य प्रार्थनया सुसंस्कृतवचो बन्धेन सद्विर्मितो,
ग्रन्थोऽयं त्रिजगत्स्वरूपकथनः सत्पुरुषनिर्मायणः ॥६७॥

वंशे नैगमसंज्ञके जनसुधी जैने प्रतिष्ठा विधा—
चाचार्यो जिनभक्तितत्परमना यो वामदेवाह्वयः ।
तेनालोक्य समस्तमागमविधिं त्रैलोक्यदीपाभिधौ,
ग्रंथः साधुकृतो विशोध्य सुधियस्तन्वन्तु पृथ्वीतले ॥६८॥

वक्तृश्रोत्रनुमतृणां विशदं जैनशासनम् ।
भव्यानामर्हतां भूयात् प्रशस्तं सर्वमंगलम् ॥६९॥

यावन्मेरु सुधासिन्धु यावच्चन्द्रार्कमण्डलम् ।
तावत्सित्यमहौद्योतैर्वर्धतां जैनशासनम् ॥७०॥

इतीन्द्र श्रीवामदेवविरचिते पुरुषाडवंशविशेषकश्रीनेमिदेवस्य यशः प्रकाशके त्रैलोक्यदीपके ऊर्ध्वलोक व्यावर्णनोनाम तृतीयोधिकारः समाप्तः ॥

१४०. आदिपुराणटीका (ललितकीर्ति)

आदिभाग:—

जिनाधीशं नत्वा तदनु जिनवाणीं च सुगुरुं,
करोमीत्थं टीकामहमिह पुराणस्य महतः ।
द्वितीयार्द्धस्योच्चैः शरमितसुपर्व्वप्रमितिकाम्,
यथाशक्ति स्तोकांतनुमतिविशदां भक्तिवशतः ॥१॥

अन्तभाग:—

शरदि शरभुजंगाहीलिका (१८८५) सत्समायां,
जगति विदितमासे भाद्रके कृष्णपक्षे ।
अकृत ललितकीर्तिदेवराट् (स) दशम्यां,
पुरुजिनवररराजः सत्पुराणस्य टीकाम् ॥१॥

१४१. वाग्भट्टालंकारावचूरि=कविचंद्रिका (वादिराज)

आदिभाग:—

अनंतानंतसंसारपारगं पार्श्वमीश्वरं ।
प्रमाण-नय-भंगाब्धिं भुक्तिभूयोप्सितं स्तुवे ॥१॥

वाग्भट्टकवींद्रं रचितालंकारस्यावचूरि[रि]यममला ।
जिन-वचन-गुरु-कृपातो विरच्यते वादिराजेन ॥२॥
धनंजयाऽऽशाधरवाग्भटानां धत्ते पदं संप्रति वादिराजः
खांडिल्यवंशोद्भवपोमसू नु र्जिनोक्तपीयूषसुतृप्तचित्तः ॥३॥

अन्तभागः—

संवत्सरेनिधिद्वगश्वशशांकयुक्ते (१७२६) ।
दीपोत्सवाख्यदिवसे सगुरौ सचित्रे ।
लग्नेऽलिनाम्नि शुभे च गिरःप्रसादात् ,
सद्वादिराजरचिता कविचन्द्रिकेयं ॥१॥
श्रीराजसिंह नृपतिर्जयसिंह एव श्री तत्तकाख्यनगरी अणहिल्लतुल्या ।
श्रीवादिराज विबुधोऽपरवाग्भटोयं, श्रीसूत्रवृत्तिरिह नंदतु चार्कचन्द्रः ॥२॥
श्रीमद्धीमन्टपात्मजस्य बलिनः श्रीराजसिंहस्य मे,
सेवायामवकाशमाप्य विहिता टीका शिशूनां हितं ।
हीनाधिक्य वचोयदत्र लिखितं तद्धैर्बुधैः क्षम्यताम्
गार्हस्थ्यावनिनाथ सेवनधिया कः स्वस्थतामाप्नुयात् ॥३॥

इति श्रीवाग्भट्टालंकारटीकायां पोमराजश्रेष्ठिसुतवादिराजविरचितायां कविचन्द्रिकायां पंचमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

१४२. रामचरित्र (ब्रह्म जिनदास)

आदिभागः—

सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरम् ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम् ॥१॥
सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थसिद्धे कारणमुत्तमम् ।
प्रशस्तदर्शनज्ञान-चारित्र प्रतिपादनम् ॥२॥
मुनिसुव्रततीर्थेशं सुव्रतं वरचेष्टितम् ।
प्रणमामि सदा भक्त्या भव्यमंगलदायकम् ॥३॥

अन्तभाग:—

श्रीमद्रामचरित्रमुत्तममिदं नानाकथापूरितं,
पापध्वान्तविनाशनैकतरणिं कारुण्यवल्लीवनं ।
भव्यश्रेणिमनःप्रमोदसदनं भक्त्यानवं कीर्तितं,
नानासत्पुरुषालिवेष्टनयुतं पुण्यं शुभं पावनम् ॥१८०

श्रीवर्द्धमानेन जिनेश्वरेण त्रैलोक्यवंदेन यदुक्रमादौ ।
ततः-परं गौतमसंज्ञकेन गणेश्वरेण प्रथितं जनानाम् ॥१८१

ततः क्रमाच्छ्री रविषेण नाम्नाऽऽचार्येण जैनागमकोविदेन ।
सत्काव्यकेलीसदनेन पृथ्व्यां नीतं प्रसिद्धिं चरितं रघोश्च ॥१८२

श्री कुन्दकुन्दान्वयभूषणोऽथ बभूव विद्वान् किल पद्मनन्दी ।
मुनीश्वरो वादिगजेन्द्रसिंहः प्रतापवान् भूवलये प्रसिद्धः ॥१८३

तत्पट्टपंकेजविकासभास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवरः प्रतापी ।
महाकवित्वादिकलाप्रवीणस्तपोनिधिः श्रीसकलादिकीर्तिः ॥१८४

पट्टे तदीये गुणवान् मनीषी क्षमानिधानं भुवनादिकीर्तिः ।
जीयाच्चिरं भव्यसमूहवन्द्यो नानायतीन्द्रात निषेवणीयः ॥१८५

जगतिभुवनकीर्तिर्भूतलख्यातकीर्तिःश्रुतजलनिधिवेत्ताऽनंगमानप्रभेत्ता ।
विमलगुणनिवासःछिन्नसंसारपाशःस जयतियतिराजःसाधुराजीसमाजः॥१८६

स ब्रह्मचारी गुरुपूर्वकोऽस्य भ्राता गुणज्ञोऽस्ति विशुद्धचित्तः ।
जिनस्य दासो जिनदासनामा कामारिजेता विदितो धरित्र्यां ॥१८७

तेन प्रशस्तं चरितं पवित्रं रामस्य नीत्वा रविषेण सूरेः ।
समुद्धृतं स्वान्यसुखप्रबोधहेतोश्चिरं नन्दतु भूमिपीठे ॥१८८

श्रीमज्जिनेश्वर-पदांबुजचंचरीकस्तच्छास्त्र सद्गुरुषु भक्तिविधानदक्षः ।
सार्थाभिधोऽसौ जिनदास नामा दयानिवासो भुवि राजते च ॥१८९

न ख्याति-पूजाद्यभिमानलोभाद् ग्रन्थः कृतोऽयं प्रतिबोधहेतोः ।
निजान्ययोः किन्तु हिताय चापि परोपकाराय जिनागमोऽङ्कः ॥१९०

जिनप्रसादादिदमेव याचे दुःखक्षयं शाश्वतसौख्यहेतोः ।
कर्मक्षयं बोधचरित्रलाभं शुभांगतिं चेह न चान्यदेव ॥१९१

क्वचिदत्रस्वरसन्धिजातं पदादिकं [वा] चलितं प्रमादात् ।
क्षमस्व तद्भारति ! तुच्छबुद्धेर्ममाशु नो मुह्यति कः श्रुताब्धौ ॥१६२
तथा च धीमद्भिरिदं विशोध्यं मुनीश्वरैर्निर्मलचित्तयुक्तैः ।
कृत्वानुकंपा मयि जैनशास्त्र (स्त्रे) विशारदैः सर्वकषायमुक्तैः ॥१६३
यावन्महीमेरुनगः पृथिव्यां शशी च सूर्यः परमाणवश्च ।
श्रीमज्जिनेन्द्रस्य गिरश्च तावच्चन्द्रत्विदं रामचरित्रमार्यम् ॥१६४
रक्षां संघस्य कुर्वन्तु जिनशासनदेवताः ।
पालयंतोऽखिलं लोकं भव्यसज्जनवत्सलाः ॥१६५
इति श्रीरामचरित्रे भट्टारक-सकलकीर्तिशिष्यब्रह्मजिनदासविरचिते बलदेव निर्वाणकथनो नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥८३

१४३. ज्येष्ठजिनव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

ज्येष्ठं जिनं प्रणम्यादावकलंककलध्वनिं ।
श्रीविद्यादिनंदिनं ज्येष्ठजिनव्रतमथोच्यते ॥१॥

अन्तभागः—

आसीदसीममहिमा मुनि पद्मनन्दी देवेन्द्रकीर्ति गुरुरस्य पदैशदेकः (?) ।
तत्पट्टविष्णुपदपूर्णशशांकमूर्तिर्विद्यादिनंदिगुरुरत्रपवित्रचित्तः ॥७६॥
गुणरत्नभूतो वचोऽमृताढ्यः स्याद्वादोर्मिसहस्रशोभितात्मा ।
श्रुतसागर इत्यमुख्यशिष्यः स्वाख्यानं रचयांचकार सूरिः ॥७७॥
अग्रोत्कान्वयशिरोमुकटायमानः संघाधिनाथ विमलूरिति पुण्यमूर्तिः ।
भार्यास्य धर्ममहती वृहतीति नाम्ना सासूत सूनुमनवद्य महेन्द्रदत्तं ॥७८॥
वैराग्यभावितमनाः जिनलूह (?) दिष्टः श्रीमूलसंघगुणरत्नविभूषणोऽभूत् ।
देशव्रतिष्वतितरां व्रतशोभितात्मा संसारसौख्यविमुखः सुतपोनिधिर्वा ॥७९॥
पुत्रोस्य लक्ष्मणइति प्रणतीर्गुरूणां कुर्वंश्चकास्ति विदुषांधुरि वर्ण्यनीयः ।
अभ्यर्थकारितमिदं श्रुतसागराख्यमाख्यानकं चिरतरं शुभदं समस्तु ॥८०॥

इतिप्रचंडपंडितामणीसूरिश्रीश्रुतसागरविरचितं ज्येष्ठजिनवरव्रतोपाख्यानं समाप्तम् ॥१॥

१४४. रविव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभाग:—

प्रणम्य शिरसार्हन्तं सिद्धांस्त्रैलोक्यमंगलान् ।
मुनींस्तद्धर्मचाग्देव्यौ रविव्रतमहं ब्रुवे ॥१॥

अन्तभाग:—

सरस्वतीगच्छ-सुरद्रुमावलीवलीढभूसेचनधीघनाघनः ।
चिरं च देवेन्द्रयशा मुनिर्मम प्रकामकामाग्निशमं प्रयच्छतु ॥६१॥
भट्टारकघटामध्ये यत्प्रतापो विराजते ।
तारास्विव रवेः श्रीदो विद्यानंदीश्वरोऽस्तु मे ॥६२॥
प्रमाण-लक्षणाच्छंदोऽलंकारमणिमंडितः ।
पंडितस्तस्य शिष्योऽयं श्रुतरत्नाकराभिधः ॥६३॥
गुरोरनुज्ञामधिगम्य धीधनश्चकार संसारसमुद्रतारकः (कम्) ।
स पार्श्वनाथव्रतसत्कथानकं सतां नितांतं श्रुतसागरः श्रिये ॥६४॥

इति रविव्रतकथा समाप्ता ।

१४५. सप्तपरमस्थानव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभाग:—

विद्यानंद्यकलंकार्यं पूज्यपादं जिनेश्वरम् ।
नत्वा ब्रवीम्यहं सप्तपरमस्थानसद्व्रतम् ॥१॥

अन्तभाग:—

अतरतिरकलंकः पूज्यपादो मुनीनां, गुणनिधिरबुधानां बोधिकृत्पद्मनन्दी ।
जयति महितकांतिः क्षेमकृद्दिव्यमूर्तिर्मदनमदविदारी देवदेवेंद्रकीर्तिः ॥६२॥
सद्भट्टारक** (?) वर्णनीयश्चेतो यतीनामभिवंदनीयः ।
विद्यादिनंदी गणभृत्तदीयः सम्यग्जयत्येष गुरुर्मदीयः ॥६३॥
मया तदादेशवशेन धीमतां प्रकाशितेयं महतां बृहत्कथा ।

पिबन्तु तां कर्णसुधां बुधोत्तमा महानुभावाः श्रुतसागराश्रिताः ॥६४॥
विरुद्धमागमात्किंचिद्वचो यदि च भाषितम् ।
तन्मे सरस्वती चंतु मनते (मानिते) मातरर्हसि ॥६५॥

इति सप्तपरमस्थानकथा सम्पूर्णा ।

१४६. मुकुटसप्तमीकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

श्रीशारदास्पदीभूत-पादद्वितयपंकजम् ।
नत्वाऽर्हन्तं प्रवक्ष्यामि व्रतं मुकुटसप्तमी ॥१॥

अन्तभागः—

श्रीमल्लिभूषणगुरोः प्रकटोपदेशाच्चक्रे कथानकमिदं श्रुतसागरेण ।
देशव्रतेन कृतिनां सुकृतैकहेतुः शं वस्तनोत्विह परत्र भवे च नित्यम् ॥६९॥

इति मुकुटसप्तमीकथा समाप्ता ।

१४७. अक्षयनिधिव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

पूज्यपादाऽकलंकार्यविद्यानंदींद्रवंदितम् ।
प्रणम्य तीर्थकृद्देवं वक्ष्येऽक्षयनिधिव्रतम् ॥१॥

अन्तभागः—

गच्छे श्रीमन्मूलसंघतिलके सारस्वते विश्रुते,
विद्वन्मान्यतम-प्रसह्य-सुगणे स्वर्गापवर्गप्रदे ।
विद्यानंदिगुरुर्बभूव भविकानंदी सतां सम्मत—
स्तत्पट्टे मुनिमल्लिभूषणगुरुर्भट्टारको नंदतु ॥८७॥
तर्कव्याकरणप्रवीणमतिना तस्योपदेशाहित—
स्वांतेन श्रुतसागरेण यतिना तेनाऽमुना निर्मितम् ।
श्रेयोधामनिकाममक्षयनिधिं स्वेष्टव्रतं धीमतां ,
कल्याणप्रदमस्तु शाश्वमितिनस्तत्तद्विदां संमुदे ॥८८॥

इत्यक्षयनिधिविधानकथानकं समाप्तम् ।

१४८. षोडशकारणकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

अथप्रणम्यतीर्थेशं तीर्थेशपदलब्धये ।
श्रीविद्यानंदिनं साधुं ब्रुवे षोडशकारणम् ॥१॥

अन्तभागः—

श्रीमूलसंघे विबुधप्रपूज्ये श्रीकुंदकुंदान्वय उत्तमेऽस्मिन् ।
विद्यादिनंदी भगवान् बभूव स्ववृत्तसारश्रुतपारमाप्तः ॥६७॥
तत्पादभक्तः श्रुतसागराख्यो देशव्रती संयमिनां वरेण्यः ।
कल्याणकीर्त्तिमुं हुराग्रहेण कथामिमां चारु चकार सिद्धयै ॥६८॥
इति षोडशकारणोपाख्यानं समाप्तम् ।

१४९. मेघमालाव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

समंताद्भद्रमर्हंतं नत्वा विद्यादिनंदिनम् ।
मेघमालाव्रतं मेघमालाशांत्यर्थमुच्यते ॥१॥

अन्तभागः—

सत्यं वाचि हृदि स्मरक्षयमतिर्मोक्षाभिलाषोऽन्तरे,
श्रोत्रं साधुजनोक्तिषु प्रतिदिनं सर्वोपकारः करे ।
यस्यानंदम्बिधेर्बभूव स विभुर्विद्यादिनन्दी मुनिः,
संसेव्यः श्रुतसागरेण विदुषा भूयात्सतां संपदे ॥५१॥
इति मेघमालाव्रतोपाख्यानं समाप्तम् ।

१५०. चन्दनषष्ठीकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

प्रभाचन्द्रं पूज्यपादं श्रीविद्यानन्दिनं जिनम् ।
समन्तभद्रं संस्मृत्य वक्ष्ये चन्दनषष्ठिकाम् ॥१॥

अन्तभागः—

स्वस्ति श्रीमूलसंघेऽभवदमरनुतः पद्मनंदी मुनीन्द्रः
शिष्यो देवेन्द्रकीर्तिर्लसदमलतया भूरिभट्टारकेज्यः ।
श्रीविद्यानंदिदेवस्तदनुमनुजराजार्च्यपद्मयुग्म-
स्तच्छिष्येणारचीदं श्रुतजलनिधिना शास्त्रमानन्दहेतु ॥६६॥
स्वल्पमपि शास्त्रमेतच्छब्दार्थविचित्रभावरचिततया ।
उद्वेलद्रचमहाघ्वेर्मलमंतर्जातमपनयति ॥६७॥

इति श्रीब्रह्मश्रुतसागरविरचिता चन्दनषष्ठीकथा समाप्ता ।

१५१. लब्धिविधानकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

श्रीविद्यानंदिनं पूज्यपादं नत्वा जिनेश्वरम् ।
कथां लब्धिविधानस्य वच्म्यहं सिद्धिलब्धये ॥१॥

अन्तभागः—

जयति गुणसमुद्रो वीरनाथो जिनेन्द्रस्तदनु जयति धीमान् गौतमः सूरिवर्यः ।
जयति जगति विद्यानंदिदेवो मुनीन्द्रः श्रुतपदसमुपेतःसागरस्तस्य शिष्यः॥५५
तेनेदं चरितं विचित्ररचनं चेतश्चमत्कारकं,
सर्वव्याधिविनाशिनं गुणकरं श्रीगौतमस्योत्तमम् ।
चक्रे शक्रपुरस्सरैर्मान्यं (रतिमहामान्यैः) सदा सम्पदां
वेश्मश्री श्रुतसागराश्रितवतां देयात्सतां मंगलम् ॥५६॥

इतिब्रह्मश्रीश्रुतसागरविरचितं लब्धिविधानोपाख्यानं समाप्तम् ।

१५२. पुरंदरविधानकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

उमास्वामिनमर्हन्तं शिवकोटिं महामुनिम् ।
विद्यानंदिगुरुं नत्वा पुरंदरविधिं ब्रुवे ॥१॥

अन्तभागः—

आनन्दादकलंकदेवचरणाम्भोजालिना दीक्षितो
विद्यानंदिमहात्मनां श्रुततपोमूर्तिः परार्थे रतः ।
साधूनां श्रुतसागरः प्रियतमः कल्याणकीर्त्याग्रहा-
च्चक्रे चारुपुरंदरव्रतविधिं सिद्धयंगना-लालसः ॥६३॥
इति पुरंदरविधानोपाख्यानं समाप्तम् ।

१५३. दशलाक्षिणीव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

अर्हंतं भारतीं विद्यानंदिसद्गुरुपंकजम् ।
प्रणम्य विजयाद्वक्ष्ये दशलाक्षणिकं व्रतम् ॥१॥

अन्तभागः—

जातः श्रीमति मूलसंघतिलके श्रीकुंदकुंदान्वये,
विद्यानंदिगुरुर्गरिष्ठमहिमा भव्यात्मसंबुद्धये ।
तच्छिष्यश्रुतसागरेण रचितं कल्याणकीर्त्याग्रहे
शं देयाद्दशलक्षणव्रतमिदं भूयाच्च सत्संपदे ॥६६॥
इति श्रीदशलाक्षणिकव्रतकथा समाप्ता ।

१५४. पुष्पांजलिव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

कवीन्द्रमकलंकाख्यं विद्यानन्दं जिनेश्वरम् !
पूज्यपादं प्रणम्यादौ वक्ष्ये पुष्पांजलिव्रतम् ॥१॥

अन्तभागः —

स्वस्ति श्रीमति मूलसंघतिलके गच्छे गिमूर्च्छं (मुमुक्षु) च्छिषे,
भारत्याः परमार्थपंडितनुतो विद्यादिनन्दी गुरुः ।
तत्पादाम्बुजयुग्ममत्तमधुलिट् चक्रे नवक्राशयः,
सद्बोधः श्रुतसागरः शुभमुपाख्यानं स्तुतस्तार्किकैः ॥१०१॥
इति पुष्पांजलिव्रतकथा समाप्ता ।

१५५. आकाशपंचमीकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभाग:—

सुतं नाभेर्यशस्वत्याः पतिं भरतसद्गुरुम् ।
आकाशपंचमीं वक्ष्ये नत्वा लोकत्रयप्रभुम् ॥१॥

अन्तभाग:—

वाचो लीलावतीनां निधिरमलतपाः संयमोदन्वदिन्दुः,
श्रीविद्यानन्दिसूरिर्जयतु जगति नाकौकसां पूज्यपादः ।
रंगद्गङ्गातरंगैस्त्रिभुवनपथगास्पर्द्धिनी यस्य कीर्ति—
र्भूयाद्भूयः शिवाय प्रगुणगुणमणीनां सतां रोहणाद्रिः ॥१०३॥
तस्य श्रीश्रुतसागरेण विदुषां वर्येण सौंदर्यव—
च्छिष्येणारचि सत्कथानकमिदं पीयूषवर्षोपमम्,
सन्तश्चातकवत्पिबंतु जगतामेनोनिदाघः क्षयं
भव्यानां वितरेतु पंचगुरवश्चेतोमुदं संपदम् ॥१०४॥

इत्याकाशपञ्चमीव्रतकथा समाप्ता ।

१५६. मुक्तावलीव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभाग :—

प्रभाचन्द्राऽकलंकेष्टविद्यानन्दीक्षितक्रमाम् ।
जीवन्मुक्तावलीं नत्वा वक्ष्ये मुक्तावलीव्रतम् ॥१॥

अन्तभाग :—

ग्रन्थं ग्रन्थिचयं विघट्य घटनामुद्घाट्य निर्हूषणम्,
यः सम्बोधयते स्म भव्यनिवहं श्रीमूलसंघेऽनघे ।
श्रीदेवेन्द्रयशास्तदुद्भवपदे निस्तारको वीरव—
द्विद्यानंदिमुनीश्वरो विजयते चारित्ररत्नाकरः ॥७७॥
तत्पादाम्बुजचिंतनामृतभृतः सर्वज्ञचन्द्रोदये,
रङ्गद्भक्तरङ्गशोधितमहीरङ्गो विशुद्धाशयः ।

औदार्यादिगुणौघरत्नवसतिर्विद्यात्रिनोदस्थिति—
स्तच्छिष्यः श्रुतसागरो विजयतां मुक्तावलीकृद्यतिः ॥७८॥
जातो हूंबडवंशमण्डनमणिः श्रीगोपियाख्यः कृती,
कांता शीरिति तस्य सद्गुरुमुखोद्भूतेश्च कल्याणकृत् ।
पुत्रोऽस्यां मतिसागरो मुनिरभूद्भव्यौघसम्बोधकः,
सोऽयं कारयति स्म निर्मलतपाः शास्त्रं चिरं नन्दतु ॥७९॥

इति श्रीमुक्तावलीविधानकथानकं समाप्तम्

१५७. निर्दुःखसप्तमीकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभाग :—

विद्यानंदं प्रभाचंद्र पूज्यपादं जिनेश्वरम् ।
नत्वाऽकलंकं गवच्मि कथां निर्दुःखसप्तमीम ॥

अन्तभाग :—

सकलभुवनभास्वद्भूषणं भव्यसेव्यः
समजनि कृतिविद्यानंदिनामा मुनीन्द्रः ।
श्रुतसमुपपदाद्यः सागरस्तस्य सिद्धयै,
शुचिविधिमिममेष द्योतयामास शिष्यः ॥४३॥

इति निर्दुःखसप्तमीविधानोपाख्यानं समाप्तम् ।

१५८. सुगन्धदशमीकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभाग :—

पादाम्भोजानहं नत्वा श्रीमतां परमेष्ठिनाम् ।
श्रण्वन्तु साधवो वक्ष्ये सुगन्धदशमीकथाम् ॥१॥

अन्तभाग :—

कृतिरितियतिविद्यानंदिदेवोपदेशाज्जिनविधुवरभक्तेर्वर्णिनस्तु श्रुताब्धेः ।
विबुधहृदयमुक्तामालिकेव प्रणीता सुकृतधनसमर्घ्या गृह्यतां तां विनीताः ॥६१॥

इति श्रीवर्णिना श्रुतसागरेण विरचिता सुगंधदशमीकथा समाप्ता ।

१५९. श्रवणद्वादशीकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभाग :—

पूज्यपाद-प्रभाचन्द्राऽकलंकमुनिमानितम् ।
नत्वाऽर्हन्तं प्रवक्ष्यामि श्रवणद्वादशीविधिम् ॥१॥

अन्तभाग :—

विद्यानन्दिमुनींद्रचन्द्रचरणांभोजातपुष्पंधयः
शब्दज्ञः श्रुतसागरो यतिवरोऽसौ चारु चक्रे कथाम् ।
श्रुत्वा पापकलंकपंकविलसन्मन्दाकिनीमुत्तमां
संतः सारसुखाय धर्मतृषिताः कुर्वन्तु पुण्यात्मनाम् ॥४०॥
इतिश्रवणद्वादशी-उपाख्यानं समाप्तम् ।

१६०. रत्नत्रयकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभाग :—

विद्यानन्दप्रदं पूज्यपादं नत्वा जिनेश्वरम्
कथां रत्नत्रयस्याहं वक्ष्ये श्रेयोनिधेः सताम् ॥१॥

सर्वज्ञसारगुणरत्नविभूषणोऽसौ विद्यादिनंदिगुरुरुद्यतरप्रसिद्धः ।
शिष्येण तस्य विदुषा श्रुतसागरेण रत्नत्रयस्य सुकथा कथितात्मसिद्धयै ॥८३॥

इति श्रीरत्नत्रयविधानकथानकं समाप्तम् ।

१६१. अनन्तव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

प्रणम्य परमात्मानमनंतं परमेष्ठिनम् ।
विद्यानंदं प्रवक्ष्येऽहमनंतव्रतसत्कथाम् ॥१॥

अन्तभागः—

सूरिर्देवेन्द्रकीर्तिर्विबुधजननुतस्तस्य पट्टाब्धिचंद्रो
रुंद्रो विद्यादिनंदी गुरुरमलतपा भूरिभव्याब्जभानुः ।
तत्पादांभोजभृंगः कमलदललसल्लोचनश्चंद्रवक्त्रः

कर्तामुख्यनन्तव्रतस्य श्रुतसमुपदः सागरः शं क्रियाद्वः ॥४७॥

इत्यनंतव्रतकथा ब्रह्मश्रीश्रुतसागरविरचिता सम्पूर्णा ।

१६२. अशोकरोहिणीकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

नत्वा पंचगुरून् विद्यानंदस्वात्मसपदम् ।
अशोकरोहिणीवृत्तं सिद्धये कथयाम्यहम् ॥१॥

अन्तभागः—

गच्छे श्रीमति मूलसंघतिलके सारस्वते निर्मले
तत्त्वज्ञाननिधिर्बभूव सुकृती विद्यादिनन्दी गुरुः ।
तच्छिष्यश्रुतसागरेण रचिता संक्षेपतः सत्कथा
रोहिण्याः श्रवणामृतं भवतु वस्तापच्छिदे संततम् ॥६६॥

इतिश्रीश्रुतसागरविरचिता अशोकरोहिणीकथा समाप्ता ।

१६३. तपोलक्षणपंक्तिकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

विद्यानन्दं प्रभाचन्द्रमकलंकं जिनाधिपम् ।
प्रणम्य शिरसा वक्ष्ये तपोलक्षणपंक्तिकम् ॥१॥

अन्तभागः—

देवेन्द्रकीर्त्तिगुरुपट्टसमुद्रचंद्रो विद्यादिनंदिसुदिगम्बर उत्तमश्रीः ।
तत्पादपद्ममधुपः श्रुतसागरोऽयं ब्रह्मव्रती तप इदं प्रकटीचकार ॥४२॥

इतिब्रह्मश्रीश्रुतसागरविरचिता लक्षणपंक्तितपःकथा समाप्ता ।

१६४. मेरुपंक्तिकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

चिंतयित्वा चिरं वीरं धीरं गम्भीरशासनम् ।
विद्यानंदप्रदं मेरुपंक्तिमुद्योतयाम्यहम् ॥१॥

अन्तभागः—

सोनाख्युद्यसखी कदासविमुखी शुभ्रांशुशुंभन्मुखी
पूजादानमुनीन्द्रमानविनयस्वाध्यायसाधुद्यु तिः ।
विद्यानंद्यकलंकदेवकलिते मार्गे रतिं बिभ्रती
श्रीमान् कांकसुतात्रकीर्तितभुजा ढोसी चिरं जीवतु ॥४६॥
इतिश्रीश्रुतसागरविरचितं मेरुपंक्त्युपाख्यानं समाप्तम् ।

१६५. विमानपंक्तिकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

पूज्यपादाऽकलंऽऽकार्य-विद्यानंदिस्तुतक्रमम् ।
विमानपंक्तिमावक्ष्मि तपो नत्वा जिनेश्वरम् ॥१॥

अन्तभागः—

सद्वाक्यमलंघ्यमित्यपि मनस्यारोप्य विद्वद्वरो
वर्णि-श्रीश्रुतसागरो जिनपतेर्द्धर्मानुरागादरः ।
गोमट्याहतवाक्यबोधनपरश्चक्रे नवक्राशयः
सम्यग्दृष्टिचकोरचंद्रवदनः शास्त्रं चिरं नंदतु ॥८८॥

इति भट्टारकश्रीविद्यानंदिप्रियशिष्य सूरि(वर्णि)श्रीश्रुतसागरविरचिता विमानपंक्त्युपाख्यानकथा समाप्ता ।

१६६. पल्यविधानकथा (ब्रह्मश्रुतसागर)

आदिभागः—

श्रीविद्यानंदिपादाब्जं हृदि ध्यात्वोन्नतिप्रदम् ।
सूत्रानुसारतः पल्यविधानं रचयाम्यहम् ॥१॥

अन्तभागः—

श्रीमूलसंघपरमार्हतभव्यपद्मसंबोधवाक्यकिरणं प्रगुणप्रतापः ।
देवेन्द्रकीर्तिरभवद्भुवनैकभानुर्गच्छे गिरः सुरनरोरगपूजितेऽस्मिन् ॥४०॥
तत्पट्टवारिधिसमुल्लसनैकचंद्रः सांद्रद्यु तिः परमखंडसमुद्यवृत्तः ।
निर्लांछनो बुधजनैरभिपूज्यपादो विद्यादिनंदिगुरुरत्र चिरं विरेजे ॥४१॥

तत्पादपंकजरजोरचितोत्तमांगः श्रीमल्लिभूषणगुरुर्विदुषां वरेण्यः ।
भट्टारको भुवनभव्यसरोजसूर्यो मिथ्यातमोविघटने पटुरेष भाति ॥४२॥

सर्वज्ञशासनमहामणिमंडितेन तस्योपदेशवशिना श्रुतसागरेण ।
देशव्रतिप्रभुतरेण कथेयमुक्ता सिद्धिं ददातु गुरुभक्तविभावितेभ्यः ॥४३॥

श्रीभानुभूपतिभुजाऽसिजलप्रवाहनिर्मग्नशत्रुकुलजाततताः प्रभावः ।
सद्वृद्धहुंबडकुले बृहतीलदुर्गे श्रीभोजराज इति मंत्रिवरो बभूव ॥४४॥

भार्यास्य सा विनयदेव्यभिधा सुधोपसोद्गारवाक् कमलकांतमुखी सखीव ।
लक्ष्म्याः प्रभोर्जिनवरस्य पदाब्जभृंगी साध्वी पतिव्रतगुणा मणिवन्महार्घ्या ॥४५

साऽसूत भूरिगुणरत्नविभूषितांगं श्रीकर्मसिंहमितिपुत्रमनूकरत्नम् ।
कालं च शत्रु-कुल-कालमनूनपुण्यं श्रीघोषरंघनतरावगिरींद्रवज्रम् ॥४६॥

गंगाजलप्रविमलोच्चमनोनिकेतं तुर्यं च वर्यतरमंगजमत्र गांगम् ।
जाता पुरस्तदनु पुत्तलिका स्वसैषां वक्तृषु सज्जिनवरस्य सरस्वतीव ॥४७॥

सम्यक्त्वदार्ढ्यकलिता किल रेवतीव सीतेव शीलसलिलोक्षितभूरिभूमिः ।
राजीमतीव सुभगागुणरत्नराशिर्वेलासरस्वतिइवांचति पुत्तलीह ॥४८॥

यात्रां चकार गजपंथगिरौ ससंघा ह्येतत्तपोविदधती सुदृढव्रता सा ।
सच्छांतिकं गणसमर्चनमर्हदीशं नित्यार्चनं सकलसंघसदन्नदानम् ॥४९॥

तुंगीगिरौ च बलभद्रमुनेः पदाब्जभृंगी तथैव सुकृतं यतिभिश्चकार ।
श्रीमल्लिभूषणगुरुप्रवरोपदेशाच्छास्त्रं व्यधाय यदिदं कृतिनां हृदिष्टम् ॥५०॥

मातेव व्रतिनां गुणान् विदधती संश्रण्वती चागमं
पूजादानपरा परोपकृतिकृद्धैव चनन्यत्ततः (?) ।
स्त्री चैषांगवशेन मानसइदा निर्व्यूढचारुव्रता
दीर्घायुर्बलभद्रदेवहृदया भूयात्पदं संपदः ॥२५१॥

इतिभट्टारकश्रीमल्लिभूषणगुरूपदेशात्सूरिश्रुतसागरविरचिता पल्यविधानव्रतोपाख्यानकथा समाप्ता ।

१६७. छन्दोनुशासनवृत्तिः (कवि वाग्भट)

आदिभागः—

प्रणिपत्य प्रभुं नाभिसंभवं भक्तिनिर्भरः ।
विवृणोमि स्वयमहं निजं छंदोनुशासनम् ॥१॥

ग्रंथारंभे शिष्टसमयप्रतिपालनाय अभिधेय-सम्बन्ध-प्रयोजनप्रतिपादनाय च ग्रंथकार इष्टाधिकृतदेवतानमस्कारपूर्वकमुपक्रमते । तद्यथा—

विभुं नाभेयमानम्य छंदसामनुशासनम् ।
श्रीमन्नेमिकुमारस्यात्मजोहं वच्मि वाग्भटः ॥२॥

(१) संज्ञाध्याय (२) समवृत्ताख्य

पुरुषोत्तमराहुडप्रभो ! कस्य नहि प्रमदं ददाति सद्यः ।
विलता तव चैत्यरद्धतिर्वातचलध्वजमालधारिणी ॥१३॥

(३) अर्धसमवृत्ताख्य (४) मात्रासमक × × × (५) मात्राच्छंद ।

अन्तभागः—

इति महाकविश्रीवाग्भटविरचितायां वाग्भटाभिधानछंदोवृत्तौ मात्राच्छंदोऽध्यायः पंचमः ।

नव्यानेकमहाप्रबन्धरचनाचातुर्यविस्फूर्जित-
स्फारोदारयशः प्रचारसततव्याकीर्णविश्वत्रयः ।
श्रीमन्नेमिकुमारसूनुरखिलप्रज्ञालुचूडामणि-
श्छंदः शास्त्रमिदं चकार सुधियामानंदकृद् वाग्भटः ॥
संपूर्णंचेदं श्रीवाग्भटकृतं छंदोनुशासनमिति ॥

—(पाटन भंडारप्रति)

१६८. षण्णवतिक्षेत्रपालपूजा (विश्वसेनमुनि)

आदिभागः—

वंदेऽहं सन्मतिं देवं, सन्मतिं मतिदायकम् ।
क्षेत्रपालविधिं वक्ष्ये भव्यानां विघ्नहानये ॥१॥

अन्तभागः--

श्रीमच्छ्रीकाष्ठसंघे यतिपतितिलके रामसेनस्य वंशे
गच्छे नंदीतटाख्ये यगदितिह (यमततिसुमुखे)ऽतुच्छकर्मा मुनीन्द्रः ।
ख्यातोऽसौ विश्वसेनो विमलतरमतिर्येन यज्ञं चकार्षीद्
सोप्पेसुग्रामवासे भविजनकलिते क्षेत्रपानां शिवाय ॥२७॥

इति श्रीविश्वसेनकृता षण्णवतिक्षेत्रपालपूजा संपूर्णा ।

१६६. वैद्यकशास्त्र (हरिपाल)

आदिभागः—

णमिऊण जिणो विज्जो भवभमणेवाहिफेडणसमत्थो ।
पुण विज्जयं पयासमि जं भणियं पुव्वसूरीहिं ॥१॥
गाहाबंधे विरयमि देहिणं रोय-णासणं परमं ।
हरिवालो जं बुल्लइ तं सिज्झइ गुरुपसाएण ॥२॥

(इसके बाद 'वाडव-गरु-जाविन्ती' इत्यादि रूपसे शिरोवर्तिदोष नाशन-की चिकित्सा-दवाई लिखी है आगे शिरोरोगकी दवाइयां हैं । इस तरह प्रयोग दिये हैं ।)

अन्तभागः—

हरडइ वाति समंजलि तेण सुणीरेण पक्खालिज्जा ।
लिंगे वाहि पसामइ भासिज्जइ जोयसारेहिं ॥२५५॥
हरिवालेण य रइयं पुव्वविज्जेहिं जं जि णिद्दिट्ठं ।
वुहयण तं महु खमियहु हीणहिये जं जि कव्वो य ॥२५६॥
विक्कम-णरवइ-काले तेरसयागयाइं एयाले (१३४१) ।
सिय-पोसट्ठमि मंदे विज्जयसत्थो य पुण्णो य ॥
इति परा(प्रा)कृतवैद्यक [शास्त्र] समाप्तम् ॥

१७०. बृहत्सिद्धचक्रपूजा (बुध वीरु)

आदिभागः—

अनन्तानन्तसौख्याढ्यं सिद्धचक्रं प्रणम्य वै ।
श्रीबृहत्सिद्धचक्रस्य विधिं वच्ये विधानतः ॥१॥

अन्तभाग :—

वेदाष्टबाणशशि-संवत्सरविक्रमनृपाद्वहमाने ।
रुहितासनाम्नि नगरे बब्बर-मुगलाधिराज-सद्राज्ये ॥१॥
श्रीपार्श्वचैत्यगेहे काष्ठासंघे च माथुरान्वयके ।
पुष्करगणे बभूव भट्टारकमणिकमलकीर्त्याह्वः ॥२॥
तत्पट्टकुमुदचन्द्रो मुनिपतिशुभचन्द्रनामधेयोऽभूत् ।
तत्पट्टाब्जविकासी यतिराट् यशसेन इति कथितः ॥३॥
तच्छिक्षणीह जाता सच्छील-तरंगिणी महावतिनी ।
राजश्रीरिति नाम्नी संयमनिलया विराजते जगति ॥४॥
तद्भ्राता मुनिदाने श्रेयोनृप इति विभासते सुतराम् ।
श्रीनयणसीह नाम्ना पद्मावतिपुरवाल इति भाति ॥५॥
तत्पुत्रः सुपवित्रो विद्याविनयाम्बुधिः सुधी धीरः ।
जिनदासनामधेयो विद्वज्जनमान्यतां प्राप्तः ॥६॥
अग्रोतवंशजातस्तोतूसाधोस्तूनन्दवो मतिमान् ।
मुनिहेमचन्द्रशिष्यो वीरु नामा बुधश्चास्ते ॥७॥
बुधजिनदास-निदेशात् वीरुबुधश्चित्रबुद्धि-विभवेन ।
श्रीसिद्धचक्रयंत्रं, दृष्ट्वा पाठं व्यरीरचत्सुगमम् ॥८॥
यः पठति लिखति पूजां करोति कारयति सिद्धचक्रस्य ।
सुर-मनुज-सुखं भुक्त्वा स याति मोक्षं भवैः कतिभिः ॥९॥
यावत्सुमेरु-कुलगिरि-क्षीरोदधि-धरणि-सुरनदीपूरं ।
तावत्सुसिद्धपूजा पाठावेती प्रवर्तयताम् ॥१०॥

शुद्धज्ञानमया जरादिरहिताः सिद्धा भवन्तु श्रियै
भव्यानां सुखकारिणो जिनवराः सन्तुस्थितौ भूभुजाम् ॥
आचार्या वितरन्तु मंगलविधिं सर्वप्रदानां सदा
सम्यक्साधुपदाधिरूढपतयः प्रीणंतु सङ्घं चिरम् ॥११॥

इतिसुधवीरविरचित-पद्मावतिपुरवालपण्डितश्रीजिनदासनामाङ्कितवृह-त्सिद्धचक्रपूजा समाप्ता ।

१७१. यशोधरचरित्र (भ० ज्ञानकीर्ति)

आदिभागः—

श्रीमन्नाभिसुतो जीयाज्जिनो विजितदुर्नयः ।
मङ्गलार्थं नतो वस्तुं (वोऽस्तु) सर्वदा मंगलप्रदः ॥१॥

नमामि देवं मुनिसुव्रताख्यं, मुनिव्रतैर्भूषितभव्यदेहम् ।
सुरेन्द्रराजेन्द्रकिरीटकोटि रत्नप्रभालीढपदारविंन्दम् ॥२॥

श्रीवर्द्धमानं प्रणमामि नित्यं, श्रीवर्द्धमानं मुनिवृन्दवन्द्यम् ।
धर्माम्बुवर्षैः परिपुष्टनीतिं भव्यासुभृत्शस्यसमूहमीशम् ॥३॥

शेषान् जिनान् धर्मसुतीर्थनाथान् वंदे सदा मंगलदानदक्षान् ।
कैवल्यदीपेन विलोकितार्थान् विभून् विमुक्तेः पथसार्थवाहान् ॥४॥

सर्वज्ञवक्त्राब्जविनिर्गतां तां जैनेश्वरीं वाचमहं स्तवीमि ।
सदंगपूर्वादिस्वरूपगात्रीमज्ञानदुर्भ्रान्तरविप्रकाशाम् ॥५॥

श्रीगौतमादेर्गणपस्य पादान् स्तुवे सदाऽहं दृढभक्तिचित्तः ।
नमन्मुनिवृन्दनिबन्धमानानेपारजन्माम्बुधिपोततुल्यान् ॥६॥

उमादिस्वातिमशेषतत्त्वं सूत्रार्थकारं कविसृष्टिकारं ।
प्रत्येकबुद्धाख्यगणेशकीर्तिं स्वान्तां प्रकुर्वन्तमुपैमि भक्त्या ॥७॥

समंतभद्रं कविराजमेकं वादीभसिंहं वरपूज्यपादम् ।
भट्टाकलंकं जिन-बौद्धवादं प्रभादिचन्द्रं सुकविं प्रवन्दे ॥८॥

श्रीपद्मनन्दी क्रमतस्ततोऽभूत् सद्भव्यपद्मप्रविकाससूरः ।
तत्पट्टके श्रीसकलादिकीर्तिः कीर्तिव्रजव्याप्तदिगंतरालः ॥८॥

पट्टे तदीये भुवनादिकीर्तिः तपोविधानाप्तसुकीर्तिमूर्तिम् ।
श्रीज्ञानभूषं मुनिपं तदीये पट्टे प्रवंदे विदितार्थतत्त्वम् ॥१०॥

पट्टे तदीये विजयादिकीर्तिः कामारिनिर्नाशनलब्धकीर्तिः ।
तदीयपट्टे शुभचन्द्रदेवः कवित्ववादित्वविधानदेवः ॥११॥

सुमतिकीर्तिरभूद्वरतत्पदे सुमतिसद्वृषदेशनतत्परः ।
सुगुणकीर्तिरिहास्य पदे वरे जयति सूरिरनेकगुणोत्करः ॥१२॥

तत्पट्टे वादिभूषाख्या विश्रुते व्रततांवरः ।
कर्णाटे यन्नृपैः पूज्यो जैनैर्जयतु मद्गुरुः ॥१३॥

तच्छिष्यो ज्ञानकीर्त्याख्योऽहं सूरिपदसंस्थितः ।
करिष्ये चरितसारं यशोधरमहीपतेः ॥१४॥

दोर्दंण्डचण्डबलत्रासितशत्रुलोको रत्नादिदानपरिपोषितपात्रसंघः ।
दीनानुवृत्तिशरणागतदीर्घशोकः पृथ्व्यां बभूव नृपतिर्वरमानसिंहः ॥१५॥

दोर्दंण्डचण्डबल त्रासितशत्रुलोको रत्नादिदानपरिपोषितपात्रओघः ।
दीनानुवृत्तिशरणागतदीर्घशोकः पृथ्व्यां बभूव नृपतिर्वरमानसिंह ।१६।
तस्य क्षितीश्वरपतेरधिकारि [वर्गः] श्रीजैनवेश्मकृत[दुर्लभ] पुण्यधारी ।
यात्रादिधर्मशुभकर्मपथानुचारी, जैनो बभूव वनिजां वर इभ्यमुख्यः ।१७।

खण्डेलवालान्वय एव गोत्रे गोधाभिधे रूपसुचन्द्रपुत्रः ।
दाता गुणज्ञो जिनपूजनेन्द्रो सिद्धारिधौतारिकदंबपंकः ॥१८॥

रायात्कुबेरं मदनं स्वरूपेणार्कं प्रतापेन विधुं सुसौम्यात् ।
ऐश्वर्यतां वासवमर्चयापि तिरस्करोतीह जिनेन्द्रभक्तः ॥१९॥

नानूसुनामा जगतीप्रसिद्धो यो मौलिबद्धावनिनाथतुल्यः ।
स्ववंशवालाध्वविकारुसूरोऽस्यप्रार्थनातो क्रियते मयैतत् ॥२०॥

इत्थं जिनेन्द्रागमसद्गुरून् वै प्रणम्य भक्त्या चरितं पवित्रं ।
वक्ष्ये समासेन यशोधरस्य राज्ञो जनन्या सहितस्य चित्रं ॥२१॥
श्रीसोमदेवैर्हरिषेणसंज्ञैः श्रीवादिराजैश्च प्रभंजनैश्च ।
धनंजयैर्यत्कविपुष्पदन्तैः श्रीवासवाद्यैरिह सेनसंज्ञैः ॥२२॥
प्रकाशितं गद्य-सुपद्यबंधैः संक्षेपविस्तारसुगूढभावैः ।
न्यायागमाध्यात्मविशिष्ट-शब्द-शास्त्राब्धिपारं प्रगतैर्महद्भिः ॥२३॥
कवीश्वरैर्वादिभिरप्यजेयैर्वागीश्वरैर्जीवंगुरुप्रतुल्यैः ।
मया कथं तद्गदितुं प्रशक्यं स्वल्पेन बोधेन विशिष्टभावं ॥२४॥
तथापि तद् गुण-ग्रामस्मरणार्जितपुण्यतः ।
स्तोकं सारं प्रवक्ष्यामि स्वस्य शक्त्यनुसारतः ॥२५॥

× × × ×

अन्तभाग :—

चंपादिपुर्याः सविधे सुदेशे वंगाभिधामुन्दरतां दधाने ।
ख्याते पुरेऽकच्छ(ब्ब)रनामके च चैत्यालये श्रीपुरुतीर्थपस्य ॥५७॥
श्रीमूलसंघे च सरस्वतीति गच्छे बलात्कारगणे प्रसिद्धे ।
श्रीकुन्दकुन्दान्वयके यतीशः श्रीवादिभूषो जयतीह लोके ॥५८॥
तद्गुरुबन्धुर्भुवनसमर्च्यः पंकजकीर्त्तिः परमपवित्रः ।
सूरिपदासो मदनविमुक्तः सद्गुणराशिर्जयतु चिरं सः ॥५९॥
शिष्यस्तयोर्ज्ञानिसुकीर्तिनामा श्रीसूरिरत्राल्पसुशास्त्रवेत्ता ।
चरित्रमेतद्रचितं च तेनाऽऽचन्द्रार्कतारं जयताद्धरित्र्यां ॥६०॥

शते षोडशएकोनषष्टिवत्सरके शुभे ।
माघे शुक्लेऽपि पंचम्यां रचितं भृगुवासरे ॥६१॥

राजाधिराजोऽत्र तदा विभाति श्रीमानसिंहो जित-वैरिवर्गः ।
अनेकराजेन्द्रविनम्यपादः स्वदानसंतर्पितविश्वलोकः ॥६२॥
प्रतापसूर्यस्तपतीह यस्य द्विषां शिरस्सुप्रविधाय पादं ।
अन्याय-दुर्ध्वान्तिमपास्य दूरं पद्माकरं यः प्रविकाशयेच्च ॥६३॥

तस्यैव राज्ञोऽस्ति महान्तमात्यो नानू सुनामा विदितो धरित्र्यां ।
सम्मेदशृंगे च जिनेन्द्रगेहमष्टापदे वादिमचक्रधारी ॥६४॥
यो कारयद्यत्र च तीर्थनाथाः सिद्धिंगता विंशतिमानयुक्ताः ।
तत्प्रार्थनां च संप्राप्य जयवंतबुधस्य च ।
आग्रहाद्रचितं चैतच्चरित्रं जयताच्चिरं ॥६६॥
श्रीवीरदेवोऽस्तु शिवाय ते हि श्रीपद्मकीर्तीष्टविधायको यः ।
श्रीज्ञानकीर्तिप्रविबंधपादो नानू स्ववर्ग्येण युतस्य नित्यम् ॥६७॥

इति श्रीयशोधरमहाराजचरिते भट्टारकश्रीवादिभूषणशिष्याचार्यश्रीज्ञान-कीर्तिविरचिते राजाधिराज-महाराज-मानसिंह-प्रधान-साह-श्रीनानूनामांकिते भट्टारकश्रीअभयरुच्यादि-दीक्षाग्रहणस्वर्गादि-प्राप्तिवर्णनो नाम नवमः सर्गः ॥

परिशिष्ट

१

जैनग्रन्थप्रशस्ति संग्रहके ग्रन्थ और ग्रन्थकार

१४७ अक्षयनिधिव्रतकथा (ब्रह्म श्रुतसागर) २१०
७२ अजितपुराण (पं० अरुणमणि) ६७
१३१ अध्यात्मतरङ्गिणी-टीका (मुनि गणधरकीर्ति) १६३
४० अध्यात्मतरङ्गिणी नाटक समयासारटीका (भ० शुभचन्द्र) ५४
१२७ अर्घकाण्ड (दुर्गदेव) १८७
६६ अंजनापवनंजय-नाटक (कवि हस्तिमल्ल) ८७
२७ अनन्तजिन-व्रतपूजा (भ० गुणचन्द्र) ३४
१६१ अनन्तव्रतकथा (ब्रह्म श्रुतसागर) २१६
११६ अम्बिकाकल्प (भ० शुभचन्द्र) १७१
१६२ अशोकरोहिणी कथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१७
१५५ आकाशपंचमीकथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१४
१३६ आत्मानुशासनतिलक (प्रभाचन्द्राचार्य) २०१
७३ आदिनाथ-फाग (भट्टारक ज्ञानभूषण) ६६
१४० आदिपुराणटीका (भ० ललितकीर्ति) २०५
१३० आयज्ञानतिलकसटीक (भट्टवोसरि) १६२
१३७ आराधनाकथा प्रबन्ध (प्रभाचन्द्राचार्य) २०२
१२१ आराधना-पताका (वीरभद्राचार्य) १८७
१३ उपदेशरत्नमाला (भ० सकलभूषण) ६१
२६ करकण्डु-चरित्र (भ० जिनेन्द्रभूषण) ३३
११४ करकण्डु-चरित्र (भ० शुभचन्द्र) १६६
४१ कर्णामृतपुराण (केशवसेनसूरि) ४५

१०२ कर्मकाण्ड-टीका भ० ज्ञानभूषण व सुमतिकीर्ति) १५२
१२४ कषायप्राभृत टीका = जयधवला (आचार्य वीरसेन, जिनसेन) १८३
४७ कामचाण्डालीकल्प (मंत्रवाद) (मल्लिषेणसूरि) १४७
३२ कार्तिकेयानुप्रेक्षा-टीका भ० शुभचन्द्र) ४२
१५० चन्दनषष्ठीकथा ब्रह्मश्रुतसागर) २१९
१११ क्षपणासार (माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव) १६५
११८ गणितसार-संग्रह (महावीराचार्य) १७५
२० चतुर्दशीव्रतोद्यापन (पं० अजयराम) २७
५६ चतुर्विंशतिसन्धानकाव्य-सटीक (कवि जगन्नाथ) ७८
३८ चन्दनाचरित (भ० शुभचन्द्र) ५२
४७ चन्द्रप्रभ-चरित (कवि दामोदर) ६१
३३ चन्द्रप्रभ-चरित (भ० शुभचन्द्र) ४३
१३२ चन्द्रप्रभ पुराण (पं० शिवाभिराम) १६६
६० छन्दोनुशासन (जयकीर्ति) ८४
१६७ छन्दोनुशासन वृत्तिः स्वोपज्ञ (कवि वाग्भट) २२०
७ जम्बूस्वामि चरित्र (ब्र० जिनदास) ६
३१ जयपुराण (ब्र० कामराज) ३१
६६ जिनसहस्रनाम टीका अमरकीर्तिसूरि) १४५
८१ जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय (अय्यपार्य) ११०
३७ जीवंधरचरित्र (भ० शुभचन्द्र) ५१
६४ जैनेन्द्रमहान्यास (प्रभाचन्द्राचार्य) १४३
१४३ ज्येष्ठजिनव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २०८
१८ ज्ञानसूर्योदय-नाटक (भ० वादिचन्द्र) २५
४८ ज्ञानार्णवगद्य- टीका (श्रुतसागरसूरि) ७१
६१ ज्वालिनीकल्प (इन्द्रनन्दियोगीन्द्र) १३५
६६ ज्वालिनीकल्प (मल्लिषेणसूरि) १४७
८७ तत्त्वसार-टीका (भ० कमलकीर्ति) १२१

११७ तत्त्वार्थ-टिप्पण (भ० प्रभाचन्द्र) १७२
११३ तत्त्वार्थवृत्तिपद विवरण (प्रभाचन्द्राचार्य) १६८
१६३ तपोलक्षणपंक्तिकथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१७
६६ तत्त्वार्थसूत्र-सुखबोधवृत्ति (भ० योगदेव) ६१
६२ त्रिपंचाशत्क्रियावतोद्यापन (भ० देवेन्द्रकीर्ति) ८६
२१ त्रिभंगीसारटीका (सोमदेवसूरि) २८
२४ त्रिलोकसार-टीका (सहस्रकीर्ति) ३२
१३६ त्रैलोक्यदीपक (वामदेव २०३
१५३ दशलाक्षिणीव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१३
१३४ द्रव्यसंग्रहवृत्ति (पं० प्रभाचन्द्र) २००
७७ द्रौपदि-प्रबंध (जिनसेनसूरि) १०४
१७ द्विसंधानकाव्य-टीका (पं नेमिचन्द्र) २५
८२ धन्यकुमारचरित्र (भ० गुणभद्र) ११६
६३ धर्मचक्रपूजा (बुध वीर) १४१
२५ धर्मपरीक्षा (रामचन्द्र मुनि) ३३
२ धर्मरत्नाकर (जयसेनसूरि) ३
१२ धर्मोपदेशपीयूषवर्ष (ब्र० नेमिदत्त) १८
५० ध्यानस्तव (भास्करनन्दी) ७२
६० नागकुमारचरित (मल्लिषेणसूरि) १३४
५२ नागकुमारपंचमीकथा (पं० धरसेन) ७४
१५७ निर्दुःखसप्तमीकथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१५
१०६ नेमिनाथपुराण (ब्र० नेमिदत्त) १५७
१५ नेमिनिर्वाणकाव्य (कविवाग्भट) ८
१ न्यायविनिश्चय विवरण (वादिराजसूरि) १
५१ पदार्थदीपिका (भ० देवेन्द्रकीर्ति) ७३
१०६ पद्मचरित-टिप्पण (श्रीचन्द्रमुनि) १६३
२८ पद्मपुराण (भ० धर्मकीर्ति) ३५

१२८ परमागमसार (श्रुतमुनि) १६०
६४ पंचकल्याणकोद्यापनविधि (ब्र० गोपाल) ८८
१६ पंचनमस्कार-दीपक (भ० सिंहनन्दि) २४
१३५ पंचास्तिकाय-प्रदीप (प्रभाचन्द्राचार्य) २०१
१६६ पल्य विधानकथा (ब्र० श्रुतसागर) २१८
३६ पाण्डवपुराण (भ० शुभचन्द्र) ४७
७१ पाण्डवपुराण (श्रीभूषण) ६२
३४ पार्श्वनाथकाव्य-पंजिका (भ० शुभचन्द्र) ४४
५६ पार्श्वपुराण (भ० चन्द्रकीर्ति) ८२
१५७ पुरंदरविधानकथा (ब्र० श्रुतसागर) २१७
१५४ पुष्पांजलिव्रतकथा (ब्र० श्रुतसागर) २१३
६१ प्रद्युम्नचरित (महासेनसूरि) ८५
४३ प्रद्युम्नचरित (भ० सोमकीर्ति) ५६
१३८ प्रवचनसरोजभास्कर (प्रभाचन्द्राचार्य) २०२
१०४ प्रा० पंचसंग्रह-टीका (भ० सुमतिकीर्ति) १२५
३६ प्राकृत लक्षण-सटीक (भ० शुभचन्द्र) ५३
६५ प्राकृत शब्दानुशासन, स्वोपज्ञवृत्ति सहित कवि त्रिविक्रम) १४४
८४ प्रायश्चित्तसमुच्चय-सचूलिकवृत्ति (श्रीनन्दिगुरु) ११६
६६ बृहत्षोडशकारण पूजा (सुमतिसागर) ८७
१७० बृहत्सिद्धचक्र पूजा (बुधि वीरु) २२२
७४ भक्तामरस्तोत्र वृत्ति (ब्र० रायमल) १००
२३ भविष्यदत्तचरित्र (विबुध श्रीधर) ३१
८६ भावशतक (कवि नागराज) १२०
१२६ भावसंग्रह (श्रुतमुनि) १६१
६ भूपालचतुर्विंशति टीका (प० आशाधर) ८
१०० भैरवपद्मावती कल्प-सटीक (मल्लिषेणि सूरि) १४६

५४ मदनपराजय (ठक्कुर जिनदेव) ७६
१०१ महापुराण (मल्लिषेण) १५२
१५ महापुराण-टीका (भ० ललितकीर्ति) २३
५३ महीपालचरित्र (भ० चारित्रभूषण) ७४
१४६ मुकुट सप्तमी कथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१०
१५६ मुक्तावलीकथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१४
४६ मुनिसुव्रतपुराण (ब्रह्मकृष्णदास ६७
१४६ मेघमालाव्रतकथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २११
१६४ मेरुपंक्तिकथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१७
५७ मौनव्रतकथा (गुणचन्द्र सूरि) ८०
४ यशोधरचरित्र (मुनि वासवसेन) ७
१७१ यशोधरचरित्र (भ० ज्ञानकीर्ति) १२३
३ यशोधरचरित्र (पद्मनाम कायस्थ) ५
२२ यशोधरचरित्र (भ० श्रुतसागर) २६
७८ यशोधरचरित्र (भ० सोमकीर्ति) १०६
८८ यशोधर महाकाव्य-पंजिका (पं० क्षीदेव) १२४
१६० रत्नत्रय कथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१६
८५ योगसंग्रहसार (श्रीनन्दिगुरु) ११६
१४४ रविव्रत कथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २०६
१०५ रात्रिभोजनत्यागकथा (ब्र० नेमिदत्त) १५७
१४२ रामचरित्र (ब्रह्मजिनदास) २०६
१२६ रिष्टसमुच्चय शास्त्र (दुर्गदेव) १८८
१५१ लब्धिविधानकथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१२
७६ वर्धमान चरित (कवि असग) १०७
१४१ वाग्भट्टालंकारावचूरि=कवि चन्द्रिका (वादिराज) २०५
१६५ विमानपंक्तिकथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१८
७० विषापहार-टीका (नागचन्द्रसूरि) ९२

१६६ वैद्यक शास्त्र (हरिपाल) २२१
१२१ वृषभदेवपुराण (भ० चन्द्रकीर्ति) १७६
६८ शङ्खदेवाष्टक (भानुकीर्ति) ६०
१३६ शब्दार्णवचन्द्रिका वृत्ति (सोमदेव) १६६
६४ शब्दाम्भोजभास्कर जैनेन्द्रमहान्यास (प्रभाचन्द्राचार्य) १४३
११६ शांतिकविधि (पं० धर्मदेव) १७०
८० शान्तिनाथपुराण (कवि असग) १०६
१२० शान्तिनाथ पुराण (भ० श्रीभूषण) १७७
६७ शृङ्गारमंजरी (अजितसेनाचार्य) ८६
१४ श्रावकाचारसारोद्धार (मुनि पद्मनन्दि) २१
११० श्रीदेवताकल्प (भ० अरिष्टनेमि) १६४
११ श्रीपालचरित्र (ब्र० नेमिदत्त) १६
१० श्रीपालचरित्र (ब्रह्म श्रुतसागर) १६
३५ श्रेणिकचरित्र (भ० शुभचन्द्र) ४६
५५ श्वेताम्बरपराजय (कवि जगन्नाथ) ७७
१२३ षट्खण्डागम-टीका-धवला (वीरसेनाचार्य) १८१
५८ षट्चतुर्थ-वर्तमान-जिनार्चन (पं० शिवाभिराम) ८१
११२ षड्दर्शनप्रमाणप्रमेयसंग्रह (शुभचन्द्र) १६७
१६८ षण्णवति क्षेत्रपालपूजा (विश्वसेन मुनि) २२०
१४६ षोडशकारणकथा (ब्रह्म श्रुत सागर) २०६
१६ षोडशकारण व्रतोद्यापन (केशवसेनसूरि) २७
१४५ सप्तपरमस्थानव्रतकथा (ब्रह्म श्रुतसागर) २११
४२ सप्तव्यसनकथा-समुच्चय (भ० सोमकीर्ति) ५८
१०७ समवसरणपाठ (पं० रूपचन्द्र) १५८
४६ सम्मेदशिखर माहात्म्य (दीक्षित देवदत्त) ७२
६७ सरस्वतीकल्प (मल्लिषेणसूरि) १४७
६५ सिद्धचक्र-कथा (भ० शुभचन्द्र) ८८

७६ सिद्धान्तसार (नरेन्द्रसेन) १०२
८३ सिद्धिविनिश्चय टीका (आचार्य अनन्तवीर्य) ११८
१५८ सुगन्धदशमी-कथा (ब्रह्मश्रुतसागर) २१५
१०८ सुखनिधान (कवि जगन्नाथ) १६२
८ सुदर्शनचरित्र (विद्यानन्दि मुमुक्षु) १०
९ सुदर्शनचरित्र (ब्रह्म नेमिदत्त) १३
१२२ सुभगसुलोचनाचरित्र (भ० वादिचन्द्र) १८०
४४ सुभौम-चक्रि-चरित्र (भ० रतनचन्द) ६०
९२ स्वर्णाचल माहात्म्य (दीक्षित देवदत्त) १३९
३० हरिवंशपुराण (पं० रामचन्द्र) ३८
७५ हरिवंश पुराण (ब्र० जिनदास) १००
४५ होलीरेणुका चरित्र (पं० जिनदास) ६३

२

प्रशस्ति संग्रहमें उल्लिखित संघ, गण और गच्छ

कंडूर (गण) १६८
काष्ठासंघ २४, ५६, ६८, ८२, ८३, ६५, ६६, ६७, ६६, १२३, १३१, १४१, १७२, १७३. १७८, १७६, १७६, २२१, २२२
काड (लाड) वागड संघ ४, १०३
दिक्संघ २७,
देशी (गण) ६२, १५४, १६१
द्रविडगण १३५
नन्दीतट (गच्छ) ५८, ५६, ८२, ८३, ६५, ६६, १०६, १७८, १७६, २२१,
नन्दी संघ १६, ४२, ४४, १४६, १५५, १५६, १६६,
पुष्कर (गण) २३, २४, ६७, ६८, १२३, २२२,
पुस्तक (गच्छ) ६२, १६१,
बलशालि (गण) ८७,
बलात्कार (गण) १५, ३४, ३५, ४०, ४२, ६१, ८०, १३६, १५५, १५६, १६४, १६६, २२५,
ब्रह्मतपा (गच्छ) ८७,
भारती (गच्छ) १२, १५, ४६, ५१, १५५
माथुर (गच्छ) २३, ६७, ६८, १२३,
मूलसंघ १५, १७, १८, १६, २४, २६, २६, ३०, ३४, ३५, ३७, ३६, ४१, ४३, ४४, ४६, ४६, ५१, ५२, ५३, ६१, ७१, ८०, ८७, ६२, ६६, ११२, ११५, १३६, १४६, १५३, १५५, १५७, १६६, १६१, १६६, २०८, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१७, २१८, २२५,
लाट वर्गट (गण) ८५,
वाणी (गच्छ) ७५,
विद्या (गण) ६६, १७८,
सरस्वती (गच्छ) ६, १७, १८, १६, २६, ३४, ३५, ६१, ८०, १५७, १५६, २०६, २२५,
सारकर (गण) ७५,
सारस्वत गच्छ २१०, २१७

प्रशस्ति संग्रहमें उल्लिखित ग्रन्थ

१ अजितजिन चरित्र ६६
२ अध्यात्म पद्धवृत्ति (परमाध्यात्म तरंगिणी) ५०
३ अनन्तव्रतपूजा ५४
४ अपशब्द खंडन ५०
५ अमृताख्य पुराण ५६
६ अर्घकाण्ड १८०
७ अष्ट सहस्री ६५
८ अंग प्रज्ञप्ति ५०
९ आयज्ञान तिलक १६२
१० आराधना पताका १८८
११ आशाधरकृत पूजन वृत्ति आशाधरी (आशाधर कृत वृत्ति) १६१
१२ उत्तर पुराण ८२
१३ उद्यापन विधि ५०
१४ कर्मकाण्ड (भाष्य) १५२
१५ कर्म ग्रंथ ६८
१६ कर्मदाह विधि ५०
१७ कषाय पाहुड १८३
१८ कार्तिकेयानुप्रे क्षावृत्ति ४२
१९ क्षपणासार १६७
२० गणधर वलयपूजा ५०
२१ गणितसार संग्रह १७६
२२ गोम्मटसार ६५
२३ गोम्मटसार (टीका) १५२
२४ चन्दना चरित्र ५२
२५ चन्दना कथा ५८
२६ चन्द्रनाथ चरित ५०
२७ चन्द्रप्रभ चरित, ७०, ७१
२८ चन्द्रप्रभपुराण १६६
२८ चारित्रसार १२२
२९ चिंतामणि पूजा ५०
३० चिन्तामणि व्याकरण ५०
३१ चिंतामणि पार्श्वनाथ (पूजा) १६२
३२ चूलिका
३३ छन्दोनुशासन ८४, २२
३४ जय धवला १८३, १८४, १८७
३५ जय धवला (सिद्धांत टीका) १६६
३६ जीवक (जीवन्धर कुमार) चरित्र ५०
३७ जैनेंद्र (व्याकरण) ६४, २००
३८ जोयसार (जोगसार) २२१
३९ ज्वालिनी मत १६७

४० ज्ञानार्णव ७१
४१ तत्त्वनिर्णय ५०
४२ तत्त्वार्थसंग्रह १०३
४३ तत्त्वार्थसार टिप्पण १७४
४४ त्रिंशत चतुर्विन्शति पूजन ५०
४५ त्रैलोक्यसार ६५
४६ देवागम ४८, १०५, ११२, ११३
४७ द्रौपदि-प्रबन्ध १०५
४८ धर्मचक्र यंत्र पूजा १४५
४९ धर्मपरीक्षा ३३
५० धवला (षट् खंडागमटीका) १६६
५१ नंदीश्वरी कथा ५०
५२ नन्दीश्वर . पूजा-पाठ) १४२
५३ नाभेयपुराण (आदि पुराण ७०
५४ नीतिसंग्रह पुराण ५७
५५ नीतिसार ५६
५६ नेमिपुराण १५८
५७ नेमि नरेन्द्र स्तोत्र ७८
५८ न्याय विनिश्चय विवरण १
५९ पद्मनाभ चरित ५०
६० परमागमसार १६०
६१ पल्योपम विधान ५०
६२ पंचमी सत्कथा १३५
६३ पंच सहस्त्री (श्वेताम्बर) ७८
६४ पंचास्तिकायसार १२२
६५ पंजी (तत्त्वसार पंजिका टीका) १२४
६६ पांडव पुराण- (भारतनाम) ५०, ६६, १७०
६७ पार्श्वकाव्य ४५
६८ पार्श्वनाथ पुराण ८३
६९ पुराणसार १७७
७० पुरु पुराण (आदि पुराण) ११२
७१ पुरुषार्थानुशासन १५९
७२ प्रद्युम्न चरित्र ५०
७३ प्राकृत लक्षण ५३
७४ प्रायश्चित्त समुच्चय ११८
७५ प्रायश्चित संग्रह ११९
७६ बृहत्सिद्धचक्र पूजा-पाठ १४२
७७ बिम्ब प्रतिष्ठा विधि १११
७८ भारती कल्प
७९ भारतपुराण (पाण्डवपुराण) ४९
८० भैरव पद्मावती कल्प १५१
८१ महापुराण८२, १४६, १७७, १७८
८२ महावीरचरित्र १०८
८३ महीपचरित्र (महीपालचरित्र) ७६
८४ मौनव्रत कथा ८०
८५ यशोधरा महाकाव्य १२४
८६ रिट्ठसमुच्चय-सत्य ५८८
८७ वित्तिसुत्त १८३
८८ वृषभ पुराण १८०
८९ शब्द चिन्तामणि ५३
९० शब्दाम्भोज दिवाकर १४४
९१ शांतिक स्नान १७०

९२ शिखि देवि कल्प १४६
९३ श्रीदेवता कल्प १६४
९४ श्रीपाल चरित ५६२
९५ श्रीपार्श्वनाथ काव्य पंजिका ५०
९६ षड्द्रव्य निर्णय २००
९७ षडवाद ५०
९८ सन्मति चरित्र १०६
९९ समयसार ७३, १०५, १२२
१०० सम्मेद शैल माहात्म्य ७२
१०१ सरस्वती पूजा ५०
१०२ सर्वतोभद्र ५०
१०३ संशयवदन विदारण ५०
१०४ सिताम्बर पराजय ७८
१०५ सिद्ध चक्र यन्त्र २२२
१०६ सिद्धार्चन ५०
१०७ सिद्धांतसार १२२
१०८ सिद्धि विनिश्चय ११७
१०९ सुभौम-चक्रि चरित्र ६१
११० स्तोत्र ५०
१११ स्वरूप सम्बोधन वृत्ति ५०
११२ हरिवंश चरित १०१
११३ हरिवंशपुराण ३६, ३८, १७८

४

उल्लिखित वंश, अन्वय, गोत्र और जाति

कुन्दकुन्दवंश १५, ३०
कुन्दकुन्द संतान १२
कुन्दकुन्दान्वय ६, ३५, ५३, १५४, १५६, २०७, २११, २१३, २२५
गौतमान्वय ८७
नन्द्याम्नाय १३६
पंचस्थूहाणय (पंचस्तूपान्वय) १८२
पंचस्तूपान्वय १८५
पूज्यपाद-वंश ३३
माथुरान्वय २२२
लोहाचार्यान्वय ६७
वागडान्वय ७
अग्रवाल ६२, ८६
अग्रवालान्वय १४२
अग्रोत (वंश) १७, २२२
अग्रोतक १३३, १४१
अग्रोतकान्वय १५८, २०८
इंगलेश्वर (अन्वय) १६१
कान्यकुब्ज (ब्राह्मण कुल) १४०
कायस्थ (जाति) १३१
कार्पटि (गोत्र) १२०
काश्यप (गोत्र) ११५
खंडेलवाल ६२
खंडेलवालान्वय ८७

खंडिल्ल (वंश) ७८
गर्ग (गोत्र) १५८
गार्ग्य (गोत्र) १३३
गुर्जरवंश १६८
गोधा (गोत्र) २२४
गोयल (गोत्र) १४२
गोलापूर्वान्वय १५६
जैसवाल (जाति) ५, ६, ६२
जैसवाल (आम्नाय) ५
तोमर (वंश) ५
दामधवंश ४१
नैगम [निगम] (वंश) २०५
पद्मावती पुरवाल १४१, २२२
पुरपाट (वंश) २०३
पुरवाड (प्राग्वाट) २०४
पोरपाट-[परवार] (आम्नाय) १७०
प्राग्वाट (कुल) ८
माथुर (वंश) १३१
रवि (सूर्य) वंश ६८
लंबकंचुक (कुल) २१
लंबकंचुक (कुल) ३१
लंबकंचुक (गोत्र) १३७
लंब कंचुक (वंश) ६८
लंबकंचुक (आम्नाय) १७३
वर्धमान टोला २०
वाणस (कुल) १४४
विप्र (कुल) ६२
व्याघेरवाल (जाति) २६
शिलाहार (कुल) २००
श्रीवत्स (गोत्र) ६२
सौमगण (गोत्र) ६२
हुम्बड (जाति) ६२
हुम्बड (वंश) ३४, २१६
हूमड (वंश) १२० २१५

५

उल्लिखित देश, नगर, ग्राम, राजा और पर्वत

अकच्छ(च्च)रपुर २२५
अर्जुरिका (ग्राम) १६६
अटेर (नगर) १४०
अणहिल्ल (नगरी) २०६
अवन्ति (देश) ८७
अ(आ)सापल्ली (नगरी) ३२
अहिछत्रपुर (नगर) ८
अंबावरपुर ७६
इन्द्रप्रस्थ (पुर) १५६
ईलदुर्ग २१६
ईलाव (ईडर) १५६
ईसरदे (ग्राम) ७३

उज्जैनिका (नगरी) ८७
ऊर्जयंत (गिरि) ४८, १७१
एक शैलनगर ११५
कर्णाट (देश) ६२
कल्पवल्लीलग. ६८
कुंभनयर (नगर) १८१
कुम्भनगर ६१, १६८
कुह (देश) १५८
कोल्लापुर (कोल्हापुर) १६६
क्षेत्रपाल विधि २२०
खंडिल्लकपत्तन ४
खंडेलवालान्वय २२२
खड्गे जवाछपुर (नगर) १६६
खांडिल्यवंश २०६
गजपंथगिरि २१२
गंधसारनगर ३१
गंधारपुरी १५
गिरिपुर ५३
ग्रीवापुर १००
गुर्जर (देश) ४०
गुर्जर-नरेन्द्र १८४
गूर्जर (देश) ५७, ६६, १७६
गूर्जरार्य (राजा) १८४
गोपदुर्ग (गोपाचलदुर्ग) ५
गोपाचल (पर्वत) ६८
गोंढिली (मेदपाट) १०६
चंपापुरी २२५
चौड (देश) १०८
जहानाबाद (नगर) ६६
तक्षक (टोडा) नगर २०१
तमालपुर १६३
तौलव (देश) ६०
दरियापुर १५६
दक्षिण (देश) ५७
दिल्ली १६८
दिग्विजनगरदुर्ग ८१
देवगिरि ८४
धारा (नगरी) २०२
धारा (पुरी) १७७
नवलक्षपुर ६६
नीलगिरि १३६
पनशोकावली ६२
पंचाल (देश) १७३
पाटलीपुत्र (पत्तन) ६२
पूर्वाशानगर १७
बानारसीपुरी १५६
बागड (देश) ६२
मगध (देश) ६२
मधूकनगर २६
मनोहरपुर ८४
मलय (दक्षिण देश) १३५
महाराष्ट्र (ग्राम) ७१
मान्यखेट (कटक) १३६
मान्यखेट (नगर) १६५

मालव (जनपद) ३७, ५७
मालव (देश) १७, ८१
मुल (मूल) गुन्द (नगर) १५२
मेदपाट (मेवाड़) ५७, १०६
मेदपाटपुरी ४१
मौद्गल्य पर्वत १०८
रणस्तंभ [रणथंभौर] (दुर्ग) ६५, ६६
राजगृह १२४
रामनगर २७
रहितासपुर (रोहतक) १४१, २२२
लंकानगरी १६५
लोहपत्तन (नगर) ६८
वरला (नगरी) १०८
वाट ग्रामपुर १८४
विजयसार (दुर्ग) ८१
विदेह-(क्षेत्र) १६२
विलासपुर १९७
वैभार (पर्वत) ६७
वाग्वर (प्रान्त) ५१
वाग्वर (देश) ३४, ५३, ५७, ६२
वाग्वर (बागडदेश) ४०
शाकम्भरीपुर ३४
शाकवाटपुर (सागवाड़ा) ५०
श्रीपथ (पुरी) १२६
सकीट (पुर) जि० एटा १७३, १७४
सम्मेदाचल (पर्वत) ६२
सरण्यापुर ११३)
सलेमपुर १५८
साकुंभपुरी ६४
सागपत्तन (सागवाड़ा) ६२
सिंहपुर ३
सुनाम (नगर) १७२
सूरिपुर १४०
सेरपुर ६६
सोप्पे (ग्राम) २२१
सौजित्र (नगर) [सोजित्रा] १७६
सौर्यपुर (शौरिपुर) ६६
स्वर्णाचल (पर्वत) १४१
स्वर्धुनी (गंगानदी) ६२
हिरण्याऽऽह्व (हरनाख्यजनपद) १७२
हिसार (नगर) ४२
हेम (ग्राम) १३५
हेम पट्टण ६२

६

प्रशस्तिसंग्रहमें उल्लिखित जिनालय तथा पर्व आदि

आदि जिनागार	१७	पार्श्वजिनालय	५७
चन्द्रनाथालय	६६	पार्श्वनाथ जिनालय	६६, १४१
चन्द्रप्रभधाम (जैन मंदिर)	५२	पार्श्वनाथालय	८५
चन्द्रप्रभसद्म	१००	पंचमतीर्थसदन	८०
जिन शासन	१८८)	वृषभालय	१५६
जैन धर्मालय	१५२	वृषभेश्वरसदन	१७०
जैन शासन	१८५	शान्तिनाथ चैत्यालय	६६
तुंगीगिर	२१६	शान्तिनाथ भवन	१८६
त्रिभुवनतिलकजिनालय	२०३	सिद्धचक्रव्रत	१७
धूली पर्व	६३	सुदर्शनालय	६२
नाभेयप्रवरभवन (आदिनाथचैत्यालय)	७१	होलीपर्व	६३

७

प्रशस्तिसंग्रहमें उल्लिखित देवी-देवता

अम्बिका (देवी	१७१	पुलिंदिणी ,,	१६२
कामसाधनी (देवी)	१५०	ब्रह्मराक्षस (देवता)	१३५
त्रिपुर भैरवी (देवी)	१५०	ब्राह्मी	४८
त्रिपुरा ,,	१५०	मायादेवी	४६, ६३
त्रोतला ,,	१५०	लक्ष्मी	१४४
त्वरिता ,,	१५०	वन्हिदेवी	१३५, १३६
दुर्गा ,,	१६०	वाक्पति	१४७
निर्ऋा ,,	१५०	वाग्देवता	१४६
पद्मा ,,	१५०	श्रुतदेवता	१८१, १८३, १८४
पद्मावती ,,	६२		

प्रशस्तिसंग्रहमें उल्लिखित आचार्य, भट्टारक और विद्वान्

अकलंक १, २, १४, १६, ३०, ४६, ५१, ६६, ९३, ११८, १७७, २०९, २१४, २१५, २१६
अकलंक गुरु १६७
अकलंकदेव २१३
अकलंक (भट्ट) १२७, २२३
अकलंक सूरि ११
अक्षपाद ११४
अखैराम (शिष्य विद्यानन्दि) २८
अजित विश्व ८१
अजितसेन १३४
अजितसेन गणी १५१
अजितसेन सूरि १४६
अज्जज्जणंदि (आर्य आर्यनन्दि) १८२
अज्जमंखू (आर्यमंखू) १८३
अनन्तवीर्य १, २, ११८
अभयचन्द्र १६१
अभयचन्द्र देव ८७
अभयनन्दि ७५, ८७, १४४
अभयेन्द्र १४७
अभयसूरि १६१
अमरकीर्ति ३०
अमरकीर्ति (शिष्य मल्लिभूषण) १४६
अमलकीर्ति १२४
अमिलगति ९३, १२७
अमृतचन्द्र ५४
अय्यप ११९
अय्यपार्य ११५
अरुणारत्न (मणि) ९६
अर्हनन्दि (त्रैविध) १४४
असग १०७, १०८, १०९, १२७
आर्यनन्दि १०७
आर्यनन्दि गुरु(चन्द्रसेनके शिष्य) १८५
आर्यमिश्र ८७
आशाधर ८, १११, २०६
आशाधरसूरि १४
इन्द्रनन्दि ११९, १३७, १३८, १३६, १३५
उदयसेन ६८, १०४
उद्यद्भूषः (उदयभूषण) ११३
उमास्वाति १४, १६, १२७, २२३
उमास्वामि ३०, २१२
एक संधि १११
एलाइरिय १८१
कणभुज ११४
कर्ण नृपति २०४
कनकसेन २, १३४, १४९
कनकसेन गणी १५१

कन्दर्प १३७
कमलकीर्ति (भट्टारक) १२२, १२४, २२२
कमलकीर्ति (सूरि) ६२
कमलकीर्ति (आचार्य) १३१
कमलसागर (ब्रह्मचारी) २६
करुणाकर ११४
कर्मसिंह २१६
कर्मसी वर्णी १००
कल्याणकीर्ति २११, २१३
कविचन्द्रिका २०६
कांकसुत २१८
कामराज सहलाद्रिवर्णि शिष्य) ४१
कीर्तिसागर (ब्रह्मचारी) २६
कुन्दकुन्द १४, १६, ३७, ४०, ५४, ६०, ६१, १०५, १६१
कुन्दकुन्द गणी ४८
कुन्दकुन्द मुनि ११
कुन्दकुन्द सूरि ४२, १२७, १५५
कुन्दकुन्दाचार्य ३४, ६६, १०१, १०२, १३६, १४६, २०२
कुमुदचन्द्र २२२
कुमारकवि ८६, ११३
कुमारनन्दि २०१
कुमारसेन १११
कुवलयचन्द्र १६५
केशवनन्दि १५३
केशवसेन सूरि २७
कृष्णदास (ब्रह्म) ६८
कृष्णदास कवि ५७
कृष्णदास मुनि ५६
क्षांति रसव्वा (आर्या) १३७
क्षेमकीर्ति १२३
क्षेमकीर्ति गुरु ७५
क्षेमचन्द्र (वर्णी) ४२
गणधरकीर्ति १६३, १६६
गणधरदेव १६३
गणहरदेव १७८, १८३
गुणकीर्ति ५, ४०, ६८
गुणचन्द्र ६०, ६१
गुणचन्द्र (देवकीर्ति शिष्य) ८०
गुणचन्द्रसूरि ३४
गुणधर भट्टारक १८३
गुणनन्दि मुनि १३७
गुणभद्र (गुरु) १४
गुणभद्र ३७, ४६, ८१, ६१, ६३, ११७, १२७, १७१
गुणभद्र मुनीश्वर ११३
गुणभद्रसूरि २८, ८२, १११
गुणभद्राचार्य २३, ७०, १४६
गुणवीर सूरि ११३
गुणसेन १०४, १६४
गुणाकरसेन सूरि ८५
गुरुदास ११६, १२०

गोपसेन ४, १०३
गोपाल वर्णी ८८
गोविन्द भट्ट ११३
गौतम (गणधर) ११, १२, ३७, ४८, ५१, ६०, ६६, ७२, १०१, १०२, १०५, ११०, १११, १२२, १३४
गंगमुनि १३७
चन्द्रकीर्ति ६२
चन्द्रकीर्ति (श्रीभूषणशिष्य) ८३
चन्द्रकीर्ति मुनि १८०
चन्द्रसेन १८२, १८५
चारित्रभूषण (भ० रत्ननन्दि शिष्य) ७६, ६५
चारुकीर्ति मुनि १६१, १६२
चार्वाक ११४
जगत्कीर्ति (भट्टारक) ५४, ७३
जगतभूषण १५६
जगतभूषण देव (भट्टारक) १३६
जगन्नाथ (कवि) ७७, १६३
जगन्नाथ चान्दी (पोमराज श्रेष्ठी पुत्र) ७८
जगन्नाथ (पंडित) ७६
जनाश्रय ८४
जयकीर्ति २७, ५६, ६२, ७५
जयदेव ८४, १३४
जय मुनि ४१
जयसेन ४, १२७, १०४
जयसेन मुनि ८५
जंबू मुनि (अन्तिम केवली) १०
जंबू मुनिपुंगव १०५
जंबूस्वामी १०१
जिनचन्द्र ६१, ७३
जिनचन्द्र (भट्टारक) ६४, १३१
जिनचन्द्र सूरि ८७, ६८
जिनदत्त १७१
जिनदास (पंडित) ६६, ६७
जिनदास (ब्रह्मचारी) १०, १०१, १०२, २०७
जिनदाससूरि १४१
जिनदेव (ठाकुर) ७७
जिनसेन १४, ३८, ३६, ४१, ४३, ४६, १६७, ५१, ५६, ७०, ८२, ६३, ६४, ६७, १०१, १०२, १०५, ११२, १२७, १३४, १४४, १४८, १४६, १५१, १५२, १६६, १७१, १८५, १८७
जिनसेन (हरिवंशपुराणकर्ता) १७८
जिनसेन (महापुराण कर्ता) १७८
जिनसेन महाकवि ११
जिनसेनाचार्य २३, २४, १११, १४५
जिनाप्य १०६
जिनेन्द्रभूषण यति ७२, १४१
जिनेन्द्रभूषण (भट्टारक, ब्रह्म हर्षसिंघु पुत्र) १४०
जीवनराम १४०
जीवराज (पंडित) ४१

जैसे वर्णी (सकलेन्द्र भ्राता) १००
जैसराज वर्णी ६३
जैता ब्रह्मचारी १७४
ज्ञानकीर्ति (वादिभूषण शिष्य) २१४, २२५
ज्ञानभूषण १६, ४६, ५१, ५२, ५४, ६२, १५२, १५३, १५५, १५६, १५६, १७१, २२४
ज्ञानभूषण (भट्टारक) २६, ४०, ४२, ४३, ४४
तेजपाल (पंडित) ६२
त्रिभुवनकीर्ति ५५, ६८, २०४
त्रिलोककीर्ति (भट्टारक) २५, ३५
त्रैलोक्यदीपक २०३, २०५
त्रैलोक्यसार २०३
विक्रम (कवि) १४४
दयापाल २
दामनन्दि १६६
दामोदर (भ० धर्मचन्द्र शिष्य) ७१
दिविजेन्द्रकीर्ति (भट्टारक) ६२, १५५
दुर्गदेव १८८, १८६
देव (अकलंकदेव) २, ३, ११८
देवकीर्ति ८०
देवचन्द्र मुनीन्द्र ६२
देवदत्त (कवि दीक्षित) ७२, १४०
देवनन्दि (शिष्य भ० विनयचन्द्र) २५
देवनन्दी १४४
देवर वल्लभ ८६, ११३
देवसेन १२३, १८७
देवसूरि १६१
देवाचार्य १६१
देवेन्द्रकीर्ति ११, १२, १४, १५, १७, ३०, ३५, ७३, ८६, ८७, १४६, १८०, २०८, २०६, २१२, २१६, २१७, २१८
देवेन्द्र भूषण (भट्टारक) १४०
देवेन्द्रयशा (देवेन्द्रकीर्ति) २०६
धनंजय १२७, २०६
धनंजयसूरि ६२
धरसेन १८१
धरसेन पंडित (वीरसेन शिष्य) ७४
धरसेनाचार्य १११
धर्मकीर्ति ३६, ३७, ११८
धर्मचन्द्र १२, १७२, १७३
धर्मचन्द्र मुनि ६६
धर्मचन्द्र (भट्टारक) ७०
धर्मदास (ब्रह्मचारी) १०
धर्मसेन ४, ८३, ६३, ६५, ६६, ६७, १०३, १७८
धर्म्माकार २०३
नयसेनार्य १७२
नरेन्द्रसेन २, १०४, १३४
नरेन्द्रकीर्ति (भट्टारक) ४१, ७७
नंदिगुरु ११६, १२०

नंद्याचार्य १६४
नागकुमार ७४, १३४,
नागचन्द्रसूरि ६२
नागदेव ७६
नागनंद्याचार्य १०७, १०६
नागहस्ती १८३
नीलग्रीव १३७
नेत्रसिंह १६१
नेमिचन्द्र १६, २०, २८, ७०
नेमिचन्द्र गणी १६६, १६७
नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती १६५
नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक ३२
नेमिचंद्राचार्य १६६
नेमिदत्तव्रती १५
नेमिदत्त (ब्रह्म) १८
नेमिनाथ त्रैविद्य (यतीश) १६४
नेमिसेन ६३, ६६, ११७, १७७, १७८
पद्मनन्दि ६, ११, १२, १५, १७, १६, २१, ३३, ४०, ४२, ४३, ४६, ४६, ६१, ८७, ८८, १०२, १४६, १५४, ५५, १८०, १६५
पद्मनन्दि त्रिरात्रिक १५४
पद्मनंदि मुनि (यशः कीर्तिके गुरु) ३५
पद्मनन्दि सैद्धांतिक) १६८ २२४
पद्मनन्दी (मुनि) १६५, २०७, २०८, २०६, २१२,
पद्मनाभ (कायस्थ) ५, ६,
पद्मसेन १०३, १८७
पाणिनीय मुनि १६१
पात्रकेशरी १५
पादपूज्य (पूज्यपाद) ६१, १६८
पिंगल ८५
पुष्पदन्त ४६, १०६, १८१, १६५,
पुष्पसेन ११४
पूज्यपाद २, २६, ४८, ५१, ८४, १११, १२७, १४३, १६६, २०६, २११, २१५, २१६, २२३
पूर्णेन्दु (पूर्णचन्द्र १६३
प्रभंजन (कवि) ७
प्रभाचन्द्र १४, १५, १६, २१, २६, १४४, १५६, १६८, १७२, १७४
प्रभाचन्द्र गणी ६२
प्रभाचन्द्र देव ४५
प्रभाचन्द्र भट्टारक ६६
प्रभाचंद्र मुनि १६२
प्रभेन्दु (प्रभाचंद्र) ११, १२, ६४, २०१, २०२, २११, २१४, २१५, २१६, २२३
प्रवचनसेन (पंडित) १६३
प्राभाकर ११४
बन्धुदेव (पंडित) ६१
बप्पनन्दि, १३८, १३६
बलभद्र देव २१६

बलहणी ११७
बीजाव १३७
बोध(ज्ञान)भूषण मुनि ६६
ब्रह्मसेन १०४
भद्रबाहु ३०, ४८, ६३, १०१, १६७
भाट्ट ११४
भानुकीर्ति (भट्टारक) ७०
भारतीभूषण १५६
भावसेन
भावकीर्ति ४, ६७, १०३
भीम १०८
भीमसेन ६३
भुवनकीर्ति ५६, ६८, १०६
६, १६, ४०, ४६, ४६
६१, १०१, १०२
भुवनकीर्ति (भट्टारक) ४२, ४३, ४४
५३, ६६, २०६, २२४
भूतबली १८१
भूपाल कवि ८
मतिसागर १, २, ३, ३१
मदेहमल्ल (हस्तिमल्ल) ११३
मनोहर (शिष्यभ० देवेन्द्रकीर्ति) ७३
मलयकीर्ति १३१
मल्लिभूषण १५, १७, १८, ३०, ८७,
१४६, १५२, १५५, १५७, १८१,
मल्लिभूषण गुरु २१०, २१८, २१६
मल्लिषेण १३४, १४७, १४६, १५१,
१५२
मल्लिषेण गणी १४८
महादेव कवि १०
महासेनसूरि ५६, ८५
महेन्द्रकीर्ति ३०
महेन्द्रदत्त यती १७,
माणिक्यसेन ११७
माण्डव ८४
माधवचंद्र १८८
माधवचंद्रमुनि १६५
माधवचंद्र त्रैविद्यचक्रवर्ती १६७
माधवनन्दि
माधव भट्ट १७८
मुनिचन्द्र ६०
मुनिचन्द्रसूरि १६६
मुनीन्द्र (मुनिचन्द्र) १६६
मेघेन्दु (मेघचन्द्र) १६६
मेदार्य (गणधर) ३, १०३
मौलि १५४
यति वृषभ १६६, १८३
यशः कीर्ति (भ०) ३४, ३५, ३७, ६०,
६१, ६८, ७०, ६८,
यशसेन २२२
यशोभद्र ६७
योगदेव (पण्डित) ६१
रक्तरत्न (अरुणमणि) ६६
रत्नकीर्ति ११, १२, १४, २१, ३४,
५६, ६०, ८०, ८७, ६३

रत्नकीति (गुरुभ्राता भुवनकीर्ति) ६१
रत्नचन्द्र (भट्टारक) ६१, ६२, ६३
रत्ननन्दि ७६
रत्नपाल ३५
रत्नपाल (बुध) ६८
रत्नभूषण २७, ५६, ६८,
रत्नराजऋषि ३०
रविचन्द्र १८७
रविषेण ३६, १२७, १०१, १०२, २०७
रत्नाकर सूरि ७५
राघव (बुध–,श्रुतकीर्ति शिष्य) ६८
राजश्री (आर्यिका) २२२
राजेन्द्रचन्द्र (मुनिचन्द्र शिष्य) ६०
रामकीर्ति (भट्टारक) ४०
रामचन्द्र मुनि ३३, ३६
रामचन्द्र मुमुक्षु १५४
रामसेन २७, ५६, ५६, ८२, ६३, ६५,
६६, १०६, १७७, १७८, १७६,
२२१,
रामसेन मुनि ६८,
रायमल्ल (ब्रती–,मह्यवणिक पुत्र) १००
रूपचन्द (पण्डित) १५८, १५६, १६१,
१६२,
लक्ष्मण ३१, १२८,
लक्ष्म (ण) सेन ६६,
लक्ष्मीचन्द्र (भट्टारक) ४३, ८७, १५२,
१५३, १५५, १५६, १८१,
लक्ष्मीसेन ५६
लखू (ठक्कुर) १२२
ललितकीर्ति (भ०)शिष्य धर्मचन्द्र ६३
ललितकीर्ति (भट्टारक) ६२, ३५, ६७,
२४, २०५,
लालजी वर्णी (विबुध) ७८
लोहार्य (लोहाचार्य) ७२, ६७,
वट्टकेरादिक १२७
वर्धमान (कवि) ८६,११३
वसुनन्दी १११
वसुनन्दिसूरि १५४
वाग्भट्ट (कवि) ८, २०६, २२०
वाग्भट १६१
वादिचन्द्र (प्रभाचन्द्र शिष्य)
२६, ६३ १८०
वादिभूषण (भट्टारक) ४०, २२४, २२५
वादिराज २, ४५, २०६
वादीन्द्र (वादिचन्द्र) १००
वादीभसिंह १५४, २२३
वामदेव २०५
वालेन्दु (बालचन्द्र) १६१
वासवनन्दी १३८
वासवसेन (वागडान्वयी) ७
वासवसेन १०६
विजयकीर्ति (भट्टारक) १६, ४०, ४२,
४४, ४५, ४७, ४६, ५२, ५४, ५५,
२२४

विजयेन्द्रसूरि ७५
विजय-सत्थ २२१
विद्यानन्द २, १६, ६१, १५७, १८० २१५, २१६, २१७
विद्यानन्दि (देवेन्द्रकीर्ति शिष्य) १२, १४, १५, १६, ८७, २०८, २०९, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८,
विद्यानन्दि (गुरु श्रुतसागर) २०, ७१ २७, २६, १४६, १५२,
विद्याभूषण ८३, ६४, ६५, ६६, १७६, १७८, १८०,
विद्युच्चर १०१
विनयचन्द्र (पण्डित) ६, २५
विनयसागर (भ० विश्वभूषणशिष्य) १४०
विनायकानन्दि १५४
विमलसेन ८३, ६४, ६५, ६६, १७८,
विरुवट्टः (क्षुल्लक) १३७
विशाख (विशाखाचार्य) ४८
विशाखाचार्य ६३
विशालकीर्ति १२, ८३, ६४, ६५, ६६,
विशालकीर्ति (पण्डितदेव) २००
विश्वभूषण (भट्टारक) ३४, १४०
विश्वसेन मुनि १७८, २२१
विश्वसेन ८३, ६४, ६५, ६६,
वीरचन्द्र (भट्टारक) ४३, १५५, १५६, १८१,
वीरनन्दि ७, १२७
वीरभद्र १८८
वीरसेन १०४ ११२, १४४, १६४, १६६, १८१, २०३
वीरसेन (भट्टारक) १८२, १८५
वीराचार्य (वीरसेन) १११
वीरु कवि (पुत्र सा. तोतू) १४२
वोसरि (भट्ट) १६२
शांतिषेण ४, १०३,
शिवकोटि, ३०, ११२, १२७, २१२
शिवानन्द मुनींद्र २५,
शिवायन ११२
शिवाराम (पंडित) (पुत्र पुषद वनिप) ८१
शिवाभिराम १६८
शील (ब्रह्म) १७१
शुभकीर्ति १२
शुभचन्द्र १६, २०, ५१, ५३, ५५, १७१, १७७, २२२, २२४
शुभचन्द्र भट्टारक ४०, ४२
शुभचन्द्रदेव ४५, ५२, ८८, १६८
शुभचन्द्रसूरि २४, १६६,
शुभेन्दु (शुभचन्द्र) ४३
शुभतुङ्गदेव १६५
श्रीचन्द्रमुनि (नंद्याचार्यशिष्य) १६४
श्रीदेव १२४
श्रीधर ३२
श्रीनन्दि मुनि १७७

श्रीनन्दिसूरि १५५
श्रीपाल (आचार्य) १८७
श्रीपाल वर्णी ४५, ५०,
श्रीभट्ट १२७
श्रीभूषण भट्टारक ४५, ७० ६५, ६६, १७६, १८०
श्रीभूषणसूरि ८३
श्रुतकीर्ति ६७, ६८
श्रुतकेवली ११०
श्रुतगुरु १८७
श्रुतजलनिधि—(श्रुतसागर) २१२
श्रुतमुनि १६०, १६१
श्रुतरत्नाकर (श्रुतसागर) २०६
श्रुतसागर १५. १६, १७, ३०, ७१, *४६, २०८, २१०, २११, २१३, २१४, २१५, २१७. २१६ ।
श्रुताब्धि (श्रुतसागर) १५७, २१५
सकलकीर्ति (भट्टारक) ६. १६, ४० ४१, ४२, ४३, ४४, ४६, ४७, ५२, ६१, १०१, १०२, २०७, २२४ ।
सकलचन्द्र (भट्टारक) १६६, १६७
सकलभूषण २०, ४१
सकलभूषणमुनि १६६, १७०
सकलेन्द्र (सकलचन्द्र) १००
सत्यवाक्य ८६
समन्तभद्र, १. १४, १६, ३०, ४८, ५१, ७०, ६३, १०५, १११, १२७, १४४, १७७, १६७, २११, २१३ ।
समन्तभद्र स्वामी २
समन्तभद्रार्य ११२
समवसृति १६१
समस्तकीर्ति १६३
सरोजकीर्ति (कमलकीर्ति) १६३
सहस्रकीर्ति ३२, ३५, ६८,
सहिलाद्र वर्णी ४१
संयमकीर्ति १२३
संयमदेव १८८, १८६
संयमसेन १८८
सागरनन्दी १६५
सागरसेन मुनि १७७
सिद्धसेन १६२
सिद्धसेनसूरि ५६
सिंहकीर्ति १५६
सिंहनन्दि १५, १७, १८
सिंहनन्दि भट्टारक २४
सिंहनन्दी आचार्य ७१, १५७, १५८
सुगन ११४
सुदर्शनमुनि ११, १२
सुभद्र ६७
सुमतिकीर्ति भट्टारक ४०, ४१, ४२
सुमतिकीर्ति २०, १५२, १५३, १५६, २२४
सुधर्म (गणधर) १०१, १०५
सुमतिसागर ८७
सुरेन्द्रकीर्ति १७३
सुरेन्द्रभूषण भट्टारक १४०

सेतव ८४
सोनिक (पंडित–,सकलूसाधू पुत्र) १७३
सोमकीर्ति ५८, ५६, ६८, १०६,
सोमदेव २८, १२४, १२७, १६६
सोमदेवमुनि १६४, २००
सोमदेवयति १६६
सोमामर (सोमदेव) १६६
स्वर्णनन्दी १६५
हरदेव (पंडित) ७७
हरिकृष्ण (पंडित) १४०
हरिश्चन्द्र १२७
हरिवाल २२१
हरिषेण कवि ७, १०६
हरीन्दुयति १६६
हर्ष सागर १४०
हर्षसिन्धु (हर्षसागर) अह्म १४०
हस्तिमल ८६, १११, ११३
हंसवर्णी १५६
हुंबड कुल २१६
हेमकीर्ति ६३, १२३, १७२, १७३
हेमचन्द्र ८८, १४२
हेमचन्द्रमुनि २२२
हेमचन्द्र आचार्य १४५
हेमराज (पंडित) १४०
हेलाचार्य (द्रविडगणाधीश्वर) १३५, १३७, १३८

६

प्रशस्तिसंग्रहमें उल्लिखित राजा और राजमंत्री

अनुरुद्ध ८१
अमोघवर्ष (गुर्जरनरेन्द्र) १७५, १८४
उद्धरणभूपति ५
करकंडु नरेन्द्र १६६
कर्ण राजा) १३२
कर्णभूपति ५७
कामिराय (पुत्र विट्ठलदेवी) ६०
काष्ठांगार ५१
कुशराज (पुत्र जैनपाल) राजमंत्री ६
कृष्णराज (राजा) १३६
गंगांगज १३२
गंडरादित्य (राजा) १६६
गुणकीर्ति २२४
गुणनन्दी १६६
गुणभद्र १६७
गुणभद्रदेव २०१
गुणभूषण २०४
गुप्तिगुप्त ३०
गुर्जर १६५
गुर्जरनरेन्द्र १८४

ग्यासशाह (बादशाह) ६४
जगतुंगदेव (राजा) १८२
जयसिंहदेव (सिद्धराज) १६६, २०२
जयसिंह (राजा) २८, २०६
जहांगीर (बादशाह) १५६
जीवक ५१
ताराहरि (सिंह १६८
नानूसाह (महामात्य) २२४, २२५
नसीरसाह (बादशाह) ६४
नृपतुंग (राजा) १७५
पद्मनाभ १६६
पद्मसिंह १६८
परमर्दिन (राजा) ११७
परशुराम ६१
पर्पट ८५
पंकजकीर्ति (कमलकीर्ति) २२५
पाण्ड्य महीश्वर ८६, ११३
विट्ठलदेवी (राणी) ६०
पेरोसाह (बादशाह) ६४
बब्बर (बाबर) मुगल २२२
बाहुबलि (महामात्य) मंत्री १६५, १६६, १६७
बोद्दणरायनरिंद १८२
भरत (राजा) १८४
भरतेश्वर १६१
भानुभूपति २१६
भीम (नृप) २०६
भोजदेव (वीर) २००
भोजदेव (राजा) १६४. १७७
भोजराज (राजा) १६५
भोजराज (मंत्री) २१२
मगधाधिप १३४
मरीचि ५६
महमूदशाह ६४
म(मु)हम्मद १३२
मानसिंह २२५
मुंजराज ८५
मुदगल (राजा) ६६
यशोधर ७
राजसिंह (राजा) २०६
राम १३२
वरंगशाह ६६
वल्लभेन्दु ८५
वीरमेन्द्र ५
वीरसिंह (राजा-तोमरवंशी) ५
लच्छि निवास (राजा) १८६
लक्ष्मण १३२
शिवकुमार २०१
शेरशाह ६५
श्रीनाथ (राजा) १०८
श्रेणिक (बिंबसार) ११९
श्रेयांस (राजा) १६१
सगर (राजा) १८४
समरादिसिंह (राजा) ४०

सलेमशाह ६२
सामंतसेन (राजा) ८१
सामन्तसिंह (राजा) १६८
साहिजलालदीन १५६
साहि (शाहजहां) १५१
सिन्धुराज ८५
सिंहमहीपति ३
हरिराज (राजा) १५८

१०

प्रशस्तिसंग्रहमें उल्लिखित श्रावक और श्राविका

अर्कमाम्बा (पत्नी करुणाकर) ११५
अभिमन्यु (पुत्र रामचन्द्र-श्रेष्ठि) ३६
अभयराज १५८
अमरसिंह ६२, १२२, १२३, १२६, १३१
अमरहरि १३१
अमर्त्यसिंह १३२
आदित्य शर्मा १४४
आभदेव २६
उदितया (माता जैनपाल) ६
कचरा (कचरदास) ६२
कमलश्री १३५
कल्याण ६२
कल्याणसिंह (पुत्र कुशराज) ६
कामदेव श्रावक २०४
काल (पुत्र भोजराज) २१६
कान्हरसिंह ६८
कालू (पुत्र हरचा साधु) १७२
कीर्तिचन्द्र १५८
केवलसेन १६०
केशरिदे १६०
कौशीरा (तृतीय पत्नी कुशराज) ६
कृष्ण (कृष्णदास हर्षपुत्र) ६८
कृष्णदास ६३
कृष्णावती १६०
क्षेमराज (जैनपाल पुत्र) ६
खेतल १३१
गदाधर १३१
गुणपाल ४१
गुमटाम्बा (पत्नी पार्श्वनाथ) ६२
गोकर्ण २१
गोगा १७०
गोनरदेव चितातय ७४
गोपी (गोपिका) २१५
गोमती २१८

गोविन्द स्वामी ८६
चक्रसेन १६०
ढोसी २१८
चक्रदेव ७६
चन्दनबाला ४३
चम्पा (भार्या मल्ल) १००
चम्पिका ६२
चाचो (द्वितीय पत्नी भगवानदास) १२८
छाहड (वाग्भट पिता) ८
जवणा (जवणादे) (पत्नी जिनदास) ६६
जालाक ८८
जिनदास (भगवानदास पुत्र) १६०
जिनदास (रेखा पुत्र) ६६
जिनदास (वीरु-पुत्र) २२२
जिन पूर्णेन्दु (जिनचन्द्र) ६०
जैन पालक ११५
जोमन (श्रावक) २०३, २०४
तथ्यवाक्य (सत्यवाक्य) ११३
ताराचन्द श्रावक
(मंत्री जयसिंह राजा) २८
तेजपाल ६२
तोतू साहू १४२, २२२
दामलेन्द्र ८०
देवकी (सुभग पत्नी) ३८
द्यालपाद १२१
धनराज ६२
धन्यराज ८१
धर्मदास (बिल्ह पुत्र) ६४
धर्मदेव (श्रीदत्त पुत्र) १७०
धर्मश्री (पत्नी धर्मदास वैश्य) ६५
धर्मसेन १६०
नयणसीह २२२
नरसिंह १२६
नाथ ८६
नाम देवी २०८
नारायणदास ६६, ६७,
नेमिकुमार २२०
पद्मति १०७, १०६
पद्म श्री १३३
पद्मा ६४
नेमिचन्द्र २००
नेमिदेव २०४
नेमिसेन २०३
पार्श्वनाथ ६२
पुषद (वणिक,पं शिवाभिरामके पिता) ८१
पोमराज श्रेष्ठी वादिराज पिता) ७८
पोम (श्रेष्ठी) सूनु २०६
प्रहलाद (पुत्र सोमदेव) २२
प्रल्हाद ८७
प्रियंकर ७६
पृथ्विराज (जैसवाल) ५
प्रेमा (पत्नी सोमदेव) २१
बिल्ह (वैद्यराज) ६४
ब्रह्मदास १५८

भगवानदास १५८, १६०, १६१
भवराज (पुत्र जैनपाल ६
भवराज (पुत्र सोमदेव) २२
भूल(भुल्ल)ससाधु (जैसवाल) ६
भूषण ८३
भोगिदास ६२
मधन ८६
यतिसागर २१५
मनसुख (हरिराजपुत्र) २३
मल्लिदास (रणमलपुत्र) १४२
मल्लुग ७६
मल्हण (पत्नी रामचन्द्रश्रेष्ठी) ३६
महाराज (सोमदेव पुत्र) २२
मह्य (वणिक) १००
महीअत्त (वणिकपति) ६२
महेन्द्रदत्त (विमलूपुत्र) २०८
मंगल (हर्षपुत्र) ६८
मंदोदरी १६५
माढ्ढ ठक्कुर (पिता जिनदेव) ७७
मामट १५८
मानिनी (पत्नी श्रीदत्त) १७०
मित्रसेन १६०
यशोदा (पत्नी मित्रसेन) १६०
रट्ट (देव) ७४
रतन[राज] (सोमदेव पुत्र) २२
रतिपाल १३१
रल्हो (प्रथम पत्नी कुशराज) ६
राजीमती (पुत्री भोजराज) २१६
रामचन्द्र श्रेष्ठी ३६
राम (देव) ७६
रिखश्री (पत्नी रेखावैद्य) ६५
रुद्रकुमार ११५
रूपचन्द्र २२४
रेखावैद्य (धर्मदास वैद्य पुत्र) ६५
रेखांगज ६२
रैराज (जैनपाल पुत्र) ६
लक्ष्मणश्री (द्वितीय पत्नी कुशराज) ६
लक्ष्मण २०४
लक्ष्मण (विमलू पुत्र) २०८
लालमणि (कान्हरसिंघ पुत्र) ६८
लोणा (पत्नी जैनपाल) ६
वनमालि ६८
वर(न)देव (वाग्भट पुत्र) १७०
वाग्भट श्रावक) १७०
वासाधर (सोमदेव पुत्र) २२
विजैणी (पत्नी आमदेव) २६
विजयसिंह ५
विद्याधर १२०
विनयदेवी २१६
विमलू संघाधिनाथ २०८
वीणा (देवी) १६८
वीरु (मुनि हेमचन्द्र शिष्य) २२२
वीरिका ५७
वेत्ति (स्त्री) १०७
वृहती (भार्या विमल) २०८

शीरि (कांता)	२१५	सोना	२१८
श्रीघोष (पुत्र भोजराज)	२१६	सोम	२६, १४४
श्रीवर्मा	१६६	सोमदेव	२१
श्रीदत्त अनुज (वरदेव)	१७०	सोमसेन	१६३, १६४
श्रीधन	१२०	हमीरदे (पत्नी हेमराज)	६२
सकरू (लू)	१७३	हरि [देव]	७६
सतन [राज] (सोमदेव पुत्र)	२२	हरपति	६४
सरस्वती सूनुः	१२०	हरिराज (सोमदेव पुत्र)	२२
संघराज (पदवी)	१६०	हर्ष (पिता म० कृष्णदास)	५७
संतो (पत्नी हरिराज)	२३	हरिवंश (मित्रसेन पुत्र)	१६०
संतोष (जैसवाल)	५	हर्ष (वणिक)	३४, ६८
साधारण	१४२	हंसराज (पुत्र जैनपाल)	६
साधु रणमल (पुत्र साधारण)	१४२	हावासाधु	१७२
सुभग	३८	हीरा [लाल]	६२
सुहज्जन	६४	हींगा	१३३
सूपकारसार (शास्त्र)	२१	हेम	६२
सैराज (जैनपाल पुत्र)	६	हेम [देव]	७६
सोढदेव	७४	हेमराज	६२
		हेमश्रेष्ठि	६२)